प्रकाशक
मालचन्द बयेद।
प्रबन्धक—ओसवाल प्रेस,
कलकत्ता।

मुद्रक
ओसवाल प्रेस।
१९, सिनागोग स्ट्रीट,
कलकत्ता।

विज्ञप्ति

पूर्व पीठिका

दिग्दर्शन

कवि नामावली

(आकारादि क्रम से)

साहित्य-कुञ्ज ।

विज्ञवरो कृति भेट धरौं कहा ?
वस्तु नहीं इहि में कछु मेरी ।
रचना चुनिके कविराजन की,
करि सञ्चय ग्रन्थन को बहु हेरी ॥
रुचिकारक हो यदि आप भणी,
तब मानिहौं सार्थक मिहनत मेरी ।
धन्यवाद के तो हकदार वेही,
जिनकी रचना उत्कृष्ट घनेरी ॥

पूर्व-पीठिका

काव्य-सग्रह की आवश्यकता

एक ही स्थान पर अनेक सुकवियों की और साथ ही विभिन्न विषयों की भी चुनी हुई रस-मयी सूक्तियाँ पढ़ने को मिल जायँ इसीलिये काव्य-संग्रहों की आवश्यकता होती है। सैकड़ों सुकवियों के मूल-ग्रन्थ क्रय करके पढ़ना प्रत्येक व्यक्ति के लिये असम्भव नहीं, तो कठिन अवश्य है। प्रत्येक पुस्तकालय या सभा में सैकड़ों कवियों के सब काव्य-ग्रन्थ मिल सकें यह भी सहज बात नहीं है। ऐसी अवस्था में, सैकड़ों कवि-कोविदों की चुनी हुई सर्वोत्कृष्ट रचनाओं के रसास्वाद का सुगम साधन, काव्य-संग्रहों को छोड़, दूसरा हो ही क्या सकता है। उत्तमोत्तम अप्रकाशित रचनाएँ भी संग्रह-ग्रन्थों ही में मिलती हैं। हर तरह की रुचिवालों के लिये जैसी चुनी हुई सरस कविताएँ काव्य-संग्रहों में मिल सकती हैं वैसी उत्कृष्ट सूक्तियाँ अन्यत्र नहीं मिल सकतीं। 'भिन्नरुचिर्हि लोकः' को ही ध्यान में रखकर विभिन्न विषयों की चित्ताकर्षक कविताओं का संग्रह काव्य-संग्रहों में किया जाता है। जैसे रत्न-राजि में से पारखी दिव्य-रत्न और बहुमूल्य मणियाँ चुन-चुनकर निकाल लेते हैं, वैसे ही

काव्य-मर्मज्ञ सम्पादक सरस, सुन्दर और श्रेष्ठ उक्तियाँ चुन-चुन-कर संग्रह करते हैं। जैसे चुने हुए रत्नों के बने हुए अलङ्कार की सुन्दरता और चमक-दमक पर लोग लुब्ध होते हैं, वैसे ही चुनी हुई उत्कृष्ट उक्तियों पर काव्य-रसिक पाठक मुग्ध होते हैं। दूसरी बात यह है कि काव्य-संग्रहों से केवल पैसों की ही बचत नहीं होती, अपितु समय भी बचता है। सूक्ति-संग्रहों की रुचिर रचनाओं जैसी कला-पूर्ण कृतियाँ खोजने के लिये सैकड़ों काव्य-ग्रन्थ और लम्बा समय अपेक्षित होता है। उपर्युक्त कारणों से सूक्ति-संग्रहों की ओर लोगों का अधिक झुकाव होना स्वाभाविक है।

हिन्दी-साहित्य का काव्य-कोश

हिन्दी-साहित्य की काव्य-निधि किसी साहित्य से न्यून नहीं है। भाषा-काव्य के प्रकाशित और अप्रकाशित ग्रन्थों की संख्या भी असंख्य है। प्राचीन और अर्वाचीन सुकवियों की सूक्तियों के अनेक संग्रह-ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके और हो रहे हैं। किन्तु काव्य-रसिक पाठकों की मनस्तुष्टि के लिये अभी तक नवीन संग्रह की आवश्यकता बनी हुई है। उनकी मनस्तुष्टि हो भी कैसे? जबकि महाकवि सूर्य्यमल्ल मिश्रण, बनारसी, भूधरदास, किशन, गणेशपुरी, अर्जुन-दास केडिया आदि अनेक ऐसे प्रतिष्ठित प्रौढ़ कवि-कोविदों की रचनाओं का संग्रह अभीतक संग्रहों को सुशोभित नहीं कर सका है, जिनकी काव्य-रचना उच्च कोटि की और काव्य-समालोचकों द्वारा मुक्तकण्ठ से प्रशंसित है।

महाकवि सूर्य्यमल्ल मिश्रण तो अपने समय के अद्वितीय कवि थे। व्याकरण, न्याय और साहित्यादि विषयों में वे एक ही थे। संस्कृत, प्राकृत, शौरसेनी, मागधी, पैशाची और व्रज इन षड् भाषाओं के प्रकाण्ड विद्वान् थे। जनश्रुति है कि २०-२५ वर्ष की अवस्था में ही ये पूर्ण आशु कवि हो गए थे। काव्य-रचना ऐसी शीघ्रता से करते थे कि तेज लिखनेवाले दो सुलेखक भी बड़ी कठिनाई से लिख पाते थे। अपने आश्रयदाता के कहने पर इन्होंने उनके वंश का इतिहास 'वंश भास्कर' नामक ग्रन्थ में काव्य-बद्ध करना आरम्भ किया और लिखने के पहले ही यह तय कर लिया कि जिसके गुण और दोष जैसे ठहरेंगे, उनका उल्लेख मैं स्वतंत्रता पूर्वक वैसा ही करूँगा। इन्होंने किया भी ऐसा ही—आश्रयदाता के पूर्वजों में जो रण-भीरु हुआ उसकी भीरुता का जैसा सच्चा चित्रण और कटु आलोचन इन्होंने जैसी निर्भीकता के साथ किया है, वैसा शायद ही किसी कवि ने अपने आश्रयदाता के वंश-वर्णन में किया होगा। वर्त्तमान आश्रयदाता के गुण-दोषों की आलोचना के समय उनके आपत्ति करने पर इन्होंने रचना ही वन्द कर दी। अर्थ-लोभ-वश मिथ्या-प्रशंसा करने के ये अभ्यासी नहीं थे। इसलिये इन्होंने रोष-प्रसाद की तनिक भी परवाह नहीं की। इनका 'वंश भास्कर' ग्रन्थ सच्चा और प्रामाणिक माना जाता है। इनकी विलक्षण काव्य-शक्ति का परिचय इनके 'वंश भास्कर' से भली भाँति लगता है। ऐसे उद्भट महाकवि

की रचना को संग्रहों में स्थान न मिले यह महान् दुःख की बात है।

सर्वोत्तम कहे जानेवाले संग्रहों में जिन कवियों को स्थान मिला है, उनसे अपेक्षाकृत उच्च कोटि के ऐसे अनेक प्रौढ़ कवियों को स्थान नहीं मिला, जिनकी काव्य-रचना उन सुकवियों से किसी भी विचार से न्यून नहीं है। ऐसी दशा में स्थान न मिलने का कारण समझ में नहीं आता। ऐसे अधूरे संग्रहों से साधारण कविता-प्रेमियों को भले ही सन्तोष हो जाय, किन्तु काव्य-मर्मज्ञ कभी संतुष्ट नहीं हो सकते।

प्रस्तुत संग्रह की विशेषताएँ

प्रकाशित संग्रहों को देखते हुए यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि पर्याप्त काव्य-संग्रहों के होते हुए इस नये संग्रह की क्या आवश्यकता? उत्तर में निवेदन है कि यह संग्रह, औरों से कुछ विशेषताएँ रखता है। महाकवि चन्दवरदाई से लेकर आजतक के ८०० वर्षों के बीच भाषा-कविता की कैसी अवस्था रही, उसमें कैसे-कैसे उलट फेर हुए, जनता और कवियों की रुचि में कैसे-कैसे परिवर्तन हुए इत्यादि बातें एक ही ग्रन्थ में पाठक देख सकें, ऐसा संग्रह मेरे विचार से इसके पूर्व प्रकाशित नहीं हुआ। इसमें कितने ही ऐसे प्रौढ़ कवियों की सरस, सुन्दर और चित्ताकर्षक अप्रकाशित कृतियाँ मिलेंगी जो पूर्व प्रकाशित संग्रहों में नहीं हैं। अन्य संग्रहों में इसके सदृश डिंगल, मरु और मारवाड़ी भाषा की श्रेष्ठ कविताओं का मिलना भी दुर्लभ है। जैन कवियों की अपूर्व कविताएँ

भी अन्यत्र शायद् ही मिलें। अतएव अनेक संग्रह-ग्रन्थों के होते हुए भी इस संग्रह की आवश्यकता और उपयोगिता स्पष्ट है।

इसके प्रथम संस्करण में कविताओं का अच्छा संग्रह हुआ था और कविताएँ भी सभी विषयों की थीं। पर मेरी दृष्टि में वीर-रस की कविताएँ कुछ कम थीं। यह कमी मुझे बराबर खटकती रही। प्रस्तुत संस्करण में उस कमी को दूर करने की यथासाध्य चेष्टा की गई है।

वीर-रस का जैसा अनूठा वर्णन करने में चारण जाति के कवि सफल हुए हैं, वैसे अन्य कवि नहीं। यहाँ तक कि जब-जब देश की स्वतन्त्रता, धार्मिकता तथा क्षत्रियों की मान-मर्यादा पर आक्रमण और अत्याचार हुए तब-तब चारण-कवियों ने ओजस्वी डिंगल-काव्य-भेरी सुनाकर क्षत्रियों को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ स्वयम् भी युद्ध-क्षेत्र में शत्रुओं से भिड़कर क्षत्रियों का हाथ बँटाया और स्वयं भी वीर-गति को प्राप्त हुए। चारण जाति का पुरुष-वर्ग तो वीर-रस का वक्ता प्रख्यात है ही, स्त्रियाँ भी कवियित्री और शक्ति-स्वरूपा होती रही हैं। इसी आदरणीय चारण जाति के प्रौढ़ कवियों की चमत्कारिक एवं चुनी हुई रचनाएँ इसमें विशेष रूप से दी गई हैं। इनकी कविताओं में हतोत्साह व्यक्ति को उत्साहित करने एवं कर्तव्य-ज्ञान-पराङ्मुख को कर्तव्यारूढ़ कराने की विलक्षण शक्ति है। ऐसे उदाहरण एक नहीं, अनेक पाए जाते हैं। डिंगल-काव्य का भाव ठीक-ठीक समझ में आना कठिन था, इसलिये बहुत सी

कविताओं की टीका भी दे दी गई है। वीर-रस-पूर्ण कविता-रचयिताओं में महाकवि सूर्य्यमल मिश्रण, दुरशा आढ़ा, शूरायचजी टाँपरिया, गणेशपुरी, बाँकीदास, कृष्णसिंह, केशरीसिंह बारहठ (सोन्याणा), केशरीसिंह बारहठ (कोटा) और स्वरूपदास के नाम उल्लेखनीय है।

राजस्थान के साहित्य-सागर का सम्यक् निरीक्षण जिन्होंने सहृदयता की नौका में वैठकर किया होगा, वेही उसके गांभीर्य, विस्तार और सौन्दर्य का पता पा सकते हैं। उच्चकोटि के अनेक ग्रन्थ-रत्न उसके अन्तस्तल में पड़े हुए चमक रहे हैं। वहाँ के साहित्यज्ञ-समाज में प्राचीन परिपाटी ज्यों की त्यों चली आ रही है। न तो वहाँ के कविवर अपनी रचनाओं को प्रकाश में लाने का उद्योग करते हैं और न साहित्य-सेवियों का समाज ही। इस हेतु वहाँ के सुन्दर-साहित्य का अधिकांश अभी तक अन्धकार में ही पड़ा हुआ है। सुना है कि कलकत्ते की राजस्थान-रिसर्च सोसाइटी ने बहुत परिश्रम और यथेच्छ अर्थ-व्यय करके डिङ्गल-काव्य के लगभग ८००० छन्द, दोहे, सोरठे तथा गीत संग्रह किए हैं। उनमें से कुछ 'राजस्थान' तथा 'मारवाड़ी' त्रैमासिक में प्रकाशित भी किए गए हैं। पर जब तक वे क्रम-बद्ध एवं पुस्तकाकार प्रकाशित नहीं किए जाते, तब तक काव्य-प्रेमियों की उत्कण्ठा दूर नहीं होती।

'प्रभाकर' के प्रथम संस्करण में प्रेम-विषयक रचनाएँ अधिक संख्या में दी गई थी। पर बोधा और ठाकुर की कविताओं पर

काव्य-प्रेमी पाठकों की अधिक रुचि जानकर प्रस्तुत संग्रह में उक्त दोनों सुकवियों की उक्तियाँ पर्याप्त संख्या में बढ़ा दी गई हैं। इसी तरह भूषण, सूदन आदि वीर कवियों, कवीर, सुन्दरदास, मीराँ बाई आदि भक्त कवियों और रहीम, राजिया, वृन्द आदि नीतिकारों की भी कविताएँ पर्याप्त मात्रा में बढ़ा दी गई हैं।

जिन उत्कृष्ट कवियों की कविताएँ तो मिलीं पर बहुत खोजने पर भी जन्म–समय नहीं मिल सका। उन्हें अज्ञात काल प्रकरण में स्थान दिया गया है। विज्ञ–पाठक यदि इसे तुलनात्मक दृष्टि से अन्य संग्रहों से मिलाएँगे तो वे इस वात की सच्चाई का प्रमाण पा सकेंगे। साथ ही इस वार का साहित्य-कुञ्ज भी पूर्वापेक्षा अनेक लता-वल्लरियों से सजा हुआ और सघन है।

अधिकांश रचनाएँ सुकवियों के मूल ग्रंथों से ली गई हैं। अन्य संग्रहों से कविताएँ बहुत कम ली गई हैं। यह भी इसकी एक विशेषता है। जो कवि जिस रस के लिये प्रख्यात है उसकी उसी रस की कविता अधिक संख्या में संग्रह की गई है। इस कारण यह संग्रह सभी श्रेणी के लोगों के लिये उपयोगी हो गया है।

यों तो प्रस्तुत संग्रह की सभी कविताएँ सरस सुन्दर और उत्कृष्ट हैं, किन्तु इस संस्करण में जिन सुकवियों को स्थान दिया गया है उनमें से दुरशा आढ़ा, महाराज मानसिंह (जोधपुर), शूरायचजी टाँपरिया, गणेशपुरी, अर्जुनदास केडिया, महाराज चतुरसिंह, प्रतापसहाय (सिरोहिया), बाँकीदास, कृष्णसिंह

सोदा बारहठ, गोपाललाल माथुर, मोहनराज, नाथूराम 'प्रेमी', उत्साहराम, नन्दलाल माथुर, कन्हैयालाल जैन, नौनिधि, केशरी सिंह बारहठ (सोन्याणा), जुगलसिंह, केशरीसिंह बारहठ (कोटा), दत्त, मुरलीधर, रामकुमार, जयदेव, रसरासि और गोविन्ददत्त चतुर्वेदी की रचनाएँ बहुत ही सरस एवं विशेष प्रशंसनीय हैं। महाकवि सूर्य्यमल्ल, शालिग्राम, शिवकुमार केडिया 'कुमार', अमृतलाल माथुर, नवनीत चतुर्वेदी और राजिया की कविताएँ जो प्रथम संस्करण के अतिरिक्त संग्रह की गई है, वे भी बहुत ही श्रेष्ठ और चमत्कारिक हैं। उपर्युक्त कवियों की अनमोल रचनाएँ इसके सिवा अन्य संग्रहों में दुर्लभ है।

उपसंहार और धन्यवाद

इस बार कवियों का संक्षिप्त परिचय देने का विचार था, पर मित्रों की राय इसके प्रतिकूल ठहरी। उनका कहना था कि ४०० कवियों का यदि संक्षिप्त परिचय भी लिखा जाय, तो कम से कम १५० पृष्ठोंका स्थान घेरेगा। इतना अधिक स्थान परिचय में न लगाकर, कविता मे लगाना ही समीचीन होगा। काव्य-रसिक पाठक तो काव्य-सामग्री की अधिकता से जैसे सन्तुष्ट होंगे, वैसे कवि-परिचय से नहीं। परिचय-विषयक ग्रंथो का अभाव भी नहीं है। विचार करने पर उनका परामर्श उचित और उपयुक्त ज्ञात हुआ। इसलिये मैंने पूर्व निश्चित विचार बदल दिया। यदि मित्रों के सत्परामर्श का अनुगमन न करता तो ऐसा सरस और वृहत् काव्य-संग्रह प्रस्तुत करने में मैं असमर्थ रहता।

प्रस्तुत संस्करण में दुरशा आढ़ा के नाम से जो सोरठे छपे हैं उनमें १ से ६ तक के नौ सोरठों में के कितने ही सोरठे पूर्व प्रकाशित संग्रहों में पृथ्वीराज और चम्पादे के नाम से छापे गए हैं। ठाकुर केशरीसिंहजी बारहठ (सोन्याणा) का कहना है कि उक्त नवों सोरठे दुरशा आढ़ा-कृत है। इसी तरह शूरा-यचजी टाँपरिया के नाम से छपी हुई कविता में का प्रथम दोहा भी पृथ्वीराज के नाम से छपा मिलता है, पर है शूरायचजी टाँपरिये का। इसलिये मैंने उक्त कविताएँ पृथ्वीराज के नाम से न देकर पूर्वोक्त रचयिताओं के नाम से दी हैं। वक्सी हंसराज का जन्म संवत् १७५३ छपा है वह भूल है। उनका ठीक समय १७८६ है।

इच्छा न रहने पर भी विवश होकर कुछ कवियों की कवि-ताओं को कम करना पड़ा। क्योंकि प्रथम संस्करण की अपेक्षा प्रस्तुत संस्करण में १५० नये कवि सम्मिलित किए गए हैं। छन्द-संख्या भी पूर्वापेक्षा हजार से ऊपर बढ़ गई है। ऐसी अवस्था में पूर्व प्रकाशित कविताओं में से कुछ का निकाल देना अनिवार्य था। नयी जितनी भी कविताएँ रखी गई है, वे सब कवित्व की दृष्टि से उत्कृष्ट समझकर ही रखी गई है।

प्रस्तुत पुस्तक की कविताओं का संग्रह करने में मैंने यथा-साध्य पूर्ण परिश्रम किया है। प्रूफ-संशोधन में भी भरसक सावधानी से काम लिया गया है और छपाई-सफाई पर भी विशेष ध्यान दिया गया है। गेट-अप भी जहाँतक हो सका

सर्वाङ्ग-सुन्दर बनाने का प्रयत्न किया है। सारांश यह कि मुझ से जहाँतक बन पड़ा इसे सुन्दर और श्रेष्ठ बनाने में मैंने कोई बात उठा नहीं रखी। पर परिश्रम सफल तभी होगा, जब विज्ञ पाठक इसे अपनाएँगे। सफल हुआ हूं या असफल, यह कहने का मैं अधिकारी नहीं, इसका निर्णय तो विज्ञ-पाठक और निष्पक्ष समालोचक ही करेंगे। यदि इससे काव्य-रस-लोलुप पाठकों को कुछ भी रसास्वाद मिला तो मैं अपना परिश्रम सार्थक समझूंगा तथा यथाशक्य शीघ्र ही इसका दूसरा भाग पाठकों की भेंट करने का प्रयत्न करूँगा।

पूर्ण सावधानी से काम लेने पर भी त्रुटियों का रह जाना बहुत सम्भव है। कुछ त्रुटियों के रहते हुए भी प्रथम प्रयास के नाते मैं क्षमा का अधिकारी हूं।

इस पुस्तक के सम्पादन में मुझे ठाकुर केशरीसिंहजी बारहठ (सोन्याणा), राजस्थान-केशरी ठाकुर केशरीसिंहजी बारहठ (कोटा), मित्रवर सेठ शिवकुमारजी केडिया, पं० उत्साहरामजी प्राणाचार्य्य ने अपने सत्परामर्श-द्वारा जो सहयोग एवं सहायता दी है उसके लिये मैं उनका विशेष कृतज्ञ हूं और उन्हें हृदय से धन्यवाद देता हूं।

संग्रह करने में, कवियों के मूल-ग्रंथ जुटाने तथा कविता चुनने में भाई मोहनलाल शर्म्मा से पर्याप्त सहारा मिला। एतदर्थ उन्हें धन्यवाद देना भी मेरा कर्तव्य है।

'प्रभाकर' का शुरू से शेष तक का सम्पूर्ण कम्पोज एक हाथ का है। श्यामरथी प्रसाद गुप्त ने मेरे इच्छानुसार जैसा सुन्दर कम्पोज-कार्य सम्पादन किया है, उसके लिये उन्हें धन्यवाद देना भी मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूं।

विघ्न-घटा कों हटाइकै आज नवीन छटा ते 'प्रभाकर' आयौ।
त्यौंही कवित्तन-मानिक-ढेर अमोल अँधेर-परयौ प्रगटायौ॥
देखत दक्षन के मन-मंजुल-कज को पुंज बड़ो विकसायौ।
धन्य कविंदन प्रेषक-वृन्दन जौन समस्त प्रमोद बढ़ायौ॥

ओसवाल प्रेस,
बसन्त पञ्चमी, सं० १९९३ } महालचन्द बयेद।

दिग्दर्शन ।

सूक्ति-संग्रह की प्रवृत्ति साहित्य-क्षेत्र में परम्परा से चली आ रही है। हिन्दी में व्रजभाषा की कविताओं के कितने ही सग्रह कई ढङ्ग के निकल चुके हैं। किसी में केवल सवैयों का सग्रह है तो किसी में केवल कवित्तों का ही; किसी में रस-भेद पर अधिक जोर दिया गया है तो किसी में नायिका-भेद पर। कविताओं के ऐसे सग्रह भी निकले हैं जिनका लक्ष्य पुराने कवियों की रचनाओं से परिचय कराना ही है। कुछ सग्रह इतिवृत्त के साथ भी निकले हैं। फिर भी ऐसे सग्रह अभी कम निकले हैं जिनका उद्देश्य केवल सूक्ति-सग्रह और सर्व सूक्ति-सग्रह हो। प्रस्तुत संग्रह शुद्ध संग्रह की प्रवृत्ति को लेकर किया गया है और इसमें प्रसिद्ध-अप्रसिद्ध कवियों, प्रकाशित-अप्रकाशित कविताओं सबका समावेश करने का प्रयत्न दिखाई देता है।

इस संग्रह की सबसे स्पष्ट और प्रमुख विशेषता राजस्थान की डिंगल-कविता का सग्रह है। राजस्थान के कवि दो प्रकार की भाषाओं में रचना किया करते थे, एक तो उनकी देशी भाषा थी जिसमें की गई रचना को वे लोग डिंगल की रचना कहते थे। दूसरी लोक-भाषा या सामान्य काव्य-भाषा थी जिसमें की गई रचना को उसी वजन पर 'पिंगल' की रचना कहते थे। पिंगल की रचना को तो हिन्दी-साहित्य के भीतर स्थान दिया गया, पर डिंगल की रचना देशी समझी जाती रही है, इसीलिये आलोचकों की दृष्टि उधर कम गई। किन्तु विचार करने पर डिंगल की कविता को भी हिन्दी-साहित्य के दायरे के भीतर ही रखना और उस पर दृष्टि डालना आवश्यक प्रतीत होता है। भाषा-विज्ञान की दृष्टि से अपभ्रन्श-काल की बहुत-सी बची खुची सामग्री उसमें मिल सकती है। जब 'अवहट्ट' में लिखनेवाले और भाषा-विज्ञान के विचार से हिन्दी-भाषा-क्षेत्र के बाहर की विहारी भाषा में रचना करने वाले मैथिल-कोकिल विद्यापति हिन्दी-साहित्य के

भीतर ही रखे जाते हैं—क्योंकि हिन्दी शब्दावली का प्रसार मिथिला तक माना जाता है, तब डिंगल की रचना की ओर से उदासीन होना समीचीन नहीं जान पड़ता, विशेषतः पुराने कवियों की रचनाओं से जिनमें भाषा-विज्ञान और साहित्य दोनों की दृष्टियों से ऐतिहासिक एवं साहित्यिक सामग्री पर्याप्त मिल सकती है। हमारे विचार से सम्पादक महोदय ने डिंगल की रचना का संग्रह करके श्लाघ्य कार्य किया है, क्योंकि इन कविताओं को देखकर समालोचक उधर अवश्य आकृष्ट होंगे और डिंगल-काव्य के अन्वेषण एवं विश्लेषण में प्रवृत्त होकर हिन्दी-साहित्य का क्षेत्र-विस्तार बढ़ावेंगे।

प्रस्तुत संग्रह में छायावादी नाम से प्रसिद्ध आधुनिक कवियों की कविताओं का संग्रह अवश्य कम है। सम्भवतः अधिक कवियों की रचनाओं का सग्रह न करने में सम्पादक महोदय ने सामान्य लोक-रुचि पर ध्यान रखा है। फिर भी उनमें से कई अच्छे २ कवि छूट गए हैं। गृहीत पद्धति के विचार से भी कुछ और कवियों की कविता संगृहीत होनी चाहिये थी। आशा है सम्पादक महोदय अगले संस्करण में इस पर ध्यान देंगे।

ब्रह्मनाल, काशी।
माघ कृष्णा ११, सं० १९९२ } —विश्वनाथप्रसाद मिश्र।

साहित्य-प्रभाकर।

चन्दबरदाई।

[सं० १२०५—१२४८ तक]

दोहा—

सरस काव्य रचना रचौं, खलजन सुनिन हसंत।
जैसे सिधुर देखि मग, स्वान सुभाव भुसन्त॥ १॥
पर योसित परसै नहीं, तै जीते जग बीच।
पर तिय तकत रैन दिन, ते हारे जग नीच॥ २॥
पिया रण मांही मरे, नारी सती न होय।
अगति जाय भटकत फिरै, कही गोरज्या सोय॥ ३॥
दिन पलट्यो पलटी घड़ी, पलटी हथ्थ कवान।
पीथल पहिज पारखूं, दिन पलट्यो चहुवान॥ ४॥
चार वाँस चौवीस गज, अंगुल अष्ट प्रमान।
एते पर सुलतान है, चूके मत चहुवान॥ ५॥
श्याम साकरे जानके, रहे अवसर घर सोय।
सो रानी फिरतो लियो, कुल रजपूत न होय॥ ६॥

सिधुर=हाथी। स्वान=कुत्ता। योपित=स्त्री।

पिया मरत त्रिया रहै, करै पुत्रकी आश।
सो रानी फिरतो लियो, कुल रजपूत न तास॥ ७॥

भुजंगप्रयात—

इते सूर न्हावे करैं दान ध्यानं,
उते अप्सरा अंग मंजंत तानं।
इते टोप टंकार सीसं उतंगं,
उते अप्सरा कंचुकी प्हेरि अंगं॥
इते सूर मोजा बनावंत भाये,
उते अप्सरा नूपुर प्हेरि पाये।
इते सूर रागं बधे ताय तेगं,
उते अप्सरा चुर्निया प्हेरि जंघं॥
इते पाघ पेचं समारंत सूरं,
उते सीस फूलं गुहावेत पूरं।
इते सूरमा पायमें झलम डारै,
उते झुंड रंभा सुमाँगे समारें॥

छप्पय—

प्रथम अंग बल होय, द्वितिय अभ्यास शस्त्रको।
तृतिय सदा सब भोग, चतुर्थ मददहन शत्रुको॥
पंचम सब छल जान, छठे को भोम न भूलै।
सप्त समझ कर काम, अष्टमें चित्त न डूलै॥
नवे निडर चल जाय अरु, सीत घाम सम कर भमें।
कवि चन्द कहे पृथिराजसों, ए दश गुण क्षत्रिय धर्ममें॥ ६॥

इंही बान चहुआन, राम रावण उत्थप्यो ।
इंही बान चहुआन, करण सिर अर्जुन कप्यो ॥
इंही बान चहुआन, शंकर त्रिपुरासुर संध्यो ।
इंही बान चहुआन, भ्रमर लछुमन कर वेंध्यो ॥
सो बान आज तो कर चढ्यो, चन्द विरद सञ्चो चवै ।
चहुआन रान संभर धनी, मत चूकै मोटे तवै ॥ १० ॥

जब जन्म्यो पृथिराज, मातको नूर गमायो ।
जब जन्म्यो पृथिराज, पेट पथ्थर नहीं आयो ॥
जब जन्म्यो पृथिराज, सुताकुल होत जो सारी ।
जब जन्म्यो पृथिराज, हुओ सब हंसा चारी ॥
पृथिराज राज संभर धनी, सुकवि चन्द सञ्चो चवै ।
जयचन्दराज कन्नौज के, दरवान होइ कैसे रहै ॥ ११ ॥

इसो राज पृथिराज, जिसो गोकुल में कानह ।
इसो राज पृथिराज, जिसो हथ्थह भीमकह ॥
इसो राज पृथिराज, जिसो अहंकारी रावन ।
इसो राज पृथिराज, राम रावन संतावन ॥
बरस तीस छह अग्गरो, लच्छन वतीस संजुत्त भन ।
इम जंपै चन्द बरदाय वर, पृथिराज उनिहार इन ॥१२॥

हय कट्टत भयो भोम, भोम हुअ पेन पलट्यो ।
पय कट्टत कर लस्रो, करहु सब सेन समट्यो ॥
कर कट्टत शिर धस्रो, शिरहु तन तन हुअ तूट्यो ।
शिर तूटत धर लस्रो, धरहु सनमुख हुअ फूट्यो ॥

धर फट्ट फट्ट कवि चन्द कहै, रोम रोम लग्गे लरन।
सुर असुर नाद जय जय करैं, धन्य धन्य संगर मरन ॥१३॥

हंस न्याय दूबरो, मुत्ति लभे न चुगन कहुं।
सिंह न्याय दूबरो, करिय चंपे न कुंभ कहुं॥
मृग न्याय दूबरो, नाद बंधियो सुबंधन।
छैल छक्क दूबरो, त्रिय दूबरी मित्त बिन॥
आषाढ़ गाढ़ बंधन धुरा, कंध न कहुं हरदीया।
कमधज्ज राय इम उच्चरै, तुं किम दूबरो बरदीया * ॥१४॥

चढ़ि तुरंग चहुआन, आन फेरीत परद्धर।
जासुं मंड्यो जुद्ध, तास मानेयो सरव्वर॥
कोय दंत ग्रहि पत्र, कोय ग्रहि डाल मूल तरु।
कोय दंत तुछ त्रन, गए दश दिशि भाजनि डर॥
भुव लोक दिखत अचरज भयो, मानसवर भर मरदीया।
पृथिराज खलनि खद्धो सुखर, इम दूबरो बरदीया ॥१५॥

पुरे न लग्गी आर, भार लद्धो न पीठ पर।
गरजी धार गिमार, गृही गढ़ी न नथ्थ कर॥
भ्रमिन कूप भ्राम्हरी, कबुक सम सेन न रत्तो।
पूंछ धार ललकार, रथ्थ सथ्यातन जुत्तो॥
आषाढ़ मास बरषा समय, कंध न कहुं हरदीया।
जंगल उजार पशु त्रण चरण, क्यों दूबरो बरदीया ॥१६॥

---

* बलद, बिरद कहनेवाला भाट (चंद)।

तव जंपै कवि चन्द, सुनहु जयचन्द राजवर ।
पुरे आर किम सहे, सहे किम भार पीठ पर ॥
नथ्थ हथ्थ किमि सहे, कूप भ्रामरि किमि भंडो ।
हय गय शूर धरव्वी, स्वामि सथ्थ भारथ तंडो ॥
वरषा समान चहुवान गुन, केई अरि उर हरदीया ।
पृथिराज खलन जुद्धो सुखर, इम दूवरो वरदीया ॥१७॥
प्रथम नयर नागोर, वंधि शाहिब्ब चरिग त्रन ।
गुज्जरवे भर भीम, सीम शोधीत सकल वन ॥
मेवाती मुगल्ल, श्रब्ब भजि पत्र जु खद्धा ।
ठठ्ठा कर ठीलये, सह्यी सन मूल न लद्धा ॥
सामंत नाथ हथ्थां सुकहि, लरी कइ मान मरदीया ।
पृथिराज खलनी वद्धो सुखर, इम दूवरो वरदीया ॥१८॥
वत्तिस लच्छन सहित, वरस छत्तिस मास छह ।
इम दुर्जन संग्रहे, सहे जिम सूर चन्द्रग्रह ॥
इक छूटहि महिदान, इक छूटहि भरि दंडहि ।
इक ग्रहाहि गिरिकंद, इक अनुसरहि चरण ग्रहि ॥
चहुवान चतुर सव विधि इहे, हिंदुवान सव हथ्थ जिहि ।
इम जंपै चंद वरदाय वर, पृथिराज उनिहार इहि ॥१९॥
जिहि कयमाष सुमंत, खोदि खछव धन कढ्यो ।
जिहि कयमाष सुमंत, राज चहुवानह चढ्यो ॥
जिहि कयमाष सुमंत, पारि परिहार मुरस्थल ।
जिहि कयमाष सुमंत, म्लेच्छ बध्यो वल सब्वल ॥

चहुं ओर ओर चहुवान नृप, तुरक हिंदु डरपत डरह।
बाराह बाग्र बाराह विघ्र, सुबस सुबास जंगल धरह ॥२०॥
पिये दूध मन पांच, सेर पैंतीस सु सक्कर।
अन्न नव ताकड़ि खाय, खाय एक मोटो बक्कर॥
काल-कूट त्रय सेर, सवा मन घृत सुपोषन।
कस्तूरी इक सेर, सेर दो केशर चोपन॥
मन चार दही महीषी तरन, भोजराज मटकी भरै।
सवा पहर दिन चढ़त ही, सिरामणी चामुंड करै॥ १॥

—※○※—

विद्यापति।

[सं० १४४५—१४७५ तक]

(१)

कनक भूधर शिखर वासिनि, चन्द्रिका चय चारु हासिनि;
दशन कोटि विकाश बंकिम तुलित चन्द्रकले।
क्रुद्ध सुर रिपु बल निपातिनि, महिष शुंभ निशुंभ घातिनि;
भीन भक्त भयापनोदन पाटले प्रबले।
जय देवि दुर्गे दुरित हारिणि, दुर्गमारि विमर्द कारिणी;
भक्ति नम्र सुरासुराधिप मंगलायतरे।
गगन मंडल गर्भ गाहिनि, समर भूमिषु सिंह वाहिनि;
परशु पाश कृपाण शायक शंख चक्र धरे।

बंकिम=टेढ़ा। भयापनोदन=भय दूर करना। पाटल=वृक्ष विशेष।
पास=फांस—रस्सी का एक प्रकार का घेरा।

अघ्र भैरवि संग शालिनि, कृत कपाल कदम्ब मालिनि;
दनुज शोणित पिशित वर्द्धित पारणारभसे ।
संसार वंध निदान मोचिनि, चन्द्रभानु कृशानु लोचिनि;
योगिनी गण गीन शोभित नृत्य भूमि रसे ।
जगति पालन जनन मारण, रूप कार्य्य सहस्त्र कारण,
हरि विरञ्चि महेश शेषर चुम्ब्यमान पदे ।
सकल पाप कला परिच्युति, सुकवि विद्यापति कृत स्तुति;
तोषिते शिवसिंह भूपति कामना फलदे ।

(२)

कि आरे नव जौवन अभिरामा ।
जत देखल तत कहहि न पारिअ छओ अनुपम एक ठामा ।
हरिन इन्दु अरविन्द करिणि हिम पिक वूझ अनुमानी ॥
नयन वयन परिमल गति तनु रुचि अओ अति सुललित वानी ॥
कुच जुग पर चिकुर फुजि परसल ता अरुझायल हारा ।
जनि सुमेरु ऊपर मिलि ऊगल चांद विहुन सवे तारा ॥
लोल कपोल ललित माल कुंडल अधर विम्ब अधजाई ।
भौंह भमर नासा पुट सुन्दर से देखि कीर लजाई ॥
भनइ विद्यापति सेवर नागरि आन न पावए कोई ।
कंस दलन नारायन सुन्दर तसु रंगिनी पए होई ॥

शेखर=भाल, माथा । फुजि परसल=खुल कर फैल गया । अरुझायल=लपट गया । विहुन=विहीन । अधजाई=नीचे जाता है । कीर=तोता । तसु=उसका ।

छओ अनुपम एक ठामा=एक स्थान में ६ अनुपम वस्तुयें देखी ।

(३)

सुधा मुखि के बिहि निरमिल बाला।
अपरुब रूप मनोभव मंगल त्रिभुवन विजयी माला।
सुन्दर वदन चारु अरु लोचन काजरे रंजित भेला।
कनक कमल माझे काल भुजङ्गिनि शिरयुत खंजन खेला।
नाभि विवर सजे लोम लतावलि भुजगि निशास पियासा॥
नासा खगपति चंचु भरम भये कुच गिरि संधि निवासा।
तिन बान मदन तेजल तिन भुवने अवधि रहल दउवाने॥
विधि वड़ दारुण बधइते रसिकजन सौंपल तोहर नयाने।
भनइ विद्यापति सुन वर युवति इह रसके ओ पथ जाने।
राजा शिवसिंह रूपनारायन लखिमा देवि रमाने॥

(४)

गेलि कामिनि गजहु कामिनि विहसि पलटि निहारि।
इन्द्र जालक कुसुम शायक कुहुक भेलि वर नारि॥
जोरि भुज युग मोरि वेढ़ल ततहि वयन सुछंद।
दाम चम्पके काम पूजल जैसे शारद चंद॥
उरहि अंचल झांपि चंचल आध पयोधर हेरु।
पवन पराभवे शरद घन जनि वेकत कयल सुमेरु॥
पुनहि दरसने जीवन जुड़ायब टूटब विरहक ओर।
चरणे यावक हृदय पावक दहइ सब अँग मोर॥
भनइ विद्यापति शुन यदुपति चित थिर नहिं होय।
सेजे रमनि परम गुनमनि पुन कि मिलब तोय॥

(५)

हे धनि कमलिनि सुन हित बानि, प्रेम करव यव सपुरुष जानि।
सुजनक प्रेम हेम सम तूल, दहइते कनक द्विगुण होय मूल॥
टूट इते नहिं टूट प्रेम अद्भूत, यइसन वाढ़त मृणालक सूत।
सबहु मतङ्गजे मोति नहि आनि, सकल कंठे नहि कोयल बांनि॥
सकल समय नह ऋतु वसंत, सकल पुरुख नारि नह गुणवंत।
भनइ विद्यापति सुन वरनारि, प्रेमक रीति अब वूझह विचारि॥
नव वृन्दावन नव नव तरुगण नव नव विकसित फुल।
नवल वसंत नवल मलयानिल मातल नव अलिकुल॥

(६)

विहरइ नवल किशोर।

कलिन्दि पुलिन कुंजवन शोभन नव नव प्रेम विभोर।
नवल रसाल मुकुल मधुमति नव कोकिल कुल गाय।
नव युवती गण चित उमतायइ नव-रसे कानन धाय।
नव युवराज नवल नव नागरी मिलये नव नव भांति।
नित निसि ऐसन नव नव खेलन विद्यापति मतिमाति॥

(७)

सखि कि पुछसि अनुभव मोय।

से हो परत अनुराग वखान इत तिले तिले नूतन होय।
जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल॥
सेहो मधुर बोल स्रवनहि सुनल सुति पथ परसन गेल।

पथ=मार्ग।

कत मधुजामिनिअ रभसे गमाओल न बूझन कैसन केल ॥
लाख लाख युग हिअ हिअ राखल तइओ हिआ जुड़न न गेल।
कत विद्‌ गध जन रस अनु गमन अनुभव काहू न पेख।
विद्यापति कह प्राण जुड़ाइते लाखवे न मिलल एक ॥

—*○*—

कबीरदास।

[सं० १४५५—१५७५ तक]

साहब मेरा एक है, दूजा कहा न जाय।
दूजा साहेब जो कहूँ, साहेब खरा रिसाय ॥ १ ॥
जाको राखै साइयाँ, मारि न सकै कोय।
बाल न बांका करि सकै, जो जग बैरी होय ॥ २ ॥
साहेब सों सब होत है, बंदे तें कछु नाहिं।
राई ते पर्बत करै, पर्बत राई माहिं ॥ ३ ॥
पावक रूपी साँइयां, सब घट रहा समाय।
चित चकमक लागै नहीं, तातें बुझि बुझि जाय ॥ ४ ॥
आतम अनुभव ज्ञानकी, जो कोइ पूछै बात।
सो गूंगा गुड़ खाइकै, कहै कौन मुख स्वाद ॥ ५ ॥
समदृष्टी तब जानिये, सीतल समता होय।
सब जीवनकी आतमा, लखै एकसी होय ॥ ६ ॥
प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥ ७ ॥

प्रेम पियाला जो पियै , सीस दच्छिना देय ।
लोभी सीस न दे सकै , नाम प्रेम का लेय ॥ ८ ॥
जब लगि मरने से डरै , तब लगि प्रेमी नाहिं ।
बड़ी दूर है प्रेम घर , समझ लेहु मन माहिं ॥ ९ ॥
हरि से तू जनि हेत कर , कर हरि-जन से हेत ।
माल मुलुक हरि देत हैं , हरिजन हरिहीं देत ॥ १० ॥
अगिनि आँच सहना सुगम , सुगम खड्ग की धार ।
नेह निभावन एक रस , महा कठिन व्यौपार ॥ ११ ॥
सुमिरन सों मन लाइए , जैसे नाद कुरङ्ग ।
कह कबीर बिसरै नहीं , प्रान तजै तेहि सङ्ग ॥ १२ ॥
माला फेरत जुग भया , पाय न मनका फेर ।
करका मनका डारिदे , मनका मनका फेर ॥ १३ ॥
माला तो करमे फिरै , जीभ फिरै मुख माहिं ।
मनुवाँ तो चहुंदिशि फिरै , यह तो सुमिरन नाहिं ॥ १४ ॥
साधू गांठि न बांधई , उदर समाना लेय ।
आगे पाछे हरि खड़े , जब मांग तब देय ॥ १५ ॥
साइँ इतना दीजिए , जामें कुटुम समाय ।
मैं भी भूखा ना रहूं , साधु न भूखा जाय ॥ १६ ॥
मूए पाछे मत मिलो , कहैं कबीरा राम ।
लोहा माटी मिलि गया , तब पारस केहि काम ॥ १७ ॥
साईं तुम न बिसारियो , लाख लोग मिलि जाहिं ।
हमसे तुमरे बहुत हैं , तुम सम हमरे नाहिं ॥ १८ ॥

हीरा वही सराहिए, सहै घनन की चोट।
कपट कुरंगी मानवा, परखत निकला खोट ॥ १६ ॥
जिन ढूंढ़ा तिन पाइया, गहरे पानी पैठि।
मैं वपुरा बूड़न डरा, रहा किनारे बैठि ॥ २० ॥
वाद विवादे विष घना, बोले वहुत उपाध।
मौन गहे सबकी सहै, सुमिरै नाम अगाध ॥ २१ ॥
जा मरने से जग डरै, मेरे मन आनन्द।
कब मरिहौं कब पाइहौं, पूरन परमानन्द ॥ २१ ॥
तीन लोक नौ खंड में, गुरु तें बड़ा न कोय।
करता करै न करि सकै, गुरू करै सो होय ॥ २३ ॥
सिंहों के लेहंड़े नहीं, हंसों की नहिं पाँति।
लालों की नहिं बोरियाँ, साधु न चलैं जमात ॥ २४ ॥
साधू भूखा भाव का, धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरै, सो तो साधू नाहिं ॥ २५ ॥
चन्दन की कुटकी भली, नहिं बबूल लखराँव।
साधुन की झुपड़ी भली, ना साकट को गाँव ॥ २६ ॥
केसन कहा बिगारिया, जो मूड़ो सौ बार।
मन को क्यों नहिं मूंड़िये, जामें विषै विकार ॥ २७ ॥
कबिरा संगत साधुकी, हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाधुकी, आठों पहर उपाधि ॥ २८ ॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियाँ चुग गईं खेत ॥ २६ ॥

दुर्लभ मानुष जन्म है , देह न वारम्वार ।
तरुवर ज्यों पत्ता झरै , बहुरि न लागै डार ॥ ३० ॥
इक दिन ऐसा होयगा , कोउ काहू का नाहिं ।
घर की नारी को कहै , तन की नारी नाहिं ॥ ३१ ॥
माली आवत देखि कै , कलियाँ करैं पुकार ।
फूली फूली चुनि लिये , कालिह हमारी वार ॥ ३२ ॥
जो तोको कांटा वुवै , ताहि वोव तू फूल ।
तोहि फूल को फूल है , वाको है तिरसूल ॥ ३३ ॥
दुर्वल को न सताइये , जाकी मोटी हाय ।
विना जीव की स्वांस से , लोह भसम ह्वै जाय ॥ ३४ ॥
या दुनियां में आइकै , छांड़ि देइ तूं ऐंठ ।
लेना होइ सो लेइ ले , उठी जात है पैंठ ॥ ३५ ॥
ऐसी वानी वोलिए , मन का आपा खोय ।
औरन को सीतल करै , आपहु सीतल होय ॥ ३६ ॥
न्हाये धोये क्या भया , जो मन मैल न जाय ।
मीन सदा जल में रहै , धोये वास न जाय ॥ ३७ ॥
काम काम सव कोइ कहै , काम न चीन्है कोय ।
जेती मन की कलपना , काम कहावैं सोय ॥ ३८ ॥
आसन मारे क्या भया , मुई न मन की आस ।
ज्यों तेली के वैल को , घर ही कोस पचास ॥ ३९ ॥
दोस पराया देख करि , चले हसंत हसंत ।
अपने याद न आवई , जाका आदि न अन्त ॥ ४० ॥

माया छाया एकसी, बिरला जानै कोय।
भगता के पाछै फिरै, सनमुख भागै सोय॥४१॥
दीपक सुन्दर देखि कै, जरि जरि मरै पतङ्ग।
बढ़ी लहर जो विषय की, जरत न मोड़े अङ्ग॥४२॥
जहाँ दया तँह धर्म है, जहाँ लोभ तह पाप।
जहाँ क्रोध तह काल है, जहाँ छिमा तह आप॥४३॥
ऋतु बसन्त याचक भया, हरखि दिया द्रुम पात।
तातें नव पल्लव भया, दिया दूर नहिं जात॥४४॥
जो जल बाढ़ै नाव में, घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥४५॥
चाह गई चिन्ता मिटी, मनुवाँ बेपरवाह।
जिनको कछू न चाहिए, सोई साहंसाह॥४६॥
धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कुछ होय।
माली सींचै सौ घड़ा, ऋतु आये फल होय॥४७॥
बुरा जो देखन मैं चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजों आपना, मुझसा बुरा न कोय॥४८॥
दया कौन पर कीजिए, कापर निर्दय होय।
साईं के सब जीव हैं, कीरी कुञ्जर सोय॥४९॥
सांच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होय।
पारस में परदा रहै, कञ्चन केहि बिधि होय॥५०॥
बोली एक अमोल है, जो कोइ बोलै जानि।
हिये तराज़ू तौलि कै, तब मुख बाहर आनि॥५१॥

रूखा सूखा खाइकै , ठंढा पानी पीव।
देखि विरानी चूपड़ी , मत ललचावै जीव ॥ ५२ ॥
चलौ चलौ सब कोइ कहै , पहुंचै बिरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी , दुरगम घाटी दोय ॥ ५३ ॥
प्रेम प्रीति सों जो मिलै , तासों मिलिये धाय।
अन्तर राखे जो मिलै , तासों मिलै बलाय ॥ ५४ ॥
पाहन पूजे हरि मिलै , तो मैं पुजौं पहार।
तातैं ये चाकी भली , पीस खाय संसार ॥ ५५ ॥
कांकर पाथर जोरिकै , मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बांग दे , क्या बहिरा हुआ खुदाय ॥ ५६ ॥
पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ , पण्डित हुआ न कोय।
ढ़ाई अक्षर प्रेम का , पढ़ै सो पण्डित होय ॥ ५७ ॥
गुरु कुम्हार शिष कुंभ है , गढ़ गढ़ काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दै , बाहर बाहै चोट ॥ ५८ ॥
मनको कह्यो न कीजिये , जहाँ तहाँ ले जाय।
मनको ऐसा मारिये , टूक टूक हो जाय ॥ ५९ ॥
माया मुई न मन मुआ , मर मर गये शरीर।
आशा तृष्णा ना मरी , कह गये दास कबीर ॥ ६० ॥
नारी पूछत सूमकूं , कहासे बदन मलीन।
कहा गाठ से गिर पड़ो , कहा किसी को दीन ॥ ६१ ॥
नहीं गांठ से गिर पड़ो , नहीं किसी को दीन।
देता देख्यो और को , यासे बदन मलीन ॥ ६२ ॥

आस पास जोधा खड़े , सभी बजावैं गाल।
माँझ महल से लै चला , ऐसा काल कराल ॥ ६३ ॥
ज्यों तिरिया पीहर बसै , सुरति रहै पिय माहिं।
ऐसे जन जग में रहैं , हरि को भूलै नाहिं ॥ ६४ ॥
मांस गया पिंजर रहा , ताकन लागे काग।
साहिब अजहुं न आइया , मन्द हमारे भाग ॥ ६५ ॥
पीया चाहे प्रम रस , राखा चाहै मान।
एक म्यान में दो खड्ग , देखा सुना न कान ॥ ६६ ॥
जाति न पूछो साधु की , पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का , पड़ा रहन दो म्यान ॥ ६७ ॥
साधू ऐसा चाहिये , जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै , थोथा देइ उड़ाय ॥ ६८ ॥
आटा तजि भूसी गहै , चलना देखु निहारि।
कबीर सारहिं छांड़िकै , करै असार अहार ॥ ६९ ॥
सिर राखे सिर जात है , सिर काटे सिर होय।
जैसे बाती दीप की , कटि उजियारा होय ॥ ७० ॥
पतिबरता पति को भजै , और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लंघना , तौ भी घास न खाय ॥ ७१ ॥
सांचे कोइ न पतीजई , झूठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरै , मदिरा बैठि बिकाय ॥ ७२ ॥
तन तुरंग असवार मन , कर्म पियादा साथ।
तृष्णा "चली शिकार को , विषै बाज लिये हाथ ॥ ७३ ॥

भजन—

अपनपौ आप ही बिसरो।

जैसे सोनहा काँच मँदिरमें भरमत भूंकि मरो॥

ज्यों केहरि वपु निरखि कूप जल प्रतिमा देखि परो॥

ऐसेहिं मद गज फटकि शिलापर दशननि आनि अरो॥

मरकट मुठी स्वाद ना बिसरै घर घर नटत फिरो॥

कहं कबीर ललनी के सुवना तोहि कौन पकरो॥ ७४॥

पण्डित वाद वदौ सो झूठा।

रामके कहे जगत गति पावै खांड़ कहे मुख मीठा॥

पावक कहे पाव जो दाहै जल कहे तृषा बुझाई॥

भोजन कहे भूख जो भागै तो दुनिया तरि जाई॥

नरके सङ्ग सुवा हरि बोलै, हरि प्रताप नहिं जानै॥

जो कबहूं उड़ि जाय जँगलको तौ हरि सुरति न आनै॥

बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु नाम लिये का होई॥

धनके कहे धनिक जो हो तो निरधन रहत, न कोई॥

साँची प्रीति विषय मायासों हरि भगतनको फाँसी॥

कह कबीर यक राम भजे विन बाँधे जमपुर जासी॥७५॥

झीनी झीनी बीनी चदरिया।

काहे कै ताना काहे कै भरनी कौन तार से बीनी चदरिया॥

इंगला पिंगला ताना भरनी सुखमन तार से बीनी चदरिया॥

आठ कवल दल चरखा डोलै पांच तत्त गुन तीनी चदरिया॥

सांई को सियत मास दस लागैं ठोक ठोक के बीनी चदरिया॥

सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ैं ओढ़ि कै मैली कीनी चदरिया ॥
दास कबीर जतनसे ओढ़ी ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया ॥७६॥

सन्तो राह दोऊ हम दीठा।

हिन्दू तुरुक हटा नहिं मानैं, स्वाद सबन को मीठा ॥
हिन्दू बरत एकादशि साधै, दूध सिंघाड़ा सेती।
अनको त्यागै मन नहिं अटकै, पारन करै सगोती ॥
रोजा तुरुक नमाज गुजारैं, बिसमिल बाँग पुकारैं।
उनकी विश्ती कहांते होइहै, सांझे मुरगी मारैं ॥
हिन्दू दया मेहर को तुरुकन, दोनों घट सों त्यागी।
वै हलाल वै झटका मारैं, आगि दुनों घर लागी ॥
हिन्दू तुरुक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई।
कहैं कबीर सुनो हो सन्तो, राम न कहेउ खोदाई ॥७७॥

शूर संग्राम को देखि भागै नहीं, देखि भागै सोई शूर नाहीं।
काम औ क्रोध मद लोभ से जूझना, मंडा घमसान तहँ खेत माहीं ॥
सील औ साच संतोष साही भये, नाम समसेर तहँ खूब बाजै।
कहैं कबीर कोई जूझि हैं सूरमा, कायराँ भीड़ तहँ तुरत भाजै ॥७८॥

ज्ञानका गेंदकर सुरतिका दंडकर, खेल चौगान मैदान माहीं।
जगतका भरमना छोड़दे बालके, आय जा भेख भगवन्त पाहीं ॥
भेष भगवन्तकी सेस महिमा करै, सेसके सीसपर चरन डारै।
कामदल जीतिके कवल दल सोधिके, ब्रह्मको बोधिकै क्रोध मारै ॥
पद्म आसन करै पवन परिचै करै, गगनके महलपर मदन जारै।
कहत कब्बीर कोइ संतजन जौहरी, करम की रेखपर मेख मारै ॥७९॥

करम गति टारे नाहिं टरी।

मुनि वशिष्ठसे पण्डित ज्ञानी सोधिके लगन धरी ॥
सीता हरन मरन दशरथको वनमें विपति परी ॥
कहँ वह फन्द कहाँ वह पारिधि कहँ वह मिरग चरी ॥
सीताको हरि लैगो रावन सुवरन लङ्क जरी ॥
नीच हाथ हरिचन्द्र बिकाने बलि पाताल धरी ॥
कोटि गाय नित पुन्न करत नृप गिरगिट जोनि परी ॥
पांडव जिनके आपु सारथी तिनपर विपति परी ॥
दुरजोधनको गरब घटायो जदुकुल नास करी ॥
राहु केतु औ भानु चन्द्रमा विधि संजोग परी ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो होनी हाथ हरी ॥८०॥

कमाल।

[सं० १५०७—]

जिकर कर जिकर कर फिकर कूं दूर कर,
बैठ चौगान विच बांध ताटी।
अलक ने खलक कुल जोकि पैदा किया,
अन्त हो जायगी खाक माटी।
मीर उमराव घड़ि चार के पहर में,
ऊठ कर चले दरबार हाथी।
कहत कमाल कबीर का बालका,
करम अरु धरम दो सङ्ग साथी।

गुरु नानक।

[सं० १५२६—१५९५ तक]

सब कछु जीवत को व्यौहार।

मात पिता भाई सुत बांधव, अरु पुन गृह की नार;
तन तें प्रान होत जब न्यारे, टेरत प्रेत पुकार।
आध घरी कोऊ नहिं राखैं घर तें देत निकार।
मृग तृष्णा ज्यों जग रचना, यह देखो हृदय विचार।
कहु नानक भज राम नाम नित जातें हो उद्धार॥

मनकी मनहीं माहिं रही।

ना हरि भजे न तीरथ सेये चोटी काल गही॥
दारा मीत पूत रथ सम्पति धन जन पूर्ण मही॥
और सकल मिथ्या यह जानो भजना राम सही॥
फिरत फिरत बहुते जुग हारो मानस देह लही॥
"नानक" कहत मिलन की बिरियाँ सुमिरत कहा नहीं॥

—०:*:०—

सूरदास।

[सं० १५४०—१६२० तक]

चरण कमल बंदौ हरि राई।

जाकी कृपा पंगु गिरि लंघे, अन्धे को सब कुछ दरसाई।
बहिरो सुनै मूक पुनि बोलै, रङ्क चलै सिर छत्र धराई।
सूरदास स्वामी करुणामय बार बार बंदौं तेहि पाई॥१॥

अविगत गति कछु कहत न आवै ।
ज्यों गूंगे मीठे फलको रस अन्तर्गत ही भावै ।
परम स्वाद सबही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै ।
मन, वाणीको अगम अगोचर जो जानै सो पावै ।
रूपरेख गुण जाति जुगति बिनु निरालम्ब मन चकृत धावै ।
सब विधि अगम विचारहिं ताते सूर सगुन लीलापद गावै ॥२॥

वन्दौं चरण सरोज तुम्हारे ।
सुन्दर श्याम कमल-दल लोचन ललित त्रिभंगी प्रानन प्यारे ।
जे पद-पद्म सदा शिवके धन सिन्धु सुता उरते नहिं टारे ।
जे पद-पद्म परसि जल पावन सुरसरि दरस कटत अधमा रे ।
जे पद पद्म परसि ऋषिपत्नी बलि नृग व्याध पतित बहु भारे ।
जे पद-पद्म रमत वृन्दावन अहि सिर धरि अगणित रिपु मारे ।
जे पद-पद्म रमत पांडव दल दूत भए सब काज सँवारे ।
सूरदास तेई पद पङ्कज त्रिविध ताप दुख हरन हमारे ॥३॥

अब मैं नाच्यो बहुत गुपाल ।
काम क्रोधको पहिरि चोलना कण्ठ विषयकी माल ।
महा मोहका नूपुर बाजत, निन्दा शब्द रसाल ।
भरम भस्रो मन भयो पखावज चलत कुसङ्गत चाल ॥
तृष्णा नाद करति घट भीतर नाना विधि दै ताल ।
माया को कटि फेंटा बांध्यो लोभ तिलक दियो भाल ॥
कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल ।
सूरदास की सबै अविद्या दूर करौ नँदलाल ॥४॥

छाडु मन हरि विमुखनको सङ्ग।
जिनके सङ्ग कुबुधि उपजति है परत भजनमें भङ्ग।
कहा होत पय पान कराये, विष नहिं तजत भुजङ्ग।
कागहिं कहा कपूर चुगाये, स्वान न्हवाये गङ्ग।
खर को कहा अरगजा लेपन, मरकट भूषण अङ्ग।
गज को कहा न्हवाये सरिता घरै खेह पुनि छंग।
पाहन पतित वान नहिं वेधत रीतो करत निखंग।
सूरदास खल कारी कामरि चढ़त न दूजो रङ्ग ॥५॥

हरि पद कमल को मकरन्द।
मलिन मति मन मधुप परिहरि विषय नीरस फन्द।
परम शीतल जानि शङ्कर शिर धस्रो तजि चन्द।
नाक सरबस लैन चाहो सुरसरी को बिन्द।
अमृतहू ते अमल अतिगुण स्रवत विघ्रि आनन्द।
सूर तीनों लोक परस्यो सुर असुर जस छन्द ॥६॥

हरि जू की वाल छवि कहौं वरनि।
सकल सुख की सींव कोटि मनोज शोभा हरनि।
भुज-भुजङ्ग, सरोज-नयननि, वदन विधुजित लरनि।
रहे विबरन सलिल नभ उपमा अपर द्युति डरनि।
मंजु मेचक मृदुलतनु अनुहरत भूषण भरनि।
मनहुं सुभग सिङ्गार सिसुतर फस्रो अदभुत फरनि।
चलत पद प्रतिविंब मनि आंगन घुटुरुवन करनि।
जलज संपुट सुभग छबि भरि लेत उर जनु धरनि।

पुण्य फल अनुभवति सुतहिं विलोकि कै नंद घरनि ।
सूर प्रभुकी वसी उर किलकनि ललित लरखरनि ॥७॥

गये श्याम तिहि ग्वालिनि के घर ।
देख्यो जाय द्वार नहिं कोऊ इत उत चितै चले घर भीतर ।
हरि आवत गोपी तव जान्यो आपुन रही छिपाय ।
सूने सदन मथनियाँ के ढिग वैठि रहे अरगाय ।
माखन भरी कमोरी देखी लै लै लागे खान ।
चितै रहत मनि, खम्भ छांह तन तासों करत न आन ॥
प्रथम आजु मैं चोरी आयो भल्यो वन्यो है सङ्ग ।
आपु खात प्रतिविम्व खवावत गिरत कहत का रङ्ग ।
जो चाहो सव देउँ कमोरी अति मीठा कत डारत ।
तुमहिं देखि मैं अति सुख पायो तुम जिय कहा विचारत ॥
सुनि सुनि वातें श्याम सुँदरकी उमँगि हँसी व्रजनारि ।
सूरदास प्रभु निरखि ग्वाल मुख तव भजि चले मुरारि ॥८।

मैया मैं नाहीं दधि खायो ।
ख्याल परे ये सखा सवै मिलि मेरे मुख लपटायो ॥
देखि तुहीं सींके पर भाजन ऊँचे घर लटकायो ।
तुहीं निरखि नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायो ॥
मुख दधि पोंछि कहत नद नन्दन दोना पीठ दुरायो ।
डारि सांट मुसुकाइ तवहिं गहि सुतको कण्ठ लगायो ॥
वाल-विनोद मोद मन मोह्यो भक्त प्रताप दिखायो ।
सूरदास प्रभु जसुमति के सुख शिव विरंचि वौरायो ॥९॥

चितै धौं कमल नयन की ओर।
कोटि चन्द वारौं मुख छवि पै ये हैं साह कि चोर॥
उज्ज्वल अरुन असित देखति हैं दुहूँ नयन की कोर।
मानौ सुधा पानके कारन बैठे निकट चकोर॥
कतहि रिसाति जसोदा इन्ह सों कौन ज्ञान है तोर।
सूर श्याम बालक मन मोहन नाहिन तरुन किसोर॥१०॥

ऊधो जी हमहिं न योग सिखैये।
जेहि उपदेश मिलैं हरि हमको सो व्रत नेम बतैये॥
मुक्ति रहौ घर बैठि आपने निर्गुन सुनत दुख तैये।
जिहि शिर केस कुसुम भरि गूंथे तेहि कैसे भसम चढ़ैये॥
जानि जानि सब मगन भये हैं आपुन आप लखैये।
सूरदास प्रभु सुनहु न वा विधि बहुरि कि या व्रज पैये॥११॥

मधुकर यह कारे की रीति।
मन दे हरत परायो सरवस करैं कपट की प्रीति॥
ज्यों षटपद अम्बुज के दलमें बसत निसा रति मानि।
दिनकर उड़े अनत उठि बैठे फिरि न करत पहिचानि॥
भुवन भुजङ्ग पिटारे पाल्यो ज्यों जननी जिय तात।
कुल करतूति जाति नहिं कबहूं सहज सु डसि भजि जात॥
कोकिल काग कुरङ्ग श्याम घन हमहिं न देखे भावै।
सूरदास अनुहारि श्याम की छिनु छिनु सुरति करावै॥१२॥

सब कोउ कहत सयानी बातें।
समुझि न परत बूझि नहिं आवत कही जात नहिं तातें॥

पहिले जानि अग्नि चन्दनसी सती बहुत उमहै।
समाचार ताते औ सीरे आगे जाय लहै॥
कहत फिरत संग्राम सुगम अति कुसुम माल करवार।
सूरदास शिर देत सूरमा सोइ जानै व्यवहार॥१३॥

मधुकर हम न होहिं वै वेली।
जिन भजि तजि तुम फिरत और रङ्ग करत कुसुम रस केली।
वारे ते वर वारि वढ़ी है अरु पोषी पिय पानि।
विनु पिय परम प्रात उठि फूलत होति सदा हित हानि॥
ए वेली विरही वृन्दावन उरझी श्याम तमाल।
पुहुप वास रस रसिक हमारे विलसत मधुप गोपाल॥
योग समीर धीर नहिं डोलत रूप डार ढिग लागी।
सूर परागनि तजति हिये ते श्रीगुपाल अनुरागी॥१४॥

देखि मैं लोचन चुवत अचेत।
मनहुं कमल ससि त्रास ईसको मुक्ता गनि गनि देत॥
द्वार खड़ी इकटक मग जोवत ऊरधश्वास न लेत।
मानहु मदन मिले चाहति हैं मुंचत मरुत समेत॥
श्रवणन सुनत चित्र पुतरीलौं समुझावत जित नेत।
मनहु विरह द्व जरत विश्व सव राधा रुचिर निकेत॥
कहुं कंकन कहुं गिरी मुद्रिका कहुँ ताटंक कहुँ नेत।
धुज होइ सूखि रही सूरज प्रभु वधी तुम्हारे हेत॥१५॥

ऊधो मोंहि व्रज विसरत नाही।
वृन्दावन गोकुल तन आवत सघन तृणन की छाहीं॥

प्रात समय माता यशुमति अरु नँद देखि सुख पावत ।
माखन रोटी धरो सजायो अति हित साथ खवावत ॥
गोपी ग्वाल बाल सँग खेलत सब दिन हँसत सिरात ।
सूरदास धनि धनि ब्रजवासी जिनसों हँसत ब्रजनाथ ॥१६॥

खेलन हरि निकसे ब्रज खोरी ।
कटि कछनी पीताम्बर काछे हाथ लिये भँवरा· चकडोरी ॥
मोर-मुकुट कुण्डल स्रवन पर दसन दमक दामिनी छवि थोरी।
गये स्याम रवि तनया के तट, अङ्ग लसति चन्दन की खोरी ॥
औचक ही देखी तहँ राधा नैन विशाल भाल दिये रोरी ।
नील बसन फरिया कटि पहिरे, बेनी पीठ रुचिर झकझोरी ॥
सँग लरिकिनी चली इत आवति दिन थोरी अति छवि जन गोरी ।
सूर श्याम देखत ही रीझे नैन नैन मिलि परी ठगोरी ॥१७॥

बूझत स्याम कौन तू गोरी ।
कहाँ रहति काकी है बेटी देखी नहीं कहूं ब्रज खोरी ॥
काहे को हम ब्रज तन आवति खेलति रहति आपनी पोरी ।
स्रवनन सुनति रहति नँद ढोटा करत रहत माखन दधि चोरी ॥
तुम्हरो कहा चोरि हम लैहैं खेलन चलौ संग मिलि जोरी ।
सूरदास प्रभु रसिक सिरोमनि बातन भुरइ राधिका भोरी ॥१८॥

मोहन मुरली अधर धरी ।
आरज पथ बिसरो आतुर ह्वै वनहुँ कि सुधि न करी ॥

खोरी=तङ्ग गली । पोरी=एक प्रकार की कड़ी मिट्टी । खोरी=लगाना ।

पद्‌रिपु पट अटक्यो न सम्हारत, उलटत पलटि खरी।
शिव-सुत-वाहन आइ मिले हैं मन चित बुद्धि हरी॥
दुरि गये कीर, कपोत, मधुप, पिक, सारँग सुधि बिसरी।
उड़पति विद्रुम विम्ब खिसान्यो दामिनि अधिक डरी॥
निरखे स्याम पतङ्ग-सुता तट आनँद उमँगि भरी।
सूरदास प्रभु प्रीति परस्पर प्रेम प्रवाह परी॥१६॥

हरि-मुख निरखत नैन भूलाने।
ये मधुकर रुचि-पङ्कज-लोभी ताहीं तें न उड़ाने॥
कुण्डल मकर कपोलन के ढिग जनु रवि रैनि-बिहाने।
भ्रुव सुन्दर नैननि गति निरखत खञ्जन मीन लजाने॥
असन अधर द्विज कोटि वज्रदुति ससिगन रूप समाने।
कुंचित अलक सिलीमुख मानो लै मकरन्द निदाने॥
तिलक ललाट कंठ मुकतावलि भूषनमय मनि साने।
सूरदास स्वामी अँग नागर ते गुन जात न जाने॥२०॥

नैन भये बोहित के काग।
उड़ि उड़ि जात पार नहिं पावैं फिरि आवत नहिं लाग॥
ऐसी दशा भई री इनकी अब लागे पछितान।
मो बरजत बरजत उठि धाये नहिं पायो अनुमान॥
वह समुद्र ओछे बासन ये, धरे कहा सुख रासि।
सुनहु सूर ये चतुर कहावत, वह छवि महा प्रकासि॥२१॥

पतङ्ग-सुता-तट=यमुना।

अतिहि अरुन हरि नैन तिहारे ।
मानहु रति रस भये रग मँगे करत केलि पिय पलक न पारे ॥
मन्द मन्द डोलत संकितसे सोभित मध्य मनोहर तारे ।
मनहुँ कमल संपुट महँ बीधे उड़ि न सकत चञ्चल अलिबारे ॥
झलमलात रति रैनि जनावत अति रस मत्त भ्रमत अनियारे ।
मानहुँ सकल जगत जीवनको काम बान खर सान सवाँरे ॥
अट पटात अलसात पलक पट मूंदत कबहूं करत उघारे ।
मनहुँ मुदित मरकत मनि आंगन खेलत खंजरीट चटकारे ॥
बार बार अवलोकि कुरुखियन कपट-नेह मन हरत हमारे ।
सूर श्याम सुख दायक लोचन दुखमोचन लोचन रतनारे ॥२२॥

बिनु गोपाल बैरनि भई कुंजैं ।
जे वै लता लगत तनु शीतल अब भई विषम अनल की पुंजैं ॥
वृथा वहुत यमुना तट सगरो वृथा कमल फूलनि अलि गुंजैं ।
पवन पानि घनसार सुमन दै दधि सुत-किरनि भानु भै भुंजैं ॥
ए ऊधो कहियो माधो सों मदन मारि कीन्हीं हम लुंजैं ।
सूरदास प्रभु तुम्हरे दरसको मग जोवत अंखियन भई घुंजैं ॥२३॥

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो ।
समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो ॥
इक नदिया इक नार कहावत मैलोहि नीर भरो ।
जब दोनों मिलि एक बरन भये सुरसरि नाम परो ॥
इक लोहा पूजा में राखत इक घर बधिक परो ।
पारस गुन अवगुन नहिं चितवत कञ्चन करत खरो ॥

यह माया भ्रम जाल कहावै 'सूरदास' सगरो।
अबकी बार मोहिं पार उतारो नहिं प्रन जात टरो ॥२४॥

आपको आपनहीं बिसरो।
जैसे स्वान काँच के मन्दिर भ्रमि भ्रमि भूंकि मरो।
ज्यो केहरि प्रतिमा को देखत बरवस कूप परो ॥
मरकट मूठि छोड़ि नहिं दीनी घर घर द्वार फिरो।
"सूरदास" नलिनी के सुवना कह कौने पकरो ॥२५॥

सबै दिन गये विषय के हेत।
तीनों पन ऐसे ही बीते केस भये सिर सेत ॥
आँखिन अन्ध श्रवण नहिं सुनियत थाके चरन समेत।
गङ्गाजल तजि पियत कूपजल हरि तजि पूजत प्रेत ॥
राम नाम बिन क्यों छूटोगे चन्द्र गहे ज्यों केत।
"सूरदास" कछु खर्च न लागत राम नाम मुख लेत ॥२६॥

दो में एको तो न भई।
ना हरि भजे न गृह सुख पाये वृथा विहाय गई ॥
ठानी हुती और कछु मन में औरै आनि भई।
अविगत गति कछु समझि परत नहिं जो कछु करत दई ॥
सुत सनेह तिय सकल कुटुम मिलि निसिदिन होत खई।
पद नख चन्द चकोर विमुख मन खात अँगार भई ॥
विषय विकार दवानल उपजी मोह बयार बई।
भ्रमत भ्रमत बहुते दुख पायो अजहु न टेव गई ॥

कहा होत अबके पछताने होती सिर बितई।
"सूरदास" सेये न कृपानिधि जो सुख सकल मई ॥२७॥

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतङ्ग करी दीपक सों आपै प्राण दह्यो ॥
अलि-सुत प्रीति करी जल-सुत सों सम्पति हाथ गह्यो।
सारङ्ग प्रीति करी जो नाद सों सन्मुख बाण सह्यो ॥
हम जो प्रीति करी माधव सों चलत न कछू कह्यो।
'सूरदास' प्रभु बिन दुख दूनो नैनन नीर बह्यो ॥२८॥

मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी।
किती वार मोहिं दूध पियत भइ यह अजहूँ है छोटी ॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों ह्वै है लाँबी मोटी।
काढ़त गुहत नहावत ओछत नागिन सो भ्वै लोटी ॥
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी।
"सूर" श्याम चिरजीवो दोऊ भैया हरि हलधर की जोटी ॥२९॥

—※○※—

मलिक मुहम्मद जायसी।

[सं० १५४५—१६०० तक]

अखरावट से।

गा-गारइ अब सुनहु गियानी। कहइ ग्यान संसार बखानी ॥
आसिक पुल सिरात पथ चला। ते कर भौंहन्ह कर दुइ पला ॥

चाँद सुरुज दुनउ सुर चलहीं । सेत लिलाट नखत झलमलहीं ॥
जागत दिन सोवत निसि मांझा । हरखि भोर विसमय भई सांझा
सुख वइकुंठ भुगुत औ भोगू । दुख हइ नरक जो उपजइ रोगू ॥
वरखा रुदन किहा अनि कोहू । विजुली हँसी हे चंचल छोहू ॥
घर्डी पहर विहरइ हरि साँसा । वीतइ छवो रितु वारह मासा ॥

जुग जुग वीतइ पलहि पल. अवधि घटत नित जाइ ॥
मीच नियर जव आवइ, जानहु परलइ आइ ॥

× × × ×

ठा-ठाकुर वड़ आप गोसाईं । जेइ सिरजा जग अपनइ नाईं ॥
आपुहि आप जो देखइ चहा । आपन प्रभुता आपसे कहा ॥
सवइ जगत दरपन करि लेखा । आपुहि दरपन आपुहि देखा ॥
आपुहि वन औ आप पखेरू । आपुहि सउजा आप अहेरू ॥
आपुहि पुहुप फूल-गति फूले । आपुहि भँवर वास-रस भूले ॥
आपुहि फल आपुहि रखवारा । आपुहि सो रस चाखन हारा ॥
आपुहि घट घट महँ मुख चाहई । आपुहि आपन रूप सराहई ॥

आपुहि कागद आपु मसि, आपुहि लिखने-हार ।
आपु ही लिखनी आखर, आपुहि पण्डित अपार ॥

—०:*:०—

पद्मावत से ।

का सिंगार ओहि वरनौं, राजा । ओहिक सिंगार ओहि पै छाजा ॥

प्रथम सीस कस्तूरी केसा। बलि वासुकि, का और नरेसा॥
भौंर केस, वह मालति रानी। विहसर लुरे लेहिं, अरधानी॥
बेनी छोरि झार जौ बारा। सरग पतार होइ अँधियारा॥
कोंवर कुटिल केस नग कारे। लहरन्हि भरे भुजँग वैसारे॥
बेधे जौ मलयागिरि बासा। सीस चढ़े लोटहिं चहुं पासा॥
घुंघुर बार अलकैं विष भरी। सकरैं प्रेम चहैं गिउ परी॥

अस फँद्वार केस वै परा, सीस गिउ फाँद।
अस्टौ कुरी नाग सब, अरुझ केसके बाद॥

बरनौं माँग सीस उपराहीं। सेंदुर अबहि चढ़ा जेहि नाहीं॥
बिनु सेंदुर अस जानहु दीआ। उजियर पन्थ रैन महँ कीआ॥
कञ्चन रेख कसौटी कसी। जनु घन महँ दामिनि परगसी॥
सुरज-किरन जनु गगन विसेखी। जमुना महँ सरसती देखी॥
खाँड़ै धार रुहिर जनु भरा। करवत लेइ बेनी पर धरा॥
तेहि पर पूरि धरे जो मोती। जमुना मांझ गङ्ग कै सोती॥
करवत तपा लेहिं होइ चूरू। मकु सोसहि लेइ देइ सेंदूरू॥

कनक दुवादस वानि होइ, चह सोहाग वह मांग।
सेवा करहिं नखत सब उवैं, गगन जस गाँग॥

—:*):(*:—

सकरैं=जंजीर। फंदवार=फन्दे में फंसाने वाले। अस्टौं कुरी नाग=वासुकि, तक्षक, कुलक, कर्कोटक, पद्म, शंख चूड, महापद्म, धनंजय। ओ=झुके हुए। करवल=आरा।

नरोत्तम दास ।

[सं० १५५०—१६०२]

कवित्त—

[१]

लोचन कमल दुखमोचन तिलक भाल, श्रवननि कुण्डल मुकुट धरे माथ हैं। ओढ़े पीत वसन गले में वैजयन्ती माल, शंख चक्र गदा और पद्म लिये हाथ हैं ॥ कहत नरोत्तम संदीपनि गुरू के पास, तुम हीं कहत हम पढ़े एक साथ हैं। द्वारिका के गये हरि दारिद हरेंगे पिय, द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ हैं ॥

[२]

तैं तो कही नीकी सुनि बात हितही की, यही रीति मितई की नित प्रीति सरसाइये। मित्र के मिले ते चित्त चाहिये परस्पर, मित्र के जो जेंइये तो आप हू जिंवाइये ॥ वे हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप, तहाँ यही रूप जाय कहा सकुचाइये। दुख सुख करि दिन काटे ही बनेंगे भूलि, विपति परे पै द्वार मित्र के न जाइये ॥

[३]

दृष्टि चक चौंधि गई देखत सुवरनमयी, एक तें सरस एक द्वारका के भौन हैं। पूछे बिन कोऊ कहूं काहू सों न करै बात, देवता-से बैठे सब साधि-साधि मौन हैं ॥ देखत सुदामा धाय पुरजन गहे पाय, कृपा करि कहो कहाँ कीने विप्र गौन हैं ?। धीरज अधीर के हरन परपीर के, बताओ बलबीर के महल यहाँ कौन है ॥

सवैया—

शिक्षक हैं सिगरे जग को तिय ताको कहा अब देति है सिच्छा।
जे तप कै परलोक सिधारत सम्पति की तिन के नहिं इच्छा॥
मेरे हिये हरि को पद पङ्कज वार हजार लौं देख परिच्छा।
औरन के धन चाहिये बावरी ब्राह्मण के धन केवल भिच्छा॥४॥

कोदो सवाँ जुरतो भरि पेट तो चाहति ना दधि दूध मठौती।
शीत व्यतीत भयो सिसिआतहि हौं हठती पै तुम्हैं न हठौती॥
जो जनती न हितू हरि से तो मैं काहे को द्वारिका पेलि पठौती।
या घर से कबहूँ न गयो पिय टूटो तवा अरु फूटी कठौती॥५॥

शीश पगा न झगा तन में प्रभु जानै को आहि वसै केहि ग्रामा।
धोती फटी सी लटी दुपटी अरु पांव उपानह की नहिं सामा॥
द्वार खड़ो द्विज दुर्बल देखि रह्यो चकि सो वसुधा अभिरामा।
दीन दयालु को पूछत धाम बतावत आपनो नाम सुदामा॥६॥

ऐसे बिहाल बिवायन सों भये कंटक जाल लगे पुनि जोये।
हाय महा दुख पायो सखा! तुम आये इतै न कितै दिन खोये॥
देखि सुदामा की दीन दशा करुणा करि कै करुणा-निधि रोये।
पानी परात को हाथ छुयो नहिं नैनन के जल सों पग धोये॥७॥

आगे चना गुरु मातु दिये ते लिये तुम चाबि हमैं नहिं दीने।
श्याम कही मुसकाय सुदामा सों चोरी की बानि में हौ जु प्रवीने॥
गांठरी कांख में चापि रहे तुम खोलत नाहिं सुधारस भीने।
पाछिली बानि अजौं न तजी तुम वैसेही भाभी के तन्दुल कीने॥८॥

द्वारका जाहु जू द्वारिका जाहु जू आठहु याम यही झक तेरे।
जौं न कहौ करिये तौ बड़ो दुख पैहौं कहा अपनी गति हेरे॥
द्वार खड़े प्रभु के छड़िया तहँ भूपति जान न पावत नेरे।
पांच सुपारी तो देखु विचारि कै भेंट को चारि न चाउर मेरे॥९॥

दोहा--

यह सुनिकै तब ब्राह्मणी , गई परोसिनि पास।
सेर पाव चाउर लिये , आई सहित हुलास॥१०॥
सिद्धि करौ गनपति सुमिरि , बाँधि दुपटिया खूंट।
चले जाहु तेहि मारगहि , माँगत वाली बूट॥११॥

—०:)*(:०—

मीराबाई।

[स० १५५७—१६३० तक]

करम गति टारे नाहिं टरे।
सतवादी हरिचन्द से राजा, नीच घर नीर भरे।
पाँच पांडु अरु कुन्ति द्रौपदी, हाड़ हिमालय गरे॥
यज्ञ किया बलि लेन इन्द्रासन, सो पाताल धरे।
"मीरा" के प्रभु, गिरधर नागर, विष से अमृत करे॥१॥

बसो मेरे नैनन में नँदलाल।
मोहनी मूरति साँवरि सूरति नैना बने विसाल।
अधर सुधारस मुरली राजित उर बैजन्ती माल॥

छुद्र घण्टिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल।
"मीरा" प्रभु सन्तन सुखदाई भक्त वछल गोपाल ॥२॥

बंसीवारो आयो म्हारे देस, थाँरी साँवरी सुरत वाली बैस ॥
आऊँ आऊँ कर गया सांवरा, कर गया कौल अनेक ॥
गिनते गिनते घिस गई उँगली, घिस गई उँगली की रेख ॥
मैं वैरागिणि आदि की, थाँरे म्हारे कद को सँदेस ॥
बिन पाणी बिन साबुन साँवरा, हुई गई धुई सपेद ॥
जोगिणि होई जङ्गल सब हेरूं, तेरा नाम न पाया भेस ॥
तेरी सुरत के कारणे, धर लिया भगवा भेस ॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, घूँघर वाला केश ॥
"मीरा" को प्रभु गिरधर मिल गये, दूना बढ़ा सनेस ॥३॥

—:)*(:—

हितहरिवंश।

[सं० १५५९—१६५४ तक]

ब्रज नव तरुणि कदम्ब मुकुट मणि स्यामा आजु बनी।
नख सिखलौं अंग अंग माधुरी मोहे स्याम धनी ॥
यौं राजत कबरी गूथित कच कनक-कञ्ज बदनी।
चिकुर चन्द्रकनि बीच अधर विधु मानौं ग्रसत फनी ॥
सौभग रस सिर स्रवत पनारी पिय सीमन्त ठनी।
भ्रकुटि काम कोदण्ड नैन सर कज्जल रेख अनी ॥

कबरी—बेनी।

भाल तिलक ताटङ्क गण्डपर नासा जलज मनी।
दसन कुन्द सरसाधर पल्लव पीतम मन समनी॥
× × × ×
पद-अम्बुज जावक जुत भूषन प्रीतम उर अवनी।
नव नव भाव विलोम भाभ इम विहरति वर करनी॥
हितहरिवंस प्रसंसित स्यामा कीरति विसद घनी।
गावत स्रवननि सुनत सुधाकर विस्व दुरित दवनी॥१॥

नागरता की रासि किसोरी।
नव नागर कुल मौलि सांवरो बरबस किये चितै मुख मोरी॥
रूप रुचिर अङ्ग अङ्ग माधुरी बिनु भूषन भूषित व्रजगोरी।
छिन छिन कुशल सुगन्ध अङ्ग में कोक रमस रस-सिंधु झकोरी॥
चञ्चल रसिक मदन मोहन मन राख्यो कनक कमल कुच कोरी।
प्रीतम नैन जुगल खंजन खग बांधे विविध निबंधनि डोरी॥
अवनी उदर नाभि सरसी में मनहु कछुक मादिक मद घोरी।
हितहरिवंस पिवत सुन्दर वर सींव सुदृढ़ निगमनि की ठोरी॥२॥

हरि रसना राधा राधा रट।
अति अधीन आतुर यद्यपि पिय, कहियत हैं तापै नागर नट॥
संभ्रम द्रुमपरि रम्भन कुञ्जन, ढूंढ़त अनुदिन कालिन्दी तट।
विलपत है सत विपीदत स्वेदित तनु सींचत अंसुवन वंसी वट॥
अंगराग परिधान बसन में, लागत है ताते जु पीत पट।
जै श्री हितहरिवंस प्रसंसित स्यामा दै प्यारी कंचन घट॥३॥

जावक=महावर। भाभ=हथिनी।

नरहरि।

[सं० १५६२—१६०७ तक]

छप्पय-

अरिहुं दन्त तृन धरैं, ताहि मारत न सबल कोइ।
हम सन्तत तृन चरहिं, बचन उच्चरहिं दीन होइ॥
अमृत पय नित स्रवहिं, बच्छ महि थम्भन जावहिं।
हिन्दुहिं मधुरं न देहिं, कटुक तुरुकहिं न पियावहिं॥
कह कवि "नरहरि" अकबर सुनो, बिनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहिं मारियत, मुयहु चाम सेवइ चरन॥१॥

सर सर हंस न होत, वाजि गजराज न दर दर।
तर तर सुफल न होत, नारि पतिव्रता न घर घर॥
मन मन सुमति न होत, मलैगिर होत न बन बन।
फन फन मनि नहिं होत, मुक्त जल होत न घन घन॥
रन रन सूर न होत हैं, जन जन होत न भक्ति हरि।
नर सुनो सकल "नरहरि" कहत, सब नर होत न एक सरि॥२॥

न कछु क्रिया बिन विप्र, न कछु कायर जिय छत्री।
न कछु नीति बिन नृपति, न कछु अक्षर बिन मन्त्री॥
न कछु बाम बिन धाम, न कछु गथ बिन गरुआई।
न कछु कपट को हेत, न कछु मुख आप बड़ाई॥
न कछु दान सनमान बिन, न कछु सुभोजन जासु दिन।
जन सुनो सकल "नरहरि" कहत, न कछु जनम हरि भक्ति बिन॥३॥

ज्ञानवान हठ करै, निधन परिवार वढ़ावै ।
वँधुआ करै गुमान, धनी सेवक ह्वै धावै ॥
पण्डित किरिया हीन, राँड़ दुरवुद्धि प्रमानै ।
धनी न समझै धर्म, नारि मरजाद न मानै ॥
कुलवन्त पुरुप कुल विधि तजै, वन्धु न मानै वन्धु हित ।
सन्यास धारि धन संग्रहै, ये जग में मूरख विदित ॥४॥

को सिखवत कुलवधू, लाज गृह-काज रङ्ग रति ।
हंसन को सिक्खवत, करन पय पान भिन्न गति ॥
सज्जन को सिक्खवत, दान अरु शील सुलच्छन ।
सिंहन को सिक्खवत, हनन गज कुंभ ततच्छन ॥
विधि रच्यो जानि "नरहरि" निरखि, कुल सुभाव को मिट्टवै ।
गुण धर्म अकब्बर साह सुन, को नर काको सिक्खवै ॥५॥

कुंडलिया—

सरवर नीर न पीवहीं, स्वाति बूंद की आस ।
केहरि कवहु न तृन चरैं, जो व्रत करैं पचास ॥
जो व्रत करैं पचास, विपुल गज्जूह विदारैं ।
धन ह्वै गर्वन करै, निधन नहिं दीन उचारै ॥
"नरहरि" कुलक स्वभाव, मिटै नहिं जव लगि जीवै ।
वरु चातक मरि जाय, नीर सरवर नहिं पीवै ॥६॥

—००*००—

टोडरमल।

[सं० १५८०—१६४६ तक]

कवित्त—

नीर बिन कूप कहा तेज बिन भूप कहा, लच्छ बिन रूप कहा तिरिया को बखानिबो। कालर को खेत कहा कपटी को हेत कहा, दिल बिन दान कहा चित्त माहीं आनिबो॥ तप बिन जोग कहा ज्ञान बिन मौज कहा, कहा जो कपूत पूत डूब्यो कुल जानिबो। जिह्वा बिन मुख कहा, नैन बिन नेह कहा, राम से बिमुख नर पशु सो पिछानिबो॥ १॥

गुन बिन चाप जैसे गुरु बिन ज्ञान जैसे, मान बिन दान जैसे जल बिन सर है। कंठ बिन गीत जैसे हेत बिन प्रीति जैसे, वेश्या रस रीति जैसे फूल विनु तर है॥ तार बिन जंत्र जैसे स्याने बिन मंत्र जैसे, नर बिन नारि जैसे पूत बिन घर है। "टोडर" सुकवि जैसे मन में विचार देखो, धर्म बिन धन जैसे पंखी बिन पर है॥ २॥

जार को विचार कहा गणिका को लाज कहा, गदहा को पान कहा आँधरे को आरसी। निगुनी को गुन कहा दान कहा दारिदी को, सेवा कहा सूम की अरंडन की डारसी॥ मदपी को सुचि कहा साँच कहा लम्पट को, नीच को वचन कहा स्यार की पुकारसी। "टोडर" सुकवि, ऐसे हटी तें न टासो टरै, भावे कहो सूधी बात भावे कहो फारसी॥ ३॥

—*०×०*—

बीरबल (ब्रह्म)।

[सं० १५८५—१६४० तक]

छप्पय—

नमै तुरी बहु तेज, नमै दाता धनवंतो।
नमै अम्ब बहु फल्यो, नमै जलधर बरसंतो॥
नमै सुकवि जन शुद्ध, नमै कुलवंती नारी।
नमै सिंह गय हन्त, नमै गजबेल सँभारी॥
कुंदन इमि कसियो नमैं, बचन ब्रह्म सच्चा चवै।
पुनि सूखा काष्ठ अजान नर, भाँज पड़ै पर नहिं नवै॥१॥

सवैया—

एक समै नवला तिय सों निशि, केलि करी जब श्याम सिधारे।
आलसवन्त उठ्यो नहिँ जात, परेहि परे कर केश सँवारे॥
श्रौनन तें तरवन्न गिस्यो इक, ब्रह्म भनै उपमा उन भारे।
मास्योहि राहु धको रथ चन्द को, टूटि पस्यो रथ चक्र सु नारे॥२॥

सखि भोर उठी बिन कंचुकि कामिनि कान्हर तें करि केलि घनी।
कवि "ब्रह्म" भनै छवि देखत ही कहि जात नहीं मुख तें बरनी॥
कुच अग्र नखच्छत कंत दयो सिर नाय निहारि लियो सजनी।
ससि सेखर के सिर से सु मनों निहुरे ससि लेत कला अपनी॥३॥

पूत कपूत कुलच्छनि नारि लराक परोस लजाय न सारो।
बन्धु कुबुद्धि पुरोहित लम्पट चाकर चोर अतीथ धुतारो॥

साहब सूम अराक तुरंग किसान कठोर दिवान नकारो।
'ब्रह्म' भनै सुनु शाह अकब्बर बारहो बाँधि समुद्र में डारो ॥४॥

पेट में पौढ़ि के पौढ़े मही पर पालना पौढ़ि के बाल कहाये।
आई जबै तरुनाई त्रिया सँग सेज पै पौढ़ि के रंग मचाये॥
छीर समुद्र के पौढ़नहार को "ब्रह्म" कबौं चित तें नहिं ध्याये।
पौढ़त पौढ़त पौढ़त ही सो चिता पर पौढ़न के दिन आये ॥५॥

—०:×:०—

जगदीश।

[स १५८८]

कुण्डल रूप सरूप विराजत औ बिच मोती की जोति प्रकासी।
श्रीजगदीश बिलोकत आपु गड़ी हिय में नहिं जाति निकासी॥
जाके लखे ते फँसे सनकादिक एक बच्यो सब में अविनासी।
छाजत प्यारीकी नासिकामें अली नत्थ किधौं मनमत्थकी फाँसी॥

—:*○*:—

तुलसीदास।

[सं० १५८९—१६८० तक]

(विनय पत्रिका से)

वन्दना—

जय जय जग जननि देवि, सुर-नर-मुनि-असुर-सेवि,
भक्ति मुक्ति दायिनी, भय हरनि कालिका।

मङ्गल-मुद-सिद्धि-सदनि पर्ब सर्वरीस वदनि,
ताप-तिमिर तरुन तरनि-किरन मालिका ॥
वर्म चर्म कर कृपान, सूल सेल धनुष-वान,
धरनि, दलनि दानव-दल, रन-करालिका।
पूतना पिसाच प्रेत डाकिनि साकिनि समेत,
भूत ग्रह वैताल खग मृगालि जालिका ॥
जय महेस भामिनी, अनेक रूप नामिनी,
समस्त लोक स्वामिनी, हिमसैल वालिका।
रघुपति-पद-परम प्रेम, तुलसी यह अचल नेम,
देहु ह्वै प्रसन्न पाहि प्रनत-पालिका ॥ १ ॥

भजन—

केसव कहि न जाइ का कहिये*।
देखत तव रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिये ॥
सून्य भीति पर चित्र रंग नहिं, तनु विनु लिखा चितेरे।
धोये मिटै न मरै भीति, दुख पाइय इहि तनु हेरे ॥
रविकर नीर वसै अति दारुन, मकर रूप तेहि माँही।
वदन-हीन सो ग्रसत चराचर, पान करन जे जाहीं ॥
कोउ कह सत्य, झूठ कह कोऊ, जुगल प्रवल कोउ मानै।
तुलसीदास परि हरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै ॥२॥

---

* इस भजन में महात्माजी ने अद्वैतवाद का प्रतिपादन किया है।

मेरो मन हरि हठ न तजै।
निसदिन नाथ देउँ सिख बहु विधि करत सुभाव निजै॥
ज्यों जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै।
ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै॥
लोलुप भ्रमत गृह पशु ज्यों जहँ तहँ सिर पद्त्रान बजै।
तद्पि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै॥
हौं हास्यों करि जतन विविध विध अतिशय प्रबल अजै।
'तुलसिदास' बस होइ तबहिं जब प्रेरक प्रभु बरजै॥३॥

जाके प्रिय न राम वैदेही।
सो छाँड़िये कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही॥
तज्यो पिता प्रह्लाद, विभीषण बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज-वनितनि, भये मुद मङ्गल कारी॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँख जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं॥
तुलसी सो सब भांति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों होय सनेह राम-पद, एतो मतो हमारो॥४॥

मन पछितैहै अवसर बीते।
दुर्लभ देह पाइ हरिपद भजु, करम, वचन अरु हीते॥
सहस बाहु दसबदन आदि नृप, बचे न काल बली ते।
हम हम करि धन-धाम संवारे, अन्त चले उठि रीते॥
सुत बनितादि जानि स्वारथरत, न करु नेह सबही ते।
अंतहु तोहि तजैंगे पामर! तू न तजै अबही ते॥

अब नाथहिं अनुराग, जागु जड़, त्यागु दुरासा जी ते।
बुझै न काम-अगिनि तुलसी कहुँ, विषय भोग बहु घी ते ॥५॥

ममता तू न गयी मेरे मन तें।
पाके केस जन्म के साथी लाज गई लोकन तें।
तन थाके कर कम्पन लागे जोति गई नैनन तें॥
सरवन वचन न सुनत काहु के बल गये सब इन्द्रिन तें।
टूटे दसन वचन नहिं आवत सोभा गई मुखन तें॥
कफ पित बात कंठ पर बैठे सुतहिं बुलावत कर तें।
भाइ बन्धु सब परम पियारे नारि निकारत घर तें॥
जैसे ससि-मण्डल विच स्याही छुटै न कोटि जतन तें।
तुलसिदास बलि जाउ चरन तें लोभ पराये धन तें ॥६॥

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पापपुञ्ज-हारी॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मो सो?
मो समान आरत नहिं, आरति हर तो सो॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू ठाकुर, हौं चेरो।
तात, मात, सखा, गुरु तू सब विधि हितु मेरो॥
तोहिं मोहिं नाते अनेक मानियै जो भावै।
ज्यों ज्यों तुलसी कृपालु चरन शरन पावै ॥७॥

हे हरि कस न हरहु भ्रम भारी।
जद्यपि मृषा सत्य भासै जब लगि नहिं कृपा तुम्हारी॥
अर्थ अविद्यमान जानिय संसृति नहिं जाइ गुसाईं।

बिन बाँधे निज हठ सठ परबस पस्यो कीर की नाईं ॥
सपने व्याधि बिबिध बाधा जनु मृत्यु उपस्थित आई।
बैद अनेक उपाय करै जागे बिनु पीर न जाई ॥
स्रुति-गुरु-साधु-स्मृति-संमत यह दृश्य सदा दुखकारी।
तेहि बिनु तजे, भजे बिनु रघुपति, बिपति सकै को टारी ॥
बहु उपाय संसार तरन कहँ बिमल गिरा स्रुति गावै।
तुलसिदास मैं-मोर गये बिनु जिउ सुख कबहुं न पावै ॥ ८ ॥

गीतावली।

जागिये कृपानिधान जानि राय रामचन्द्र,
जननि कहै बार बार भोर भयो प्यारे।
राजिव लोचन बिसाल प्रीति वापिका मराल,
ललित कमल बदन उपर मदन कोटि वारे ॥
अरुन उदित विगत सर्वरी ससांक किरिन हीन,
दीप दीप ज्योति मलिन दुति समूह तारे।
मनहु ज्ञान घन प्रकास बीते सब भौ-विलास,
आस त्रास तिमिर-तोम तरनि तेज जारे ॥
बोलत खग निकर मुखर मधुर करि प्रतीत सुनहु,
श्रवन प्रान जीवन धन मेरे तुम बारे।
मनहु वेद बन्दी मुनि-बृन्द सूत मागधादि,
बिरुद बदत जय जय जयति कैट भारे ॥
सुनत बचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल,
भागे जञ्जाल विपुल दुख कदम्ब टारे।

"तुलसिदास" अति अनन्द देखिके मुखारविन्द,
छूटे भ्रम फन्द परम मन्द द्वन्द भारे ॥ ९ ॥

कवितावली।

सवैया—

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच विमोचन को ठगि सी रही, जे न ठगे धिक से॥
तुलसी मनरञ्जन रञ्जित अञ्जन नैन सुखञ्जन-जातक से।
सजनी ससि में समशील उभै नवनील सरोरुह से विकसे ॥१०॥

पग नूपुर औ पहुंची करकञ्जनि, मंजु बनी मनिमाल हिये।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकैं, पुलकैं नृप गोद लिये॥
अरविन्द सो आनन, रूप मरन्द अनन्दित लोचन-भृङ्ग पिये।
मन में न बस्यो अस बालक जौ तुलसी जग में फल कौन जिये॥११॥

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कञ्ज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे, छवि भूरि अनङ्ग की दूरि धरैं॥
दमकैं दतियाँ दुति दामिनि ज्यों, किलकैं कल बाल-विनोद करैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर में विहरैं॥१२॥

कबहूं ससि माँगत आरि करैं, कबहूं प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूं करताल बजाइकै नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूं रिसिआइ कहैं हठिकै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मन्दिर में विहरैं॥१३॥

बर दन्त की पङ्कति कुन्दकली, अधराधर पल्लव खोलन की।
चपला चमकै घन बीच जगै छवि मोतिन माल अमोलन की॥
घुंघरारी लटैं लटकैं मुख ऊपर, कुण्डल लोल कपोलन की।
निवछावरि प्रान करैं तुलसी, बलि जाउं लला इन बोलन की॥१४॥

कीरके कागर ज्यों नृप चीर विभूषन, उप्पम अंगनि पाई।
औध तजी मगबास के रूख ज्यों, पन्थ के साथी ज्यों लोग लुगाई॥
सङ्ग सुबन्धु, पुनीत प्रिया मनो धर्म क्रिया धरि देह सुहाई।
राजिव-लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाई॥१५॥

एहि घाट ते थोरिक दूरि अहै कटि लौं जल थाह दिखाइहौं जू।
परसे पग धूरि तरै तरनी, घरनी घर क्यों समझाइहौं जू॥
तुलसी अवलम्ब न और कछू लरिका केहि भाँति जियाइहौं जू।
बरु मारिए मोंहिं बिना पग धोए हौं नाथ न नाव चढ़ाइहौं जू॥१६॥

पुरते निकसी रघुवीर वधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै।
झलकीं भरि भाल कनी जल की, पुट सूखि गये मधुराधर वै॥
फिरि बूझति हैं चलनों अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखिया अति चारु चलीं जल च्वै॥

जल को गये लक्खन हैं लरिका, परखो, पिय! छाँह घरीक ह्वै ठाढ़े।
पोंछि पसेउ बयारि करौं, अरु पाँव पखारिहौं भूभुरि डाढ़े॥
तुलसी रघुवीर प्रिया स्रम जानिकै बैठि बिलम्ब लौं कंटक काढ़े।
जान की नाह को नेह लख्यो, पुलको तनु, बारि बिलोचन बाढ़े॥१८॥

सीस जटा, उर बाहु विशाल, विलोचन लाल तिरीछिसी भौंहैं।
तून सरासन बान धरे तुलसी वन-मारग में सुठि सोहैं॥
सादर बारहिंबार सुभाय चितै तुम त्यों हमरो मन मोहैं।
पूछति ग्रामवधू सियसों "कहो साँवरो सो, सखि रावरो को हैं?"॥

रामसतसई।

दोहा—

रामचरण अवलम्ब विनु, परमारथ की आस।
चाहत वारिद बूंद गहि, तुलसी उड़न अकास॥ २०॥
जहाँ राम तहँ काम नहिं, जहाँ काम नहिं राम।
तुलसी कबहूं होत नहिं, रवि रजनी इकठाम॥ २१॥
स्वामी होनो सहज है, दुर्लभ होनो दास।
गाडर लाये ऊन को, लागी चरन कपास॥ २२॥
तुलसी सब छल छाड़ि कैं, कीजै राम सनेह।
अन्तर पति सों है कहा, जिन देखी सब देह॥ २३॥
तुलसी साथी विपत के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यव्रत, राम भरोसो एक॥ २४॥
तुलसी हमसों रामसों, भलो मिलो है सूत।
छाँडे बनै न सँग रहै, ज्यों घर माँहि कपूत॥ २५॥
तुलसी सो अति चतुरता, राम चरन लवलीन।
पर मन पर धन हरन को, गनिका परम प्रवीन॥ २६॥

गङ्गा यमुना सरसुती , सात सिन्धु भरपूर ।
तुलसी चातक के मते , बिन स्वाती सब धूर ॥ २७ ॥
तुलसी अपने राम कहँ , भजन करहु निरसङ्क ।
आदि अन्त निर्वाहिबो , जैसे नव को अङ्क ॥ २८ ॥
काम क्रोध मद लोभ की , जौलौं मन में खान ।
तौलौं पण्डित मूरखौ , तुलसी एक समान ॥ २९ ॥
लगन महूरत जोगबल , तुलसी गनत न काहि ।
राम भये जेहि दाहिने , सबै दाहिने ताहि ॥ ३० ॥
मान राखिबो माँगिबो , पिय सों सहज सनेहु ।
तुलसी तीनों तब फबै , जब चातक मत लेहु ॥ ३१ ॥
तुलसी मीठे बचन तें , सुख उपजत चहुं ओर ।
बसीकरन यह मन्त्र है , परिहरु बचन कठोर ॥ ३२ ॥
गोधन गजधन बाजिधन , और रतन धन खान ।
जब आवत सन्तोष धन , सब धन धूरि समान ॥ ३३ ॥
तौ लगि जोगी जगत गुरु , जौ लगि रहत निरास ।
जब आसा मन में जगी , जग गुरु योगी दास ॥ ३४ ॥
नीच चङ्ग सम जानिये , सुनि लखि तुलसीदास ।
ढीलि देत भुंइ गिर परत , खैंचत चढ़त अकास ॥ ३५ ॥
रामनाम मनि दीप धरु , जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहिरो , जो चाहसि उजियार ॥ ३६ ॥
आवत ही हर्षै नहीं , नैनन नहीं सनेह ।
तुलसी तहाँ न जाइये , कञ्चन बरसै मेह ॥ ३७ ॥

जगते रहु छत्तीस है , रामचरन छः तीन ।
तुलसी देखु विचारि हिय , है यह मतो प्रवीन ॥ ३८ ॥
सोई ज्ञानी सोइ गुनी , जन सोइ दाता ध्यानि ।
तुलसी जाके चित भई , राग द्वेष की हानि ॥ ३६ ॥

रामायण।

चौपाई—

सुमति भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू ॥
बर्षहिं राम सुयश वर वारी। मधुर मनोहर मङ्गल कारी ॥
लीला सगुण जो कहहिं बखानी। सोइ स्वच्छता करै मल हानी ॥
प्रेम भक्ति जो वरणि न जाई। सोई मधुरता सीतल ताई ॥
जो जल सुकृत शालि हित होई। राम भक्त जन जीवन सोई ॥
मेधा महिगत सो जल पावन। सिमिट श्रवन मगु चलेउ सुहावन ॥
भरेउ सुमानस सुथल थिराना। सुखद शीत रुचि चारु चिराना ॥

सुठि सुन्दर सम्वाद वर , विरचेउ बुद्धि विचारि ।
ते यहि पावन सुभग सर , घाट मनोहर चारि ॥४७॥

सप्त प्रवन्ध सुभग सो पाना। ज्ञान नयन निरखत मन माना ॥
रघुपति महिमा अगुण अवाधा। वरणव सोइ वर वारि अगाधा ॥
राम सीय यश सलिल सुधा सम। उपमा बीचि विलास मनोरम ॥
पुरइन सघन चारु चौपाई। शुक्ति मंजु मति सीप सुहाई ॥
छन्द सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ बहुरङ्ग कमल कुल सोहा ॥
अर्थ अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरन्द सुबासा ॥

सुकृत पुञ्ज मंजुल अलिमाला। ज्ञान विराग विचार मराला ॥
ध्वनि अवरेब कवित गुणजाती। मीन मनोहर ते बहु भाँती ॥
अर्थ धर्म कामादिक चारी। कहत ज्ञान विज्ञान विचारी ॥
नवरस जप-तप-जोग-विरागा। ते सब जलचर चारु तड़ागा ॥
सुकृति साधु नाम गुण गाना। ते विचित्र जल विहग समाना ॥
सन्त सभा चहुं दिसि अमराई। श्रद्धा ऋतु वसन्त सम गाई ॥
भक्ति निरूपण विविध विधाना। क्षमा दया द्रुम लता विताना ॥
संयम नियम फूल फल ज्ञाना। हरिपद रतिरस वेद बखाना ॥
औरो कथा अनेक प्रसङ्गा। ते शुक पिक बहु वरण विहङ्गा ॥

पुलक वाटिका बाग वन , सुख सुविहङ्ग विहारु।
माली सुमन सनेह जल , सींचत लोचन चारु ॥४१॥

वर्षाकाल मेघ नभ छाये। गर्जत लागत परम सुहाये ॥

लक्ष्मण देखहु मोर गण , नाचत वारिद पेखि।
गृही विरति रत हर्ष युत , विष्णु भक्त कहँ देखि ॥ ४२ ॥

घन घमण्ड नभ गर्जत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमकि रही घन मांही। खलकी प्रीति यथा थिर नाहीं ॥
वर्षहिं जलद भूमि नियराये। यथा नवहिं बुध विद्या पाये ॥
बूंद अघात सहैं गिरि कैसे। खल के बचन सन्त सह जैसे ॥
क्षुद्र नदी भरि चलि उतराई। जस थोरे धन खल बौराई ॥
भूमि परत भा ढाबर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी ॥

सिमिटि सिमिटि जल भरैं तलावा । जिमि सद्गुण सज्जन पहँ आवा ॥
सरिता जल जलनिधि महँ जाई । होइ अचल जिमि जन हरिपाई ॥

हरित भूमि तृण संकुल , समुझि परै नहिं पन्थ ।
जिमि पाखण्ड विवादते , लुप्त भये सद्ग्रन्थ ॥ ४३ ॥

दादुर धुनि चहुं ओर सुहाई । वेद पढ़ैं जनु बटु समुदाई ॥
नव पल्लव भे विटप अनेका । साधुके मन जस मिले विवेका ॥
अर्क जवास पात विनु भयऊ । जिमि सुराज खल उद्यम गयऊ ॥
खोजत पन्थ मिलहि नहिं धूरी । करै क्रोध जिमि धर्महिं दूरी ॥
ससि सम्पन्न सोह महि कैसी । उपकारी की सम्पति जैसी ॥
निसि तमघन खद्योत विराजा । जनु दम्भिन कर जुरा समाजा ॥
महा वृष्टि चलि फूटि कियारी । जिमि स्वतन्त्र ह्वै विगरहिं नारी ॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना । जिमि बुध तजहिं मोह मद नाना ॥
देखियत चक्रवाक खग नाहीं । कलिहिं पाइ जिमि धर्म पराहीं ॥
ऊपर वर्षे तृण नहिं जामा । सन्त हृदय जस उपज न कामा ॥
विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा । बढ़ै प्रजा जिमि पाइ सुराजा ॥
जहँ तहँ पथिक रहे थकि नाना । जिमि इन्द्रिय गण उपजत ज्ञाना ॥

कबहु प्रबल चल मारुत , जहँ तहँ मेघ बिलाहिं ।
जिमि कपूत कुल ऊपजे , सम्पति धर्म नसाहिं ॥४४॥

कबहुं दिवस महँ निविड़ तम , कबहुक प्रकट पतङ्ग ।
उपजै विनसै ज्ञान जिमि , पाइ सुसङ्ग कुसङ्ग ॥४५॥

—००:*:००—

गोप।

[सं० १५९०]

सवैया-

चम्पक कानन मध्य हरीपट में शिशु देखि विरञ्चहु भूल्यो।
औ छबि छाँहि बखानन को लखि, शेषहुने मनमाँहि न हूल्यो॥
सो कवि गोप कहै कस जो, अनिलालन होय रह्यो अनुकूल्यो।
भोर समैं मृदु वल्लभ को मुख पावक पुञ्ज सुपङ्कज फूल्यो॥१॥

कानन कुक्कट कोक मरालरु, कूक तजे खग भोर मुखी है।
सीतल मन्द समीर बहै, मकरन्दहि चोर सुमैन रुखी है॥
कुञ्जन में जु गुलाबन के, चटका सुनि दम्पति होत सुखी है।
गोप कहै करि लच्छ सुपूरन, चन्दहिं देखि चकोर दुखी है॥२॥

मोर चकोरन की धुनि मार, मरोरत मौंर दिखावत भैसे।
कोकिल कूकन हूक उठे हिय, गञ्जन खञ्जन खंजर जैसे॥
गोप बिना ललना कलना, ऋतुराज दिखावत है सुख ऐसे।
किंसुक फूल बिना दल कानन, श्रोन भरे नख नाहर कैसे॥३॥

सफरी विम्ब वारिन चाहतरी, मधु चोर चहे सुख रञ्च मुदै।
सुक मारुत विम्बन चाहत री, जग मै कहि को मन छौंन जुदै॥
मकरन्द गुलाब चहे निचुरै, यह गोप कहै हम पैज बुदै।
सजनी तुम जानत हो जिय में, चकवी नित चाहत चन्द उदै॥४॥

—०:)*(:०—

गंग ।

[सं० १५९५]

सवैया—

गंग तरंग प्रवाह चलै अरु, कूप को नीर पियो न पियो ।
आनि हृदै रघुनाथ बसै तब, और को नाम लियो न लियो ॥
कर्म संयोग सुपात्र मिलै तौ, कुपात्र को दान दियो न दियो ।
गंग कहैं सुन शाह अकब्बर, मूरख मित्र कियो न कियो ॥१॥
ताराकि जोति में चन्द्र छिपै नहिं, सूर छिपै नहिं बादर छाये ।
रन्न चढ़यो रजपूत छिपै नहिं, दाता छिपै नहिं माँगन आये ॥
चञ्चल नारि का नैन छिपै नहिं, प्रीति छिपै नहिं पूठि दिखाये ।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, कर्म छिपै न भभूत लगाये ॥२॥
बाल से ख्याल बड़े से विरोध, अगोचर नार से ना हँसिये ।
अन्न से लाज अगिन्न से जोर, अजानत नीर में ना धँसिये ॥
बैल को नाथ घोड़े को लगाम, मतंग को अंकुश में कसिये ।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, कूर तें दूर सदा बसिये ॥३॥
जट्ट कहा जाने भट्ट को भेद, कुंभार कहा जाने भेद जगा को ।
मूढ़ कहा जाने गूढ़ की बात में, भील कहा जाने पाप लगा को ॥
पीत की रीत अतीत कहा जाने, भैंस कहा जाने खेत सगा को ।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, गद्ध कहा जानै नीर गँगा को ॥४॥
ज्ञान घटै कोई मूढ़ की संगत, ध्यान घटै बिन धीरज लाये ।
प्रीत घटै परदेश बसै, अरु भाव घटै नित ही नित जाये ॥

सोच घटै कोइ साधु की संगत, रोग घटै कुछ ओखद खाये ।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, पाप कटै हरि के गुण गाये ॥५॥
पावक को जलबुंद निवारन, सूरज ताप को छत्र कियो है ।
व्याधि को वैद तुरंग को चाबुक, चौपग को व्रख दण्ड दियो है ॥
हस्ति महामद को किय अंकुश, भूत पिशाच को मन्त्र कियो है ।
ओखद है सबको सुखकार, स्वभाव को ओखद नाहिं कियो है ॥६॥
चञ्चल नारि की प्रीति न कीजिये, प्रीत किये दुख होत है भारी ।
काल परे कवु आन बने, कबु नारि की प्रीत है प्रेम कटारी ॥
लोहे को घाव दवा सों मिटै, अरु चित्त को घाव न जाय बिसारी ।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, नारि की प्रोति अंगार से भारी ॥७॥
नई अबला रस भेद न जानत, सेज किये जिय माँहि डरी ।
रस बात करी जब चौंकि चली, तब जाय के कंथ न बाँह धरी ॥
इन दोनन की झगझोरन में, गठ नाव पिताम्बर छूट परी ।
तब दीपक कामिनि हाथ धस्रो, इह कारन सुन्दरि हाथ जरी ॥८॥
सोलै सिंगार सजी अति सुन्दर, रैन रमी सो पिया संग रानी ।
ऊठ प्रभात मुखाम्बुज धोवत, टीकि खिसी हथेरी लिपटानी ॥
तामध चित्र हतो गजराज, अजीविक वूबक काहु पिछानी ।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, डूबत हाथि हथेरी के पानी ॥९॥
जा दिन तें जदुनाथ चले, व्रज गोकुल से मथुरा गिरिधारी ।
ता दिन तें व्रजनायिका सुन्दर, रम्पति झम्पति कम्पति प्यारी ॥
वाहि के नैनन की सरिता भई, शंकर सीस चलै जल भारी ।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, ता दिन तें जमुना भई कारी ॥१०॥

जा दिन कंथ विदेश चले, गलहू न लगी न परी चरना ।
ता दिन तें तन ताप रह्यो मन झूर रहो पिय को मिलना ॥
मूल गई सुख फूल रह्यो दुख नैन लगे गिरि को झरना ।
कवि गंग की नार विचार करै, पिय को बिछरो तो भलो मरना ॥११॥
जा दिन कंथ विदेश चले, सखि ता दिन से बहु लागत जीको ।
अंग श्रृङ्गार अंगार से लागत, मानुनि के मन लागत फीको ॥
सेज समै कमला भई व्याकुल, सीस रह्यो लटकी तरुनी को ।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, नैन के नीर में भीजत टीको ॥१२॥
गर्ज से अर्जुन क्लीव भये, अरु गर्ज से गोविन्द धेनु चरावैं ।
गर्ज से द्रौपदि दासि भई, अरु गर्ज से भीम रसोई पकावैं ॥
गर्ज वरी त्रय लोकन में, अरु गर्ज बिना कोइ आवै न जावै ।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, गर्ज से बीबी गुलाम रिझावै ॥१३॥
रती विन राज रती विन पाट, रती विन छत्र नहीं इक टीको ।
रती विन साधु रती बिन संत, रती विन जोग न होय जती को ॥
रती विन मात रती विन तात, रती विन मानस लागत फीको ।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, एक रती विन एक रती को ॥१४॥
नृप मार चली अपने पिय पै, पिय नाग डस्यो दुःख में परिहूँ ।
परदेश गइ बनसोइ ग्रही, मुहि बेच दइ गनिका घरहूँ ॥
सुत-संग भयो जरवे को चली, जल पूर भस्रो निकसी तरिहूँ ।
महाराज कुमार अहीर भई अब छाछ को सोच कहा करिहूँ ॥१५॥
नीचे निहार हो नागरी बावरी, ऊँच दिखि असमान फटेगो ।
इन्दर लोक में होत हलाहल, सूरज चन्द्र को तेज घटेगो ॥

राख लगाइ बिरागि बनि नर रामहि राम स्वआस रटैगो।
गंग कहै हम को डर लागत, तेरे लिये करतार लटैगो ॥१६॥
बैठि हुती वृषभान सुता तहाँ, दूतिका एक अचानक आई।
सोच किये बिन बोल उठी, सखि कान्ह बिंदाबन मांहि बुलाई॥
कान सुन्यो नहिं आँख देख्यो नहिं कान्ह कहा विजिया कछु पाई।
ऐसी हँसी लखि जानि परे हम, पाणी में आग लगावे लुगाई ॥१७॥
मात कहै मेरो पूत सपूत के, बहिनि कहै मेरो सुन्दर भैया।
तात कहै मेरो है कुल दीपक, लोक में लाज अधीक बधैया॥
नारि कहै मेरो प्रानपति, औ जीनके जाके मैं लेऊं बलैया।
गंग कहै सुन शाह अकब्बर, जीनके गाँठ सफेद रुपैया ॥१८॥
मृगनैनी की पीठ पै बेनी लसै सुख साज सनेह समोइ रही।
सुचि चीकनी चारु चुभी चितमैं भरि भौन भरी खुशबोइ रही॥
कवि 'गंग' जू या उपमा जो कियो लखि सूरति ता श्रुति गोइ रही।
मनो कञ्चन के कद्‌ली दल पै अति साँवरी साँपिनि सोइ रही ॥१९॥
मन घायल पायल मायल ह्वै गढ़ लङ्क ते दूरि निसंक गयो।
तहँ रूप नदी त्रिवली तरि कै करि साहस सागर पार भयो॥
गंग भनै बटपार मनोज रुमावलि सों ठग संग लयो।
पर दोऊ सुमेरु के बीच मनोभव मेरो मुसाफिर लूट लयो ॥२०॥
को बरनै उपमा कवि गंग सो तोही में हैं गुन ऊरबसी के।
जा दिन तैं दरसी मुसकानि सो कान्ह भये वश तेरी हँसी के॥
चन्द से आनन पै तिल राजत ऐसे बिराजत दांत मिसी के।
फूलन के फूलवारिन में मनो खेलत हैं लरिका हबसी के ॥२१॥

एक को छोड़ बीजा को भजै, रसनाज कटो उस लब्बर की। *
अब तौ गुनियाँ दुनियाँ को भजै, शिर बांधत पोट अटब्बर की॥
कवि गंग तो एक गोविन्द भजै, कछु शङ्क न मानत जब्बर की।
जिनको हरि की परतीत नहीं, सो करो मिल आश अकब्बर की॥

गल में झलके न लगे पलके ललके पुनि सो छवि सोचत हैं।
कवि गंग सुहात न दौस विभावरी सांवरी सी रुचि रोचत है॥
कलकै मसिकै न सकै वसिकै रसकै अँसुवान को मोचत हैं।
उन लोल कपोलन के लखिवे हित लालची लोचन लोचत है॥२३॥

मैन मयङ्क समीर सनी निसि कोक पुकारत आरत बानी।
गंग कहै सखियानि वहाँ कहि दम्पति की रति केलि कहानी॥
हाथ न जोरि निहोरि हहा करि पां परि कान्ह कही सनमानी।
मेलि गरे पट देत गरीब गरो भरि नारि गरे लपटानी॥२४॥

---

* कहते हैं गग ने यह छन्द अकबर के बहुत हठ करने पर बनाया था। इसमें गग को निर्भीकता साफ झलकती है। अकबर ने क्रुद्ध होकर गंग को हाथी से चिरवा डाला। यह बात जब लोगों ने गंग के लड़के को बतलायी तो उसने इसे असत्य प्रमाणित करने के लिये निम्न लिखित छन्द बनाया और सिद्ध किया कि उनको साक्षात् गणेशजी देव-सभा में ले गये हैं। यह छन्द यों है :—

सब देवन को दरबार जुरयो, तहँ पिङ्गल छन्द बनाय सुनायो।
काहू ते अर्थ कह्यो न गयो तब, नारद एक प्रसङ्ग चलायो॥
मृतलोक में है नर एक गुनी, कहि गंग को नाम सभा में बतायो।
सुनि चाह भई परमेसुर के, तब गंग को लेन गनेश पठायो॥

सोने के चूरन मैं चमकैं किरचै सी उठै छवि पुंज झवा के।
हाथन लेन बिरी लटकै मखतूल के फूलन जोर जवा के॥
गंग बड़े बड़े मोतिन के संग सोहत थोरे थोरे कुच वाके।
अंडनि के मनो मंडल मध्य तैं ह्वै निकसे चकुला चकवाके॥२५॥
निसि नील नये उनये घन देखि फटी छतियाँ ब्रजबालन की।
कवि गंग तनद्दुति छीन भई सुथरी छवि देखि तमालन की॥
दसहूं दिसि जोति जगामग होत अनूपम जीगन जालन की।
मनो काम चमू की चढ़ी किरचैं उचटै कलधौत के नालन की॥२६॥

छप्पय—

बुरो प्रीति को पन्थ, बुरो जङ्गल को बासो।
बुरो नारि को नेह, बुरो मूरख सों हासो॥
बुरी सूम की सेव, बुरो भगिनी घर भाई।
बुरी कुलच्छनि नारि, सास घर बुरो जमाई॥
बुरो पेट पम्पाल है, बुरो युद्ध से भागनो।
गंग कहे अकबर सुनो, सब से बुरो है मांगनो॥२७॥

कवित्त—

बैठी थी सखिन सँग पिय को गमन सुन्यो, सुख के समूह में बियोग आग भरकी। गंग कहै त्रिविध सुगन्ध लैं पवन बह्यो, लागत ही ताके तन भई बिथा जर की॥ प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पँह, लागत ही औरे गति भई मानसर की। जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो, जल जरि गयो पङ्क सूख्यो भूमि दरकी॥ २८॥

फूट गये हीरा की बिकानी कनी हाट हाट, काहू घाट मोल काहू बाढ़ मोल को लयो। टूट गई लङ्का फूट मिल्यो जो बिभीषन है, रावन समेत वंश आसमान को गयो॥ कहैं कवि 'गंग' दुरजोधन से छत्रधारी, तनक में फूटें तें गुमान वाको नै गयो। फूटे तें नरद उठि जात बाजी चौसर की, आपस के फूटे कहु कौन को भलो भयो॥ २६॥

मृगहू ते सरस विराजत विशाल दृग, देखिये न अति दुति कौलहु के दल में। "गंग" घन दुज से लसत तन आभूषन, ठाढ़े द्रुम छाँह देख कै गई विकल में॥ चख चित भाय भरे शोभा के समुद्र माँझ, रही ना सँभार दशा औरे भई पल में। मन मेरो गरुओ गयो री बूड़ि मैं न पायो, नैन मेरे हल्ये तिरत रूप जल में॥ ३०॥

चकई बिछुरि मिली तू न मिली प्रीतम सों, गंग कवि कहै एतो कियो मान ठान री। अथये नछत्र ससि अथई न तेरी रिस, तू न परसन परसन भयो भान री॥ तू न खोलो मुख खोलो कञ्ज औ गुलाब मुख, चली सीरी वायु तू न चली भो बिहान री। राति सब घटी नाँही करनी ना घटी तेरी, दीपक मलीन ना मलीन तेरो मान री॥ ३१॥

अधर मधुप ऐसे वदन अधिकानी छवि, विधि मानो विधि कीन्हों रूप को उदधि कै। कान्ह देखि आवत अचानक मुरछि परो, वदन छपाइ सखियान लीन्हो मधि कै॥ मारि गई 'गंग'

दृग शर बेधि गिरिधर, आधी चितवनि में अधीन कीन्हो अधिकै। बान बधि बधिक बधे को खोज लेत फेरि, बधिक-बधू ना खोज लीन्ही फेरि बधिकै॥ ३२॥

कहते न समझे न समझाये समझे, सुकवि लोग कहें ताहि मानत असारसी। काक को कपूर जैसे मरकट को भूषण ज्यों, ब्राह्मण को मक्का जैसे मीर को बनारसी॥ बहिरे के आगे तान गाये को सवाद जैसे, हिजड़े के आगे नारि लागत अँगार सी। कहें कवि 'गंग' मन माँहि तो विचार देखो, मूढ़ आगे विद्या जैसे अंधे आगे आरसी॥ ३३॥

निपटनिरंजन।

[सं १५६५]

कवित्त—

तुमने ही दीनी मन इन्द्रिय को चञ्चलता, तुमने ही कही इन्हें जीते सोइ बली हैं। तुमने ही कही पुत्र दारा बिन गति नाहिं, तुमने ही कही यही फंदहू की गली है॥ तुमने ही कही माया त्याग के विराग धरो, तुमने ही कही माया सब से ही बली है। निपटनिरञ्जनी अवर कोई मालिक ना, जाके आगे नाथ न्याय हम तुम चली है॥ १॥

हाँसी में विवाद बसै विद्या माँहि वाद बसै, भोग माँहि रोग पुनि सेवा माँहि दीनता। आदर में मान बसै शुचि में गिलान बसै, आवन में जान बसै रूप माँहि हीनता॥ योग में अभोग औ संयोग में वियोग बसै, पुन्य माँहि वन्धन औ लोभ में अधीनता। निपट नवीन ये प्रवीननी सुवीन लीन हरि जू सों प्रीति सबही सों उदासीनता॥ २॥

सिख्यो है शलोक औ कवित्त छन्द नाद सबै, जोतिष को सिखे मन रहत गरूर में। सिख्यो सौदागरी बजाजी और रस रीति, सिख्यो लाख फेरन ज्यों बह्यो जात पूर में॥ सिख्यो सब जन्त्र मन्त्र तन्त्रन को सिखी लीनो, पिंगल पुरान सिख्यो सीखि भयो सूर में। सिख्यो नहिं वातें घातें निपट सयानो भयो, वोलिवो न सिख्यो सबे सिख्यो गयो धूर में॥ ३॥

गांठ में न दाम रीतो देखि देखि धन धाम, निश दिन आठों याम चिन्ता चित को दहै। जासों पहिचान तासों दुख को बखान कहै, सो तो दुख एक के अनेकन को को कहै॥ निपट निरंजन कुटुम्ब भैया वन्धु मित्त, सम्पति के लोभ कोऊ भूलि न भुजा गहै। झूठ झूठ कहि सब खातिर को जमा राखि, जमा होय घर में तो खातिर जमा रहै॥ ४॥

सवैया—

ऊँट की पूंछ सों ऊँट बँध्यो इमि, ऊँटन की सी कतार चली है।
कौन चलाइ कहाँ को चली चलि, जैहैं तहाँ कछु फूल फली है॥

ये सिगरे मत ताकी यही गति, गाँव को नाँव न कौन गली है।
ज्ञान बिना निपटा निरअंजन, जीव न जाने बुरी कि भली है ॥५॥
है जग मूत औ मूतहि को बन्यो, मूत को भाजन मूत में पाग्यो।
खेत में मूत खतान में मूत औ, मूतहि मूत दशौ दिशि जाग्यो ॥
भाषै निरंजन अमृत मूत है, मूत ही सों जग है अनुराग्यो।
तात को मूत औ मात को मूत तैं नारि को मूत लै चाटन लाग्यो ॥६॥

कृपाराम।

[सं० १५९८]

दोहा--

लोचन चपल कटाक्ष सर, अनियारे विष पूरि।
मन मृग बेधैं मुनिन के, जग जन सहित बिसूरि ॥१॥
आजु सवारे हौं गई, नन्दलाल हित ताल।
कुमुद कुमुदिनी के भटू, निरखे औरै हवाल ॥२॥
पति आयो परदेश ते, ऋतु बसन्त की मानि।
झमकि झमकि निज महल में, टहलैं करैं सुरानि ॥३॥

अकबर।

[सं० १५९९—१६६२ तक]

दोहा—

जाकी कीरति जगत में, जगत सराहे जाहि।
ताको जीवन सफल है, कहत "अकब्बर" साहि ॥१॥

सवैया—

शाह "अकव्वर" वाल की वाँह, अचिंत गही चल भीतर भौने।
सुन्दरी द्वारहि दृष्टि लगाइ कै, भागिवे को भ्रम पावत गौने॥
चौंकत सी चहुँ ओर विलोकत, शङ्कि सकोच रही मुख मौने।
यौं छवि नैन छवीली के छाजत, मानों विछोह परो मृग छौने॥२॥

—०:*:०—

वलभद्र मिश्र ।

[सं० १६००]

कवित्त—

कालिन्दी के कूल औ निकुञ्जन की छाया मधि, कोकिला कुलाहलनि जिय जारियतु है। दोहनी की सुधि आये दूनौ दुख होत दई, मुरली की सुधि आये आंसू ढारियतु है॥ भनै वलभद्र तुम दयावन्त दीनानाथ हा! हा! गोपी नाथ जन यों विसारियतु है। गोधन की छाँह ते छिपाये तव छातीतर मेह ते वचाये अव नेह मारियतु है॥ १॥

पाटल नयन कोकनद कैसे दल दोऊ, वलभद्र वासर उनींदी देखि वालमैं। सोभा के सरोवर मैं वाड़व की आभा कीधौं, देव-धुनि-भारती मिली है पुन्य काल मैं॥ काम कवरत कैधौं, नासिका उडुप वैठ्यो, खेलत सिकार तरुनी के मुखताल मैं।

लोचन सितासित मैं लोहित लकीर मानो फन्दे जुग मीन लाल रेसम के जाल मैं ॥ २ ॥

विष की लतासी बिनु पात भानु दुहितासी आसी, विष अलपासी भामिनी की यही भाँति है। कुच चकडोरिन की डोरी मखतूलहू की जानी अमीघट चढ़ी पिपलीका पाँति है॥ जठर अगिनि आभा डोरी नाभि कूपकी कि चतुर चितौनि में चिहुंटि अहटाति हैं। अलप उदर पर तेरे रोमराजी कीधों, बलभद्र बानी की विपञ्चिही की ताँति है ॥ ३ ॥

तार सो तगा सो बार लीक सो लुकञ्जन सो छन्दी कैसो छन्द कहिबे में छलियतु है। चितही परत चौंकि जात है चितौननि जहाँ नैननि की गति को गुमान दलियतु है॥ पग न परत धरकत हियो बलभद्र डगनि भरत डग डग हलियतु है। कच कुच हार चीर बारन के भारी भार ऐसे छीने लङ्क पै नीसङ्क चलियतु है ॥ ४ ॥

सोभा की तरङ्गीनी के तोय की भँवर कैधों सोने को सुपथ वे मदन कीट कीनो है। पिय नैन गोलका की खेल की खलेल किधौं बलभद्र पारखी सुलाख काम दीनो है॥ राख्यो करि अचल सचलता बिसारी सब, हेरि चित चंचरीक रन्ध्र रस भीनो है। नाभी तेरी तरुनी नीवास कीधौं मोहनी को, मेरे मनमोहन को मन हरिलीनो है ॥ ५ ॥

पानिप मदन को बदन झलकत अति रूप की तरङ्ग तामे प्रान तनियतु है। जोबन की जोति जगमगति प्रभा की मानो, अजिर उद्योत ताको उर आनियतु है ॥ मुकुर ते अमल बनायो है बिधाता बिधु, बलभद्र यह अनुमान मानियतु है। मेरे जान झाँई झलकत तेरे आनन की, ताही को उज्योरो जग जोन्ह जानियतु है ॥ ६ ॥

कैधों उदयाचल उरोज राका जोबन को, कैधों अथवत सिसुवाई भान गति है। अन्तर को राग कीधों बाहिर प्रकट भयो, कैधों मुखराग की झलक झलकति है ॥ कैधों चन्दवदनी के बदन गयन्द कुम्भ, कैधों उभै भास राजै सिव को सकति है। कैधों बलभद्र जामी मूल द्वै सजीवन को, ऐसी कुच अग्र की अरुनता लसति है ॥ ७ ॥

अवलम्बी अलिन नलिनहीं कोरिका, कै अमी कुम्भ ऊपर अनङ्ग छाप दीनी है। कैधों सित कण्ठ-कण्ठ राजित गरल दुति, कनक गिरिन मनि-मञ्जरी नवीनी है ॥ सिसुता की तनुता तनक तम धरी जनु, तामस की रीति तें तरुनि तेज कीनी है। स्यामा के अनूप कुच अग्रन की स्यामताई, मानों बलभद्र रसराज छवि छीनी है ॥ ८ ॥

—०*×*०—

दादूदयाल।

[सं० १६०१—१६६० तक]

दोहा—

सुरग नरक संसय नहीं, जिवण मरण भय नाहिं।
राम विमुख जे दिन गये, सो सालैं मन माहिं ॥१॥
काया कठिन कमान है, खींचै विरला कोइ।
मारै पाँचौ मिरगला, दादू सूरा सोइ ॥२॥
घीव दूध में रमि रह्या, व्यापक सबही ठौर।
दादू बकता बहुत हैं, मथि काढ़ैं ते और ॥३॥
जिहि घर निन्दा साधु की, सो घर गये समूल।
तिनकी नीव न पाइये, नाँव न ठाँव न धूल ॥४॥

—००:※:००—

जैत।

[सं० १६०१]

तीर कमान गही बलमण्डक मार मची घमसान मचायो।
जोगिनी रज्जकै भारी भई सिव सङ्कर मुण्ड की माल लै आयो ॥
भीम समान को युद्ध कियो कवि जैत कहै जग में जस पायो।
साह के काज पै सूर लरुो सिर टूटि परुो धड़ धारु को धायो ॥१॥

—०:×:०—

धारु=रण। धायो=दौड़ा।

जमाल ।

[सं० १६०२—१६६२ तक]

छप्पय—

जद्‌पि कुसङ्ग सङ्ग लाभ, तद्‌पि वह सङ्ग न कीजे ।
जद्‌पि धनिक होय निधन, तद्‌पि घट प्रकृति न लीजे ॥
जद्‌पि दान नहिं शक्ति, तद्‌पि सन्मान न खूटे ।
जद्‌पि प्रीति उर घटे, तद्‌पि मुख उघर न टूटे ॥
सुन सुजस द्वार कीवार दै, कुजस जमाल न मूकिये ।
जिय जाय जद्‌पि भलपन करत, तऊ न भलपन चूकिये ॥१॥

दोहा—

सजन विसारे ही भले , सुमिरन करै विहाल ।
देखौ चतुर विचारि कै , साची कहै जमाल ॥२॥
दिन्हो होय सु पाइयै , कहते वेद पुरान ।
मन दे पाई वेदना , वाह! हमारे दान ॥३॥
और अगिन मेटन सुगम , विगरत वरसत तोय ।
विरह अगिन विपरीत गति , घन तें दूनी होय ॥४॥
रकत मांस सव भख गयो , नेक न कीनी कानि ।
अब विरहा कूकुर भयो , लाग्यो हाड़ चवानि ॥५॥
यह तन तो लङ्का भई , मन भयो रावन राय ।
विरह रूप हनुमँत भयो , देत लगाय लगाय ॥६॥

विरह अगिन विपरीत गति , कही न जानै कोय।
दूर भये देही जरै , नियरै सीरी होय ॥७॥
जे नित देखे चाहियै , ते नैननि तें दूरि।
असनेही अनभावते , रहै निकट भरपूरि ॥८॥
सेज ऊजरी कुसुम रुचि , और ऊजरी राति।
एक ऊजरी नारि विन , सबै ऊजरै जाति ॥९॥
चन्द्रमुखी चित चोरियो , दिनकर दुख दै मोहि।
जब निशि तारा देखियै , तव निशतारा होहि ॥१०॥
जो संग्रहौं तो तन दहै , तजौं तो प्रेमहि लाज।
भई छछुंदर साँप की , नवल विरह विष बाज ॥११॥
रह्यौं ऐंचि अन्त न लहे , अवधि दुशासन वीर।
आली बाढ़त विरह ज्यों , पंचाली को चीर ॥१२॥
अवधि वीति जोवन विते , म्हेर करो मनमांहि।
जिय की जिय मैं रहत है , ज्यौंहि कूप की छांहि ॥१३॥
विरह शकति लंकेश की , हिये रही भरपूरि।
को ल्यावै हनुमन्त ज्यौं , सजन सजीवन मूरि ॥१४॥
जोगिनि ह्वै सब जग फिरी , कमर बाँधि मृगछाल।
विछुरै सज्जन नां मिलै , कारन कौन जमाल ॥१५॥
पिय विन दिया न बारिहौं , मो अंधियारै सुक्ख।
करि उजियारो हे सखी , काको देखूं मुक्ख ॥१६॥
जब सुधि आवत मित्त की , विरह उठत तब जागि।
ज्यौं चूने की कांकरी , जब छिरको तब आगि ॥१७॥

लाल तुम्हारी देखियतु , सब काहूं सों प्रीति ।
जहाँ डारियै तहँ बढ़ै , अमरबेलि की रीति ॥१८॥
आज अमाँवस है सखि , शशि भीतर नँदलाल ।
बीचहि परिवा परि गयो , कारण कवन जमाल ॥१९॥
सजि सोरह बारह पहिरि , अटा चढ़ी इक बाल ।
उतरी कोयल बैन सुनि , कारण कवन जमाल ॥२०॥
तृषावन्त भइ कामिनी , गई ताल ततकाल ।
सर सूखत आनँद भई , कारण कवन जमाल ॥२१॥
चम्पा हनुमत रूप अलि , ला अक्षर लिखि बाम ।
प्रेमी प्रति पतिया दियो , कह जमाल किहि काम ॥२२॥
त्रिपुर अटा चढ़ि चाह भरि , बीन बजावति बाल ।
उतरी चन्द चमक्कु लखि , कारण कवन जमाल ॥२३॥
बन-बन उठत दवागि घन , छन-छन छहरि विशाल ।
हरषि हरषि तिय तहँ हँसी , कारण कवन जमाल ॥२४॥
शीतकाल जल माँझ तैं , निकसत बाफ सुभाय ।
मानहु कोऊ बिरहिनी , अबही गई अन्हाय ॥२५॥

सोरठा--

मैं लखि नारी ज्ञान , करि राखो निरधार यह ।
वहई रोग निदान , वहै वैद औषद वहै ॥२६॥
भादौं अति सुख दैन , कही चन्द गोविन्द सौं ।
घन अरु तिय के नैन , दोऊ बरसे रैन दिन ॥२७॥

रहीम।

[सं० १६१०]

दोहा--

अच्युत-चरण-तरङ्गिणी , शिव-सिर-मालति-माल।
हरि न बनाओ सुर-सरी , कीजो इन्दव-भाल ॥१॥

अब रहीम मुशकिल पड़ी , गाढ़े दोऊ काम।
साँचे से तो जग नहीं , झूठे मिलैं न राम ॥२॥

अमरवेलि बिनु मूल की , प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहिं तजि , खोजत फिरिये काहि ॥३॥

उरग, तुरँग, नारी, नृपति , नीच जाति, हथियार।
रहिमन इन्हैं सँभारिये , पलटत लगै न वार ॥४॥

ऊगत जाही किरन सों , अथवत ताही कांति।
त्यों रहीम सुख दुख सबै , बढ़त एक ही भाँति ॥५॥

ए रहीम दर दर फिरहिं , माँगि मधुकरी खाहिं।
यारो यारी छोड़िये , वे रहीम अब नाहिं ॥६॥

अन्तर दाव लगी रहै , धुआँ न प्रगटै सोय।
कै जिय जाने आपनो , कै सिर बीती होय ॥७॥

कदली, सीप, भुजङ्ग मुख , स्वाति एक गुन तीन।
जैसी सङ्गति- बैठिये , तैसोई गुन दीन ॥८॥

अच्युत=विष्णु। सुरसरी=गङ्गा। इन्दव-भाल=महादेव। उरग=सांप। तुरङ्ग=घोड़ा। कदली=केला।

कमला थिर न रहीम कहि , यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की वधू , क्यों न चञ्चला होय ॥९॥
कहि रहीम धन वढ़ि घटे , जात धनिन की वात।
घटे वढ़े उनको कहा , घास वेंचि जे खात ॥१०॥
कहि रहीम सम्पति सगे , वनत वहुत वहु रीत।
विपत कसौटी जे कसे , सोई साँचे मीत ॥११॥
कहु रहीम कैसे निभै , वेर-केर को सङ्ग।
वे डोलत रस आपने , उनको फाटत अङ्ग ॥१२॥
काज परे कछु और है , काज सरे कछु और।
रहिमन भँवरी के भये , नदी सिरावत मौर ॥१३॥
काह करौं वैकुण्ठ लै , कल्पवृक्ष की छाँह।
रहिमन ढाक सुहावनो , जो गल पीतम-वाँह ॥१४॥
खीरा सिर तें काटिये , मलियत लोन लगाय।
रहिमन करुवे मुखन को , चहियत यही सजाय ॥१५॥
खैर, खून, खांसी, खुसी , वैर, प्रीति, मधुपान।
रहिमन दावे ना दवै ; जानत सकल जहान ॥१६॥
गरज आपनी आप सों , रहिमन कही न जाय।
जैसे कुल की कुल-वधू , पर-घर जात लजाय ॥१७॥
गुरुता फवै रहीम कहि , फवि आई है जाहि।
उर पर कुच-नीके लगैं , अनत वतौरी आहि ॥१८॥

केर=केला। भँवरी=दूलह और दुलहिन की वेदी परिक्रमा। मौर=मुकुट। वतौरी=फुड़िया।

चित्रकूट में रमि रहे, रहिमन अवध नरेश।
जापर बिपदा परत है, सो आवत यहि देश ॥१९॥
छोटेन सों सोहैं बड़े, कहि रहीम यह रेख।
सहसन को हय बाँधियत, लै दमरी की मेख ॥२०॥
जब लगि वित्त न आपुने, तब लगि मित्र न कोय।
रहिमन अंबुज अंबु बिनु, रवि नाहिन हित होय ॥२१॥
जहाँ गाँठ तँह रस नहीं, यह रहीम जग जोय।
मँडएतर की गाँठ में, गाँठ गाँठ रस होय ॥२२॥
जेहि रहीम तन मन लियो, कियो हिये बिच भौन।
तासों सुख दुख कहन की, रही बात अब कौन ॥२३॥
जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत है, सीत, घाम औ मेह ॥२४॥
जो अनुचितकारी तिन्हैं, लगै अंक परिनाम।
लखे उरज उर बेधियत, क्यों न होय मुख श्याम ॥२५॥
जो बड़ेन को लघु कहो, नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहे, दुख कछु मानत नाहिं ॥२६॥
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसङ्ग।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजङ्ग ॥२७॥
जो रहीम ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय।
प्यादे सों फरजी भयो, टेढ़े टेढ़े जाय ॥२८॥
जो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अंधेरो होय ॥२९॥

जो रहीम गति दीप की , सुत सपूत की सोय ।
बड़ो उजेरो तेहि रहे , गये अँधेरो होय ॥३०॥

जो रहीम दीपक दसा , तिय राखत पट-ओट ।
समय परे ते होत है , वाही पट की चोट ॥३१॥

जो विषया सन्तन तजी , मूढ़ ताहि लपटात ।
ज्यों नर डारत वमन करि , स्वान स्वाद सों खात ॥३२॥

टूटे सुजन मनाइये , जौ टूटे सौ वार ।
रहिमन फिर फिर पोहिये , टूटे मुक्ताहार ॥३३॥

तरुवर फल नहिं खात हैं , सरवर पियहिं न पान ।
कहि रहीम पर काज हित , सम्पति सुचहि सुजान ॥३४॥

दुर दिन परे रहीम कहि , भूलत सब पहिचानि ।
सोच नहीं वित हानि को , जो न होय हित हानि ॥३५॥

नाद रीझि तन देत मृग , नर धन हेत समेत ।
ते रहीम पशु से अधिक , रीझेहु कछू न देत ॥३६॥

नैन सलोने अधर-मधु , कहि रहीम घटि कौन ।
मीठो भावै लोन पर , अरु मीठे पर लौन ॥३७॥

पन्नग-बेलि पतिव्रता , रति सम मान सुजान ।
हिम रहीम बेली दही , सत जोजन दहियान ॥३८॥

बिगरी बात बनै नहीं , लाख करो किन कोय ।
रहिमन फाटे दूध को , मथे न माखन होय ॥३९॥

बारे=लड़कपन और जलाने पर । स्वान=कुत्ता । रज=धूल ।
पन्नग=पान ।

मनसिज माली की उपज , कहि रहीम नहिं जाय ।
फल श्यामा के उर लगे , फूल श्याम उर आय ॥४०॥
मन से कहाँ रहीम प्रभु , दृग सो कहा दिवान ।
देखि दृगन जो आदरैं , मन तेहि हाथ बिकान ॥४१॥
मथत मथत माखन रहै , दही मही बिलगाय ।
रहिमन सोई मीत है , भीर परे ठहराय ॥४२॥
मान सहित विष खाय कै , सम्भु भये जगदीश ।
बिना मान अमृत पिये , राहु कटायो सीस ॥४३॥
यह रहीम निज संग लै , जनमत जगत न कोय ।
वैर, प्रीति, अभ्यास, जस , होत होत ही होय ॥४४॥
ये रहीम फीके दुवौ , जानि महा सन्ताप ।
ज्यों तिय कुच आपन गहे , आप बड़ाई आप ॥४५॥
रहिमन अपने पेट सों , बहुत कह्यो समुझाय ।
जो तू अनखाये रहै , तोसों को अनखाय ॥४६॥
रहिमन असमय के परे , हित अनहित ह्वै जाय ।
बधिक बधै मृग बान सों , रुधिरै देत बताय ॥४७॥
रहिमन ओछे नरन सों , वैर भयो ना प्रीति ।
काटे चाटे स्वान के , दोउ भांति बिपरीति ॥४८॥
रहिमन कहत सु पेट सों , क्यों न भयो तू पीठ ।
रीते अनरीते करै , भरे बिगारत दीठि ॥४६॥

मनसिज=कामदेव । दिवान=पागल । मही=मट्ठा । अनखाय=बिना खाये, ईर्ष्या करे ।

रहिमन खोटी आदि की , सो परिनाम लखाय।
जैसे दीपक तम भखै , कज्जल वमन कराय ॥५०॥
रहिमन चुप ह्वै वैठिये , देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइहैं , बनत न लगिहैं वेर ॥५१॥
रहिमन जाके वाप को , पानी पिअत न कोय।
ताकी गैल अकास लौं , क्यों न कालिमा होय ॥५२॥
रहिमन जिह्वा वावरी , कहिगै सरग पताल।
आपु तो कहि भीतर रही , जूती खात कपाल ॥५३॥
रहिमन तीन प्रकार ते , हित अनहित पहिचान।
परवस परे, परोस वस , परे मामिला जानि ॥५४॥
रहिमन देखि वड़ेन को , लघु न दीजिये डारि।
जहाँ काम आवे सुई , कहा करै तरवारि ॥५५॥
रहिमन धागा प्रेम का , मत तोड़ो छिटकाय।
टूटे से फिर ना मिलै , मिले गांठ परि जाय ॥५६॥
रहिमन निज मन की व्यथा , मनहीं राखो गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सव , बाँटि न लैहैं कोय ॥५७॥
रहिमन प्रीति सराहिये , मिले होत रँग दून।
ज्यों हरदी जरदी तजै , तजै सफेदी चून ॥५८॥
रहिमन मनहिं लगाइ कै , देखि लेहु किन कोय।
नर को वस करिवो कहा , नारायन वस होय ॥५९॥
रहिमन वे नर मरि चुके , जे कहुँ माँगन जाहिं।
उनते पहले वे मुये , जिन मुख निकसत नाहिं ॥६०॥

रूप कथा पद चारु पट , कञ्चन दोहा लाल।
ज्यों ज्यों निरखत सूक्ष्म गति , मोल रहीम विसाल ॥६१॥
वे रहीम नर धन्य हैं , पर - उपकारी अङ्ग।
बाँटनवारे के लगे , ज्यों मेहँदी को रङ्ग ॥६२॥
समय लाभ सम लाभ नहिं , समय चूक सम चूक।
चतुरन चित रहिमन लगी , समय चूक की हूक ॥६३॥
रहिमन दानि दरिद्र तर , तऊ जाँचिबे जोग।
ज्यों सरितन सूखा परे , कुवाँ खनावत लोग ॥६४॥
धूर धरत नित शीश पर , कहु रहीम किहि काज।
जिहि रज मुनि पत्नी तरी , सो ढूंढ़त गजराज ॥६५॥
राम न जाते हरिन सँग , सीय न रावन साथ।
जो रहीम भावी कतहुं , होति आपने हाथ ॥६६॥
रहिमन सूधी चाल सों , प्यादा होत वज़ीर।
फ़रज़ी मीर न हो सकै , टेढ़े की तासीर ॥६७॥
प्रीतम छवि नैनन बसी , पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय रहीम लखि , आप पथिक फिरि जाय ॥६८॥
रहिमन नीचन सङ्ग बसि , लगत कलङ्क न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि , मद समुझहिं सब ताहि ॥६९॥
रहिमन अँसुवा नैन ढरि , जिय दुख प्रगट करेइ।
जाहि निकारो गेह ते , कस न भेद कहि देइ ॥७०॥
धन दारा अरु सुतन में , रहत लगाये चित्त।
क्यों रहीम खोजत नहीं , गाढ़े दिन को मित्त ॥७१॥

कमला थिर न रहीम कहि , लखत अधम जे कोइ।
प्रभुकी सो अपनी कहै , क्यों न फजीहत होय ॥७२॥
रहिमन पानी राखिये , बिन पानी सब सून।
पानी गये न ऊबरै , मोती मानुष चून ॥७३॥
ध्रम रहसी रहसी धरा , खिस जासे खुरसाण।
अमर विसम्भर ऊपरै , रखिऔ नहचौ राण ॥७४॥

सोरठा--

ओछे को सतसङ्ग , रहिमन तजहु अंगार ज्यों।
तातो जारै अंग , सीरे पै कारो लगे ॥ ७५ ॥
रहिमन जग की रीति , मैं देख्यौ रस ऊख में।
ताहू में परतीति , जहाँ गाँठ तहँ रस नहीं ॥ ७६ ॥
रहिमन मोहिं न सुहाय , अमी पियावत मान विनु।
वरु विप देइ बुलाय , मान सहित मरिबो भलो ॥ ७७ ॥
रहिमन पुतरी स्याम , मनहुँ जलज मधुकर लसै।
कैधौं शालिग्राम , रूपे के अरघा धरे ॥ ७८ ॥
दीपक हिए छिपाय , नवल वधू घर लै चली।
कर विहीन पछिताय , कुचल खिनीज सीसै धुनै ॥ ७६ ॥
गई आगि उर लाय , आगि लेन आई जो तिय।
लागी नाहिं बुझाय , भभकि-भभकि बरि-बरि उठे ॥८०॥

वरवै--

खीन, मलीन, विषभैया, औगुन तीन।
मोहिं कहत विधुवदनी, पिय मति-हीन ॥८१॥

लहरत लहर लहरिया, लहर बहार ।
मोतिन जरी किनरियां, बिथुरे बार ॥८२॥
कवन रोग दुहुं छतिया, उपजेउ आय ।
दुखि दुखि उठै करेजवा, लगि जनु जाय ॥८३॥
चूनत फूल गुलबवा, डार कटील ।
टुटि गा बन्द अँगियवा, फटि पटनील ॥८४॥

—:*○*:—

केशवदास ।

[स० १६१२—१६७४]

दोहा—

केशव केसनि अस करी, जस अरिहूँ न कराहिं ।
चन्द्र-बदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं ॥१॥
जहीं बारुनी की करी, रञ्चक रुचि द्विजराज ।
तहीं कियो भगवन्त बिनु, सम्पति - शोभा साज ॥२॥
अमल कपोलै आरसी, बाहू चम्पक मार ।
अय लोचनै बिलोकिये, मृग-मद-मय घनसार ॥३॥
गति को भार महावरै, अङ्ग अङ्ग को भार ।
केशव नख सिख शोभिजै, शोभाई श्रृङ्गार ॥४॥

बारुनी=मदिरा । द्विजराज=चन्द्रमा ।

सवैया—

बन में वृषभानु कुमारि मुरारि रमें रुचि सों रस रूप लिये।
कल कूजित पूजित काम कला विपरीत रची रति केलि हिए॥
मनि सोहत श्याम जराइ जरी अति चौकी चली चल चारु हिए।
मखतूल के झूल झुलावत केशव भानु मनो शनि अङ्क लिए॥५॥

केशव एक समय हरि राधिका आसन एक लसे रँग भीने।
आनँद सों तिय आनन की दुति देखत दर्पन में दृग दीने॥
बाल के भाल में लाल विलोकत ही भरि लोचन लालन लीने।
सासन पीय सवासन सीय हुतासन में जनु आसन कीने॥६॥

रुचि पङ्कज चन्दन कञ्चन चम्पक रञ्जन रोचनहू की रची।
कहिये किहि कारन को इतै लायक कापर भामिनि भौंह नची॥
अनुमानत हौं अखियाँ लखि लाल ये नाहिनै राति के रोष रची।
तन तेरे वियोग तपो तरुनी तिहु भाँनहुँ मों हिय माँह तची॥७॥

पाँइ परै मनुहार करै पलका पर पाँइ धरै भय भीनें।
सोइ गई कहि केशव कैसहुं कोर करोरहुं सौंहन कीनें॥
साहस कै मुख सों मुख छ्वै छिन में हरि मान महासुख लीनें।
एक उसाँसही के उससै सिगरेई सुगन्ध विदा करि दीनें॥८॥

मखतूल=काला रेशम। जरी=सोने के तारों से बना हुआ। हुतासन=अग्नि।

सुन्दरता मय पावक जावक पीक हिये नख चन्द नये हैं।
चन्दन चित्र सुधा विष अंजन टूटि सबै मनि-हार गये हैं॥
केशव नैननि नींदमयी मदिरा मद घूमत मोह भये हैं।
केलि कै नागरि नागर प्रात उजागर सागर भेष भये हैं॥९॥

आजु बिराजति हैं कहि केशव श्री बृषभानु-कुमारि कन्हाई।
बानी विरञ्चि वही क्रम काम रची जो बरी सो बधू न बनाई॥
अङ्ग विलोकि त्रिलोक में ऐसी को नारि निहारि न नार बनाई।
मूरतिवन्त शृङ्गार समीप सिंगार किये जनु सुन्दरताई॥१०॥

भाल गुही गुन लाल लटैं लपटी लर मोतिन की सुखदैनी।
ताहि विलोकत आरसी लै कर आरससो इक सारसनैनी॥
केशव कान्ह दुरे दरसी परसी उपमा मति को अति पैनी।
सूरज मण्डल में शशि मण्डल मध्य धँसी जनु ताहि त्रिवेनी॥११॥

सौहैं दिवाय दिवाय सखी इक बारक कानन माँहि बसाये।
जानैं को केशव कानन ते कित ह्वै हरि नैनन माँझ सिधाये॥
लाज के साज धरेई रहे तब नैनन लै मनही सों मिलाये।
कैसी करौं अब क्यों निकसै री! हरेई हरे हिय में हरि आये॥१२॥

सुन्दर सेत सरोरुह मैं करहाटक हाटक की द्युति कोहै।
तापर भौंर भले मन रोचन लोक विलोचन की रुचि रोहै॥

नावक=महावर, पैर रंगने का रङ्ग। गुन=रस्सी, डोरा। करहाटक=कमल के फूल के भीतर की छतरी जो पहले पीली होती है, फिर बढ़ने पर हरी हो जाती है। हाटक=सोना।

देखि दई उपमा जल देविन दीरघ देवन के मन मोहै।
केशव केशवराय मनो कमलासन के सिर ऊपर सोहै॥१३॥
कलहंस कलानिधि खञ्जन कञ्ज कछू दिन केशव देखि जिये।
गति आनन लोचन पायन की अनुरूपक से मन मानि लिये॥
यहि काल कराल ते शोधि सबै हठि कै बरषा मिस दूरि किये।
अब धौं बिन प्रान प्रिया रहि हैं कहि कौन हितू अवलम्बि हिये॥१४॥
राघव की चतुरङ्ग चमू चय को गनै केसव राज समाजनि।
शूर तुरङ्गन के उरझैं पग तुङ्ग पताकन की पट साजनि॥
टूटि परैं तिनते मुकता धरनी उपमा बरनी कविराजनि।
बिंदु किधौं मुख फेनन के किधौं राजसिरी श्रवै मङ्गल लाजनि॥१५॥
तोरि तनी टकटोरि कपोलनि जोरि रहे कर त्यों न रहौंगी।
पान खवाइ सुधाधर पान कै पाँय गहे तस हौं न गहौंगी॥
केशव चूक सबै सहिहौं मुख चूमि चले यह तो न सहौंगी।
कै मुख चूमन दै फिरि मोहि कै आपनी धाय सों जाय कहौंगी॥१६॥
केशवदास के भाल लिख्यो विधि रङ्क को अङ्क बनाय संवारो।
छोड़े छुट्यो नहिं धोये धुयो बहु तीरथ के जल जाइ पखारो॥
है गयो रङ्क ते राउ तहीं जब वीरबली बलवीर निहारो।
भूलि गयो जग की रचना चतुरानन बाय रह्यो मुख चारो॥१७॥
पावक पंछी पशू नर नाग नदी नद लोक रचे दस चारी।
केशव देव अदेव रचे नरदेव रचे रचना न निवारी॥
कै बर बीर बली बलवीर भयो कृतकृत्य महा व्रतधारी।
दै करतार पनो कर तोहि दई करतार दुहूं कर तारी॥१८॥

कवित्त—

मेरो मुँह चूमै तेरी पूरी साध चूमबे की चाटे ओस आँसू क्यों सिरात प्यास डाढ़े हैं। छोटे छोटे कर कहाँ छुवत छबीली छाती छ्वावो जाके छ्वायबे के अभिलास बाढ़े हैं॥ खेलन जो आई हौ तो खेलौ जैसे खेलियत केशोदास की सों तैं ये खेल कौन काढ़े हैं। फूल फूल भेटति है मोहिं कहा मेरी भटू भेंटे किन जाय जे वै भेंटिबे को ठाढ़े हैं॥ १९॥

हँसत खेलत खेल मन्द भई चन्द दुति कहत कहानी अरु बूझत पहेली जाल। केशोदास नींद मिसु आपन आपन घर हरे हरे उठि गईं गोपिका सकल ग्वाल॥ घोर उठे गगन सघन घन चहूं दिशि उठि चले कान्ह धाइ बोलि उठी तेहिं काल। आधीरात अधिक अंधेरी माँझ जैहौ कहाँ राधिका की आधी सेज सोय रहौ नन्दलाल॥ २०॥

जिन न निहारे ते निहोरत निहारबे को काहू न निहारे जिन कैसे कै निहारे हैं। सुर नर नाग नव कन्यन के प्रानपति पति-देवतानिहूं के हियनि विहारे हैं॥ इहि विधि केसोदास रावरे अशेष अङ्ग उपमा न उपजी विरञ्चि पचिन्हारे हैं। रूप-मद मोचन मदन-मद-मोचन हैं तीय व्रत मोचन बिलोचन तिहारे हैं॥ २१॥

वा सों मृग अङ्क कहै तोसों मृग नयनी सब वह सुधाधर तुहूं सुधाधर मानिये। वह द्विजराज तेरे द्विजराजि राजैं वह वह कलानिधि तुहूं कला कलित बखानिये॥ रत्नाकर के हैं दोऊ

केशव प्रकाश कर अंबर विलास कुवलय हित मानिये। वाके अति शीतकर तुहूं सीता शीतकर चन्द्रमासी चन्द्रमुखी सब जग जानिये ॥ २२ ॥

प्रथम सकल शुचि मज्जन अमल वास, जावक सुदेश केश पाश को सम्हारिवो। अङ्गराग भूषण विविध मुख वास राग, कज्जल कलित लोल लोचन निहारिवो ॥ बोलनि हँसनि मृदु चलनि चितौनि चारु, पल पल प्रति पतिव्रत परिपारिवो। केशौदास सो विलास करहु कुंवरि राधे, इहि विधि सोरह शृङ्गारनि शृङ्गारिवो ॥ २३ ॥

मन ऐसो मन मृदु मृदुल मणालिका के, तार कैसो सुर ध्वनि मननि हरति है। दासो कैसो बीज दान्त पाँत से अरुण ओंठ, केशोदास देखि दृग आनँद भरति है॥ येरी मेरी तेरी मोहिं भावत भलाई तातें, बूझति हौं तोहिं और बूझत डरति है। माखन सी जीभ मुख कञ्ज सी कोमलता में, काठ सी कठेठी बात कैसे निकरति है ॥ २४ ॥

जो हौं कहौं रहिये तो प्रभुता प्रकट होत, चलन कहौं तो हित हानि नांहि सहनो। भावै सो करहु तो उदास भाव प्राण-नाथ, साथ लै चलहु कैसे लोक लाज वहनो ॥ केशोदास की सों तुम सुनहु छवीले लाल, चलेही वनत जो पै नांहीं राज रहनो। जैसियै सिखाओ सीख तुमही सुजान प्रिय, तुमही चलत मोहिं जैसो कछु कहनो ॥ २५ ॥

दुरिहै क्यों भूषण वसन दुति यौवन की, देह हू की ज्योति होति द्यौस ऐसी राति है। नाहक सुवास लागे ह्वै है कैसी केशव, सुभावती की वास भौंर भीर पारे खाति है॥ देखि तेरी सूरत की मूरति बिसूरति हूं लालनि के दृग देखिबो को ललचाति है। चालि है क्यों चन्दमुखी कुचन के भार भये, कचन के भार ही लचकि लङ्क जाति है॥ २६॥

—०:)*(:०—

रसखान।

[सं० १६१५—१६८५ तक]

सवैया-

मानुस हौं तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बस मेरो, चरौं नित नन्द की धेनु मँझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन॥

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूं पुर को तजि डारौं।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधि को सुख नन्द की गाइ चराइ बिसारौं॥
रसखानि कबौं इन आँखिन सों ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूं कलधौत के धाम करील के कुञ्जन ऊपर वारौं॥२॥

कलधौत=सोना।

मोरपखा सिर ऊपर राखि हौं गुञ्ज की माल गले पहिरौंगी।
ओढ़ि पितम्बर लै लकुटी वन गावत गोधन सङ्ग फिरौंगी॥
भाव तो वोहि मेरो रसखानि सों तेरे कहे सब स्वांग करौंगी।
या मुरली मुरलीधर की, अधरान धरी अधरान धरौंगी॥३॥

कान्ह भये बस बाँसुरी के अब कौन सखी हमको चहि है।
निसि द्यौस रहै सँग साथ लगी यह सोतन तापन क्यों सहि है॥
जिन मोहि लियो मन मोहन को रसखानि सदा हम कौं दहि है।
मिलि आओ सबै सखी भागि चलैं अब तो ब्रज में बँसुरी रहि है॥४॥

ब्रह्म मैं ढूंढ्यो पुरानन गानन वेद-रिचा सुनि चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो कबहूं न कितूं वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन॥
टेरत हेरत हारि पसो रसखानि बतायो न लोग लुगायन।
देखो दुरी वह कुञ्ज कुटीर मैं बैठो पलोटत राधिका पायन॥५॥

हेरत बारहीं बार उतै तुव बावरी बाल कहा धौं करैगी।
जौं कबहूं रसखानि लखै फिर क्यों हूं न बीर री धीर धरैगी॥
मानि हैं काहू की कानि नहीं जब रूप ठगी हरि रङ्ग ढरैगी।
या ते कहूं सिख मानि भटू यह हेरनि तेरे ही पैंड परैगी॥६॥

आली पगे जु रँगे रङ्ग सम्बल सोहैं न आवत लालची नैना।
धावत हैं उतही जित मोहन रोके सकैं नहिं घूंघट ऐना॥
कानन कौं कल नाहिं परै सखी प्रेम सों भींजे सुनै बिन बैना।
भई मधु की मखियाँ रसखानि सनेह को बन्धन क्यों हुं छुटैना॥

औचक दृष्टि परे कहूँ कान्ह जू तासों कहै ननदी अनुरागी।
सो सुनि सास रही मुख मोरि जिठानी फिरै जिय मैं रिस पागी॥
नीके निहारि कै देखे न आँखिन हौं कबहूँ भरि नैनन जागी।
मो पछिताबो यहै जु सखी कि कलङ्क लग्यो पर अङ्क न लागी॥

मोरपखा मुरली बन माल लख्यो हिय मैं हियरा उमह्यौ री।
ता दिन तैं इन बैरिन कौं कहि कौन न बोल कुबोल सह्यो री॥
तौ रसखानि सनेह लग्यौ कोउ एक कह्यो कोउ लाख कह्यौ री।
और तो रङ्ग रह्यो न रह्यो इक रङ्ग रँगी सोई रङ्ग रह्यौ री॥९॥

छीर जो चाहत चीर गहै ये जू लेहु न केतक छीर अचै हौ।
चाखन के मिस माखन माँगत खाहु न माखन केतिक खैहौ॥
जानत हौं जिय की रसखानि सु काहे को एतिक बात बनैहौ।
गोरस के मिस जो रस चाहत सो रस कान्ह जू नेकु न पैहौ॥१०॥

बैन वही उनको गुन गाइ औ कान वही उन बैन सों सानी।
हाथ वही उन गात सरै अरु पाइ वही जु वही अनुजानी॥
जान वही उन प्रान के संग औ मान वही जु करै मनमानी।
त्यों रसखानि वही रसखानि जु है रसखानि सो है रसखानी॥११॥

आवत लाल गुलाल लिये मग सूने मिली यक नारि नवीनी।
त्यों रसखानि लगाइ हिये भटू मौज कियो मन मांहि अधीनी॥
सारी फटी सुकुमारी हटी अँगिया दरकी सरकी रस भीनी।
गाल गुलाल लगाइ लगाइ कै अङ्क रिझाइ बिदा करि दीनी॥१२॥

आयो हुतो नियरे रसखानि कहा कहूँ तू न गयी वहि ठैया।
या ब्रज में सिगरी बनिता सब वारति प्राननि लेत बलैया॥
कोऊ न काहू की कानि करै कछु चेटक सो जो कस्रो जदुरैया।
गाइगो तान जमाइगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैया॥१३॥

सोहत है चँदवा सिर मोर के जैसियै सुन्दर पाग कसी है।
तैसियै गोरज भाल बिराजति जैसी हिये बनमाल लसी है॥
रसखानि बिलोकत बौरी भई दृग मूंदि कै ग्वालि पुकारि हँसी है।
खोलिरी घूंघट खोलौं कहा वह मूरति नैनन माँझ बसी है॥१४॥

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सु वेद बतावैं॥
जाहि हिये लखि आनन्द ह्वै जड़ मूढ़ हिये रसखानि कहावैं।
ताहि अहीर की छोहरियाँ छछियाँ भरि छाछ पै नाच नचावैं॥१५॥

दानी भये नये माँगत दान हो, जानि है कन्स तौ बन्धन जैहौ।
टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सो सबै धन दैहौ॥
रोकत हो बन में रसखानि, चलावत हाथ घनो दुख पैहौ।
जैहै जो भूपन काहू तिया को तो मोल छलाके लला न बिकैहौ॥१६॥

कवित्त—

दूध दुह्यो सीरो पस्रो तातो न जमायो कस्रो जामन दयो सो धस्रो धस्रोई खटाइगो। आन हाथ आन पाह सबही के तबहीं ते जबहीं ते रसखानि तानन सुनाइगो॥ ज्यों ही नर त्यों ही नारी

तैसी ये तरुन बारी, कहिये कहा री सब ब्रज बिललाइगो। जानिये न आली यह छोहरा जसोमति को बाँसुरी बजाइगो कि विष बगराइगो ॥ १७ ॥

जलालुद्दीन।

[सं० १६१५]

आदि के अङ्क बिना जग जीवत मध्य बिना जग हीन कहावै।
अन्त बिना सगरो जग है बस जाहिर जोति सु यों छवि छावै ॥
अङ्क जिते जग लोक जलालदी जो मनसा तिय को अति भावै।
श्याम के अङ्क में रङ्ग प्रसिद्ध है पण्डित होय सो अर्थ बतावै ॥१॥

तानसेन।

[सं १६१७]

कवित्त—

गौवन के जाये सो तो, धूर में लपट रहे, गधियाँ न गौ होत, गङ्ग नहलाये सें। सिंहन के जाये ताकी ऐरावत आन माने; शियाल न सिंह होत, माटी के खिलाये सें ॥ हंसन के जाये वो तो पीयत मधुर पय, बगले न हंस होत, पय के पिलाये सें। कहै मियाँ तानसेन, सुनो शाह अकबर, नफा नहीं होत खल, ऊँच पद पाये सें ॥ १ ॥

बगराइगो=फैला गया है।

नन्ददास ।

[सं० १६२३]

रोला—

ताही छिन उडुराज उदित रस रास सहायक ।
कुंकुम मण्डित वदन प्रिया जनु नागरि-नायक ॥
कोमल किरन अरुन मानों वन व्याप रही त्यों ।
मनसिज खेल्यो फागु घुमड़ घुरि रह्यो गुलाल ज्यों ॥१॥
फटकि छटासी किरन कुञ्ज-रन्ध्रन जब आई ।
मानहु वितन वितान सु देत तनाव तनाई ॥
मन्द मन्द चल चारु चन्द्रमा अति छवि पाई ।
झलकत है जनु रमा रमन पिय कौतुक आई ॥२॥
तब लीनी कर कमल जोग मायासी मुरली ।
अघटत घटना चतुर बहुरि अघटन सुर जु-रली ॥
जाकी धुनि ते निगम अगम पगटित बड़ नागर ।
नाद ब्रह्म की जानि मोहिनी सब सुख सागर ॥३॥
पुनि मोहन सों मिली कछू कलगान कियो अस ।
वाम विलोचन वास तियन मन हरन होय जस ॥
मोहन मुरली नाद स्रवन कीनों सब किनहूँ ।
जथा जथा विधि रूप तथा विधि परस्यो तिनहूँ ॥४॥

उडुराज=चन्द्र । अरुण=सूर्य । मनसिज=कामदेव । कुंज-रंध्र=छिद्र । वितन=कामदेव । रली=मिली हुई ।

तरनि किरन ज्यों मनि पखान सबही के परसे।
सुरज कांत मणि-विना नहीं कछु पावक दरसे॥
सुनत चलीं ब्रज बधू गीत-धुनि को मारग लहि।
भवन भीत द्रुम-कुञ्ज-पुञ्ज कितहूँ अटकी नहि॥५॥
नाद अमृत को पंन्थ रङ्गीलो सुच्छम भारी।
तेहि मग ब्रजतिय चलैं आन कोउ नहिं अधिकारी॥
सुद्ध प्रेममय रूप पञ्च भूतिन ते न्यारी।
तिन्हैं कहा कोउ कहै ज्योति सी जगत उजारी॥६॥

× × × ×

ते पुनि तिहिं मग चली रँगीली तजि ग्रह संगम।
जनु पिंजरन ते उड़े छुड़े नव प्रेम विहङ्गम॥
कोउ तरुनी गुन मय सरीर रति सहित चलीं टुकि।
मात पिता पितु बन्धु सबन झुकि नाहिं रहीं रुकि॥७॥
सावन-सरित न रुकै करौ जो जतन कोउ अति।
कृष्ण हरे जिनके मन ते क्यों रुके अगम गति॥
चलत अधिक छवि फवित श्रवन मनि-कुण्डल झलकैं।
सङ्कित लोचन चपल ललितयुत बितुलित अलकैं॥८॥

(रास पञ्चाध्यायी से)

भँवर गीत।

ऊधव को उपदेस सुनो ब्रज नागरी।
रूप सील लावन्य सबै गुन आगरी॥

विहङ्गम=पक्षी।

प्रेम-धुजा रस रूपिनी उपजावत सुख-पुञ्ज ।
सुन्दर स्याम विलासिनी, नव वृन्दावन कुञ्ज ॥
सुनो ब्रज नागरी ॥ ६ ॥

कहन श्याम सन्देस एक मैं तुम पै आयो ।
कहन समै संकेत कहूं अवसर नहिं पायो ॥
सोचत ही मन में रह्यो कब पाऊँ इक ठाउँ ।
कहि सँदेस नँदलाल को बहुरि मधुपुरी जाउँ ॥
सुनो ब्रजनागरी ॥ १० ॥

सुनत श्याम को नाम ग्राम गृह की सुधि भूली ।
भरि आनँद रस हृदय प्रेम बेली द्रुम फूली ॥
पुलकि रोम सब अँग भये भरि आये जल नैन ।
कण्ठ घुटे गद्गद गिरा बोले जात न बैन ॥
व्यवस्था प्रेम की ॥ ११ ॥

सुनत सखा के बैन नैन भरि आये दोऊ ।
बिवस प्रेम आवेस रही नाहीं सुधि कोऊ ॥
रोम रोम प्रति गोपिका ह्वै रहीं साँवरे गात ।
कल्पतरोरुह साँवरो ब्रजवनिता भईं पात ॥
उलहि अँग अँग तें ॥ १२ ॥

कल्पतरोरुह=कल्पवृक्ष ।

पृथ्वीराज और चम्पादे।

[अनुमान सं० १६२५]

धर बाँकी दिन पाधरा , मरद न मूकै माण।
घणाँ नरिन्दा घेरियो , रहै गिरिन्दाँ राण ॥ १ ॥

जिसकी भूमि अत्यन्त विकट है, दिन अनुकूल है, जो वीर अभिमान को नहीं छोड़ता, वह महाराणा बहुत राजाओं से घिरा हुआ पहाड़ों में वास करता है।

पातल राण प्रवाड़ मल , बाँकी घड़ा बिभाड़।
खूंदाड़ै कुण है खुराँ , तो ऊभाँ मेवाड़ ॥ २ ॥

हे विकट सेनाओं के विध्वंस करने वाले और युद्ध में मल्ल महाराणा प्रतापसिंह ! तेरे खड़े रहते मेवाड़ को घोड़ों के खुरों से खुंदाणै वाला कौन है ?

पातल जो पतसाह , बोलै मुख हुंता बयण।
मिहर पछम दिस माँह , ऊगै कासप राव वत् ॥ ३ ॥

महाराणा प्रताप यदि बादशाह को अपने मुख से बादशाह कहें तो कश्यपजी के सन्तान भगवान् सूर्य पश्चिम दिशा में ऊगे।

पटकूं मूंछाँ पाण , कै पटकूं निज तन करग।
दीजै लिख दीवाण , इण दो मँहली बात इक ॥ ४ ॥

हे दीवान ! मैं अपनी मूंछों पर हाथ फेरूं या अपनी गर्दन को तलवार से काट डालूं, इन दोनों में से एक बात लिख दीजिये।

राठौर वीर पृथ्वीराज की यह कविता पढ़ कर महाराणा प्रताप को इतना साहस हुआ कि मानों उन्हें दश हजार राजपूतों की सहायता मिल गयी। पत्र के उत्तर में उन्होंने नीचे लिखे दोहे भेजे—

खुसी हूंत पीथल कमध , पटको मूंछाँ पाण।
पछटण है जेतै पतो , कलमा सिर केवाण ॥ ५॥

हे राष्ट्रवर वीर पृथ्वीराज! खुशीसे मूंछों पर हाथ फेरिये। जब तक पछाड़ने-वाला यह प्रतापसिंह मौजूद है, यवनों के सिर पर तलवार चलती रहेगी।

तुरुक कहासी मुख पतो , इण तन सूं इकलिङ्ग।
ऊगै जाहीं ऊगसी , प्राची बीच पतङ्ग ॥ ६॥

भगवान् इकलिङ्गजी की शपथ है, प्रताप के मुंह से बादशाह नहीं, तुरुक ही कहलावेगा। सूर्य का उदय जो पूर्व दिशा में होता है, वहीं होगा।

साँग मूंड सहसी सको , सम जस जहर सवाद।
भड़ पीथल जीतो भलाँ , वैण तुरुक सूं वाद ॥ ७॥

प्रताप शिर पर भाला सहेगा, उसके यश को विष के स्वाद समान समझता है। हे भट पृथ्वीराज! आप अच्छी तरह तुरुक को विवाद में जीतें।

अकबर के साथ विवाद होने का पता जब पृथ्वीराज की राणी को लगा, तब उसने यह दोहा लिख कर पृथ्वीराज के पास भेजा—

पति जिद की पतसाह सूं , एह सुणी मैं आज।
कहाँ अकबर पातल कहाँ , करियो वड़ो अकाज ॥ ८॥

हे प्राणपति! मैंने आज यह सुना, कि आपने महाराणा के सम्बन्ध में

अकबर से विवाद किया है। कहाँ अकबर और कहाँ प्रताप! आपने बड़ा अनर्थ किया।

पृथ्वीराज को स्त्री जाति की अक्ल का परिचय मिल गया। दोहा पढ़ कर पृथ्वीराज को बड़ा दुःख हुआ। उत्तर में उन्होंने यह कवित्त लिख भेजा—

जब तें सुने हैं वैन तब तें न मोको चैन, पाती पढ़ि नैक सो विलम्ब न लगावेगो। लै के जमदूत से समस्त राजपूत आज, आगरे में आठों याम ऊधम मचावेगो॥ कहै पृथिराज प्यारी नैक उर धीर धरो, चिरजीवी राना श्री मलेच्छन भगावेगो। मन को मरद मानी प्रबल प्रतापसिंह, बब्बर ज्यों तड़प कै अकब्बर पै आवेगो॥ ९॥

गीत—

नर तेथ निमाणा निजली नारी अकबर गाहक वट अवट।
चौहटै तिण जायर चीतोड़ो वेचै किम रजपूत वट॥
रोजायताँ तणैं नवरोजै जेथ मुसाणा जणा जण।
हिन्दू नाथ दिलीचे हाटे पतो न खरचै क्षत्री पण॥
परपच लाज दीठ नह व्यापण खोटो लाभ अलाभ खरो।
रज बेचबाँ न आवे राणो हाटे मीर हमीर हरो॥
पेखे आपतणा पुरुषोत्तम रह अणियाल तणैं बल राण।
खत्र वेचियाँ अनेक खत्रियाँ खत्रवट थिर राखी खूमाण॥
जासी हाट बात रहसी जग अकबर ठग जासी एकार।
रह राखियो खत्री ध्रम राणै साराले बरतो संसार॥१०॥

जहाँ पर मानहीन पुरुष और लज्जाहीन स्त्रियाँ हैं, और अकबर जैसा

ग्राहक है, उस चौपड़ के बाज़ार में आकर चित्तौड़ का स्वामी राजपूती का भाग कैसे बेचेगा ?

मुसलमानों के नवरोज़ के समय प्रत्येक व्यक्ति लुट गया। परन्तु हिन्दुओं का पति प्रतापसिंह उस दिल्ली के बाज़ार में अपना क्षत्रियपन क्यों ख़रचे ?

वंशलज्जा से भरी दृष्टि पर अन्य का प्रपंच नहीं व्यापता। इसी से पराधीनता के सुख के लाभ को बुरा और अलाभ को अच्छा समझकर बादशाही दूकान पर रज बेचने के लिये हमीर का पोता राणा प्रतापसिंह कदापि नहीं आता।

अपने पुरुषाओं का उत्तम कर्तव्य देखते हुये महाराणा ने भाले के बल से क्षत्रिय-धर्म को अचल रक्खा और अन्य क्षत्रियों ने अपने क्षत्रियत्व को विक्रय कर डाला।

ठग रूपी अकबर भी एक दिन इस ससार से चला जायगा और हाट भी उठ जायगी। परन्तु संसार में यह बात अमर रह जायगी कि क्षत्रिय-धर्म में रहकर उस धर्म को केवल राणा प्रताप ही ने रक्खा ; अब सब उसे काम में लाओ।

पीथल धोला आवियाँ , बहुली लागी खोड़ ।
पूरे जोबन पदमणी , ऊभी मूंह मरोड़ ॥११॥
पीथल पली टमुक्कियाँ , बहुली लागी खोड़ ।
मरवण मत्त गयन्द ज्यों , ऊभी मुक्ख मरोड़ ॥१२॥
पीथल पली टमुक्कियाँ , बहुली लगगी खोड़ ।
स्वामीनी हाँसा करै , ताली दे मुख मोड़ ॥१३॥

पीथल=पृथ्वीराज। धोला=सफेद केश। पली=सफेद केश। टमुक्कियाँ=चमक आये। मरवण=कामिणी स्त्री। स्वामीनी=स्वामी की।

प्यारी कहे पीथल सुनो , धोलाँ दिस मत जोय।
नराँ नाहराँ डिगमराँ , पाकाँ ही रस होय ॥१४॥
खेड़ज पक्काँ धोरियाँ , पन्थज गउघाँ पाव।
नराँ तुरङ्गाँ, बन फलाँ , पक्काँ पक्काँ साव ॥१५॥

दुरसा आढ़ा।

[अनु० सं० १६२५]

सोरठा--

अइरे अकबरियाह , तेज तुहालो तुरकड़ा।
नम नम नीसरियाह , राण बिना सह राजवी ॥१॥

हे अकबर! तेरे तेज के सामने महाराणा के सिवा सब राजा लोग नम [झुक] गये।

सह गावड़ियो साथ , एकण बाड़ै बाड़ियो।
राण न मानी नाथ , ताँडै साँड प्रतापसी ॥ २ ॥

हे अकबर! सब राजा गउओं के साथी [सदृश] हैं। इसीलिये तूने एक बाड़े में सबको घाल दिया। किन्तु साँड़ रूपी प्रतापसिंह तेरी नाथ को नहीं मान कर धड़ुक [गरज] रहा है।

नाहराँ=व्याघ्रों। डिगमराँ=योगी यती। खेड़ज=खेती। धोरियाँ=बैलों। गउघाँ=ऊँट।

अकबर समद अथाह , तिहँ डूबा हिन्दू तुरक।
मेवाड़ो तिण माँह , पोयण फूल प्रतापसी ॥ ३ ॥

अकबर रूपी अथाह समुद्र में हिन्दू तुरुक सब डूब गये, किन्तु मेवाड़ाधिपति महाराणा प्रतापसिंह उसमें कमल-फूल के समान रहे।

अकबरिये इकबार , दागल की सारी दुनी।
अणदागल असवार , रहियो राण प्रतापसी ॥ ४ ॥

अकबर ने एक बार में ही सब दुनिया को दाग़ल बना दिया। परन्तु बिना दाग़ वाले चेटक घोड़े का सवार, एक राणा प्रतापसिंह रहा है। क्योंकि बादशाही जमाने में यवनाधिकृत्य रईसों के घोड़ों के दाग़ लगाये जाते थे। पर चेटक दाग़ रहित था। वर्त्तमान में भी इस नियम का पूरा पालन हो रहा है। अर्थात् दाग़ लगे हुए अश्व पर महाराणाजी सवारी नहीं करते।

अकब्बर घोर अँधार , ऊँघाणाँ हिन्दू अवर।
जागै जगदातार , पोहरे राण प्रतापसी ॥ ५ ॥

हे अकब्बर! घोर अन्धकार छा गया। सब हिन्दू ऊँघ रहे हैं। परन्तु जगत् का दाता महाराणा प्रतापसिह सजग पहरे पर खड़ा है।

पातल पाघ प्रमाण , साँची साँगा हर तणी।
रही सदालग राण , अकबर सूं ऊभी अणी ॥ ६ ॥

महाराणा सग्रामसिंह के पोते प्रतापसिह की पगड़ी ही प्रमाणिक और सच्ची है, सो अकब्बर के सामने सदैव अनम्र और ऊँची रही।

चौथो चीतोड़ाह , बाँटो बाजन्ती तणो।
माथे मेवाड़ाह , थारै राण प्रतापसी ॥ ७ ॥

इस दोहे का गूढ़ अर्थ है—चौथो बाँटो=पाव, मारवाड़ी भाषा में पाव को पा कहते हैं। बाजन्ती=घड़ी। पा+घड़ी=पाघड़ी (पगड़ी)

हे चितौड़ के स्वामी मेवाड़ाधिपति महाराणा प्रतापसिंह ! पगड़ी तेरे ही सर पर है।

चम्पा चीतोड़ाह , पोरस तणो प्रतापसी।
सौरभ अकबर शाह , अलियल आभड़िया नहीं ॥ ८ ॥

चितौड़ चम्पा है और प्रताप-पौरुष उसकी सुगन्ध है। अकबर रूपी भौंरा उसके पास नहीं फटकता। चम्पा के फूल पर भौंरा नहीं बैठता।

हिन्दूपति परताप , पत राखो हिन्दुआण री।
सहो विपत सन्ताप , सत्य सपथ करि आपणी ॥ ९ ॥

हे हिन्दूपति प्रताप ! हिन्दुओं की लज्जा रक्खो और अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिये सब कष्टों को सहन करो।

लोपै हिन्दू लाज , सगपण रोपै तुरक सूं।
आरज कुलरी आज , पूंजी राण प्रतापसी ॥१०॥

दूसरे हिन्दू लज्जा को छोड़कर तुर्क से सम्बन्ध करते हैं; किन्तु आज आर्य्य-कुल का सर्वस्व [उत्तम द्रव्य] महाराणा प्रतापसिंह ही है।

अकबर पथर अनेक , के भूपत भेला किया।
हाथन लागो हेक , पारस राण प्रतापसी ॥११॥

अकबर ने राजा-रूपी कई पत्थर इकट्ठे किए। किन्तु पारस रूपी एक राणा प्रतापसिंह हाथ नहीं आया।

सुख हित स्याल समाज , हिन्दू अकवर वस हुआ।
रोसीलो मृगराज , पजै न राण प्रतापसी ॥१२॥

गीदड़ रूपी हिन्दू समाज सुख के लिये अकबर के वश में हो गया। किन्तु रोशीला (क्रोधी) सिंह रूपी महाराणा प्रताप वश में नहीं आता।

हलदीघाट हरोल , घमंड उतारण अरि घड़ा।
आरण करण अडोल , पहुच्यो राण प्रतापसी ॥१३॥

शत्रु की सेना का गर्व मिटाने के लिए भयङ्कर जङ्ग (लड़ाई) करनेवाला प्रतापसिंह हल्दीघाटी में हरौल (सेना का अग्रभाग) में पहुंचा॥

देवारी सुरद्वार , अडियो अकवरियो असुर।
लडियो भड ललकार , पोलां खोल प्रतापसी ॥१४॥

देवारी दरवाजा सुरद्वार है जहां अकबर जैसा असुर [राक्षस] अड़ा वहां बहादुर प्रतापसिंह दरवाज़ा खोल ललकार कर लड़ा।

अकवर क़िला अनेक , फतै किया निज फौज सूं।
अकल चलै नह एक , पाधर लड़ै प्रतापसी ॥१५॥

अकबर ने अपनी फौज से अनेक किले फतह कर लिये किन्तु प्रतापसिंह समभूमि में लड़ता है, इससे उसकी एक भी अक्ल नहीं चलती [इससे महाराणा की असाधारण वीरता सूचित की है।

कलपै अकवर काय , गुण पूंगीधर गोड़िया।
मिणधर छावड माँय , पड़ै न राण प्रतापसी ॥१६॥

सर्प रूपी अन्य राजाओं को वश में कर लेने पर भी अकबर का शरीर

दुःख पाता है ; क्योंकि राणा प्रतापसिंह जैसा मणिधारी सर्प पिटारे में नहीं आता (याने वश में नहीं आता)।

दन्ती दल सूं दूर , अकबर आवै एकलो।
चौड़े खल चक चूर , पल में करै प्रतापसी ॥१७॥

अकबर रूपी हाथी सेना से अलग हो कर अकेला यदि आवे तो [प्रताप सिंह एक पल भर में उस दुष्ट को चौड़े ही मार डाले]।

अजरामर धन एह , जस रहजावै जगत में।
दुख सुख दोनूं देह , सुपन समान प्रतापसी ॥१८॥

हे महाराणा प्रतापसिंह जगत में यश रह जावे यही अजर अमर धन है ; वरना देह में दुख सुख इन दोनों का होना तो स्वप्न के समान है।

अकबर जासी आप , दिल्ली पासी दूसरा।
पुन - रासी परताप , सुजस न जासी सूरमा ॥१९॥

अकबर खुद चला जायगा (याने मर जायगा) और दिल्ली दूसरे को मिल जावेगी याने दूसरा बादशाह हो जावेगा, परन्तु हे पुण्य के ढेर ! शूर-वीर प्रतापसिंह, तेरा यह सुयश नहीं जायेगा (याने स्थिर रहेगा)।

आभा जगत उदार , भारत वरस भवान भुज।
आतम सम आधार , प्रथवी राण प्रतापसी ॥२०॥

हे उदार महाराणा-प्रतापसिंह ! जगत् में आपकी शोभा है और यह भारतवर्ष आपके भुजों पर है, और पृथ्वी के आत्मा के सदृश आधार भी आप ही हैं।

मुबारक।

[सं० १६४०]

दोहा—

अलक मुबारक तिय वदन , लटकि परी यों साफ़।
खुसनवीस मुनसी मदन , लिख्यो काँच पर काफ़ ॥१॥
जगी मुबारक तिय वदन , अलक ओप अति होइ।
मनो चन्द के गोद में , रही निशा सी सोइ ॥२॥
लगि द्रग अञ्जन ढिग अलक , देत मुबारक मोद।
जनु साँपिनि सुत आपनो , भेंटति भरि भरि गोद ॥३॥
चिबुक कूप में मन पस्रो , छवि जल तृषा विचारि।
कढ़त मुबारक ताहि तिय , अलक डोर सी डारि ॥४॥
सब जग पेरत तिलन को , थक्यो चित्त यह हेरि।
तब कपोल को एक तिल , सब जग डास्रो पेरि ॥५॥
चिबुक कूप रसरी अलक , तिल सु चरस द्रग बैल।
बारी बैस शृङ्गार की , सींचत मनमथ छैल ॥६॥
मन योगी आसन कियो , चिबुक गुफ़ा में जाय।
रह्यो समाधि लगाइ कै , तिल सिल द्वारे लाय ॥७॥
चिबुक सरूप समुद्र में , मन जान्यो तिल नाव।
तरन गयो बूड़्यो तहाँ , रूप कहर दरियाव ॥८॥
गोरी के मुख एक तिल , सो मोंहि खरो सुहाय।
मानहुं पङ्कज की कली , भौंह विलंब्यो आय ॥९॥

सवैया—

बंसी बजावत आनि कढ़ो वा गली मैं छली कछु जादू सो डारे।
नेकु चितै तिरछी करि भौंह चलो गयो मोहन मूठी सो मारे॥
वाही घरीक डरी वह सेज पै नेकु न आवत प्रान सँभारे।
जी है तौ जीहै न जीहै सखी, न तो पीहै सबै बिष नन्द के द्वारे॥

कौल से पानि कपोल धरे वर वारि लौ वारि भरे हिय हारे।
चित्र विचित्र भई सी भई है नई भृकुटी गई नींद निवारे॥
रावरी लागी है दीठि मुबारक ताते कहैं हम बात पुकारे।
जागि है जीहै तौ जीहै सबै विष पीहैं न तो सब नन्द के द्वारे॥११॥

हमको तुम एक अनेक तुम्हे उनहीं के विवेक बनाय बहो।
इत आस तिहारी बिहारी उतै सरसाय कै नेह सदा निबहो॥
करनी हैं 'मुबारक' सोई करौ अनुराग लता जिन बोय दहो।
घनश्याम सुखी रहो आनँद सों तुम नीके रहो उनहीं के रहो॥१२॥

सङ्ग सखी के गई अलबेली महासुख सोवन बाग बिहारन।
बाढ़े बियोग बिलास गये सब देखत ही व पलास की डारन॥
जानि वसन्त औ कन्त विदेस सखी लगी बावरी सी वै पुकारन।
च्वै चलि है चुरिया चलि आवरी आँगुरी अंजनु लाव अँगारन॥१३॥

कवित्त—

पानिप के पुञ्ज सुघराई के सदन सुख शोभा के समुद्र साव-
धान मन मौज के। लाजन के वोहित परोहित प्रमोदन के नेह

के नकीब चक्रवर्ती चित चोज के ॥ दया के निधान पतिव्रत के प्रधान गुग नैन ये मुबारक विधान नव रोज के। मीनन के सिरताज मृगन के महाराज साहिब सरोज के मुसाहिब मनोज के ॥ १४ ॥

कनक बरन बाल नगन लसत भाल मोतिन के माल उर सोहैं भली भाँति है। चन्दन चढ़ाई चारु चन्द्रमुखी मोहिनी सी प्रात ही अन्हाइ पगुधारे मुसकाति है ॥ चूनरी विचित्र स्याम सजि कै मुबारक जू ढाकि नख सिख तें निपट सकुचाति है। चन्दमैं लपेटि कै समेटि कै नखत मानो दिन को प्रनाम किये राति चली जाति है ॥ १५ ॥

उसमान ।

[अनु० सं० १६४१]

चौपाई—

आदि बखानौं कोइ चितेरा। यह जग चित्र कीन्ह जेहि केरा ॥
कीन्हेसि चित्र पुरुष अरु नारी। को जल पर अस सकै सँवारी ॥
कीन्हेसि जोति सूर ससि तारा। को असि जोति सिखइ को पारा ॥
कीन्हेसि बयन वेद जेहि सीखा। को अस चित्र पवन पर लीखा ॥
अइस चित्र लिखि जानइ सोई। वोहि बिनु मेटि सकै नहिं कोई ॥
कीन्हेसि रङ्ग स्याम अउ सेता। राता पीत अउर जग जेता ॥
वह सब बरन कीन्ह जहँ ताईं। आपु अबर्न अरूप गोसाइँ ॥

दोहा--

कीन्हा अगिनी पौन पर , भाँति भाँति संसार।
आपुन सब महँ मिलि रहा , को निगरावइ पार॥

बनारसीदास।

[सं० १६४३]

सवैया—

ज्यों मतिहीन विवेक बिना नर, साजि मतङ्गज इंधन ढोवै।
कञ्चन भाजन धूल भरै शठ, मूढ़ सुधारस सों पग धोवै॥
बाहित काग उड़ावन कारण, डार महामणि मूरख रोवै।
त्यों यह दुर्लभ देह 'बनारसि', पाय अजान अकारथ खोवै॥१॥

मात पिता सुत बन्धु सखीजन, मीत हितू सुख कामन पीके।
सेवक साज मतङ्गज बाज, महादल राज रथी रथ नीके॥
दुर्गति जाय दुखी बिललाय, परै सिर आय अकेलहि जी के।
पन्थ कुपन्थ गुरू समझावत, और सगे सब स्वारथ ही के॥२॥

ताहि न बाघ भूजङ्गम को भय, पानि न बोरै न पावक जालै।
ताके समीप रहैं सुर किन्नर, सो शुभ रीत करै अघ टालै॥
तासु विवेक बढ़ै घट अन्तर, सो सुर के शिव के सुख मालै।
ताकि सुकीरति होय तिहूं जग, जो नर शील अखण्डित पालै॥३॥

ज्यों कृषिकार भयो चितबातुल, सो कृषि की करनी इम ठानें।
बीज बवै न करै जल सिंचन, पावक सों फल को थल भानें॥
त्यों कुमती निज स्वारथ के हित, दुर्जन भाव हिये महि आनें।
सम्पति कारण बन्ध विदारन, सज्जनता सुख मूल न जानें॥४॥

सो करुणा बिन धर्म विचारत, नैन विना लखिबे को उमाहै।
सो दुर-नीति धरै यश हेतु, सुधी विन आगम को अवगाहै॥
सो हियसून्य कवित्त करै, समता विन सो तप सों तन दाहै।
सो थिरता विन ध्यान धरै शठ, जो सतसङ्ग तजै हित चाहै॥५॥

जो वर कानन दाहन कों दव, पावक सों नहिं दूसरो दीजै।
जो दव-आग बुझै न ततक्षण, जो न अखण्डित मेघ बरीसै॥
जो प्रगटै नहिं जौ लग मारुत, तौ लगि घोर घटा नहिं खीसै।
त्यों घट में तप वज्र विना दृढ़, कर्म कुलाचन और न पीसै॥६॥

सम्यक ज्ञान नही उर अन्तर, कीरति कारण भेष बनावें।
भौन तजें वनवास गहें मुख, मौन रहें तप सों तन जावें॥
जोग अजोग कछू न विचारत, मूरख लोगन कौ भरमावें।
फैल करै वहु जैन कथा कहि, जैन विना नर जैन कहावें॥७॥

धीरज तात क्षमा जननी, परमारथ मीत महारुचि मासी।
ज्ञान सुपुत्र सुता करुणा, मति पुत्रवधू समता अति भासी॥
उद्यम दास विवेक सहोदर, बुद्धि कलत्र शुभोदय दासी।
भाव कुटुम्ब सदा जिनके ढिग, यों मुनि को कहिये गृहवासी॥८॥

पुण्य सँयोग जुरे रथ पायक, माते मतङ्ग तुरङ्ग तबेले।
मान विभौ अँग यो सिरभार, कियो विसतार परिग्रह ले ले॥
बन्ध बढ़ाय करी थिति पूरण, अन्त चले उठि आप अकेले।
हारि हमाल की पोटसी डारिके, और दिवार की ओट ह्वै खेले॥

काज बिना न करे जिय उद्यम, लाज बिना रन माँहि न जूझे।
डील बिना न सधै परमारथ, सील बिना सत सौं न अरूझै॥
नेम बिना न लहै निहचै पद, प्रेम बिना रस रीति न बूझै।
ध्यान बिना न थँमे मन की गति, ज्ञान बिना शिव पन्थ न सूझै॥

ज्ञान उदै जिनके घट अन्तर, ज्योति जगी मति होति न मैली।
वाहिज दृष्टि मिटी जिन्हके हिय, आतम ध्यान कला विधि फैली॥
जे जड़ चेतन भिन्न लखै सु विवेक लिये परखै गुन थैली।
ते जग में परमारथ जानि गहै रुचि मानि अध्यातम सैली॥११॥

केई उदास रहे प्रभु कारन, केई कहीं उठि जाहि कहींके।
केई प्रनाम करै गढ़ि मूरति, केई पहार चढ़े चढ़ि छींके॥
केई कहै असमान के ऊपरि, केई कहै प्रभु हेठि जमीं के।
मेरो धनी नहिं दूर दिशांतर, मोमहि है मुहि सूझत नीके॥१२॥

कवित्त--

सुकृत की खान इन्द्रपुरी की नसैनी जान, पाप रज खण्डन को पौनरासि पेखिये। भव दुख पावक बुझायवे को मेघ माला, कमला मिलायवे को दूती ज्यों विशेखिये॥ सुगति बधू सों प्रीत

पालबे को आली सम, कुगति के द्वार दृढ़, आगलसी देखिये। ऐसी दया कीजै चित, तिहूं लोक प्राणी हित, और करतूत काहू, लेखे में न लेखिये ॥ १३ ॥

अगनि मै जैसें अरविन्द न विलोकियत, सूर अथवत जैसे वासर न मानिये। सांप के वदन जैसें अमृत न उपजत, काल-कूट खाये जैसे जीवन न जानिये॥ कलह करत नहिं पाइये सुजस जैसे, बाढ़त रसांस रोग नाश न बखानिये। प्राणी वध माहिं तैसें, धर्म की निशानी नाहिं, याही ते बनारसी विवेक मन आनिये ॥ १४ ॥

पावक तैं जल होय, वारिध तैं थल होय, शस्त्र तैं कमल होय, ग्राम होय वन तैं। कूप तैं विवर होय, पर्वत तें घर होय, वासव तैं दास होय, हित् दुरजन तैं॥ सिंह तैं कुरङ्ग होय, व्याल स्याल अङ्ग होय, विष तैं पियूष होय, माला अहिफन तैं। विषम तें सम होय, सङ्कट न व्यापै कोय, एते गुन होय सत्यवादी के दरस तैं ॥ १५ ॥

कलह गयन्द उपजायवे को विन्धगिरि, कोप गीध के अघायवे को सु स्मशान है। सङ्कट भुजङ्ग के निवास करबे को बिल, वैरभाव चोर को महानिशा समान है। कोमल सुगुन घन खण्डवे को महापौन, पुण्यवन दाहवे को दावानल दान है। नीत नय नीरज नसायवे को हिमरासि, ऐसो परिग्रह राग दुख को निधान है ॥ १६ ॥

सहैं घोर सङ्कट समुद्र की तरङ्गनि मैं, कम्पै चित भीत पन्थ, गाहै बीच बन मै। ठाने कृषिकर्म जामें, शर्म को न लेश कहुं, सङ्कलेश रूप होय, जूझ मरै रन मै॥ तजै निज धाम को विराजि परदेश धावै, सेवै प्रभु कृपण मलीन रहै मन मै। डौलै धन कारज अनारज मनुज मूढ़, ऐसी करतूति करै, लोभ की लगन मै॥ १७॥

मौन के धरैया गृह त्याग के करैया विधि, रीत के सधैया परनिन्दा सों अपूठे हैं। विद्या के अभ्यासी गिरि कन्दरा के बासी शुचि, अंग के अचारी हितकारी बैन छूटे हैं॥ आगम के पाठी मन लाय महाकाठी भारी कष्ट के सहनहार रामाहु सों रूठे हैं। इत्यादिक जीव सब कारज करत रीते, इन्द्रिन के जीते विना सरवंग झूठे हैं॥ १८॥

रेती की गढ़ी किधों मढ़ी है मसान के सी अन्दर अँधेरी जैसी कन्दरा है सैल की। ऊपर की चमक दमक पट भूखन की धोखे लागे भली जैसी कली है कनैल की॥ औगुन की ओंडी महा भोंडी मोह की कनोंड़ी माया की मसूरति है मूरति है मैल की। ऐसी देह याहि के सनेह याकी संगति सों ह्वै रही हमारी मति कोल्हू के से बैल की॥ १९॥

जिन्हके सुमति जागी भोग सों भये विरागी पर संग त्यागी जे पुरुष त्रिभुवन में। रागादिक भावनि सों जिन्ह की रहनि न्यारी कबहु मगन ह्वै रहै धाम धन में॥ जे सदैव आप कों बिचारै सरवंग सुद्ध जिन्हके विकलता न व्यापै कबों मन में।

तेई मोक्ष मारग के साधक कहावे जीव, भावै रहो मन्दिर में भावै रहो बन में ॥ २० ॥

अभानक—

जो पश्चिम रवि उगै, तिरै पाषान जल।
जो उलटै भुवि लोक, होय शीतल अनल ॥
जो मेरू डिगमिगै, सिद्धि कहँ होय मल।
तबहू हिंसा करत, न उपजत पुण्यफल ॥ २१ ॥

छप्पय—

अग्नि नीर सम होय, माल सम होय भुजंगम।
नाहर मृग सम होय, कुटिल गज होय तुरंगम ॥
विष पियूष सम होय, शिखर पाषान खंडमित।
विघन उलट आनन्द, होय रिपु पलट होय हित ॥
लीला तलाव सम उदधि जल, गृह समान अटवी विकट।
इहि विधि अनेक दुख होहिं सुख, शीलवन्त नर के निकट ॥२२॥

कोप धरम धन दहै, अग्नि जिम विरख विनासहि।
कोप सुजस आवरहि, राहु जिम चन्द्र गरासहि ॥
कोप नीति दलमलहि, नाग जिम लता विहंढहि।
कोप काज सब हरहि, पवन जिम जलधर खण्डहि ॥
सञ्चरत कोप दुख ऊपजै, बढ़ै तृषा जिम धूप महँ।
करुण विलोप गुण गोप जुत, कोप निषेध महन्त कहँ ॥२३॥

सेनापति।

[सं० १६४६—१७०६ तक]

कवित्त—

राखति न दोषै पोषै पिङ्गल के लच्छन कौ बुध कवि के जो उपकण्ठ ही बसति है। जौ पै पद मन को हरष उपजावति है तजै कोक नर सै जो छन्द सरसति है॥ अछर है विसद करत ऊषै आपु सम जाते जगती की जड़ताऊ बिनसति है। मानौ छबि ताकी उदवत सविता की सेनापति कवि ताकी कविताई विलसति है॥ १॥

सोहति बहुत भांति चीर सों लपेटि सदा जाकी मध्य दसा-सो तो मैन कौ निदान है। तम को न राखै सेनापति अति रोसन है जा बिनु न सूझै होत व्याकुल सुजान है॥ परत पतङ्ग मन मोहै तिन तरुन के जोति है रदन होत सुरति निदान है। पूरी निधि नेह की उज्यारी दीपै देह की सु प्यारी तू तौ गेह की निदान समेदान हैं॥ २॥

बिरह हुतासन बरत उर ताके रहै बालम ही पर परी भूषन गहति है। सेवती कुसुमहू ते कोमल सकल अंग सूने सेज रति काम केलिको करति है। प्राण पति हेत गेह अंगन सुधारे जाके घरी है बासरि तन मन सरसति है। देखौ चतुराई सेनापति कविताई की जु भोगिनी की सरि को वियोगिनी लहति है॥३॥

अरुन अधर सोहै सकल वदन चन्द मंगल दरस वुध वुद्धि की विसाल है। सेनापति जासों वुध जन सब जीव कहै कवि अति मन्द गति चलत रसाल है॥ तम है चिकुर केतु काम की विजै निधुज जग जगमगत सु जाके जोति जाल है॥ अम्बर लगति भुगवति सुखरासिन को मेरे जान वाल नव गृहन की माल है॥४॥

थोरो कछू मांगे होत राखत न प्राण लगि रुखै ह्वै कै मौन ही रहत रिस भरि है। आपने बसन देत जोरि वे कीरति लेत वितरत जात धन धरा ही में धरि है॥ जाचत ही जाचक सों प्रकट कहत तुम चिन्ता मत करौ हम सौ आसा न करिहै। बानी ह्वै अरथ सेनापति की विचारि देखो दाता अरु सूम दोऊ कीने एक सरि है॥ ५॥

तीर तै अधिक वारि धार निरधार महा दारुन मकर चैन होत है नदीन को। होति है करक अति वड़ी न सिराति राति तिल तिल बाढ़ै पीर पूरी विरहीन को॥ सीकर अधिक चारि-वोर अम्बू नीर है न पावरीन बिना केहू बनति धनीन को। सेनापति वरनी है वरखा सिसिर रितु मूढ़न को अगम सुगम परवीन को॥ ६॥

लोचन जुगुल थोरे थोरे से चपल सोई सोभा मन्द पवन चलत जलजात की। पीत है कपोल तहा आई अरुनाई नई ताही छवि करि ससि आभा पात पात की॥ सेनापति काम-भूप सोवत सो जागत है उज्वल विमल दुति पैये गति गात की।

सैसव निसा अथोत जोवन दिनैं उदोत बीच बाल बधू पाई झांई परभात की ॥ ७ ॥

सुनि कै पुरान राखे पूरन कैं दोऊ कान विमल निदान मत ज्ञान को धरति है। सदा अनुमान सनमान सब सेनापति मानत समान अरु मान ते बिरति है॥ सोई है परनसाला, सह्यो घाम घन पाला पञ्चागिनि ज्वाला जोग संयम सुरति है। लीनी सौ कुमाला परे आंगुरीन जप छाला ओढ़ी मृगछाला पै न बाला बिसरति है ॥ ८ ॥

फूलनि सौ बाल की बनाइ गुही बेनी लाल भाल दीनी वेन्दी मृगमद की असित है। अंग अंग भूषन बनाई ब्रज भूषन जू बीरी निज करसों खवाई करि हित है॥ ह्वै कै रस बस जब दीबे को महावर के सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है। चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आंखिन सों कही प्रानपति होति अति अनुचित है ॥ ९ ॥

पून्यो सी तिहारी लाल प्यारी मैं निहारी बाल तारे सम मोती के सिंगार रहे साजि कै। झीनी पट चाँदनी सों गात अवदात जात लोचन चकोरनि को देखे दुख भाजि कै॥ सेनापति तनसुख सारी की किनारी बीच नारी के बदन आछी छबि रही

अथोत=अथवत, अस्त होना। पञ्चागिनि=पांच अग्नि ये हैं:—अन्वाहार्य्य, पचन, गार्हपत्य, आहवनीय, आवसथ्य और सभ्य। अवदात=शुभ्र, उज्ज्वल।

छाजि कै॥ पूरन सरद चन्दविम्ब ताके आस पास मानहु अखण्ड रह्यो मण्डल विराजि कै॥ १० ॥

चन्द दुति मन्द कीनी नलिन मलिन तैही तोते देवअङ्गनाऊ रम्भादिक तर है। तोसी एक तोही और तोसे तेरे प्रतिविम्ब सेनापति ऐसे सव कवि जु कहत हैं॥ समुझैं न वेई मेरे जान जे कहत तेई प्रतिविम्ब देह तेरे भाषैं निरन्तर हैं। याते मैं विचारी प्यारी परे दरपन वीच तेरे प्रतिविम्ब पै न तेरे पटतर हैं॥ ११ ॥

लाल मनरञ्जन के मिलिवे को मञ्जन कै चौकी वैठी वार सुखवति वर नारी है। अञ्जन तमोर मनि कञ्चन सिंगार विनु सोहति अकेली देह सोभा की सिंगारी है॥ सेनापति सहज की तन की निकाई ताकी देखि कै दृगनि ताकी उपम विचारी है। गात गीत विनु एक रूप कै हरति मनु परवीन गायक की ज्यों अलाप चारी है॥ १२ ॥

षोडस वरस की है खानि सव रस की है जु सुख वरस की है करता सुधारी है। अजरी कनक मनि गूजरी कनक ऐसी गूजरी वनक वनी लाल तन सारी है॥ साहु मैं तिहारी सेनापति है निहारी मैं तो गति मति हारी जव रञ्चक निहारी है। नन्द के कुमार वारी प्यारी सुकुमार वारी भेष मारवारी मानौ नारी मार वारी है॥ १३ ॥

अति ही चपल ए विलोचन हठीले आली कुल को कलङ्क

पटतर=समान। तमोर=ताम्बूल, पान।

कछू मन मैं न आन्यौ है। सेनापति प्यारे मुख सोभा सुधा कीच वीच जाइ परैं जोरावर बरज्यो न मान्यौ हैं॥ मैं तो मत-हीन नैंन फेरिबे को मन हाथी पठयो मदन नेह आँदू उरझान्यौ हैं। पङ्कज को पङ्क मै चलाइ गज कैसी भाँति मन तौ समेत नैन नहानै समान्यौ है॥ १४॥

लागैं न निमेष चारि जुग सो निमेष भयो कही न बनति तुम जैसी कछू कन्त की। मिलन की आस तें उसास नहिं छूटि जात कैसे सहौ ससना मदन मदमन्त की॥ बीती है अवधि हम अवला अवधि ताहि वधि कहा लेहौ दया कीजै जीव जन्त की। कहियो पथिक परदेसी सों कि धन पाछे ह्वै गई सिसिर कछू सुधि है बसन्त की॥ १५॥

लाल लाल टेसू फूलि रहे हैं विसाल सङ्ग स्याम रङ्ग भेंट मनौ मसि मे मिलाये हैं। तहाँ मधु काज आइ बैठे मधुकर पुञ्ज मलय पवन उपवन वन धाये हैं। सेनापति माधव महीना में पलास तरु देखि देखि भाउ कबिता के मन आये हैं। आधे अन सुलगि सुलगि रहे आधे मनौ बिरही दहन काम क्वैला परचाये हैं॥ ६१॥

वृष को तरनि तेज सहसौ करनि तपै ज्वलनि के जाल विकराल वरषत है। तचति धरनि जगु झरतु झरनि सीरी छाँह को पकरि पन्थी पंछी विरमत हैं॥ सेनापति नेक दुपहरी ढरकत होत धमका विषम जो न पात खरकत हैं। मेरे जान पौन सीरे ठौर को पकरि कौनौ घरी एक बैठी कहूं घाम बितवत हैं॥१७॥

सेनापति उवै दिनकर के चलत लुवै नदी नद कुवै कोपि डारत सुखाइ कै। चलत पवन मुरझात उपवन वन लाग्यो है तपन जसो भूत लौ तचाइ कै॥ भीपम तपत रितु ग्रीषम सकुच ताते सीकर चपत तहखाननि मैं जाइ कै। मानौ सीतकाल सीतल ताके जमाइबे को राखे हैं विरञ्चि बीज धरा मैं धराइ कै॥ १८॥

तपत है जेठ जग जात है झरनि जसो ताप की तरनि मानौ झरनि झरत है। इतहि असाढ़ उठी नूतन सघन घटा सीतल समीर हिय धीरज हरत है॥ आधे अङ्ग ज्वालनि के जाल विकराल आधे सीतल सुभग मोद हीतल भरत है। सेनापति ग्रीषम तपति रितु भीपम है मानौ बड़वानल सों वारिधि जरत है॥१९॥

दामिनि दमक सुरचाप की चमक स्याम घटा घमक अति घोरवान घोर ते। कोकिला कलापी कल कूजत है जित तित सीतल है हीतल समीर झकझोर ते॥ सेनापति आवन कह्यो है मन भावन सो लाग्यो तरसावन विरह जुर जोर ते॥ आयो सखि सावन विरह सरसावन लग्यो है वरसावन सलिल चहुंओर ते॥२०॥

दूरि जदुराई सेनापति सुखदाई देखौ आई रितु पावस न पाई प्रेम पतियाँ। धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी सु दरकी सुहागिन की छोह भरी छतियाँ॥ आई सुधि वर की हिये मैं आनि खरकी सुमिरि प्रान प्यारी वह पीतम की वतियाँ। वीती

हीतल=हृदय। सुर-चाप=इन्द्रधनुप, यह आकाश में वर्षाऋतु में प्रायः कई रङ्ग का धनुपाकार दिखाई पड़ता है।

औधि आवन की लाल मनभावन की डग भई बावन की सावन की रतियाँ॥ २१॥

सेनापति उनये नये जलद सावन के चारहू दिसनि घूमरत भरे तोइ कै। सोभा सरसाने न बखाने जाति केहूं भाँति आने है पहार मानौ काजर के ढोइ कै॥ घन सो गगन छयो तिमिर सघन भयो देखि न परतु मानौ रवि गयो खोइ कै। चारि मास भरि श्याम निसा को भरम करि मेरी जान याही ते रहत हरि सोइ कै॥ २२॥

विविध वरन सुरचाप के न देखियत मानौ मनि भूषन उतारिबे के भेष है। उन्नत पयोधर बरसि रस गिर रहे नीके न लगत फीके सोभा को न लेस है॥ सेनापति आये ते सरद रितु फूलि रहे आस पास कास खेत खेत चहूं देस है। जोबन हरन कुम्भ योन उदये ते भई बरष विरध ताके सेत मानौ केस है॥ २३॥

कातिक की राति थोरी २ सियराति सेनापति है सुहाति सुखी जीवन को गन है। फूले है कुमुद फूली मालती सघन बन फूल रहे तारे मानौ मोती अनगन है॥ उदित विमल चन्दु चाँदनी छिटकि रही राम को सो जसु अध ऊरध गमन है। तिमिर हरन भयो सेत है वरन सब मानहुं जगत छीर सागर मगन है॥ २४॥

सीत को प्रबल सेनापति कोपि चढ़यो दल निबल अनल सूर गयो सियराइ कै। हिम के समीर तेई बरखै विषम तीर रही है गरम भौन कोनन मैं जाइ कै॥ धूम नैन रहै लोग आगि पर

गिरि रहै हिय सों लगाइ रहे नेक सुलगाइ कै। मानौ मीत जानि महासीत ते पसारि पानि छतिया की छाह राख्यौ पावक छपाइ कै॥ २५॥

सिसिर मैं ससि को सरुप पावै सविताऊ दामिनी की दुति घामहू मैं दमकति है। सेनापति होत सीतलता है सहस गुनी रजनी की झाईं वासर मैं झमकति है॥ चाहत चकोर सूर ओर द्रृग छोर करि चकवा की छाती तचि धीर धमकति है। चन्द के भरम होत मोर है कुमोदिनी के ससि सङ्क पङ्कजिनी फूलि न सकति है॥ २६॥

सीता अरु राम जुआ खेलत जनक धाम सेनापति देखि नैन नेकहू न अटकै। रूप देखि २ रानी वारी फेरि पियै पानी प्रीति सो वलाइ लेत कै यो कर चटकै॥ पहुंची की हीरनि मैं दम्पति की झाँई परै चन्द्रविम्व मध्य मानौ मुरकनि कटकै। भूलि गयो खेल दोऊ देखत परसपर दुंहुन के द्रग प्रतिबिम्बन मै अटकै॥ २७॥

जनक-नरिन्द-नन्दिनी को वदनारविन्द सुन्दर वखानो सेनापति वेद चारि कै। वरनी न जाई जाकी नेकहू निकाई लोनराई करि पङ्कज निकाई डारी वारि कै॥ वार वार जाकी वरावरि को विधाता अव रचि पचि विधु को वनावत सुधारि कै। पून्यौ को वनाई जव जानत न वैसो भयो कुहू के कपट तव डारत विगारि कै॥ २८॥

सविता=सूर्य्य। वासर=दिन। तचि=तपकर। कुहू=अमावस्या।

बालि को सपूत कपि कुल पुरहूत रघुवीर जू को दूत धरि रूप विकराल को। जुद्ध मर्द गाढ़ो पाउँ रोपि भयो ठाढ़ो सेनापति बल बाढ़ो रामचन्द्र भुवपाल को॥ कच्छप कहलि रह्यो कुण्डली टहलि रह्यो दिग्गज दहलि त्रास परो चक चाल को। पाइ के धरत अति भार के परत भयो एकई परत मिलि सपत पताल को॥ २९॥

सुख सरसाइ किधौं दुख में मिलाइ जाइ, जैसी कछू जानौ तैसी गति होइ काइ की। जगु जसु कहौ किधौं जाइ अपजसु कहौ नहिं परवाहि काहू बात के सहाइ की॥ और हौं न चाहौं चित चाहत हौं ताही नित सेनापति जाकी तीनि लोक एक नाइकी। होउ जनि दूरि मेरे हिय को अमर-मूरि रहौ भरि पूरि एक प्रीति राम राइ की॥ ३०॥

नीकी मति लेह रमनी की मति लेह मति सेनापति चेतु कहा पाहन अचेत है। करम करम करि करि मनि करे पाइ करमनि करि गूढ़ सीस भयो सेत है॥ आवै बन जतन ज्यौं रहै बन जतन पुन्य के बन जतन तू मनहिं कित देत है। आवत विरामै वैस बीती अभिरामै ताते करि विसरामै भजि रामै किन लेत है॥ ३१॥

ताही भाँति धाऊँ सेनापति जैसे पाऊँ तन कन्था पहिराऊँ करौं साधन जतीन के। भसम चढ़ाऊँ सीस जटा मैं बढ़ाऊँ नाम वाही को पढ़ाऊँ दुख हरन दुखीन के॥ सबै बिसराऊँ

पुरहूत=इन्द्र।

उर तासों उरझाऊँ कुञ्ज वन वन धाऊँ तीर भूधर नदीन के। मन वहिराऊँ मन मन ही रिझाऊँ वीन लै के कर गाऊँ गुन वाही परवीन के ॥ ३२ ॥

कुपथ चलाओ सुधि आपनी भुलावो मोहि मोह मै मिलावो तौ न कोऊ रखवारो है। जनमु सुधारो भवसिंधु ते उतारो आपु उर पाउँ धारो तौ न वरजन वारो है॥ सेनापति मोमै मेरो कछु न कृपानिधान जात प्रान तन मन राम जू तिहारो है। हौं तो हौं विचारौ जिय आपु ही विचारो तुम देह देहु चारो कहौ मेरौ कहा चारो है ॥ ३३ ॥

तुम करतार जग रच्छा के करन हार पुजवनहार मनोरथ चित चाहे के। यह जिय जानि सेनापति है सरन आयो हूजिये सरन महापाप ताप दाहे के॥ जो कहू कहौ की तरे करमन ते ऐसे हम गाहक हैं सुकृत भगति रस लाहे के। अपने करम करि हौं ही निवहोंगों तो अव हौं ही करतार करतार तुम काहे के ॥३४॥

आधी ते सरस वीति गई है वरस अव दुज्जन दरस वीच रस न वढ़ाइये। के तो करो कोई पै ये करम लिखोइ ताते दूसरी न होइ उर सोइ ठहराइये॥ चिन्ता अनुचित धरु धीरज उचित सेनापति है सुचित रघुपति गुन गाइये। चारि वरदान तजि पाइ कमलेछन के पाइक मलेछन के काहे को कहाइये॥ ३५॥

नागर।

[सं० १६४८]

सवैया-

भादौं की कारी अँध्यारी निसा लखि बादर मन्द फुही बरसावै।
स्यामाजी आपनी ऊँची अटा पै छकी रसरीति मलारहि गावै॥
ता समै नागर के दृग दूरि ते चातक स्वाति की मौजहि पावै।
पौन मया करि घूंघट टारै दया करि दामिनी दीप दिखावै॥१॥

छाई छपा दिन ज्यों दरसी मिलि कै चकवान वियोग विसारो।
सौ गुनो बाढ्यो प्रकास दिसान मै चौगुनो चाव न जात उचारो॥
कैसी खिली है अलौकिक चाँदनी नागर ताको विचार विचारो।
राधे जू ऊँचे अटा चढ़ि कै कहूं आज निलाम्बर घूंघट टारो॥२॥

प्रवीणराय।

[सं० १६५०]

दोहा—

ऊँचे ह्वै सुर बस किये, , सम ह्वै नर बस कीन।
अब पताल बस करन को , ढरकि पयानो कीन॥१॥

विनती राय प्रवीन की , सुनिए साहि सुजान।
जूठी पातरि भखत हैं , बारी, बायस, स्वान॥२॥

सवैया—

अङ्ग अनङ्ग तहीं कुच सम्भु सु केहरि लङ्क गयन्दहिं घेरे।
भौंह कमान तहीं मृगलोचन खञ्जन क्यों न चुगै तिल नेरे॥
है कच राहु तहीं उदै इन्दु सु कीर के बिम्बन चोंचन मेरे।
कोउ न काहू सों रोस करै सु डरै डर साह अकब्बर तेरे॥३॥

नीकी घनी गुर नारि निहारि नेवारि तऊ अखियाँ ललचाती।
जान अजान न जोरत दीठि बसीठि के ठौरन और न हाती॥
आतुरता पिय के जिय की लखि प्यारी प्रवीन वहै रस माती।
ज्यों २ कछू न बसाति गोपाल की त्यों २ फिरै घर मैं मुसक्याती॥

मान कै बैठी है प्यारी प्रवीन सो देखै बनै नहिं जात बतायो।
आतुर ह्वै अति कौतुक सो उत लाल चले उड़ि मोद बढ़ायो॥
जोरि दोऊ कर ठाढ़े भये करि कातर नैन सों सैन बतायो।
देखन बैंदी सखी की लगी मित हेसो नहीं इत यौं बहरायो॥५॥

"आई हौं बूझन मन्त्र तुम्हें निज सासन सों सिगरी मति गोई।
देह तजौं कि तजौं कुलकानि हिए न लजौं लजि है सब कोई॥
स्वारथ औ परमारथ को गथ चित्त बिचारि कहौ अब सोई।
जामें रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भङ्ग न होई॥ ६॥

कवित्त—

सीतल समीर ढार मञ्जन कै घनसार अमल अँगौछे आछे मन से सुधारिहौं। दैहौं ना पलक एक लागन पलक पर मिलि

अभिराम आछी तपनि उतारिहौं॥ कहत 'प्रवीनराय' आपनी न ठौर पाय सुन बाम नैन या वचन प्रतिपारिहौं। जबहीं मिलेंगे मोहिं इन्द्रजीत प्रान प्यारे दाहिनो नयन मूंदि तोहीं सौं निहारिहौं॥ ७॥

सुन्दरदास।

[सं० १६५२—१७४६ तक]

सवैया—

देखन के नर दीसत हैं परि लक्षण तौ पशु के सब ही है।
बोलत चालत पीवत खात सु, वे घर वे बन जात सही है॥
प्रात गये रजनी फिरि आवत, सुन्दर यों नित भार वही है।
और तो लक्षण आइ मिले सब, एक कमी शिर शृङ्ग नहीं है॥१॥

मन्दिर महल विलायत हैं गज, ऊँट दमाम दिना इक दो हैं।
तातहु मात तिया सुत बान्धव देख धुं पामर होत विछोहैं॥
झूठ प्रपञ्च सों राचि रह्यो शठ, काठ कि पूतरि ज्यों कपि मोहै।
मेरिहि मेरि कहै नित सुन्दर, आँख लगे कहु कौन को को है॥२॥

ये मम देश विलायत है गज, ये मम मन्दिर ये मम थाती।
ये मम मातु पिता पुनि बान्धव, ये मम पूत सु ये मम नाती॥
ये मम कामिनी केलि करै नित, ये मम सेवक है दिन राती।
सुन्दर ऐसेहि छाँड़ि गयो सब, तेल जस्यो सु वुझी जब बाती॥३॥

तें दिन चारि विश्राम लियो शठ, तोर कहे कछु है गई तेरी।
जैसहि बाप ददा गये छाँड़ि सु तैसहि तू तजि है पल फेरी॥
मारहि काल चपेट अचानक, होइ घरीक में राख कि ढेरी।
सुन्दर लै न चले कछु ये सग, भूलि कहै नर मेरेहि मेरी॥४॥

देह सनेह न छाँड़त है नर जानत है थिर है यह देहा।
छीजत जात घटै दिन ही दिन, दीसत है घट को नित छेहा॥
काल अचानक आइ गहै कर, ढाइ गिराइ करै तनु खेहा।
सुन्दर जानि यहै निहचै धरि, एक निरञ्जन सों कर नेहा॥५॥

तू कछु और विचारत है नर, तोर विचार धस्योहि रहैगो।
कोटि उपाय करै धन के हित, भाग्य लिख्यो तितनोहि लहैगो॥
भोर कि साँझ घरी पल माँझ, सु काल अचानक आइ गहैगो।
राम भज्यो न कियो कछु सुकृत, सुन्दर यों पछिताइ रहैगो॥६॥

सन्त सदा उपदेश बतावत, केश सबै शिर श्वेत भये हैं।
तू ममता अजहूं नहिं छाँड़त, मौतहु आइ सन्देश दये हैं॥
आजु कि काल चलै उठि मूरख, तेरेहि देखत केत गये हैं।
सुन्दर क्यों नहिं राम सम्हारत, या जग में कहु कौन रहे हैं॥७॥

वे श्रवना रसना मुख वैसहि, वैसहि नासिका वैसहि आँखी।
वे कर वे पग वे सब द्वार सो, वे नख शीशहि रोम असंखी॥
वेसहि देह परी पुनि दीसत, एक विना सब लागत खंखी।
सुन्दर कोउ न जानि सकै यह, वोलत हो सु कहाँ गयो पंखी॥८॥

मातु पिता युवती सुत बांधव, लागत है सबकूं अति प्यारो।
लोक कुटुम्ब खरो हित राखत, होइ नहीं हमते कहुँ न्यारो॥
देह सनेह तहाँ लग जानहु, बोलत है मुख शब्द उचारो।
सुन्दर चेतन शक्ति गई जब, वेगि कहै घर बार निकारो॥६॥

जो दश बीस पचास भये शत, होई हजार तु लाख मँगैगी।
कोटि अरब्ब खरब्ब असंख्य, धरापति होन कि चाह जगैगी॥
स्वर्ग पतालकु राज करौं, तृष्णा अधिकी अति आग लगैगी।
सुन्दर एक सन्तोष विना शठ, तेरि तु भूख कभी न भगैगी॥१०॥

भूख लिये दशहूं दिश दौरत, ताहित तू कबहूं न अघै है।
भूख भण्डार भरै नहिं कैसेहु, जो धन मेरु सुमेरु लौं पैहै॥
तू अब आगेहि हाथ पसारत, या हित हाथ कछू नहिं ऐहै।
सुन्दर क्यों नहिं तोष करै नर खाइ जु खाइ कितोइक खैहै॥११॥

तीनहि लोक अहार कियो सब, सात समुद्र पियो पुनि पानी।
और जहाँ तहाँ ताकत डोलत, काढ़त आँख डरावत प्रानी॥
दाँत दिखावत जीभ हिलावत, याहि तें मैं यहि डाकिनी जानी।
सुन्दर खात भये कितने दिन, हे तृष्णा अजहूं न अघानी॥ १२॥

कूप भरै अरु वापि भरै पुनि, ताल भरै बरषा ऋतु तीनो।
कोठि भरै घट माट भरै घर, हाट भरै सबही भरि लीनो॥
खण्डक खास बखार भरै परि, पेट भरै न बड़ोदर दीनो।
सुन्दर रीतुहि रीतु रहै यह, कौन खडा परमेश्वर कीनो॥१३॥

औरन को प्रभु पेट दियो तुम, तेरतु पेट कहू नहिं दीसै।
ए भटकाइ दिये दसहू दिशि, कोउक राँधत कोउक पीसै॥
पेटहि कारण नाचत हैं सब, ज्यों घर ही घर नाचत कीसै।
सुन्दर आप न खावहु पीवहु, कौन करी इन ऊपर रीसै॥१४॥

हाड़ को पिञ्जर चाम मढ्यो सब, माहिं भस्रो मल मूत्र विकारा।
थूक रु लार परै मुख ते पुनि, व्याधि वहै सब औरहु द्वारा॥
माँस कि जीभ सों खाय सबै कछु, ताहि ते ताहि को कौन विचारा।
ऐसे शरीर में पैठि के सुन्दर, कैसे ज़ु कीजिये शौच अचारा॥१५॥

थूक रु लार भस्रो मुख दीसत, आँखि में गीड रु नाक में सेढ़ो।
औरहु द्वार मलीन रहै अति, हाड़ रु माँस के भीतर भेढ़ो॥
ऐसे शरीर में वास कियो तब, एक से दीसत ब्राह्मण ढेढ़ो।
सुन्दर गर्व कहा इतने पर, काहे को तू नर चालत टेढ़ो॥१६॥

श्वान कहूँ कि सियार कहूँ कि विड़ाल कहूँ मन की मति तैसी।
ढेढ़ कहूँ किधौं डोम कहूँ किधौं, भाँड़ कहूँ किधौं भंडइ जैसी॥
चोर कहूँ बटपार कहूँ ठग, जार कहूँ उपमा कहूँ कैसी।
सुन्दर और कहा कहिये अब, या मन की गति दीसत ऐसी॥१७॥

कौन कुबुद्धि भई घट अन्तर तू अपने प्रभु सूँ मन चोरै।
भूलि गयो विषया सुख में सठ लालच लागि रह्यो अति थोरै॥
ज्यूँ कोउ कञ्चन छार मिलावत लेकरि पत्थर सूँ नग फोरै।
सुन्दर या नरदेह अमूलक तीर लगी नवका कित बोरै॥१८॥

गेह तज्यो पुनि नेह तज्यो पुनि खेह लगाइ के देह सँवारी ।
मेघ सहै सिर सीत सहै तन धूप समै जु पँचागिनि बारी ॥
भूख सहै रहि रूख तरे पर सुन्दरदास समै दुख भारी ।
डासन छाड़ि के कासन ऊपर आसन मारि पै आस न मारी ॥१६॥

कोउक अङ्ग विभूति लगावत, कोउक होत निराट दिगम्बर ।
कोउक सेन कषायक ओढ़त, कोउक काथ रँगे बहु अम्बर ॥
कोउक बल्कल शीश जटा नख, कोउक ओढ़त हैं जु बघम्बर ।
सुन्दर एक अज्ञान गये बिनु ए सब दीसत आहि अडम्बर ॥२०॥

कोउक जात प्रयाग बनारस, कोउ गया जगनाथहि धावै ।
कोउ मथुरा बदरी हरिद्वार सु, कोउ गङ्गा कुरुक्षेत्र नहावै ॥
कोउक पुष्कर ह्वै पञ्च तीरथ, दौरिहि दौरि जु द्वारिका आवै ।
सुन्दर वित्त गड़्यो घर माँहि सु, बाहर ढूंढ़त क्यों करि पावै ॥२१॥

आपहि चेतन ब्रह्म अखण्डित, सो भ्रम ते कुछ अन्य परेखै ।
ढूंढ़त ताहि फिरै जित ही तित, साधन योग बनावत भेखै ॥
औरत कष्ट करै अतिशय करि, प्रत्यक-आतमतत्व न पेखै ।
सुन्दर भूलि गयो निज रूपहि, है कर कङ्कण दर्पण देखै ॥२२॥

कवित्त--

बालू के मन्दिर माँहि बैठि रह्यो स्थिर होई, राखत है जीवन की आशा केऊ दिन की । पल पल छीजत घटत जात घरी घरी विनशत बेर कहा खबर न छिन की ॥ करत उपाय झूठे लेन देन

खान पान, मूसा इत उत फिरै ताकी रही मिनकी। सुन्दर कहत मेरी मेरी करि भूल्यो शठ, चञ्चल चपल माया भई किन किन की ॥ २३ ॥

पायो है मनुष्य देह औसर वन्यो है एह, ऐसी देह वेर वेर कहो कहाँ पाइये। भूलत है वावरे तू अव के सयानो होइ, रतन अमल सो तौ काहे कूं ठगाइये ॥ समुझि विचारि करि ठगनि को सङ्ग त्यागि, ठगवाजी देखि कहुं मन न डुलाइये। सुन्दर कहत ताते सावधान क्यों न होइ हरि को भजन करि हरि में समाइये ॥ २४ ॥

घरि घरि घटत छिजत जात छिन छिन, भिजतहि गलि जात माटी के सो ढेल हैं। मुकुत के द्वार आइ सावधान क्यों न होइ, वेर वेर चढ़त न तिया को सो तेल है ॥ कर ले सुकृत हरि भजि ले अखण्ड नर, याही में अन्तर परे यामें ब्रह्म मेल है। मानुष जनम यह जीत भावै हार अव सुन्दर कहत यामें जुवा के सो खेल है ॥

कामिनी को तनु मानु कहिये सघन वन, वहाँ कोउ जाय सो तो भूले ही परतु है। कुञ्जर है गति कटि केहरि को भय जामें, वेणी काली नागिनी सीं फणिकूं धरतु है॥ कुच हैं पहार जहाँ, काम चोर वसैं तहाँ, साधिकैं कटाक्ष वाण प्राण को हरतु हैं। सुन्दर कहत एक और डर जामें अति, राक्षसी वदनि खाउँ खाउँ ही करतु है ॥ २६ ॥

काक अरु रासभ उलूक जव वोलत हैं, तिनके तौ वचन सुहात कहु कौनकूं। कोकिल रु सारी पुनि सूवा जव वोलत है,

सब कोउ कान दे सुनत रव रौनकूं ॥ ताहि ते सुवचन विवेक करि बोलिये जू, यूंहि आक-बाक बकि तोरिये न पौनकूं । सुन्दर समुझि ऐसे बचन उचार करौ, नहिं तो समुझि करि बैठो गहि मौनकूं ॥ २७ ॥

सुनत नगारे चोट बिकसै कमल मुख अधिक उछाह भूल्यो मायहू न तन में । फेरे जब साँग तब कोई नहिं धीर धरै कायर कम्पायमान होत देखि मन में ॥ कूदि के पतङ्ग जैसे परत पावक माहिं ऐसे टूटि परै बहु सावँत के घन में । मारि घमसान करि सुन्दर जुहारै स्याम सोई सूरबीर रोपि रहै जाइ रन में ॥२८॥

पाँव रोपि रहै रण माहिं रजपूत कोऊ हय गज गाजत जुरत जहाँ दल है । बाजत जुझाऊ सहनाई सिन्धु राग पुनि सुनतहि कायर की छूटि जात कल है ॥ झलकत बरछी तिरीछी तरवार बहै मार मार करत परत खलभल है । ऐसे जुद्ध में अडिग्ग सुन्दर सुभट सोई घर माहिं सूरमा कहावत सकल है ॥ २९ ॥

असन बसन बहु भूषण सकल अङ्ग सम्पति विविध भाँति भस्यो सब घर है । श्रवण नगारो सुनि छिनन में छाँड़ि जात ऐसे नहिं जानै कछु मेरो वहाँ मर है ॥ तन में उछाह रण माहिं टूक टूक होइ निर्भय निसङ्क वाके रञ्चहू न डर है । सुन्दर कहत कोउ देह को ममत्व नाहिं सूरमा को देखियत सीस बिनु धर है ॥ ३० ॥

यौवन को गयो राज और सब भयो साज, आपनी दुहाई फेरि दमामो बजायो है । लकुटी हथ्यार लिये नैन कर डाल

दिये, श्वेत वार भये ताके तम्बू सो तनायो है॥ दशन गये सु मानों दरवान दूरि किये, जो घरी परी सो आनि बिछौना विछायो है। शीश कर कम्पत सु सुन्दर निकासो रिपु, देखतहि देखत बुढ़ापो दौरि आयो है॥ ३१॥

विश्वनाथ।

[स० १६५५]

कवित्त—

कमलानिवासी वाकूं मूढ़ मति गती दीनी, प्रतापी उदार वाकूं कौड़ी नहिं दीनी है॥ कामिनी कनक जैसी मूरख के पाले परी, शंखिनी अगोचर सो चतुरकूं दीनी है॥ समुद्र अगाध नीर खारो कर दीनों तैंने, खग-बग सें वनायो कहा गति कीनी है। कहै विश्वनाथ जगदीश के परौं हौं पाँय विरञ्ची ने कहा कछु विजिया को पीनी है॥ १॥

दुष्ट अदुष्ट को विचार छोड़ वसूमति, जैसे सब जीवन को हिय पै धरत हैं। कोकिला रु काग को विवेक सहकार बाँधि, जैसे निज अन्तर में कबहूं करत हैं॥ पावन अपावन जु ठौर को विचार सोई, विन ही विचारे मेघ बुंद ज्यों परत है। तैसे ही जगत् माँहि प्रभु के चरण लीन, भनत विचार भेद बुद्धि में न रत हैं॥ २॥

जोइसी।

[सं० १६५८]

सवैया—

रुचि पाँइ झवाँइ दई मिहँदी जिहि को रँग होत मनो नग है।
अब ऐसे में स्याम बुलावैं सखी कहि क्यों चलौं पङ्क भयो मग है॥
अधराति अँधेरी न सूझै कछू भनि जोइसी दूतिन को सँग है।
अब जाउँ तौ जात धुयो रँग है रँग राखौं तौ जात सबै रँग है॥१॥

बिहारी।

[सं० १६६०—१७२० तक]

दोहा—

केसरि कै सरि क्यों सकै, चम्पक कितक अनूप।
गात-रूप लखि जात दुरि, जातरूप को रूप॥१॥
रस सिंगार मञ्जन किए, कञ्जन भञ्जन दैन।
अञ्जन-रञ्जन हूँ विना, खञ्जन गञ्जन नैन॥२॥
खेलन सिखये अलि भले, चतुर अहेरी मार।
काननचारी नैन मृग, नागर नरनि सिकार॥३॥
फिरि-फिरि चित उतही रहत, टुटी लाजकी लाव।
अङ्ग-अङ्ग छवि भौंर में, भयो भौंर को नाव॥४॥

जातरूप=सोना।

कितो न गोकुल कुल-बधू , काहि न केहि सिख दीन ।
कौने तजी न कुल-गली , ह्वै मुरली-सुर लीन ॥ ५ ॥
स्वारथ, सुकृत न श्रम वृथा , देखि विहङ्ग विचारि ।
वाज पराए पानि पर , तू पंछीन न मारि ॥ ६ ॥
मिलि चन्दन-वेंदी रही , गोरे मुंह न लखाय ।
ज्यों ज्यों मद-लाली चढ़ै , त्यों त्यों उघरत जाय ॥ ७ ॥
कञ्चन तन घन वरन वर , रह्यो रङ्ग मिलि रङ्ग ।
जानी जाति सुवास ही , केसरि लाई अङ्ग ॥ ८ ॥
नीको लसत ललाट पर , टीको जड़ित जड़ाय ।
छविहि चढ़ावत रवि मनो , ससि-मण्डल में आय ॥ ९ ॥
मेरी भव - वाधा हरौ , राधा नागरि सोय ।
जा तन की झाईं परे , स्याम हरित दुति होय ॥१०॥
अधर धरत हरि के परति , ओठ दीठि पट जोति ।
हरित वाँस की वाँसुरी , इन्द्र-धनुष रँग होति ॥११॥
कहलाने एकत वसत , अहि मयूर, मृग वाघ ।
जगत तपोवन सों कियो , दीरघ दाघ निदाघ ॥१२॥
लिखत वैठि जाकी सविहि , गहि-गहि गरब गरूर ।
भए न केते जगत के , चतुर चितेरे कूर ॥१३॥
पहिरि न भूषण कनक के , कहि आवत यहि हेत ।
दरपन के - से मोरचें , देह दिखाई देत ॥१४॥

सबिहि=तस्वीर।

पत्रा ही तिथि पाइयत , वा घर के चहुं पास।
नित - प्रति पुन्योई रहै , आनन ओप उजास ॥१५॥
भई जु तन छवि बसन मिलि , बरनि सकै सु न बैन।
अङ्ग - ओप आँगी दुरी , आँगी अङ्ग दुरै न ॥१६॥
मानहुं विधि तन अच्छ छवि , स्वच्छ राखिबे - काज।
दृग-पग पोंछन को किए , भूषण - पायन्दाज ॥१७॥
मोर मुकुट कटि काछनी , कर मुरली, उर माल।
यह बानिक मों मन बसौ , सदा बिहारीलाल ॥१८॥
जप माला, छापा, तिलक , सरै न एकौ काम।
मन काचे, नाचे बृथा , साँचे राचे राम ॥१९॥
मीत न नीत, गलीत यह , जो धरिए धन जोरि।
खाए खरचे जो बचै , तो जोरिये करोरि ॥२०॥
छुटी न सिसुता की झलक , झलक्यो जोबन अङ्ग।
दीपति देह दुहून मिलि , दिपति ताफता - रङ्ग ॥२१॥
देह दुलहिया की चढ़ै , ज्यों-ज्यों जोबन जोति।
त्यों-त्यों लखि सौतिन सबै , बदन मलिन दुति होति ॥२२॥
ज्यों-ज्यों जोबन जेठ-दिन , कुच मिति अति अधिकाति।
त्यों-त्यों छिन-छिन कटि-छपा , छीन परति नित जाति ॥२३॥
पहुंचति झट रन सुभट लौं , रोंकि सकै सब नाहिं।
लाखनहूँ की भीर मैं , आँखि वहीं चलि जाहिं ॥२४॥

उजास=उजेला। ताफता=धूपछाँह।

फिरि फिरि दौर न देखिये , निचले नैन रहैं न ।
ये कजरारे कौन पै , करत कजाकी नैन ॥२५॥

अंग अंग छवि की लपट , उवटति जाति अछेह ।
खरी पातरीहू तऊ , लगै भरी-सी देह ॥२६॥

इन अँखियाँ दुखियान को , सुख सिरज्योई नाहिं ।
देखे बनै न देखिवो , विन देखे अकुलाहिं ॥२७॥

लाज-लगाम न मानहीं , नैना मों-वस नाहिं ।
ये मुँह-जोर कुरंग लौं , ऐंचत हू चलि जाहिं ॥२८॥

उड़ी गुड़ी लखि लाल की , अगना-अंगना माँह ।
वौरी-लौं दौरी फिरति , छुवति छवीली छाँह ॥२९॥

छुटत न पैयतु वसि छिनकु , नेह-नगर यह चाल ।
मारौं फिरि-फिरि मारिए , खूनी फिरै खुस्याल ॥३०॥

क्यों वसिये किम निवहिए , नीति-नेह पुर माहिं ।
लगालगी लोयन करैं , नाहक मन वँधि जाहिं ॥३१॥

जुरे दुहुन के दृग भमकि , रुके न भीने चीर ।
हलकी फौज हरौल ज्यों , परत गोल पर भीर ॥३२॥

छुटे छुटावत जगत ते , सटकारे, सुकुमार ।
मन बांधत बेनी बँधे , नील छवीले वार ॥३३॥

भाल लाल वेंदी छए , छुटे वार छवि देत ।
गह्यो राहु अति आह करि , मनु ससि-सूर समेत ॥३४॥

कजाकी=लूट-मार । हरौल=सेना का अग्र भाग ।

लोने मुँह डीठि न लगै , यों कहि दीनो ईठि।
दूनी ह्वै लागन लगी , दिए डिठौना डीठि ॥३५॥
नासा मोरि नचाय दृग , करी कका को सौंह।
कांटे-सी कसकति हिए , गड़ी कटीली भौंह ॥३६॥
जोग जुगति सिखए सबै , मनो महामुनि मन।
चाहत पिय अद्वैतता , सेवत कानन नैन ॥३७॥
वर जीते सर मैन के , ऐसे देखे मैं न।
हरिनी के नैनान ते , ये हरि नीके नैन ॥३८॥
पांय महावर देन को , नायनि बैठी आय।
फिरि-फिरि जानि महावरी , एँड़ी मीड़ति जाय ॥३६॥
भूषन-भार सम्हारि है , क्यों यह तन सुकुमार।
सूधे पांव न परत धरि , सोभा ही के भार॥४०॥
तो रस राच्यो आन बस , कहै कुटिल मति कूर।
जीभ निबौरी क्यो लगै , बौरी चाखि अंगूर ॥४१॥
नेक उतै उठि बैठिये , कहा रहे गहि गेहु।
छुटी जात नहँदी छिनकु , महँदी सूखन देहु ॥४२॥
यों दलि मलियतु निरदई , दई, कुसुम-से गात।
कर धरि देखौ धरधरा , अजौं न उर को जात ॥४३॥
कटत जात जेती कटनि , बढ़ि रस-सरिता सेतु।
आल-बाल उर प्रेम-तरु , तितौ-तितौ दृढ़ होतु ॥४४॥
नभ लाली, चाली निसा , चटकाली धुनि कीन।
रतिपाली आली अनत , आए बनमाली न ॥४५॥

निसि अँधियारी नील पट , पहिरि चली पिय गेह ।
कहौ दुराई क्यों दुरै , दीप-सिखा-सी देह ॥४६॥
जुवति जोन्ह में मिलि गई , नैनन होति लखाय ।
सौंधे के डोरन लगी , अली चली सँग जाय ॥४७॥
हठ न हठीली करि सकै , यह पावस ऋतु पाय ।
आन गाँठि ज्यों घुटत त्यों , मान गाँठि छुटि जाय ॥४८॥
नैना नेक न मानहीं , कितो कह्यो समुझाय ।
तन-मन मारेहू हँसै , तिन सों कहा बसाय ॥४६॥
रहै निगोड़े नैन ढिग , गहै न चेत अचेत ।
हौं कसु कै रिस को करौं , ये निरखे हँसि देत ॥५०॥
अजहुँ न आये सहज रँग , विरह-दूबरे गात ।
अबहीं कहाँ चलाइत , ललन चलन की बात ॥५१॥
पलन पलटि बनीनु चढ़ि , नहिं कपोल ठहरात ।
असुवा परि छतियाँ छिनकु , छन-छनाय छपि जात ॥५२॥
कौन सुने कासों कहौं , सुरति बिसारी नाह ।
बदा-बदी जिय लेत हैं , ये बदरा बदराह ॥५३॥
हौं ही बौरी विरह बस , कै बौरो सब गाँव ।
कहा जानि ये कहत हैं , ससिहि सीतकर नाँव ॥५४॥
बाम बाहु फरकत मिलैं , जो हरि जीवन-मूरि ।
तौ तोहीं सों भेंटि हौं , राखि दाहिनी दूरि ॥५५॥
टटकी धोई धोवती , चटकीली मुख-जोति ।
लसति रसोई के बगर , जगर मगर दुति होति ॥५६॥

बैठि रही अति सघन बन , पैठि सदन तन माँह।
देखि दुपहरी जेठ की , छाहौं चाहति छाँह ॥५७॥
पीठि दिए ही नेक मुरि , करि घूँघट-पट टारि।
भरि गुलाल की मूठि सो , गई मूठि-सी मारि ॥५८॥
मोर-मुकुट की चन्द्रकनि , यों राजत नँद-नंद।
मनु ससि सेखर को अकस , किय सेखर सत चंद ॥५९॥
को छूट्यो यहि जाल परि , कत कुरङ्ग अकुलात।
ज्यों ज्यों सुरभि भज्यो चहत , त्यों त्यों उरझत जात ॥६०॥
मोर चन्द्रिका स्याम सिर , चढ़ि कत करत गुमान।
लखबी पायन पर लुठति , सुनियत राधा मान ॥६१॥
जिन जिन देखे वे कुसुम , गई सुबीति बहार।
अब अलि रही गुलाब की , अपत कटीली डार ॥६२॥
को कहि सकै बड़ेन सों , करत बड़ीयै भूल।
दीने दई गुलाब की , इन डारन ये फूल ॥६३॥
दृग उरझत, टूटत कुटुम , जुरत चतुर-चित प्रीति।
परत गाँठि दुरजन-हिए , दई नई यह रीति ॥६४॥
कोऊ कोटिक संग्रहौ , कोऊ लाख - हजार।
मो सम्पति यदुपति सदा , बिपति - विदारन हार ॥६५॥
या भव · पारावार के , उलँघि पार को जाइ।
तिय-छबि छाया गाहनी , गहै बीच ही आइ ॥६६॥
जगत जतायो जिहिं सकल , सो हरि जान्यो नाहिं।
ज्यों आँखिन सब देखिये , आँखि न देखी जाहिं ॥६७॥

अलि इन लोयन को कछू , उपजई बड़ी बलाय।
नीर भरे नित प्रति रहैं , तऊ न प्यास बुझाय ॥६८॥
लरिका लेबे के मिसुनि , लङ्गर मों ढिग आय।
गयो अचानक आँगुरी , छाती छैल छुवाय ॥६९॥
बेसर मोती धनि तुही , को पूछै कुल जाति।
पीवो कर तिय अधर को , रस निधरक दिन राति ॥७०॥
कागज पर लिखत न बनत , कहत सँदेस लजात।
कहि है सब तेरो हियो , मेरे हिय की बात ॥७१॥
जब जब वे सुधि कीजिये , तब तब सब सुधि जाहिं।
आँखिन आँख लगी रहै , आँखैं लागति नाहिं ॥७२॥
घर घर डोलत दीन ह्वै , जन जन याचत जाय।
दिये लोभ चसमा चखनि , लघु पुनि बड़ो लखाय ॥७३॥
सीतलताऽरु सुगन्ध की , महिमा घटी न मूर।
पीनसवारे जो तज्यो , सौरा जानि कपूर ॥७४॥
सङ्गति सुमति न पावई , परे कुमति के धन्ध।
राखो मेलि कपूर में , हींग न होय सुगन्ध ॥७५॥

अहमद।

[सं १६६०]

दोहा—

प्रीतम नहीं बजार में , वहै बजार उजार।
प्रीतम मिलै उजार में , वहै उजार बजार ॥ १ ॥

कहा करौं बैकुण्ठ लै , कल्पवृक्ष की छाँह।
अहमद' ढाँक सुहावनी , जहँ प्रीतम गल-बाँह ॥ २ ॥
अहमद या मन सदन में , हरि आवैं केहि बाट।
त्रिकट जुरे जौ लौं निपट , खुलै न कपट कपाट ॥ ३ ॥
प्रेम जुवा के खेल में , अहमद उल्टी रीति।
जीते ही को हारिबो , हारे ही की जीति ॥ ४ ॥
कहि अहमद कैसे बनै , अनभावत को सङ्ग।
दीपक के मन में नहीं , जरि जरि मरैं पतङ्ग ॥ ५ ॥

सुन्दर।

[सं० १६६६]

सवैया-

कञ्चन के पिंजरा रुचि सों निज हाथन ते कमनीय सँवारे।
डारि दए परदा तिन पै प्रति जामिनि राखि दए रखवारे॥
'सुन्दर' ते पकवान घने पय सानि खवावत जाहि नि-न्यारे।
काहे को केलि के मन्दिर में सुक सारिका राखत पीतम प्यारे ॥१॥
मञ्जन कै अँग रञ्जन अञ्जन दै करि खञ्जन नैन नचावै।
अम्बर भूषन वेष बनाइ अनूप जो कंचुकी चोवा चढ़ावै॥
साजि सिङ्गारन सेज बनाइ कै सुन्दर मन्दिर सूनो बतावै।
बूझै तऊ न इते पर क्रूर तौ और कहा कोउ ढोल बजावै ॥२॥

कमनीय=सुन्दर।

बाल उठीं रति केलि किये कवि सुन्दर सोहत अङ्ग रसौ हैं।
आरसी मैं मुख देखि सकोचन सोचन लोचन होत लजौ हैं॥
लाल हँसे इंहि बीच रही ललना पिय को तकि कै तिरछौहैं।
पोंछि कपोल अगौछत ओंठ अमेठति आँखिन ऐंठति भौंहैं॥३॥

आये कहूं रति मानि कै भोरहीं भूपन भेप सवै बदले हैं।
यों पिय को तकि रूप तिया तऊ बोली कछू न बुरे न भले हैं॥
आँखिन छोर तें आँसू गिरे कहि सुन्दर काजर सों मसले हैं।
सो छवि यों अरविन्दन तें अलिके चेटुवा मनो छूटि चले हैं॥४॥

बातन मितन सों अटक्यो की मिली तिय काऊ रहे रगि ताही।
और तो चूक न 'सुन्दर' वा दिन मैं कह्यो ओठनि लागी है स्याही॥
आए नहीं सखि बूझिये कैसी कहा मन देत हैं तेरो गवाही।
चोप घटी कि मिट्यो चित-चाव की आई है नींद की वेपरवाही॥

मारयो है फूल की मालनि सों कर बाँधि कै त्यों फिरि चौगुने चाइन।
सुन्दर वासों कितो खिझिये न तजै तऊ आपने सील सुभाइन॥
बाहिर काढ़ि दियो दै कपाट हौं पौढ़ि रही पट तानि गुसाँइन।
जौ पल मैं पल खोलि कै देखौं तो पाँयतें वैठे पलोटत पाँइन॥६॥

छाती नितम्ब लखे दुलही के सखीन हूं की मनसा ललचानी।
ऐसी नवेली को नायक हूजैरी आपुस में सब यों बतरानी॥
सुन्दर जोवन रूप सराहत सुन्दरी आँखिनहीं मैं लजानी।
दीठि बचाय सखीन हूं की निज देह को देखि उहो मुसुकानी॥७॥

तकि=देखकर। खिझिये=खीझना, नाराज होना।

भोर भये मथुरा को चलैंगे यों बात चली हरि नन्दलला की।
बोलि सकी न सकोचन तें सुनि पीरी भई मुख जोति तिया की॥
हाथ लगाय लिलाट सों बैठी यहै उपमा कवि सुन्दर ताकी।
देखै मनो कर आयु के आखर और रही कछु है बचि बाकी॥८॥

सोवत लेति करोट नवोढ़ की नीचे लटै पलिका तें परी हैं।
देखि तहाँ हरि सुन्दर दौरि कै जाइ कै नागिन सी पकरी हैं॥
लै दुपटा अपनो अपने कर पोंछि कै सेजहि माझ धरी हैं।
प्यारे को प्यार निहारि यों रीझि भईं चकचूर सखी सिगरी हैं॥९॥

चिन्तामणि।

[सं० १६६६]

सवैया—

श्री यदुनन्दन द्वारका नाथ विभूति महाकवि को बरनै क्यों।
श्रीपति आपुहिं बूझत हैं अरु देखि महाछवि रीझत है यों॥
लालन के झंझरीनि के मन्दिर सुन्दरि वृन्दन सों झलकै यों।
लाल सलाकन सों जकरे विलसै मुनियाँन भरे पिंजरा ज्यों॥१॥

कोकिल कूक सुनै उमगै मन और सुभाउ भयो अब ही को।
फूली लता द्रुम कुञ्ज सुहात लगे अलि गुञ्जत भावत जी को॥

विभूति=ऐश्वर्य। सलाकन=छड़ियों से। मुनियां=एक प्रकार की चिड़िया होती है, 'मुनियान' मुनिया का बहुवचन है।

कारन कौन भयो सजनी यहु खेल लगै गुड़ियान को फीको।
काहे ते साँवरो अङ्ग छबीलो लगै दिन द्वैक ते नैननि नीको ॥२॥

सूधी चितौनि चितै न सकै औ सकै न तिरीछी चितौनि चितै।
गुड़ियान को खेलिबो फीको लगै अरु कामकला को विलास कितै॥
लरिकापन जोवन सन्धि भई दुहुं वैस को भाव मिलै न हितै।
विवि चुम्बक बीच को लोहो भयो मन जाइ सकै न इतै न उतै ॥३॥

अवलोकनि मैं पलकैं न लगैं पलकौ अवलोकि विना ललकै।
पति के परिपूरन प्रेम पगी मन और सुभाउ लगै न लकै॥
तिय की विहँसौहीं विलोकनि मैं मन आनँद आँखिन यों झलकै।
रसवन्त कवित्तन को रसु ज्यों अखरान के ऊपर ह्वै झलकै ॥४॥

कोटि विलास कटाछ कलोल वढ़ावै हुलासन प्रीतम हीतर।
यो 'मनि' थामैं अनूपम रूप जो मैनका मैन-वधू कहि ईतर॥
सुन्दरि सारी सुपेद मैं सोहत यों छवि ऊँचे उरोजन की तर।
जोबन मत्त गयन्द के कुम्भ लसै जनु गंग तरंगनि भीतर ॥५॥

यों 'मनि' मैन महीप प्रताप तिया तन वैर सुभाव गिले हैं।
आनन पूर निशाकर के ढिग वार घने तम आइ हिले हैं॥
वै सुखमा के समूह कछू अँगुरी पँखुरीन प्रकास खिले हैं।
छोड़ि सदा को विरोध कहा कर-कञ्जन सों नख-चन्द्र मिले हैं॥६॥

आनि कढ़ै कवहूं या गली कढ़ि क्यों निरखै गुरु लोग सकोचन।
ज्यों घर कै खर कै हियरे हम जानति हैं मर जाइगी सोचन॥

हुलासन=आनन्द। हीतर=हृदय में। कुम्भ=मस्तक। गिले=नष्ट हो गये हैं।

कुण्डल लोल हँसौहैं कपोलनि नन्दलला लखिते दुख मोचन।
पाऊँ कहूँ सखि ठौर इकन्त हौं देखौं जहाँ हरि को भरि लोचन ॥७॥

आँखिन मूँदिबे के मिस आनि अचानक पीठि उरोज लगावै।
केहूँ कहूँ मुसुकाइ चितै अँगराइ अनूपम अंग दिखावै॥
नाह छुई छल सों छतियाँ हँसि भौंह चढ़ाइ अनन्द बढ़ावै।
जोबन के मद मत्त तिया हित सों पति को नित चित्त चुरावै ॥८॥

भूषण।

[सं० १६७०—१७७२]

सवैया—

पावक तुल्य अमीतन को भयो, मीतन को भयो धाम सुधा को।
आनँद को गहिरो समुदै कुमुदावलि तारन को बहुधा को॥
भूतल माँहि बली सिवराज भो भूषन भाखत सत्रु मुधा को।
बन्दन तेज त्यों चन्दन कीरति सोंधे सिंगार बधू बसुधा को ॥१॥

दानव आयो दगा करि जावली दीह भयारो महामद भास्यो।
भूषन बाहु बली सरजा तेहि भेटिबे को निरसङ्क पधास्यो॥
बीछू के घाय गिरे अफजल्लहिं ऊपर ही सिवराज निहास्यो।
दाबि यों बैठो नरिन्द अरिन्दहि मानों मयन्द गयन्द पछास्यो ॥२॥

मुधा=असत्य। सोंधे=सुगन्धित।

जीति लई वसुधा सिगरी घमसान घमण्ड कै वीरन हू की।
भूषन भौंसिला छीनि लई जगती उमराव अमीरन हू की॥
साहि तनै सिवराज की धाकनि छूटि गई धृति धीरन हू की।
मीरन के उर पीर वढ़ी यों जु भूलि गई सुधि पीरन हू की॥३॥

लाज धरौ सिव जू सों लरौ सव सैयद सेख पठान पठाय कै।
भूषन ह्यां गढ़ कोटन हारे उहाँ तुम क्यों मठ तोरे रिसाय कै॥
हिन्दुन के पति सों न विसात सतावत हिन्दु-गरीवनि पाय कै।
लीजै कलङ्क न दिल्ली के वालम आलम आलमगीर कहाय कै॥४॥

केतिक देस दल्यो दल के वल दच्छिन चङ्गुल चापि कै राख्यो।
रुप गुमान हस्यो गुजराति को सूरति को रस चूसि कै चाख्यो॥
पञ्जन पेलि मलिच्छ मल्यो सव सोई वच्यो जेहि दीन ह्वै भाख्यो।
सो रँग है सिवराज वली जेहि नौरँग में रँग एक न राख्यो॥५॥

दच्छिन नायक एक तुही भुव भामिनि को अनुकूल ह्वै भावै।
दीन-दयाल न तो सो दुनी पर म्लेच्छ के दीनहि मारि गिरावै॥
श्री सिवराज भनै कवि भूषन तेरे सरूप को कोऊ न पावै।
सूर सुवंश मैं सूर सिरोमनि ह्वै करि तू कुल चन्द कहावै॥६॥

लै परनालो सिवासरजा करनाटक लौं सव देश विगूंचे।
वैरिन के भगे वालक-वृन्द कहै कवि भूषन दूरि पहूंचे॥
नाँघत नाँघत घोर घने वन हारि परे यों कटे मनौ कूंचे।
राजकुमार कहाँ सुकुमार कहाँ विकरार पहार वै ऊँचे॥७॥

पञ्च हजारिन बीच खड़ा किया मैं उसका कुछ भेद न पाया।
भूषन यों कहि औरंगजेब उजीरन सों बे-हिसाब रिझाया॥
कम्मर की न कटारी दई इसलाम ने गोसलखाना बचाया।
जोर सिवा करता अनरत्थ भली भई हत्थ हथ्यार न आया॥८॥

दारहि दारि मुरादहि मारि कै सङ्गर साह सुजै बिचलायो।
कै कर मैं सब दिल्लि की दौलति औरहु देस घने अपनायो॥
बैर कियो सरजा सिव सों यह नौरंग के न भयो मन भायो।
फौज पठाई हुती गढ़ लेन को गाँठिहु के गढ़ कोट गँवायो॥६॥

कवित्त—

प्रेतिनी पिसाचऽरु निसाचर निसाचरिहु, मिलि मिलि आपुस मैं गावत बधाई है। भैरों भूत प्रेत भूरि भूधर भयङ्कर से, जुत्थ जुत्थ जोगिनि जमाति जुरि आई है॥ किलकि किलकि कै कुतूहल करति काली, डिम डिम डमरू दिगम्बर बजाई है। सिवा पूछै सिव सों 'समाज आजु कहाँ चली', काहू पै सिवा नरेस भृकुटी चढ़ाई है॥ १०॥

बद्दल न होहिं दल दच्छिन उमण्डि आयो, घटा ये न होहिं इभ सिवाजी हङ्कारे के। दामिनी दमङ्क नाहिं खुले खग्ग बीरन के, इन्द्र धनु नाहिं ये निसान हैं सवारे के॥ देखि देखि मुगलों की कामिनी बिगर त्यागे, उझकि उझकि घर छाँडत बिडारे के। दिल्ली-पति भूल मति गाजत न घोर घन, बाजत नगारे ये सितारे गढ़वारे के॥ ११॥

बाजि गजराज सिवराज सैन साजत ही, दिल्ली दिलगीर दसा दीरघ दुखन की। तनियाँ न तिलक सुथनियाँ पगनियाँ न, घामें घुमरातीं छोड़ि सेजिया सुखन की॥ 'भूषन' भनत पति बाँह बहियाँ न तेऊ, छहियाँ छबीली ताकि रहियाँ रुखन की। बालियाँ बिथुर जिमि आलियाँ नलिन पर, लालियाँ मलिन मुगलानियाँ मुखन की॥ १२॥

कत्ता की कराकन चकत्ता को कटक काटि, कीन्ही सिवराज वीर अकह कहानियाँ। 'भूषन' भनत तिहुं लोक में तिहारी धाक, दिल्ली औ बिलाइति सकल बिललानियाँ॥ आगरे अगारन ह्वै फाँदती कगारन छ्वै, बाँधती न बारन मुखन कुम्हलानियाँ। कीबी कहैं कहा औ गरीबी गहे भागी जायँ, बीबी गहे सूथनी सु नीबी गहे रानियाँ॥ १३॥

ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहन वारी, ऊँचे घोर मन्दर के अन्दर रहाती हैं। कन्द मूल भोग करैं कन्द मूल भोग करैं, तीन बेर खातीं ते वे तीन बेर खाती है॥ भूषन सिथिल अङ्ग भूषन सिथिल अङ्ग, बिजन डुलातीं ते ऽब बिजन डुलाती हैं। 'भूषन' भनत सिवराज वीर तेरे त्रास, नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं॥ १४॥

अतर गुलाब रसचोवा घनसार सब सहज सुवास की सुरति बिसराती हैं। पल भर पलँग ते भूमि न धरत पाँव भूली खान पान फिर बन बिललाती हैं॥ 'भूषन' भनत सिवराज तेरी धाक सुनि दारा हार बार न सम्हारैं अकुलाती हैं। ऐसी

परीं नरम हरम बादसाहन की नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं ॥१५॥

सोंधे को अहार किसमिस जिनको अहार, चार को सो अङ्क लङ्क चन्द सरमाती हैं। ऐसी अरि-नारी शिवराज वीर तेरे त्रास, पायन में छाले परे कन्द मूल खाती हैं॥ ग्रीषम तपनि ऐसी तपति न सुनी कान, कञ्ज की सी कली बिनु पानी मुरझाती है। तोरि तोरि आछे से पिछौरा सों निचोरि मुख, कहैं सब 'कहाँ पानी मुकतों में पाती हैं' ॥ १६ ॥

अफजलखान को जिन्होंने मैदान मारा बीजापुर गोलकुण्डा मारा जिन आज है। भूषन भनत फरासीस त्यों फिरङ्गी मारि हबसी तुरुक डारे उलटि जहाज है॥ देखत में रुसतमखाँ को जिन खाक किया सालति सुरति आज सुनी जो अवाज है। चौंकि चौंकि चकता कहत चहुंधाते यारो लेत रहौ खबरि कहाँ लौं सिवराज है ॥ १७ ॥

दारा की न दौर यह रारि नहीं खजुवे की बाँधिबो नहीं है कैधौं मीर सहवाल को। मठ विस्वनाथ को न वास ग्राम गोकुल को देवी को न देहरा न मन्दिर गोपाले को॥ गाढ़े गढ़ लीन्हें अब बैरी कतलान कीन्हें ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को। बूड़त है दिल्ली सो सम्हारै क्यों न दिलीपति धक्का आनि लाग्यो सिवराज महा-काल को ॥ १८ ॥

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार बार दिल्ली दहसति चितै चाह करषति है। बिलखि बदन बिलखात बिजैपुर-पति फिरत

फिरङ्गिन की नारी फरकति है॥ थर थर काँपत कुतुब साहि गोलकुण्डा हहरि हवसि भूप भीर भरकति है। राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि केते पातसाहन की छाती दरकति है ॥ १६ ॥

मारि करि पातसाही खाकसाही कीन्हीं जिन जेर कीन्हीं जोर सों लै हद्द सब मारे की। खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सब हिसि गई हिम्मति हजारों लोग सारे की॥ बाजत दमामे लाखों धौंसा आगे घहरात गरजत मेघ ज्यों बरात चढ़े भारे की। दूलहो सिवाजी भयो दच्छिनी दमामे वारे दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की ॥ २० ॥

वेद राखे विदित पुरान राखे सार-जुत राम नाम राख्यो अति रसना सुघर मैं। हिन्दुन की चोटी रोटी राखी हैं सिपाहिन की काँधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर मैं॥ मींड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह वैरी पीसि राखे बरदान राख्यो कर मैं। राजन की हद्द राखी तेग-बल सिवराज देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर मैं ॥ २१ ॥

इन्द्र निज हेरत फिरत गज-इन्द्र अरु इन्द्र को अनुज हेरै दुग्धधि नदीस को। भूषन भनत सुर सरिता को हन्स हेरै विधि हेरै हन्स को चकोर रजनीस को॥ साहि-तनै सिवराज करनी करी है तैं जु होत है अचम्भो देव कौटियो तैंतीस को। पावत न हेरे तेरे जसमैं हिराने निज गिरि को गिरीस हेरैं गिरिजा गिरीस को ॥ २२ ॥

उतरि पलँग ते न दियो है धरा पै पग तेऊ सग-बग निसि दिन चली जाती हैं। अति अकुलातीं मुरझातीं ना छिपातीं गात बात न सोहाती बोले अति अनखाती हैं॥ भूषन भनत सिंह साहि के सपूत सिवा तेरी धाक सुने अरि-नारी बिललाती हैं। कोऊ करैं घाती कोऊ रोतीं पीटि छाती घरै तीनि बेर खातीं ते वै बीनि बेर खाती हैं॥ २३॥

अन्दर ते निकसीं न मन्दिर को देख्यो द्वार विन रथ पथ ते उघारे पाँव जाती हैं। हवाहू न लागती ते हवाते विहाल भईं लाखन की भीर मैं सम्हारती न छाती हैं। भूषन भनत सिवराज तेरी धाक सुनि हयादारी चीर फारि मन झुंझलाती हैं। ऐसी परी नरम हरम बादसाहन की नासपाती खातीं ते बनासपाती खाती हैं॥ २४॥

सबन के ऊपर ही ठाड़ो रहिबे के जोग ताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे। जानि गैर मिसिल गुसीले गुस्सा धरि उर कीन्हो ना सलाम न वचन बोले सियरे॥ भूषन भनत महाबीर बलकन लाग्यो सारी पातसाही के उड़ाय गये जियरे। तमक ते लाल-मुख सिवा को निरखि भये स्याह मुख नौरङ्ग सिपाह मुख पियरे॥ २५॥

उतै पातसाह जू के गजन के ठट्ट छूटे उमड़ि घुमड़ि मतवारे घन भारे हैं। इतै सिवराज जू के छूटे सिंहराज औ विदारे कुम्भ करिन के चिक्करत कारे हैं। फौजें सेख सैयद मुगल औ

जारन=लम्पटों।

पठानन की मिलि इखलासखां हू मीर न सँभारे हैं। हद्द हिन्दुवान की विहद्द तरवारि राखी कैयो बार दिल्ली के गुमान झारि डारे हैं॥ २६॥

छूट्यो है हुलास आम-खास एक सङ्ग छूट्यो हरम सरम एक सङ्ग विनु ढङ्ग ही। नैनन ते नीर धीर छूट्यो एक सङ्ग छूट्यो सुख-रुचि मुख-रुचि त्यों ही विन रङ्ग ही॥ भूषन बखानै सिवराज मरदाने तेरी धाक बिललाने न गहत वल अङ्ग ही। दक्खिन के सूबा पाय दिली के अमीर तजें उत्तर की आस जीव आस एक सङ्ग ही॥ २६॥

महाराज सिवराज तेरे वैर देखियत घन वन है रहे हरम हवसीन के। भूपन भनत तेरे वैर रामनगर जवारि पर बह-बहे रुधिर नदीन के॥ सरजा समत्थ वीर तेरे वैर वीजापुर वैरी वैयरनि कर चीन्ह न चुरीन के। तेरे रोस देखियत आगरे दिली में विन सिन्दुर के वुन्द मुख इन्दु जमनीन के॥ २७॥

पूरव के उत्तर के प्रवल पछाँह हूं के सब वादसाहन के गढ़ कोट हरते। भूपन कहैं यों अवरङ्ग सों वजीर जीति लैबे को पुरतगाल सागर उतरते॥ सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज हजरत हम मरिवे को नाहिं डरते। चाकर हैं उज्जुर कियो न जाय नेक पै कछू दिन उबरते तो घने काज करते॥ २८॥

निकसत म्यानतें मयूखैं प्रलय भानु कैसी फारैं तम तोम से गयन्दन के जाल को। लागत लपटि कण्ठ वैरिनि के नागिनि सी रुद्रहि रिझावै दै दै मुण्डन के माल को॥ लाल छितिपाल छत्र

साल महा बाहुबली कहाँ लौं बखान करौं तेरी करबाल को। प्रति-भट कटक कटीले केते काटि २ कालिका-सी किलकि कलेऊ देत काल को ॥ २९ ॥

आए दरबार बिललाने छरीदार देखि जापता करनहार नेकहूँ न मनके। भूषण भनत भौंसिला के आय आगे ठाढ़े बाजे भये उमराय तुजुक करन के॥ साहि रह्यो जकि सिव साहि रह्यो तकि और चाहि रह्यो चकि बने ब्योंत अनबन के। ग्रीषम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि तारे सम तारे गये मूंदि तुरकन के ॥ ३० ॥

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाड़व सुअम्भ पर रावन सदम्भ पर रघुकुल राज है। पौन बारिवाह पर सम्भु रतिनाह पर ज्यों सहसबाह पर राम द्विजराज है॥ दावा द्रुम दण्ड पर चीता मृगझुण्ड पर भूषण बितुण्ड पर जैसे मृगराज है। तेज तम अन्स पर कान्ह जिमि कन्स पर त्यों मलिच्छ बन्स पर सेर सिवराज है ॥ ३१ ॥

दुरजन दार भजि भजि बेसम्हार चढ़ीं उत्तर पहार डरि सिवाजी नरिन्द तें। भूषन भनत बिन भूषन बसन, साधे भूखन पियासन हैं नाहन को निन्दतें॥ बालक अयाने बाट बीच ही बिलाने कुम्हिलाने मुख कोमल अमल अरबिन्द तें। दृगजल कज्जल कलित बढ़्यो कढ़्यो मानो दूजा सोत तरनितनूजा को कलिन्द तें ॥ ३२ ॥

करबाल=तलवार।

बचैगा न समुहाने बहलोलखाँ अयाने भूषन बखाने दिल आनि मेरा बरजा। तुझते सवाई तेरा भाई सलहेरि पास कैद किया साथ का न कोई वीर गरजा॥ साहिन के साहि उसी औरँग के लीने गढ़ जिसका तू चाकर औ जिसकी तू परजा। साहि का ललन दिली दल का दलन अफ़जल का मलन सिवराज आया सरजा॥ ३३॥

चित अनचैन आँसू उमगत नैन देखि बीबी कहैं बैन मियाँ कहियत काहिनै। भूषन भनत बूझे आये दरबार तें कँपत बार बार क्यों सम्हार तन नाहिनै॥ सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब हीनो भयो रूप न चितौत बाएँ दाहिनै। सिवाजी की सङ्क मानि गये हौ सुखाय तुम्हैं जानियत दक्खिन को सूबा करो साहिनै॥ ३४॥

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मैं। राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की धरा मैं धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं॥ भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं। साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी दिल्ली दल दाबि के दिवाल राखी दुनी मैं॥ ३५॥

देवल गिरावते फिरावते निशान अली ऐसे डूबे राव राने सबे गए लबकी। गौरी गनपति आप औरन को देत ताप आपके मकान सब मार गये दबकी॥ पीरा पयगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत सिद्ध की सिधाई गई रही बात रबकी। कासिहु ते

कला जाती मथुरा मसीद होती सिवाजी न होतो तो सुनति होति सबकी ॥ ३६ ॥

डाढ़ी के रखैयन की डाढ़ी सी रहति छाती बाढ़ी मरजाद जस हद्द हिन्दुवाने की । कढ़ि गई रैयत के मन की कसक सब मिट गई ठसक तमाम तुरकाने की ॥ भूषन भनत दिल्लीपति दिल धकधका सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की । मोटी भई चण्डी बिनु चोटी के चबाय मुण्ड खोटी भई सम्पति चकत्ता के घराने की ॥ ३७ ॥

मतिराम ।

[सं० १६७४—१७७२]

सवैया—

कुन्दन को रङ्ग फिको लगै, झलकै अति अङ्गन चारु गोराई ।
आँखिन मैं अलसानि, चितौनि मैं मंजु विलासन की सरसाई ॥
को बिन मोल बिकात नहीं, मतिराम लहै मुसकानि मिठाई ।
ज्यों ज्यों निहारिए नेरे ह्वै नैननि, त्यों त्यों खरी निकरै सी निकाई ॥

सञ्चि विरञ्चि निकाई मनोहर, लाज की मूरतिवन्त बनाई ।
तापर तो बड़ भाग बड़े, मतिराम लसै पति-प्रीति सुहाई ॥
तेरे सुसील सुभाव भटू, कुल-नारिन को कुल-कानि सिखाई ।
नेही जने पति देवत के गुन गौरि सबै गुनगौरि पढ़ाई ॥२॥

कुन्दन=सोना । भटू=नायिका ।

क्यों इन आँखिन सों निरसङ्क ह्वै, मोहन को तन पानिप पीजै।
नेकु निहारे कलङ्क लगै, इहि गाँव वसे कहु कैसे कै जीजै॥
होत रहै मन यों मतिराम, कहूं वन जाय बड़ो तप कीजै।
ह्वै वनमाल हिए लगिए अरु ह्वै मुरली अधरा-रस पीजै॥३॥

रावरे नेह को लाज तजी, अरु गेह के काज सबै विसरायो।
डारि दियो गुरु लोगन को डरु गाँव चवाई मैं नाँव धरायो॥
हेत किये हम जो तो कहा, तुम तो 'मतिराम' सबै विसरायो।
कोऊ कितेक उपाय करौ, कहुँ होत है आपनो पीउ परायो॥४॥

जाके लगे गृह-काज तज्यो, न सिखी सखियान की सीख सिखाई।
वैर कियो सिगरे व्रज गाँउँ मैं, जाके लिये कुल-कानि गँवाई॥
जाके लये घर-वाहर ह्नू, 'मतिराम' रहे हँसि लोग चवाई।
ता हरि सों हित एकहि वार, गँवारि मैं तोरत बार न लाई॥५॥

बीति गई जुग जाम निसा, 'मतिराम' मिटी तम की सरसाई।
जानति हौं कहुँ और तिया सों, रम्यो रस मैं हँसि कै रसिकाई॥
सोचति सेज परी यों नवेली, सहेली सों जात न वात सुनाई।
चन्द चढ्यो उदयाचल पै, मुख-चन्द पै आनि चढ़ी पियराई॥६॥

मो जुग नैन-चकोरन को, यह रावरो रूप सुधा ही को नैवो।
कीजै कहा, कुल-कानि ते आनि, पस्यो अव आपुनो प्रेम छिपैवो॥
कुजन मैं 'मतिराम' कहूं, निसि द्यौसहु घात परे मिलि जैवो।
लाल, सयानी अलीन कै बीच, निवारिये ह्यां की गलीन को ऐवो॥

मानहुँ पायो है राज कहूँ, चढ़ि बैठत ऐसे पलास की खोढ़े।
गुञ्ज-गरे, सिर मोर पखा, 'मतिराम' जू गाय चरावत छोढ़े॥
मोतिन को मम तोरयो हरा, गहि हाथन सों रही चूनरी पोढ़े।
ऐसे ही डोलत छैल भये, तुम्हैं लाज न आवति कामरी ओढ़े॥८॥

खेलन चोर मिहीचनि आजु गई हुती पाछिले घोस की नांई।
आली कहा कहौं एक भई मतिराम नई यह बात तहाँई॥
एकहि भौन दुरे इक सङ्गहि अङ्ग सों अङ्ग छुवायो कन्हाई।
कम्प छुट्यो तनु स्वेद बढ्यो तनि रोम उठ्यो अँखियाँ भरि आईं॥९॥

केलि कि राति अघाने नहीं दिन ही में लला पुनि घात लगाई।
प्यास लगी कोउ पानि दे जाउ यों भीतर बैठि कै बात सुनाई॥
जेठी पठाइ गई दुलही हँसि हेरे हरैं मतिराम बुलाई।
कान्ह के बोल पै कान न दीनों सु गेह की देहरि पै धरि आई॥१०॥

आजु कहा तजि बैठी हौ भूषण ऐसे ही अङ्ग कछू अरसीले।
बोलत बोल रुखाई लिये मतिराम सुनें तें सनेह सुशीले॥
कौन कहौ दुख प्रान-प्रिया अँसुवान रहे भरि नैन लजीले।
कौन तिन्हैं दुख है जिनके तुम-से मन-भावन छैल छबीले॥११॥

गोप-सुता कहैं गौरि गोसाइँनि पाँय परौं बिनती सुनि लीजै।
दीन दयानिधि दासी के ऊपर नेकु सु चित्त दया-रस भीजै॥
देहि जो ब्याहि उछाह सो मोहन मात पिताहु के सो मन कीजै।
सुन्दर साँवरो नन्दकुमार बसैं उर में बरु सो बरु दीजै॥१२॥

वारन धूप अँगारन धूप के धूप अँध्यारी पसारी महा है।
आनन चन्द समान उग्यो मृदु मन्द हँसी जनु जोन्ह छटा है॥
फैल रही मतिराम जहाँ तहँ दीपति दीपन की परभा है।
लाल तिहारे मिलाप को बाल सु आज करी दिन ही में निशा है॥१३॥

आपने हाथ सों देत महावर आपहि बार सिंगारत नीके।
आपनहीं पहिरावत आनि कै हार सँवारि कै मौलसिरी के॥
हौं सखि लाजन जात मरी मतिराम स्वभाव कहा कहौं पी के।
लोग मिले घर घेर करैं अबहीं ते ये चेरे भये दुलही के॥१४॥

आयो विदेस ते प्रान पिया मतिराम अनन्द बढ़ाई अलेखै।
लोगनि सों मिलि आँगन बैठि घरी ही घरी सिगरो घर पेखै॥
भीतर भौन के द्वार खड़ी सुकुमारि तिया तन कम्प विशेखै।
घूँघट को पट ओट किये पट ओट दिये पिय को मुख देखै॥१५॥

प्यार पगी पगरी पिय की वसि भीतर आपने सीस सँवारी।
एते में आँगन ते उठिकै तहँ आइ गये मतिराम विहारी॥
देखि उतारनि लागि तिया पिय सौंहनि सों बहुरी न उतारी।
नैन नवाइ लजाइ रही मुसुकाइ लला उर लाइ पियारी॥१६॥

आवत में हरि को सपने लखि नेसुक बाट सकोच न छोड़ी।
आगे ह्वै आड़े भये मतिराम चली सुचितै चख लालच ओड़ी॥
ओठन के रस लेन को मोहन मेरी गही कर कम्पत ठोड़ी।
और भटू न भई कछु बात गई इतने हीं में नींद निगोड़ी॥१७॥

कवित्त--

साँझ ही सिंगार साजि प्रानप्यारे पास जाति, बनिता बनक बनी बेलि सी अनन्द की। कवि 'मतिराम' कल किंकिनी की धुनि बाजै, मन्द-मन्द चाल ज्यों विराजत गयन्द की॥ केसरि रँगे दुकुल, हाँसी में झरत फूल, केसन मैं छाई छवि फूलन के वृन्द की। पाछे पाछे आवत अँध्यारी-सी भँवर-भीर, आगे फैल रही उजियारी मुख चन्द की॥ १८॥

वारने सकल एक रोरि ही की आड़ पर, हा-हा पहिरि न आभरन और अङ्ग मैं। कवि 'मतिराम' जैसे तीच्छन कटाक्ष तेरे, ऐसे कहाँ सर हैं अनङ्ग के निषङ्ग मैं॥ सहज स्वरूप सुघराई रीझि मनु मेरो, लोभि रह्यो देखि रूप अमल तरङ्ग मैं। सेत सारी ही सों सब सौतैं रगीं स्याम रँग, सेत सारी ही मैं स्याम रँगे लाल रँग मैं॥ १६॥

सकल सहेलिन के पीछे-पीछे डोलत है, मन्द मन्द गौन आजु हिय को हरतु है। सनमुख होत सुख होत 'मतिराम' जबै, पौन लागे घूँघट को पट उघरतु है॥ जमुना के तट, बन्सीबट के निकट, नँदलाल को सकोचनि तैं चाह्यो न परतु है। तन तौ तिया को वर-भाँवरे भरत, मन साँवरे बदन पर भाँवरे भरतु है॥ २०॥

चरन धरै न भूमि बिहरै तहाईं जहाँ, फूले फूले फूलन बिछायो परजङ्क है। भार के डरनि सुकुमारि चारु अङ्गनि मैं, करत न अङ्गराग कुंकुम को पङ्क है। कहै मतिराम देखि बातायन बीच आयो, आतप मलीन होत बदन मयङ्क है। कैसे वह

बाल लाल बाहर बिजन आवै, बिजनबयार लागे लचकत लङ्क है ॥ २१ ॥

सोने कैसे वेली अति सुन्दर नवेली बाल, ठाढ़ी ही अकेली अलबेली द्वार महियाँ। मतिराम अँखियाँ सुधा की बरषासी भईं, गईं जब दीठि वाके मुखचन्द्र पहियाँ॥ नेक नीरे जाइ करि बातनि लगाइ करि, कछू मन पाइ हरि वाकी गही बहियाँ। सैननि बरचि लई गौननि थकित भई, नैननि में चाह करै वैननि में नहियाँ॥ २२ ॥

दोहा—

निरछी चितवनि स्याम की, लसति राधिका ओर।
भोग नाथ को दीजिये, वह मन सुख बरजोर॥२३॥
मेरी मति में राम है, कवि मेरे मतिराम।
चित मेरो आराम है, चित मेरे आ-राम॥२४॥
मो मन-तम-तो महि हरो, राधा को मुखचन्द।
बढ़ै जाहि लखि सिन्धु-लौं, नँद नन्दन-आनन्द॥२५॥
गुञ्ज गुञ्ज को हार उर, मुकुट-मोरपर-पुञ्ज।
कुञ्जबिहारी बिहरिए, मेरेई मन-कुञ्ज॥२६॥
चन्द्रमुखिन के भौंह जुग, कुटिल कठोर उरोज।
बाननि सौं मन कौं जहाँ, मारत एक मनोज॥२७॥
जहाँ चित्त चोरी करै, मधुर वदन मुसकानि।
रूप ठगत है दृगन कौं, और न दूजो जानि॥२८॥

पियत रहै अधरानि को , रस अति मधुर अमोल ।
तातें मीठो कढ़त है , वाल वदन तें बोल ॥२६॥
नैन जोरि मुख मोरि हँसि , नैसुक नेह जनाय ।
आग लेन आई हिये , मेरे गई लगाय ॥३०॥
प्रीतम को मन भावती , मिलत प्रेम उत्कण्ठ ।
वाँहि न छूटै कण्ठ ते , नाहिं न छूटै कण्ठ ॥३१॥
विरह तजे तिय कुचनि-लौं , अँसुआ सकत न आय ।
गिरि उड़गन ज्यों गगन ते , बीचहि जात विलाय ॥३२॥
वैठ्या आनन-कमल के , अरुन अधर दल आय ।
काटन चाहत भावते , दीजै भौंर उड़ाय ॥३३॥
भली लगै उर भावते , करी भावती आप ।
काम निसेनी-सी वनी , यह वेनी की छाप ॥३४॥
अनिमिख नैन कहै न कछु , समुझै सुनै न कान ।
निरखे मोर-पखान के , भई पखान-समान ॥३५॥
सुनि सुनि गुन सब गोपिकनि , समुझो सरल सवाद ।
कढ़ी अधर की माधुरी , है मुरली को नाद ॥३६॥
अटा ओर नंदलाल उत , निरखौ नेक निसङ्क ।
चपला चपलाई तजी , चन्दा तज्यो कलङ्क ॥३७॥
जागत ओज मनोज के , परसि पिया के गात ।
पापर होत पुरैनि के , चन्दन पङ्कित गात ॥३८॥

कुलपति मिश्र।

[स० १६७७]

सवैया—

ऐसिय कुञ्ज बनै छवि पुञ्ज रहैं अलि गुञ्जत यौं रस लीजै।
नैन विसाल हिये बनमाल विलोकत रूप सुधा भरि पीजै॥
जामिनि जाम की कौन कहै जुग जात न जानिये ज्यौं छिन छीजै।
आनँद यों उमग्योई रहै पिय मोहन को मुख देखिबो कीजै॥१॥

देह धरी पर काज हि को जग माँझ है तो-सी तुहीं सब लायक।
दौरी थकी अँग स्वेद भयो समुझी सखि ह्याँ न मिले सुखदायक॥
मोहूं सों प्यार जनायो भली-विधि जानी जु जानी हितून की नायक।
साँच की मूरति सील कि सूरति मन्द किये जिन काम के सायक॥

प्यारु बतावै सबै जग के निजु स्वारथ लौं सुखु नेकु न पैहौं।
कोऊ न काहू को साथी जहाँ सु तहाँ बसिकै कहौ लाहु का लैहौं॥
कान कुवान सुनी बहुतै मुरली धुनि सों तिनहूं को रिसैहौं।
त्यागि जँजाल सबै बृज मैं बसिहौं गुन-पुञ्ज गुपाल के गैहौं॥३॥

कवित्त—

किधौं काहू अदभुत चन्द के चकोर भये इकटक टकी निसि चारौं जाम जागे हैं। किधौं अनिमिष रहे मुख छवि देखत ही भोर ही सरोजनि की छवि छीनि भागे हैं॥ बन्दन वलित नव नीरज निरखि कीधौं सौरभ के लोभ अलि अकुलाइ लागे हैं।

साँची कहौं लालन गुलालहू ते जीतत है लाल २ लोइन ये कौन रस पागे हैं। ॥ ४ ॥

उज्जल सिंगारु सोहै फूलनि को हारु अरु तैसी ससि सरद जुन्हाइयै बितान की। फूले फूले वदन को राजत सखी समाज तैसियै सुहाई मुसुकानि है निदान की॥ विधि की सुघरताई कहिये कहाई अब जोरी सम सौज सुख साज के समान की। जैसी चाह मोहन की चित की निकाई आजु तैसी वनि आई है कुँवरि वृषभानु की॥ ५ ॥

घासीराम।

[सं १६८०]

सवैया--

स्याम लिखे गुन पाती के आखर जोग चिठी वह जो सुनि पैहै।
बाँचत ही उड़ि जाइगो प्रान कपूर लौं फेरि न हाथ न छूहै॥
ऊधो चुपाउ सुनी खबरै वृषभान-लली तन क्यों विष व्वै है।
कौल कली सम राधे हमारी सो वा कुविजा की खवासिनि ह्वै है॥

कवित्त--

कर सों गहत घिरि आईं सबै आसपास चित्र की सी पूतरी श्रवन मग दै रहीं। कज्जल कलित चख सजल उमहि आईं भरि आईं छतिहाँ अनङ्ग रस ह्वै रहीं॥ घासीराम सुकवि सनेही स्याम

लिखी सुनि प्रेम कालिन्दी की वै सुरति कछु कै रहीं। बहुरि वियोग के हरफ़ सुनि ऊधो-मुख हेरि कै सलोनी दीह साँस लै चितै रहीं ॥ २ ॥

तिमिर निवासी सुधानिधि सो सहोदर है बाप रतनाकर कलपवृक्ष वारो है। बहुत कृपालु दुज दीनन कौ रच्छपाल सुनियत साँचु अति पुरुष तिहारो है ॥ घासीराम सुकवि सलोनो गात कञ्चन लौं साँचे सो सुधारि कै विरञ्चि अवतारो है। ऐसी गुन आगरी समूह सुखदानि ह्वै गरीबन के ऊपर बड़ोई बैर पारो है ॥ ३ ॥

बहुत प्रचण्ड-दव-पुञ्ज में परे जे द्रुम ता-पर अखण्ड पौन चितहि विचारै रे। ऐसे मैं कछूक जल छोड़िबो सलाह निर्दोपन की बानि गहि हिम्मति न हारै रे। घासीराम सुकवि बनै न तो चुप करु या समै कठोरताई औटि जिन धारै रे। बरे जात विटपी विहाल आगि परे अरे वारि वर्षै न तौ अँगार मति डारै रे ॥ ४ ॥

चुभि जैहैं तीछन पगन तरवन तव कहाँ लगि हेरि २ कण्टक निपाटोगे। जैहैं पच्छ उरझि सुरझि सकिहैं न फिरि ह्वै कर विपच्छ ठाट कौन विधि ठाटोगे ॥ घासीराम सुकवि कमल मुकतन विन घोंघिन के भीतर सु कौन रस चाटोगे। असित कराल काग सङ्गति अगेजि पोषरीन में मराल काल कब लगु काटोगे ॥ ५ ॥

अरे क्रूर किन्सुक गरूर जनि ठानु कि हमासो सीस ऊपर द्विरेफ पग ठायो है। यह कछु भेद है नियारो कवि घासीराम

आलस के हेत नहीं तुमहिं जतायो है ॥ व्याकुल मधुप तौ न जानति है मेरी जानि फूली नव मालती वियोग सो सतायो है। झूमत अलिन्द याहि देह की खबरि नाहिं आगि मानि तेरे तीर जरिबे को आयो है ॥ ६ ॥

पीउ पीउ करत मिलैं जो मोहि पिउ आनि सोने चोंच चातिक मढ़ाऊँ करि आदरन। कठिन कलापिन के कण्ठन कटाइ डारौं देत दुख दादुर चिराइ डारौं गादरन ॥ घासीराम झिल्लीगन मन्दिर मुदाइ डारौं बधिक बोलाइ बाँधौं बक के बिरादरन। बिरह की ज्वालन सों जलहिं जराइ डारौं स्वासन उड़ाऊँ बैरी बेदरद बादरन ॥ ७ ॥

कबके खरे है कान तदपि न छाँड़े मान, करि कै गुमान काहे करत चवाव री। बिधना दई है कैधों रूप की निकाई कान, ऐसी मन भाई कहौं बनै न बनाव री ॥ कहै घासीराम एक आत अचम्भो नयो, रीत ही ठई है कै भई है मति बावरी। सेवा किये पाथर की मूरति पसीजत है, एती बड़ी सूरत पसीजत न रावरी ॥ ८ ॥

राजाराम ।

[सं० १६८०]

कवित्त—

सोरहो सिंगार सजि चली बाल लाल गृह, देख चाल मयगर मरालहू लजायो है। अङ्ग की सुगन्ध पाय झुकी भीर भौंरन की, चन्द्रमुखी देखि के चकोर वृन्द धायो है ॥ केलि-भवन

राजाराम सोवैं सुख सेज प्यारे, प्यारी ढिग जाय पाँय पायल बजायो हैं। चौंकि चितै कहैं कान्ह आय क्यों जगायो मोहिं मैं नहीं जगायो तुम्हैं मैन ही जगायो है॥ १॥

जसवन्तसिंह।

(मारवाड़)

[सं० १६८२—१७३८ तक]

दोहा—

मुख-ससि वा ससि सों अधिक, उदित जोति दिन-राति।
सागर ते उपजी न यह, कमला अपर सोहाति॥ १॥
नैन कमल ये ऐन हैं, और कमल केहि काम।
गमन करत नीकी लगै, कनकलता यह वाम॥ २॥
धरम दुरै आरोप ते, सुद्धापह्नुति होय।
उर पर नाहिं उरोज ये, कनक-लता फल दोय॥ ३॥
परजस्ता गुन और को, और विषै आरोप।
होय सुधाधर नाहिं यह, वदन सुधाधर ओप॥ ४॥

बनवारी।

[सं० १६९०]

दोहा—

धन्य अमर छिति छत्रपति, अमर तिहारो मान।
साहजहाँ की गोद में, हन्यो सलावतखान॥ १॥

उत गँकार मुख ते कढ़ी , इत निकसी जमधार।
वार कहन पायो नहीं , कीन्हो जमधर पार॥२॥

कवित्त।

आनिकै सलावतखाँ जोर कै जनाई बात, तोरि धर-पञ्जर करेजे जाय करकी। दिल्लीपति साह को चलन चलिबे को भयो, गाज्यो गजसिंह को सुनी है बात बर की॥ कहै बनवारी बादसाहि के तखत पास, फरकि फरकि लोथि लोथिन सों अरकी। कर की बड़ाई कै बड़ाई बाहिबे की करौं, बाढ़ि की बड़ाई कै बड़ाई जमधर की॥३॥

नेह बरसाने तेरे नेह बरसाने देखि, यह बरसाने वर मुरली बजावैंगे। साजु लाल सारी लाल करैं लालसारी, देखिबे की लालसा री लाल देखे सुख पावैंगे॥ तूही उरबसी उरबसी नहिं और तिय, कोटि उरबसि तजि तो-सों चित्त लावैंगे। सेज बनवारी बनवारी तन आभरन, गोरे तन-वारी बनवारी आजु आवैंगे॥४॥

मणिमण्डन मिश्र 'मण्डन'।

[सं० १६६०]

सवैया—

अलि हौं तो गई जमुना-जल को सु कहा कहौं बीर बिपति परी।
घहराय कै कारी घटा उनई इतने ही मैं गागरि सीस-धरी॥

रपट्यो पग घाट चढ़्यो न गयो कवि मण्डन ह्वै कै विहाल गिरी।
चिरजीवहु नन्द को वारो अरी गहि बाँह गरीब ने ठाढ़ी करी ॥१॥

खेलन को रस छाँड़ि दियो दिन द्वैक ते राति कहाँ बसती हौ।
मण्डन अङ्ग सम्हारन को नित चन्दन केसर लै घसती हौ॥
छाती बिहारि निहारि कछू अपनी अँगिया की तनी कसती हौ।
तो तन को अचरा उघरो कहो मो तन ताकि कहा हँसती हौ ॥२॥

वेनी।

[सं० १६६०]

सवैया।

कवि वेनी नई उनई है घटा मोरवा बन बोलत कूकन री।
छहरै बिजुरी छिति मण्डल छ्वै लहरै मन मैन भभूकन री॥
पहिरो चुनरी चुनि कै दुलही सँग लाल के झूलिये झूकन री।
रितु पावस यों ही बितावती हौ मरि हौ फिरि बावरी हूकन री॥

रति रङ्ग जगी चख मींजत ज्यौं त्यौं त्यौं मनमोहन चोपत सो।
कवि वेनी हहा करि हाँसी कियो सो जगावै न जागत कोपत सो॥
कर मण्डित मोतिन के गजरा दृग मीडत आनन वोपत सो।
अरबिन्दन को पकरे मनो तारे कलानिधि भूपति सोपत सो ॥२॥

छहरैं सिर पै छवि मोरपखा, उनके नथ के मुकता लहरैं।
फहरै पियरो पट 'वेनी' इतै, उनकी चुनरी के झवा झहरैं॥

रस-रङ्ग भिरे अभिरे हैं तमाल, दोऊ रस ख्याल चहै लहरैं।
नित ऐसे सनेह सों राधिका-स्याम, हमारे हिये मैं सदा ठहरैं ॥३॥

कवित्त।

राति रति-रंग में रसीली अरसीली बैठी सेज मैं बिलोकि सोहै आदरस धरि कै। बेनी कवि बेनी तें खुले हैं कच मेचक पै पेंच पेंच छाये मुख मण्डल बगरि कै॥ तिन में अरुझो सीस फूल सो अतूल छबि प्यारी सुरझाइ लीन्हें ऐसो कर करि कै। बाँधे तम वृन्दनि निरखि दिनकर मानो प्रात अरविन्दन छोड़ाये बन्धु लरि कै॥ ४ ॥

वियत विलोकत ही मुनि मन डोलि उठे बोलि उठे बरही बिनोद भरे बन-बन। आकुल विकल ह्वै बिकाने रे पथिक जन ऊर्द्ध-मुख चातक अधो-मुख मराल गन॥ बेनी कवि कहत मही के महा-भाग भये सुखद संयोगिन वियोगिन के ताप तन। कञ्ज-पुञ्ज गञ्जन कृषी-दल के रञ्जन सो आयो मान भञ्जन ये अञ्जन बरन घन॥ ५॥

बदन सुधाकरै, उचारत सुधाकरै प्रकास बसुधा करै सुधा करै मुधा करै। चरन धरा धरै मृनाल ऊधरा धरै सु ऐसे अधरा धरै ये बिम्ब अधरा धरै॥ बेनी दृग हा करै निहारत कहा करै सु बेनी कविता करै त्रिबेनी समता करै। सुरत मैं सीकरैं सु मोहनैं बसी करै विरञ्चिहू यसी करै सु सौतिन मसी करै॥ ६॥

आदरस=दर्पण। मेचक=चीकने। वियत=आकाश। बरही=मोर।

सुखदेव मिश्र ।

[स० १६९०]

सवैया—

डोलनि मन्द मनोहर बोलनि चारु चितौनि में लाज है भारी ।
रोस न नेकु कहूं कविराज कहै पिय के चित की हितकारी ॥
सील की रासि सुधाई भरी अरु आप सुधाधर रूप सुधारी ।
धन्य धनी धरनीतल में जिनके घर ऐसी पतिव्रत नारी ॥१॥

जात न मो पै चलो सजनी जननी पै कहौ किन जाइ सवेरी ।
कैधों उपाय तुही करु वेगि सो पांइ परौं तव आगे है येरी ॥
भाँति भई उर की कछु और लखे कविराज डेरात घनेरी ।
काहे ते हैं बढ़ि आये नितम्ब गई घटि है कटि काहे ते मेरी ॥२॥

आई पिया सङ्ग केलि किये कविराज हिये सुख कोटि छिपाये ।
सालत झूमत नैन सरोज ज्यों भोर भये अलि पौन सताये ॥
वेंदी जराय की वाल के भाल तहाँ बिथुरे कच यों उपमाये ।
चन्द समीप मनो मिलि कै मनि के झगरे फनि केतिक आये ॥३॥

जोहैं जहाँ मगु नन्दकुमार तहाँ चली चन्दमुखी सुकुमार है ।
मोतिन ही को कियो गहनो सब फूलि रही जनु कुन्द की डार है ॥
भीतर ही जु लखी सु लखी अब बाहर जाहिर होत न दार है ।
जोन्हसी जोन्हैं गई मिलि यों मिलि जात ज्यों दूध में दूध की धार है ॥

कच=बाल । फनि=साँप । केतिक=कितने ही । जोहैं=प्रतीक्षा करते हैं ।

प्रीतम गौन सुन्यो गजगौनी को भोजन भौन सबै बिसरो है।
अङ्ग परी तलवेली महा कविराज तहाँ भरि आयो गरो है॥
नैनन तें धरि धार धयो जल कञ्जन सों उर आय परो है।
चीरिबें को तिय को हियरा विरहा बढ़ई मनो सूत धरो है॥५॥

यों कछु कीन्हीं अचानक चोट जु ओट सखी न सकी कै दुकूल है।
देह कँपै मुख पीरी परी सो कह्यो नहिं जो ह्वै गयो हिय सूल है॥
माँझ उरोज में आनि लग्यो अगिरात जहीं उचक्यो भुज मूल है।
कौन है ख्याल खेलार अनोखे निसङ्क ह्वै ऐसे चलैयत फूल है॥६॥

कवित्त।

न्यारी ह्वै रही है दिन द्वैक ही ते भाभी लरि, ता बिन न भावै भौन कहौ कहा कीजिये। नेक हू न सुनै बेर सौ कहू जो टेरियत आँधरी परोसिनि या दुख कैसे जीजिये॥ दादा की दुहाई हौं दुहाई तेरी राखिहौं न आपनी दुहाई कविराज आनि लीजिये। मैया गई माइके जु भैया घर नाहीं आजु नन्द के कन्हैया मेरी गैया दुहि दीजिये॥ ७॥

राज।

[सं० १९९२]

कवित्त—

हन्स-गति गामिनी जु देह-दुति-दामिनी जु काम की-सी कामिनी जु निरुपम नागरी। नमिराज जू के प्यारी ऐसी धौं

हज़ार नारी रूप कै सँवारी एक-एक हुँ ते आगरी ॥ निवास्यो निदाघ जोर चन्दन की कीनी खोर, कङ्कन को सुन्यो सोर उपज्यो विराग री। मिथला को राज छोरि मोह के जू वन्ध तोरि, नमै इन्द्र कर जोरि ऐसे धर्म लाग री ॥ १ ॥

कयहूं उत्तङ्ग अङ्ग होत हैं मतङ्ग चङ्ग कबहूं पतङ्ग भृङ्ग कीटक अकार जू। कवहुंक धनी निरधनी सुखी दुखी जीव, कवहुंक बेद-विप्र कवहुं चण्डार जू ॥ जैसे घट एक भेष घटन अनेक घाट, तैसे एक जीव के अनेक अवतार जू। धन, धना, सालिभद्र, थूलभद्र, जम्बु, वज्र त्यागी जे संसार के अभयकुमार जू ॥ २ ॥

नीलकण्ठ।

[सं० १६९९]

कवित्त—

कछू ना सोहाइ विन देखे पै रहो न जाइ हियो अकुलाइ हाइ चेटक सो करिगो। पौनहुँ में पानहुँ में चन्दहु में चाँदनी में फूलन दुकूल दवा अगिनि सो भरिगो ॥ नीलकण्ठ रुचिर सुहाती चितवनि वाकी थाती सी हँसन मेरी छाती पर धरिगो। कहाँ ते हौं आई दुख हाई पन-वट माई कहाँ तें कन्हाई मेरी आँखिन में परिगो ॥ १ ॥

तैसी चाल चाहन चलति उत्साहन सौं जैसो विधि बाहन विराजत विजोठो है। तैसे भृगुटी को ठाट तैसो ही दीपै ललाट

तैसो ही विलोकिबे को पी को प्रान पैठो है॥ तैसिए तरुनाई नीलकण्ठ आई उर शैशव महाई तासों फिरै ऐंठो ऐंठो है॥ नाहीं लट भाल पर छूटे गोरे गाल पर मानों रूप-माल पर ब्याल ऐंठ बैठो है॥ २॥

शिवनाथ।

[सं० १७००]

कवित्त—

मेघा होत फूहर कलपतरु थूहर, परम-हन्स चूहर की होत परिपाटी को। भूपति मँगैया होत ठाढ़ काम गैया होत, गैवर चूवत मद चेरो होत चाटी को॥ कहै शिवनाथ कवि पुण्य किये पाप होत, बैरी निज बाप होत साँप होत साँटी को। स्यार-सुत शेर होत निर्धन कुबेर होत, दिनन के फेर-सों सुमेरु होत माटी को॥

प्रतापसहाय।

[सं० १७००]

सवैया——

उद्दित आज अदीत उदैपुर, पेखि जियैं जग ताहिके पेखैं।
पुक्खन ज्यौं परताप तपै, परताप तपै परताप विसेखैं॥
दीजिये आदर कीरति लीजिये, तीजै खुमानके दान अलेखैं।
ऊगतो भान है राजसी रान चलो, हिन्दवान को सूरज देखैं॥१॥

चन्दन छूटि गयो कुच कुम्भन जात रही अधरान की लाली।
अञ्जन धोइ गयो दृग खञ्जन देखि परै मुख की न वहाली॥
कम्पित गात ससङ्कित अङ्कित सेद के बुन्द लसैं छविसाली।
कीनो अरी मन मेरो निरास पी पापी के पास गई किन आली॥२॥

द्वारका छाप लगै भुजमूल, कह्यो फल वेद पुरानन तौन है।
कागद ऊपर छाप सुनी, जिहि को सिगरे जग जाहिर गौन है॥
आपु लगाइ सु कुंकुम की सु सुहाई लगै छबि सों उर-भौन है।
छाती की छाप को प्यारे पिया कहिये हँसि या को महातम कौन है?

कन्ध सहेलिन के भुज मेलत खेलत खेल खरी इक जाम की।
अङ्गन अङ्गन भूषित भूषन जात कही न प्रभा वर वाम की॥
तौ लगि कुञ्ज ते नन्दकिशोर विलोकि बढ़ी दशा आतुर काम की।
सुन्दरी रूप की मञ्जरी बाल सु मंजरी देखत मञ्जरी आम की॥४॥

सोरठा--

पहिली मार्‍यो बाप, पाछै पूत पछाड़ियो।
पण लीधो परताप, राणन मांगू राजसी॥ ५॥

ताज।

[सं० १७००]

कवित्त--

सुनो दिलजानी मेड़े दिल की कहानी, तुम दस्त ही विकानी बदनामी भी सहौंगी मैं। देवपूजा ठानी मैं निवाज हू भुलानी

तजे कालमा-कुरान साड़े गुनन गहौंगी मैं॥ स्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिये, तेरे नेह दाग मैं निदाग हो दहौंगी मैं। नन्द के कुमार कुरबान ताँड़ी सूरत पै, ताँड़ नाल प्यारे हिन्दुवानी हो रहौंगी मैं॥ १॥

सबलसिंह चौहान।

[सं० १७०२—१७८६ तक]

चौपाई—

यह कहि कै दुर्योधन आये। शब्द वीर आगे ह्वै धाये॥
क्षत्री घेरो अभिमनु रन-में। मानहुँ रवि आच्छादित घन में॥
लैके खड्ग फरी गहि हाथा। काट्यो बहु क्षत्रिन कर माथा॥
अभिमनु धाय खड्ग परिहारे। सम्मुख ज्यहि पावैं त्यहि मारे॥
भूरिश्रवा बाण दश छाँटे। कुंवर हाथ को खड्गहि काटे॥
तीन बाण सारथि उर मारे। आठ बाण तें अश्व सँहारे॥
सारथि जूझि गिरे मैदाना। अभिमनु वीर चित्त अनुमाना॥
यहि अन्तर सेना सब धाये। मारु मारु कै मारन आये॥
रथ को खैंचि कुंवर कर लीन्हें। ताते मारु भयानक कीन्हें॥
अभिमनु कोपि खम्भ परिहारे। यक-यक घाव वीर सब मारे॥

दोहा—

अर्जुन सुत इम मारु किय, महावीर परचण्ड।
रूप भयानक देखियतु, जिमि जम लीन्हें दण्ड॥ १॥

शशिशेखर ।

[सं० १७०५]

सवैया—

कुञ्ज निकेत पिया विन चाहि कै अङ्ग अनङ्ग की आँच-सी आई ।
दूती को देत उराहनो ठाढ़ी महा कपटी किन बात चलाई ॥
हा हौं जरी हौं जरैं ससिसेखर सम्भु सदासिव राखि सिधाई ।
चैन नहीं मृगसावक-नैनी को पङ्कज-नैनी गई कुम्हिलाई ॥१॥

नृप शम्भु ।

[सं० १७०७]

सवैया-

कौहर कौंल जपा-दल विद्रुम का इतनी जो बँधूक में कोति है ।
रोचन रोरी रची मेहँदी नृप सम्भु कहैं मुकुता सम पोति है ॥
पाँय धरैं ढर ईंगुर सो तिन मै मनी पायल की घनी जोति है ।
हाथ द्वै-तीन लौं चारिहू ओरते चाँदनी चूनरी के रँग होति है ॥१॥

पाँय तिहारेन कों गिरधारी लगाय कै ध्यान करै वहु जापन ।
तापर जीव कलावति की छवि तावती हौ नहिं मानो सिखापन ॥
आँगन मैं चलती जब राधे भनै नृप सम्भु हरैं तन तापन ।
है घरी द्वैक लौं आभा रहै मनो छीट रँगी है मजीठ की छापन ॥

कौहर=इन्द्रायन जाति का फल । कौंल=कमल ।

मनोहर अङ्ग की भाठी रची सिसुताई जराई अनङ्ग कलार।
भनै नृप सम्भु जू दीपति ज्वाल अँगार से राजत लाल के हार॥
लसैं सिर बार ज्यों धूम की धार धस्यो तरें भाजन नाभी सुढार।
रोमावली कञ्चन कुम्भ उरोजनि तैं मनो च्वै चली आसव धार॥३॥

सासु कह्यो दधि बेचन कों सु दई दुख हाई कहाँते धौं हाँ करी।
मोंहिं मिले नृप सम्भु गोपाल तमाल तरे वह गैल जो साँकरी॥
मोतन ताकि बड़ी अँखियाँन तें काँकरी लै फिर मोतन घाँ करी।
काँकरी ओड़ि लई करतें पै करेजे कहाँ धौं गई गड़ि काँकरी॥४॥

अलसात जम्हात अटा पर तें उतरे निसि में करि केलि बड़ी।
इहिं भाँति हिं रावरो रूप लखे उर आनँद रासि हिये उमड़ी॥
नृप सम्भु जू केसरिया दुपटा सो तौ माँगति है अँगना में अड़ी।
इतैं हाँसी जेठानी लला सों करै उतैं लाडिली लाजन जात गड़ी॥५॥

भरमि।

[सं० १७०८]

कवित्त—

काम-रस मातो परमारथ की बातैं करैं, जराते जराते नाहिं छोरैं और धज्ज को। वेद औ पुराण के बखान करैं आठो याम, साधक समाज जाई पूजैं पाँय रज्ज को॥ हाथ लिये माला जप

भाठी=भट्ठी। कलार= कलवार। आसव=वह शराब जो केवल फलों को निचोड़ कर बनाई जाय।

माला मुख बोलन की, भरम ठगैया खल खात हैं अखज्ज को।
भरमि सुकवि कहै सुना है उखाना यह, सौ सौ चूहे खायके
बिलैया चली हज्ज को ॥ १ ॥

रूप-रस आसन कै काम के सिंहासन है, केलि कला कौतुक
की जीत मन आनिये। सौतिन को गरब गयो है देखि देखि
जिन्हैं, कदली के खम्भ दोऊ उलटे प्रमानिये॥ भरमि सु-कवि
गज शुण्ड सकुचन लागे, सौगुनी करभहू ते शोभा सरसानिये।
सुघर सुढार ये सँवारे हैं विरञ्चि कैधों, जङ्घ अलबेली के अनूप
युग जानिये ॥ २ ॥

छप्पय-

जिन मुच्छन धरि हाथ, कछू जग सुजस न लीनो।
जिन मुच्छन धरि हाथ, कछू पर काज न कीनो॥
जिन मुच्छन धरि हाथ, दीन लखि दया न आनी।
जिन मुच्छन धरि हाथ, कबौं पर पीर न जानी॥
अब मुच्छ नहीं वह पुच्छ सम, कवि भरमी उर आनिए।
चित दया दान सनमान नहिं, मुच्छ न तेहि मुख जानिए ॥ ३ ॥

वाजींद ।

[सं० १७०८]

छन्द अरल--

सुन्दर पाई देह नेह कर राम से,
क्या लवधावे काम धरा धन धाम से ।

आ तन रङ्क पतङ्ग सङ्ग नहीं आवसी,
जम हू के दरबार मार बहु खावसी ॥ १ ॥
गाफल मूढ़ गमार अचेतन चेत रे,
समझी सन्त सुजान शिखामन देत रे।
विषया माहिं बेहाल लगा दिन रैन रे,
सिर बैरी जमराज न सूझै नैन रे ॥ २ ॥
दिल की अन्दर देख के तेरा कौन है,
चलै न भेला साथ अकेला गौन है।
देह गेह धन दार इनुं से चित्त दिया,
रट्या न निशदिन राम काम तैं क्या किया ॥ ३ ॥
देह गेह से नेह निवारे दीजिये,
राजी जासे राम काम सोइ कीजिये।
रह्या न बेसी कोय रङ्क अरु राव रे,
कर ले अपना काज बन्या हद दाव रे ॥ ४ ॥
केती तेरी जान किता तेरा जीवना,
जैसा स्वपन बिलास तृषा जल पीवना।
ऐसे सुख के काज अकाज कमावना,
बार बार जम द्वार मार बहु खावना ॥ ५ ॥
मछराले मगरूर के मूंछ मरोड़ते,
नवल त्रिया का नेह पलक नहिं छोड़ते।
तीखे करते तरक गरक मदपान में,
गये पलक में ढलक तलब मैदान में ६॥ ॥

पुष्पें सेज बिछाय के तापर पौढ़ते,
आछे दुपटे साल दुसाले ओढ़ते ।
लेके दरपण हाथ निके मुख जोवते,
ले गये दूत उपाड़ रहे सब रोवते ॥ ७ ॥

महल फुहारा हौज के मोजूं माणता,
समरथ आप समान और नहिं जानता ।
पोरस तेज प्रताप चलन्ता पूर में,
भला भला भूपाल गया जमपूर में ॥ ८ ॥

गादी तकिया न्हाख रहेते गमर में,
रेशम धोती पेर कंदोरा कमर में ।
ज्यांका चलता हुकुम मसब्बे मलक में,
कोटि धज साहुकार बिलाने पलक में ॥ ९ ॥

यह दुनिया वाजींद पलक का पेखना,
या में बहुत बिकार कहो क्या देखना ।
सब जीवन का जीव जगत् आधार है,
जो न भजे भगवन्त छठी में छार है ॥ १० ॥

तेगपाणि ।

[सं० १७०८]

सवैया—

मेरी पाछे ते बेनी मरोरि लई उर हार खसोटि लियो गरका ।
पुनि हौं हँसि कै मुख चाहि रही मुंदरी मनि तोरि तनी तरका ॥

भनि तेगपानि मटुकी दइ डारि लई भरि अङ्क अली दरका।
सु उराहनो देति जसोमति पास लड़ाइते लोगन के लरका ॥१॥

भीषम।

[सं० १७०८]

सवैया—

नन्द बबा कि सौं मारिहौं साँटि उतारि कै तौ गहनो सब लैहौं।
भौंह कमान तू काहे चढ़ावति नैनन डाँटे ते हौं न डरैहौं ॥
देखत ही छन एक में भीषम ग्वालन पै दधि दूध लुटैहौं।
गूजरी गाल न मारु गँवारि हौं दान लिये बिन जान न दैहौं ॥१॥

कालिदास।

[सं० १७१०]

सवैया—

राधिक माधवै एक ही सेज पै धाय लै सोई सुभाय सलोने।
पारै महाकवि कान्ह को मध्य सो राधे कही यह बात न होने ॥
साँवरे के सङ्ग हौऊँगी साँवरी बावरी तोंहि सिखाई है कोने।
सोने को रङ्ग कसौटी लगै पै कसौटी को रङ्ग लगै नहिं सोने ॥१॥

कवित्त—

चलिये गोपाल हाल उठी वृषभानु जू के मन्दिर तें ज्वाल सो जहाँई तहाँ जागि है। कालिदास कहै कान्ह साँच कर मानिये

जू आँचन सों राधिका रसीली गई दागि है॥ रावरे बुझाये बिना बुझि है न लाल गोप लजन की अवली विकल ह्वै कै भागि है। गाफिल न ह्वजे वलि गोकुल मैं गोपिन के सदन २ लागी मदन की आगि है॥ २॥

कुन्दन की छरी आबनूस की छरी सों मिली सोनजुही माल कैधौं कुवलय हार सों। कैधौं चन्दकलिका कलङ्क सों कलित भई कैधौं रति ललित बलित भई मार सों॥ कालिदास कादम्बिनि दामिनि मिली है कैधौं अनल की ज्वाल मिल गई धूम-धार सों। केलि समै कामिनी कन्हैया सों लपटि रही मानों लपटानी है जुन्हैया अन्धकार सों॥ ३॥

अन्धकार धूम-धार सम सरि छूटे बार बिथुरे बिराजें रति अन्त सेज पर मैं। कालिदास कामरूप स्याम सँग सोई बाम काम कामिनी के रूप कामकेलि घर मैं॥ नवला की नाभि कोहनी है कान्ह कुच गहि सोहै जोरा जटित अंगूठी सोहै कर मैं। मेरे जान बांबी ते निकसि कारे नागफनि राख्यो मनि-मण्डित सुमेरु के शिखर मैं॥ ४॥

बरै बाल बिमल मसाल सी बिसाल जोत हिय मै महारसाल आनँद के कन्द की। कालिदास पाय सरबस रस हरषत करषति देखि भीर सौतिन के वृन्द की॥ साँवरे कलङ्क प्यारी हियरा में राखि हरि चन्दमुखी समता गहति चन्द-मन्द की। गोरी के हिये

कुवलय=नीला कमल। कादम्बिनी=मेघ-माला। जोत=ज्योति, प्रकाश।

मैं जैसी साँवरी अन्धेरी जोत ऐसी तो उजेरी होत रवि की न चन्द की ॥ ५ ॥

रानी ठकुरानी सोई चाँदनी विछौना पर पग आँगुरीन छलकत छवि जाल हैं। कालिदास जावक-सी जोति कहाँ पावक मै पेखि २ भये व्रजनायक निहाल है॥ रजत वलित विछियाने के वदन पर कलित भये जो ये ललित नख लाल हैं। मोतिन के विरह विसूरि मानौ सोचनि सों लाल चुनि चापि रहे चोंचनि मराल हैं॥ ६ ॥

चूमौं कर-कञ्ज मंजु अमल अनूप तेरो रूप के निधान कान्ह मोतन निहारि दे। कालिदास कहै हेरि-हेरि हँसि मेरी ओर, माथे धरि मकुट लकुट-कर डारि दे॥ कुँवर कन्हैया मुखचन्द की जुन्हैया चारु लोचन चकोरन की प्यासन निवारि दे। मेरे कर मेहँदी लगी है नन्दलाल प्यारे लट उरझी है नक-वेसर सँभारि दे॥ ७ ॥

प्रथम समागम के अवसर नवेली वाल, सकल कलानि पिय प्यारे को रिझायो है। देखि चतुराई मन सोच भयो प्रीतम के, लखि पर-नारि मन सम्भ्रम भुलायो हैं॥ कालिदास ताही समै निपट प्रवीण तिया, काजर लै भीति हूँ मैं चित्रक बनायो है। व्यात लिखी सिंहनी निकट गजराज लिख्यो, योनि ते निकसि छौना मस्तक पै आयो है॥ ८ ॥

आलम और शेख।

[सं० १७१२]

सवैया—

जा थल किन्हें विहार अनेकन ता थल काँकरी वैठि चुन्यो करैं।
जा रसना सों करी बहु बातन ता रसना सों चरित्र गुन्यो करैं॥
आलम जौन से कुञ्जन मैं करी केलि तहाँ अब सीस धुन्यो करैं।
नैनन मै जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करैं॥१॥

सेज समीप सखी रुचि दम्पति कुञ्ज कुटी ब्रज भूपर री।
कवि आलम केलि रची विपरीति मनोज लसे द्रुग दूपर री॥
सरसीरुह आनन ते श्रम विन्दु परैं ते जसोमति सूपर री।
वरसैं वरसाने की गोरी घटा नँदगाँव के साँवरे ऊपर री॥२॥

रजनी मधि प्यारी ने गौन कियो निरखी अँखियाँ पिय रङ्ग भरी।
कवि आलम रम्भन कों ललक्यो रति लालच है हिय लाय हरी॥
खरी खीन हरे रँग की अँगिया दरकी प्रगटी कुच कोर सिरी।
अरुझे जुग जार सिरावन मैं चकवान की चोंचैं मनौ निकरी॥३॥

कवित्त।

प्यारी पिय दोऊ पहिली ही पहिचान भये प्रान जनु पाये ज्यों २ राति नियराति है। आलम सकुचि लग-लोगनि की लगी रहै दुरि दुरि देखै डीठि कैसे कै अघाति है॥ लाजहू की ठौर तिहि ठौर है सचेत इत कोरहू सों जोरि नैन सखी मुसुकाति है।

बाँधति दृगंचलनि बीच मनु मानो चलि चिकने से नेह गाँठि छूटि छूटि जाति है ॥ ४ ॥

निधरक भई अनुगवति है नन्द घर और ठौर कहूं टोहेहू न अहटाति है। पौरि पाखे पिछवारे कौरे २ लागी रहै आँगन देहली याही बीच मण्डराति है ॥ हरि-रस-राती सेख नेकहूं न होइ हाती प्रेम मद-माती न गनति दिन-राति है ॥ जब २ आवति है तब कछू भूलि जाति भूल्यो लेन आवति है और भूलि जाति है ॥ ५ ॥

कैधौं मोर सोर तजि गये री अनत भाजि कैधौं उत दादुर न बोलत हैं ए दई। कैधौं पिक चातक महीप काहू मारि डारे कैधौं बकपांति उत अन्त गति ह्वै गई ॥ आलम कहै हो आली अजहूं न आये प्यारे कैधौं उत रीति विपरीति विधि नै ठई। मदन-महीप की दुहाई फिरिबे ते रही जूझि गये मेघ कैधौं दामिनी सती भई ॥ ६ ॥

प्रेम रँग पगे जगमगे जगे जामिनि के जोबन की जोति जगि जोर उमगत है। मदन के माते मतवारे ऐसे घूमते हैं झूमत हैं झुकि २ झपि उघरत हैं ॥ आलम सो नवल निकाई इन नैननि की पाँखुरी पदुम पै भँवर थिरकत हैं। चाहत हैं उड़िबे को देखत मयङ्क-मुख जानत हैं रैनि ताते ताहि मैं रहत हैं ॥ ७ ॥

रतिरन विषे जे रहे हैं पति सनमुख तिन्हैं बकसीस बकसी है मै विहसि कै। करन को कङ्कन उरोजन को चन्द्रहार कटि

टोह=खोज।

माँहि किंकिनी रही है अति लसि कै॥ शेख कहै आदर सों आनन को दीन्यों पान नैनन मैं काजर विराजै मन वसि कै। एरे चैरी वार ये रहे हैं पीठि पीछे ताते वार २ वाँधति हौं वार वार कसि कै॥ ८॥

कैधौं जा हिमाचल में गात ही गलायो इन, कैधों दीन दान चलि विक्रम सों अस्रो है। कैधौं जाइ द्वारका में कान्हर की सेवा करि, कैधौं जाइ राम-काज रावन सों लस्रो है॥ कैधौं कवि शेख भने अश्वमेध यज्ञ कीन्हों, तातें यह धरनि निकट आइ पस्रो है। धुनत याही तें शीश विहीन जग्यो है याहि वेसरि को मोती मानो कौनो पुन्य कस्रो है॥ ९॥

प्यारी परयङ्क पै निशङ्क ह्वै सोवतहीं, कञ्चुकी दरकि नेकु ऊपर को सरकी। अतर गुलाव औ सुगन्ध की महक पार, देखौ उठि आवनि कहाँ ते मधुकर की॥ वैठो कुच वीच नीच उड़ि न सकत कहूं, रही अवरेख शेख दुति दुपहर की। मानहु समर में सुमिर वैर शङ्कर को, मारि शवरारि फोंक रह गई सर की॥ १०॥

प्यारी तन भूमि तामें रूप जल सागर है, यौवन गँभीर भौंर शोभा को धरत हैं। दीपत तरङ्ग नैन वारिज-से डोलैं तहाँ, उरग सी वेनी जिय देखत डरत है॥ 'आलम' कहत मुख कहर गहर राजै, तामैं मन मेरो यह दौरि कै परत है। वेसरि को मोती मानों कर है सिकन्दर कौ वार-वार झूमि २ मनै सो करत है॥ ११॥

लाल।

[सं० १७१४]

चौपाई—

बोल्यो चम्पति राइ बुन्देला। और घाट ह्वै कीजै हेला॥
जौ दारा उत आड़ो आवै। तौ रन हम सों बिजै न पावै॥
सुनि नौरँग अचरज उर आन्यौ। और घाट चम्पति तुम जान्यौ॥
चम्पति कहीं घाट हम जानैं। तखत काज तुम करो पयानैं॥
सुनि औरङ्ग तखत रस भीने। चौदह लाख खरच कौ दीने॥
कीनौ कूच राति उठि जागैं। चम्पति भयो सबन के आगैं॥
उमड़ि चली दारा के सौहैं। चढ़ी उदण्ड जुद्ध रस भौहैं॥
चामिल उतरि सुभट रन गाजे। पार जाइ सन्धानै बाजे॥

चम्पति मुख औरङ्ग के, भली चढ़ाई ओप।
नातरि उड़ि जातै सबै, छुटे तोप पर तोप॥ १॥

चामिल पार भई सब फौजैं। तब नौरँग मन मानी मौजैं॥
दारासाह खबर यह पाई। चामिल पार फौज सब आई॥
आगे चम्पति राइ बुंदेला। ह्वै हरौल कीन्हों बगमेला॥
चामिल पार भये सब आछे। तजै अढोल अरावे आछे॥
दारा के दिल दहसत बाढ़ी। चूमन लगे सबन की डाढ़ी॥
को भुजदण्ड समर महँ ठोंकै। उमड़्यो प्रलय सिन्धु को रोंकै॥
छत्रसाल हाड़ा तहँ आयौ। अरुन-रङ्ग आनन छबि छायो॥
भयौ हरौल बजाइ नगारौ। सार धार कौ पहिरन हारौ॥

है हरौल हाड़ा चल्यो , पैरनि साह समुद्द ।
दारा अरु औरंग मड़े , मनौ त्रिपुर अरु रुद्द ॥ २॥

मोहन ।

[सं० १७१५]

सवैया—

जाप जप्यो नहिं मन्त्र थप्यो नहिं वेद पुरान सुन्यो न बखानो ।
बीति गये दिन योंहीं सबै रस मोहन मोहन के न बिकानो ॥
चेरो कहावत तेरो सदा पुनि औरं न कोऊ मैं दूसरो जानो ।
कै तो गरीब को लेहु निवाजि कै छाँड़ौ गरीबनिवाज को बानो ॥१॥

जनार्दन ।

[सं० १७१८]

कवित्त—

जेते छन्द जानत हौ तेते सब जानत हौं नये नये छन्द-बन्द कहाँ लौं बनाइहौ। सुकवि जनारदन बाहिर ना कढ़ौंगी तौ जोरावरी दौरि कहा घर ही में आइहौ॥ हारि मानि लेहौ तौ बनैगी बात मोहनजू चतुरन आगे चतुराई का चलाइहौ। छल सों छली है तैसे मोहूं को छलन चाहौ छलन छबीले छाँह छुवन न पाइहौ ॥ १ ॥

गुरु गोविन्दसिंह।

[सं० १७२३—१७६४ तक]

सवैया—

आदि अपार अलेस अनन्त अकाल अभेष अलेष्य अनासा।
कै शिव शक्ति दये स्तुति चारि रजोत्तम सत्त जिहँइ पुर बासा॥
द्यौस निसा ससि सूर कै दीपक सृष्टि रची पचि तत्त प्रकासा।
बैर बढ़ाइ लराइ सुरासुर आपहि देखत आप तमासा॥१॥

देव।

[सं० १७३०—१८०२]

सवैया।

आँखिन आँखि लगाए रहैं, सुनिए धुनि कानन को सुखकारी।
'देव' रही हिय मैं घरु कै, न रुकैं निसरैं बिसरै न बिसारी॥
फूल मैं बासु ज्यों मूल सुबासु की, है फलि फूलि रही फुलवारी।
प्यारी उजारी हिये भरपूरि, सु दूरि न जीवनमूरि हमारी॥१॥

बागो बन्यो जरपोस को तामहिं, ओस को हार तन्यो मकरी ने।
पानी मैं पाहन-पोत चल्यो चढ़ि, कागद की छतुरी सिर दीने॥
काँख मैं बाँधिकै पाँख पतङ्ग के, 'देव' सुसङ्ग पतङ्ग को लीने।
मोम के मन्दिर माखन को मुनि, बैठ्यो हुतासन आसन कीने॥२॥

आवत आयु को द्यौस अथौत, गये रवि त्यौं अँधियारिए ऐहै।
दाम खरे कै खरीद खरो गुरु, मोह की गोनी न फेरि विकैहै॥
'देव' छितीस की छाप विना, जमराज जगाती महादुख दैहै।
जात उठी पुर देह की पैंठ, अरे वनिये बनिये नहिं रैहै॥ ३॥

देव न देखति हौं दुति दूसरी देखेहैं जा दिन ते व्रज भूप मैं।
पूरि रही री वही धुनि कानन आनन-आनन ओप अनूप मैं॥
ये अँखियाँ सखियाँ न हमारी ये जाय मिलीं जल-बुंद ज्यों कूप मैं।
कोटि उपाइ न पाइये फेरि समाइ गईं रँग-राई के रूप मैं॥४॥

साँसन ही सौं समीर गयो अरु आँसन ही सव नीर गयो ढरि।
तेज गयो गुन लै अपनो अरु भूमि गई तनु की तनुता करि॥
जीव रह्यो मिलिवेई कि आस कि आस हु पास अकास रह्यो भरि।
जा दिन ते मुख फेरि हरे हँसि हेरि हियो जु लियो हरि जू हरि॥५॥

धार में धाइ धँसी निरधार ह्वै जाइ फँसी उकसीं न अँधेरी।
री अँगराइ गिरीं गहिरी गहि फेरि फिरीं न घिरीं नहिं घेरी॥
'देव' कछू अपनो वसु ना रसु-लालच लाल चितै भईं चेरी।
वेगि ही बूड़ि गईं पँखियाँ अखियाँ मधु की मखियाँ भईं मेरी॥६॥

पहिले सतराइ रिसाइ सखी जदुराइ पै पाँइ गहाइए तौ।
फिरि भेंटि भटू भरि अङ्क निसङ्क बड़े खन लौं उर लाइए तौ॥
अपनो दुख औरनि को उपहासु सवै कवि 'देव' जताइए तौ।
घनस्यामहिं नेकहु एक घरी कौ इहाँ लगि जो करि पाइए तौ॥७॥

जीभ कुजाति न नेकु लजाति गनै कुल जाति न बात वह्यो करै।
'देव' नयो हिय नेह लगाय विदेह की आँचन देह दह्यो करै॥
जीव अजान न जानत जान जो मैन अयान के ध्यान रह्यो परै।
काहे को मेरो कहावत मेरो जु पै मन मेरो न मेरो कह्यो करै॥८॥

'देव' मैं सीसु बसायो सनेहु सों, भाल मृगम्मद विन्दु कै राख्यो।
कञ्चुकी मैं चुपरो करि चोवा, लगाय लियो उर सों अभिलाख्यो॥
लै मखतूल गुहे गहने, रस मूरतिवन्त सिंगार कै चाख्यो।
साँवरे लाल को साँवरो रूप मैं नैननि को कजरा करि राख्यो॥६॥

मंजुल मञ्जरी पञ्जरी-सी ह्वै मनोज के ओज सम्हारति चीर न।
भूख न प्यास न नींद परै, परी प्रेम-अजीरन के जुर जीरन॥
'देव' घरी पल जाति घुरी, असुवान के नीर उसास समीरन।
आहन-जाति अहीर अहे तुम्हैं कान्ह कहा कहौं काहू कि पीर न॥१०॥

'देव' जौ बाहिर ही बिहरै तौ समीर अमी-रस-विन्दु लै जैहै।
भीतर भौन बसै वसुधा ह्वै सुधा मुख सूंघि फनिन्द लै जैहै॥
राखि हौ जौ अरविन्दहु मैं मकरन्द मिलै तौ मलिन्द लै जैहै।
जैये कहूं यहि राखि गोविन्द कै इन्दु मुखी लखि इन्दु लै जैहै॥११॥

वारियै वैस बड़ी चतुरै हौ, बड़े गुन 'देव' बड़ीयै बनाई।
सुन्दर हौ, सुघरै हौ, सलोनी हौ, सील-भरी रस-रूप-सनाई॥
राजबधू बलि राज-कुमारि अहो सुकुमारि न मानों मनाई।
नैसिक नाह के नेह बिना चकचूर ह्वै जैहै सबै चिकनाई॥१२॥

माखन सो तनु दूध सो जोवन है दधि ते अधिकै उर ईठी।
जा छवि आगे छपाकर छाछ, समेत सुधा वसुधा सब सीठी॥
नैनन नेह चुवै कवि 'देव' बुझावत बैन वियोग अंगीठी।
ऐसी रसीली अहीरी अहै, कहौ क्यों न लगै मनमोहनै मीठी॥१३॥

मूढ़ कहै मरि कै फिरि पाइए, ह्याँ जु लुटाइए भौन-भरे को।
सो खल खोय खिस्यात खरे, अवतार सुन्यो कहुं छार परे को॥
जीवत तौ व्रत भूंख सुखौत, सरीर महासुर-रूख हरे को।
ऐसी असाधु असाधुन की वुधि, साधन देत सराध मरे को॥१४॥

हाय दई! यहि काल के ख्याल मैं, फूल से फूलि सबै कुम्हिलाने।
या जग बीच बचे नहिं मीच तैं जे उपजे ते मही मैं मिलाने॥
'देव' अदेव, बली बल-हीन चले गये मोह की हौस-हिलाने।
रूप-कुरूप, गुनी-निगुनी, जे जहाँ उपजे, ते तहाँ हीं बिलाने॥१५॥

'देव' जियै जब पूछौ तौ पीर को पार कहूँ लहि आवत नाहीं।
सो सब झूँठमते मत कै वक, मौन सोऊ सहि आवत नाहीं॥
है नद-सङ्ग तरङ्गनि मैं, मन फेन भयो, गहि आवत नाहीं।
चाहै कह्यो वहुतेरो कछू, पै कहा कहिये? कहि आवत नाहीं॥१६॥

माथे महावर पाँय को देखि, महा वर पाय सुढार ढुरीये।
ओठन पै ठन वै अँखियाँ, पिय के हिय पैठन पीक धुरीये॥
सङ्ग ही सङ्ग बसौ उनके, अङ्ग-अङ्गन 'देव' तिहारे लुरीये।
साथ मैं राखिए नाथ उन्हैं, हम हाथ मैं चाहति चार चुरी ये॥१७॥

वा चकई को भयो चित-चीतो, चितौत चहूँ दिसि चाय सों नाची।
ह्वै गई छीन छपाकर की छबि, जामिनि जोन्ह जगौ जम जाँची॥
बोलत बैरी बिहङ्गम 'देव' सु, बैरिन के घर सम्पति साँची।
लोहू पियो जु बियोगिनि को, सु कियो मुख लाल पिसाचिनि-प्राची॥

हाय कहा कहौं चञ्चल या मन की गति मैं मति मेरी भुलानी।
हौं समुझाय कियो रस भोग, न तेऊ तऊ तिसना बिनसानी॥
दाड़िम, दाख, रसाल, सिता, मधु, ऊख पिये औ पियूष सो पानी।
पै न तऊ, तरुनी तिय के, अधरान को पीबे की प्यास बुझानी॥

लाल बिना बिरहाकुल बाल, वियोग की ज्वाल भई झुरि झूरी।
पानी सों, पौन सों, प्रेम कहानी सों, पान ज्यों प्रानन पोषत हूरी॥
'देवजू' आज मिलाप की औधि, सो बीतत देखि बिसेखि बिसूरी।
हाथ उठायो उड़ायबे को, उड़ि काग-गरे परीं चारिक चूरी॥२०॥

आजु गई हुती कुञ्जनि लौं, बरसैं उत बूंद घने घन घोरत।
'देव' कहै हरि भीजत देखि, अचानक आय गये चित चोरत॥
पोटि भटू, तट ओट कुटी के लपेटि, पटी सों, कटी-पट छोरत।
चौगुनो रङ्ग चढ्यो चित मैं, चुनरी के चुचात, लला के निचोरत॥

आई हुती अन्हवावन नाइनि, सोंधो लिये वह सूधे सुभायनि।
कंचुकी छोरी उतै उपटैबे को, ईंगुर-से अँग की सुखदायनि॥
'देव' सुरूप की रासि निहारति, पाँय ते सीस लौं, सीस ते पाँयनि।
ह्वै रही ठौर ही ठाढ़ी ठगी-सी, हँसैं कर ठोढी धरे ठकुरायनि॥२२॥

चोट लगी इन नैनन की दिनहूँ इन खोरिन सों कढ़ती हौ।
देखन में मन मोहि लियो छिपि ओट झरोखन के झँकती हौ॥
'देव' कहै तुम हौ कपटी तिरछी अँखियाँ करि कै तकती हौ।
जानि परै न कछू मन की मिलिहौ कबहूँ कि हमैं ठगती हौ॥२३॥

भेष भये विष भावै न भूषन भूख न भोजन की कछु ईछी।
'देवजू' देखे करै बधु सो मधु, दूधु सुधा दधि माखन छीछी॥
चन्दन तौ चितयो नहिं जात चुभी चित माँहिं चितौनि तिरीछी।
फूल ज्यों सूल सिला सम सेज बिछौननि बीच बिछी जनु बीछी॥

कञ्चन वेलि सी नौल बधू जमुनाजल केलि सहेलिनि आनी।
रोमवली नवली कहि देव सु गोरे से गात नहात सुहानी॥
कान्ह अचानक बोलि उठे उर बाल के व्याल-बधू लपटानी।
धाइ कै धाइ गही ससवाइ दुहूँ कर झारति अङ्ग अयानी॥२५॥

चन्दन पङ्क गुलाव के नीर सरोज की सेज बिछाइ मरोरी।
तूल भयो तन जात जरो यह बैरी दुकूल उतार धरोरी॥
'देवजू' झूठे सबै उपचार मही में तुषार के भार भरोरी।
लाज के ऊपर गाज परै ब्रजराज मिलै सु इलाज करोरी॥२६॥

कवित्त—

कम्पत हियो, न हियो कम्पत हमारो, यों हँसी तुम्हे अनोखी नेकु सीत में ससन देहु। अम्बर-हरैया हरि, अम्बर उज्यारो होत, हेरि कै हँसै न कोई, हँसे तौ हँसन देहु॥ 'देव' दुति देखिवे को

लोयन मैं लागी रहै, लोयन मैं लाज लागै लोयन लसन देहु। हमरे वसन देहु, देखत हमारे कान्ह, अजहूं वसन देहु, ब्रज मैं त्रसन देहु ॥ २७ ॥

आस-पास पुहुमि प्रकास के पगार सूझै, वन न अगार डीठि गली औ निवर तैं। पारावार पारद अपार दसौ दिसि बूड़ी, चण्ड ब्रहमण्ड उतरात विधु वर तैं॥ सारद जुन्हाई जहु जाई धार सहस, सुधाई सोभासिन्धु नभ सुभ्र गिरिवर तैं। उमड़्यो परत जोति-मण्डल अखण्डसुधा-मण्डल मही मैं विधु-मण्डल-विवर तैं ॥२८॥

सखी के सकोच गुरु-सोच मृगलोचनि, रिसानी पिय सों, जु उन नेकु हँसि छुयो गात। 'देव' वै सुभाय मुसक्याय उठि गये यहि, सिसिकि-सिसिकि निसि खोई, रोय पायो प्रात॥ को जानै री बीर बिनु बिरही बिरह बिथा, हाय-हाय करि पछिताय न कछू सोहात। बड़े-बड़े नैनन ते आँसू भरि-भरि ढरि, गोरो-गोरो मुख आजु ओरो सो बिलानो जात॥ २९ ॥

मोहि तुम्है अन्तरु गनैं न गुरजन तुम, मेरे हौं तुम्हारी पै तऊ न पघिलत हौ। पूरि रहे या तन मैं मन मैं न आवत हौ, मन्त्र पूँछि देखे कहूं काहू ना हिलत हौ॥ ऊँचे चढ़ि रोई, कोई देत ना दिखाई 'देव', गातन की ओट बैठे बातन गिलत हौ। ऐसे निरमोही सदा मोंहि मैं बसत अरु, मोंहि ते निकरि फिरि मोंहि न मिलत हौ॥ ३० ॥

ओरो=ओला।

कोऊ कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ, कोऊ कहौ रङ्किनी कलङ्किनी कुनारी हौं। कैसो नरलोक परलोक वरलोकन मैं लीन्हीं मैं अलीक लोक-लीकन ते न्यारी हौं॥ तन जाउ, मन जाउ, 'देव' गुरुजन जाउ, प्राण किन जाउ, टेक, टरत न टारी हौं। वृन्दावनवारी वनवारी के मुकुट-वारी, पीत पटवारी वहि मूरति पै वारी हौं॥ ३१॥

वोसो वन्स-विरद मैं वौरी भई वरजत, मेरे वार-वार वीर कोई पास वैठो जनि। सिगरी सयानी तुम विगरी अकेली हौं हौं, गोहन मैं छाँडो मोसों भौंहन अमैठौ जनि॥ कुलटा कलङ्किनी हौं कायर कुमति कूर, काहू के न काम की निकाम याते ऐंठौ जनि। 'देव' तहाँ वैठियत जहाँ वुद्धि वढ़ै, हौं तौ, वैठी हौं विकल कोई मोहिं मिलि वैठौ जनि॥ ३२॥

गुरुजन-जावन मिल्यो न भयो दृढ़ दधि, मथ्यो न विवेक रई 'देव' जो वनायगो। माखन-मुकुति कहाँ, छाँड़्यो ना भुगुति जहाँ, नेह विंनु सगरो सवाद खेह नायगो॥ विलखत वच्यो मूल कच्यो सच्यों लोभ-भाँड़े तच्यो क्रोध-आँच पच्यो मदन सिरायगो। पायो न सिरावन सलिल छिमा छींटन सों, दूध सो जनमु विन जाने उफनायगो॥ ३३॥

कथा मैं न, कन्था मैं न, तीरथ के पन्था मैं न, पोथी मैं न, पाथ मैं न साथ की वसीति मैं। जटा मैं न, मुण्डन न, तिलक त्रिपुण्डन न, नदी-कूप-कुण्डन अन्हान दानि रीति मैं॥ पीठ-

लीक=राह। अमेठो=टेढ़ी करो।

मठ-मण्डल न, कुण्डल कमण्डल न, माला दण्ड मैं न, 'देव' देहरे कि भीति मैं। आपु ही अपार पारावार प्रभु पूरि रह्यो, पाइए प्रगट परमेसुर प्रतीति मैं॥ ३४॥

ऐसो जु हौं जानतो कि जैहै तू विषै के सङ्ग, एरे मन मेरे, हाथ पाँय तेरे तोरतो। आजु लौं हौं कत नरनाहन की नाहीं सुनि, नेह सों निहारि हेरि वदन निहोरतो॥ चलन न देतो 'देव' चञ्चल अचल करि, चाबुक चेतावनीन मारि मुंह मोरतो। भारो प्रेम पाथर, नगारो दै गरै सों बाँधि, राधावर बिरद के बारिधि मैं बोरतो॥ ३५॥

आई बरसाने तैं बोलाइ वृषभानु-सुता, निरखि प्रभानि प्रभा, भानु की अथै गई। चक चकवान के चकाए चकचोटन सों चौंकत चकोर चक चौंधा-सी चकै गई। 'देव' नँद-नन्दन के नैनन अनन्द मई, नन्द जू के मन्दिरन चन्दमई छै गई। कञ्जन कलिन मई, कुञ्जन नलिन मई, गोकुल की गलिन अलिनमई कै गई॥३६॥

एकै अभिलाख लाख-लाख भाँति लेखियत, देखियत दूसरो न 'देव' चराचर मैं। जासों मनु राँचै तासों तनु मनु राँचै, रुचि भरिकै उघरि जाँचै साँचे करि कर मैं॥ पाँचन के आगे आँच लागे ते न लौटि जाय, साँच देइ प्यारे की सती-लौं बैठे सर मैं। प्रेम सों कहत कोई ठाकुर न ऐंठौ सुनि, बैठो गड़ि गहिरे तो पैठौ प्रेम-घर मैं॥ ३७॥

प्रेम चरचा है अरचा है कुल-नेमन रचा है चित और अरचा है चितचारी को। छोड़यो परलोक नरलोक बरलोक कहा, हरष

न शोक न अलोक नर-नारी को ॥ घाम, सीत, मेह न विचारै सुख देहहू को, प्रीति ना सनेह डरु बन ना अँध्यारी को । भूलेहू न भोग बड़ी विपति वियोग-विथा, जोगहू ते कठिन सँजोग परनारी को ॥ ३८ ॥

'देव' नभ-मन्दिर मैं बैठारयो पुहुमि-पीठ, सिगरे सलिल अन्हवाये उमहत हौं । सकल महीतल के मूल फल फूल दल सहित सुगन्धन चढ़ावन चहत हौं ॥ अगिनि अनन्त, धूप दीपक अखण्ड जोति, जल-थल-अन्न दै प्रसन्नता लहत हौं । ढारत समीर चौंर, कामना न मेरे और, आठों जाम राम तुम्हैं पूजत रहत हौं ॥ ३९ ॥

नाक, भू, पताल, नाक सूची ते निकसि आए, चौदहौ भुवन भूखे भुनगा को भयो हेत । चीटी-अण्ड-भण्ड मैं समान्यो ब्रह्मण्ड सब, सपत समुद्र वारि बुंद मैं हिलोरे लेत ॥ मिलि गयो मूल थूल-सुच्छम समूल कुल, पञ्चभूतगन अनु-कन मैं कियो निकेत । आपहो तैं आपही सुमति सिखराई 'देव' नख-सिखराई मैं सुमेरु दिखराई देत ॥ ४० ॥

तुही पञ्च तत्व, तुही सत्व, रज, तम तुही, थावर औ जङ्गम जितेक भयो भव मैं । तेरे ये विलास लौटि तोही मैं समाने कछू, जान्यो न परत पहिचान्यो जब-जब मैं ॥ देख्यो नहीं जात, तुहीं देखियत जहाँ-तहाँ, दूसरो न देख्यो 'देव' तुही देख्यो अब मैं । सब की अमर-मूरि, मारि सब धूरि करै, दूरि सब ही ते भरपूरि रह्यो सब मैं ॥ ४१ ॥

अग, नग, नाग, नर, किन्नर, असुर, सुर, प्रेत, पशु, पच्छी, कीट कोटिन कढ्यो फिरै। माया-गुन-तत्त्व उपजत, बिनसत सत्त्व, काल की कला को ख्याल खाल मैं मढ्यो फिरै॥ आपही भखत भख, आपही अलख लख, 'देव' कहूं मूढ़, कहूं पण्डित पढ़्यो फिरै। आपही हथ्यार, आप मारत, मरत आप, आपही कहार, आप पालकी चढ़्यो फिरै॥ ४२॥

तेरो घर घेरे आठों जाम रहै आठौ सिद्धि, नवौनिधि तेरे विधि लिखिये ललाट है। 'देव' सुख-साज महाराजनि को राज तुही, सुमति सु सो ये तेरी कीरति के भाट हैं॥ तेरे ही अधीन अधिकार तीन लोक को सु, दीन भयो क्यों फिरै मलीन घाट-बाट हैं। तो मैं जो उठत बोलि, ताहि क्यों न मिलै डोलि, खोलिए हिए मैं दिए कपट-कपाट हैं॥ ४३॥

वृन्द।

[सं० १७३०—१८०२ तक]

दोहा—

नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात।
जैसे बरनत युद्ध में, नहिं सिंगार सुहात॥ १॥
फीकी पै नीकी लगै, कहिये समै बिचारि।
सब को मन हर्षित करै, ज्यौं विवाह में गारि॥ २॥

कैसे निबहै निबल जन , करि सबलन सो गैर।
जैसे बसि सागर विसै , करत मगर सों बैर ॥ ३ ॥
अपनी पहुंच विचारि कै , करतब कीजै दौर।
तेतो पाँव पसारिये , जेती लाँबी सौर ॥ ४ ॥
पिसुन छल्यो नर सुजन सों , करत बिसास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध कौ , पीवत छाछहिं फूकि ॥ ५ ॥
प्रान तृषातुर के रहैं , थोरेहूं जलपान।
पीछे जल भर सहस घट , डारे मिलत न प्रान ॥ ६ ॥
विद्या-धन उद्यम विना , कहौ जु पावै कौन।
विना डुलाये ना मिलै , ज्यौं पंखा की पौन ॥ ७ ॥
फेर न ह्वै है कपट सों , जो कीजै ब्यौपार।
जैसे हाँड़ी काठ की , चढ़ै न दूजी बार ॥ ८ ॥
भले बुरे जहँ एक से , तहाँ न वसियै जाय।
ज्यौं अन्याय पुर में बिकै , खर-गुर एकै भाय ॥ ९ ॥
निरफल श्रोता मूढ़ पै , वक्ता वचन विलास।
हाव-भाव ज्यौं तीय के , पति आँधे के पास ॥१०॥
लालच हू ऐसो भलौ , जासौं पूरै आस।
चाटेहूं कहुं ओस के , मिटत काहु की प्यास ॥११॥
जासों निबहै जीविका , करिये सो अभ्यास।
वेस्या पालै शील तौ , कैसे पूरै आस ॥१२॥
दुष्ट न छाड़ै दुष्टता , कैसे हूं सुख देत।
धोये हूं सौ वेर के , काजर होय न सेत ॥१३॥

प्रेम निबाहन कठिन है , समुझि कीजियौ कोय ।
भाँग भखन है सुगम पै , लहर कठिन ही होय ॥१४॥
अपनी अपनी गरज सब , बोलत करत निहोर ।
बिन गरजै बोलै नहीं , गिरवर हूं कौ मोर ॥१५॥
प्रकृति मिलै मन मिलत है , अनमिल तें न मिलाय ।
दूध दही ते जमत है , काँजी ते फटि जाय ॥१६॥
स्वारथ के सबही सगे , बिनु स्वारथ कोउ नाहिं ।
सेवैं पंछी सरस-तरु , निरस भये उड़ि जाहिं ॥१७॥
पर घर कबहुं न जाइये , गये घटति है जोत ।
रवि मण्डल में जात शशि , छीन कला छबि होत ॥१८॥
एक दसा निबहै नहीं , जिन पछितावहु कोय ।
रविहूं की इक दिवस में , तीन अवस्था होय ॥१९॥
जो पावै अति उच्च-पद , ताकौ पतन निदान ।
ज्यौं तपि तपि मध्यान लौं , अस्त होतु है भान ॥२०॥
जिहिं देखैं लंच्छन लगै , तासों दृष्टि न जोर ।
ज्यों कोऊ चितवै नहीं , चौथ चन्द की ओर ॥२१॥
मूरख गुन समुझै नहीं , तौ न गुनी में चूक ।
कहा भयौ दिन की बिभौ , देखी जौ न उलूक ॥२२॥
बिन स्वारथ कैसे सहै , कोऊ करुये बैन ।
लात खाय पुचकारिये ; होय दुधारू धैन ॥२३॥
जाको जहँ स्वारथ सधै , सोई ताहि सुहात ।
चोर न प्यारी चाँदनी , जैसे कारी रात ॥२४॥

होय बुराई तें बुरो , यह कीनो निरधार ।
खाड खनैगो और को , ताको कूप तयार ॥२५॥
अति ही सरल न हूजिये , देखौ जो वनराय ।
सीधे सीधे छेदिये , बाँको तरु वच जाय ॥२६॥
बहुत निबल मिल बल करैं , करैं जु चाहैं सोय ।
तिनकन की रसरी करी , करी निबन्धन होय ॥२७॥
कपट परेहू साधु-जन , नेकु न होत मलान ।
ज्यौं ज्यौं कञ्चन ताइये , त्यौं त्यौं निरमल जान ॥२८॥
साँच झूठ निरनै करै , नीति निपुन जो होय ।
राजहन्स विन को करै , छीर-नीर कौं दोय ॥२९॥
दोषहिं को उमहैं गहैं , गुन न गहैं खल लोक ।
पियै रुधिर पय ना पियै , लगी पयोधर जोक ॥३०॥
जो पहिलै कीजै जतन , सो पीछे फलदाय ।
आग लगै खोदै कुवाँ , कैसे आग बुझाय ॥३१॥
सुधरी विगरै वेगि ही , विगरी फिरि सुधरै न ।
दूध फटै काँजी परै , सो फिर दूध बनै न ॥३२॥
गुनी तऊ अवसर विना , आदर करै न कोय ।
हिय तें हार उतारिये , सयन समै जब होय ॥३३॥
सहज रसीले होय सो , करैं अहित पर हेत ।
जैसे पीड़ित कीजिये , ईप तऊ रस देत ॥३४॥
बहुत किये हू नीच कौ , नीच सुभाव न जात ।
छाड़ि ताल जल कुम्भ में , कौवा चोंच भरात ॥३५॥

चतुर सभा में क्रूर नर , शोभा पावत नाहिं।
जैसे बक सोहत नहीं , हन्स मण्डली माहिं ॥३६॥
होय पहुंच जाको जितौ , तेतौ करत प्रकास।
रवि ज्यौं कैसे करि सकै , दीपक तम कौ नास ॥३७॥
बिपति बड़ोई सहि सकैं , इतर बिपति तैं दूर।
तारे न्यारे रहत हैं , गहै राहु ससि सूर ॥३८॥
पुन्य विवेक प्रभाव तें , निहचल लच्छ निवास।
जौ-लौं तेल प्रदीप में , तौ-लौं जोति प्रकास ॥३९॥
अरि छोटो गनिये नहीं , जातैं होय बिगार।
तृन-समूह को छिनक में , जारत तनिक अँगार ॥४०॥
सब देखै पै आपनो , दोष न देखै कोय।
करै उजेरो दीप पै , तरे अंधेरो होय ॥४१॥
मारै इक रच्छा करै , एकहि कुल को होय।
ज्यौं कृपान अरु कवच पै , एक लोह सौं दोय ॥४२॥
बिना सिखाये लेत है , जिहि कुल जैसी रीति।
जनमत सिंहन कौ तनय , गज पर चढ़त अभीत ॥४३॥
चपचप करती ना रहै , नर लवार की जीह।
चलदल दल जैसे चपल , चलत रहै निस दीह ॥४४॥
जो धनवन्त सो देय कछु , देय कहा धनहीन।
कहा निचोरै नग्न जन , न्हान सरोवर कीन ॥४५॥
जो करिये सो कीजिये , पहिले करि निर्धार।
पानी पी घर पूछिबो , नाहिन भलो विचार ॥४६॥

ठीक किये विन और की , वात साँच मत थर्प ।
होत अन्धेरी रैनि में , परी जेवरी सर्प ॥४७॥
अधिक चतुर की चातुरी , होत चतुर के सङ्ग ।
नग निरमल की डाँक तैं , वढ़त जोति छवि अङ्ग ॥४८॥
पण्डित अरु वनिता-लता , शोभित आश्रय पाय ।
है मानिक वहु मोल को , हेम जटित छवि छाय ॥४९॥
अपनी प्रभुता कौं सवै , वोलत झूठ वनाय ।
वेस्या वरस घटावहीं , जोगी वरस वढ़ाय ॥५०॥
कहूं कहूं गुन ते अधिक , उपजत दोष सरीर ।
मधुरी वानी वोलि कै , परत पींजरा कीर ॥५१॥
आये आदर ना करै , पीछे लेत मनाय ।
घर आये पूजै न अहि , वाँवी पूजन जाय ॥५२॥
अपने अपने समय पर , सव को आदर होय ।
भोजन प्यारो भूख में , तिस में प्यारो तोय ॥५३॥
मीठी कोऊ वस्तु नहिं , मीठी जाकी चाहि ।
अमली मिसरी छाँड़ि कै , आफू खात सराहि ॥५४॥
खाय न खरचै सूम धन , चोर सवै लै जाय ।
पीछे ज्यौं मधुमच्छिका , हाथ मलै पछिताय ॥५५॥
खल निज दोष न देखई , पर के दोषहिं लागि ।
लखै न पग तर सव लखै , परवत वरती आगि ॥५६॥
दिवस भले विगरै न कछु , रहो निचिन्ते सोय ।
आवै चोरी करन को , चोर आँधरो होय ॥५७॥

सब सों आगे होय कै , कबहुं न करिये बात ।
सुधरे काज समाज फल , बिगरे गारी खात ॥५८॥

उत्तम विद्या लीजिये , यदपि नीच पै होय ।
पर्यौ अपावन ठौर को , कञ्चन तजत न कोय ॥५९॥

कहा करै आगम-निगम , जो मूरख समझै न ।
दरपन को दोष न कछू , अन्ध बदन देखै न ॥६०॥

धन अरु जोबन को गरबु , कबहूं करियै नाहिं ।
देखत ही मिटि जात है , ज्यौं बादर की छाँहिं ॥६१॥

बहु गुन श्रम तें उच्च पद , तनिक दोष तैं पात ।
नीठ चढ़ै गिरि पर सिला , ढारत ही ढुरि जात ॥६२॥

सेवक सोई जानिये , रहै बिपति में सङ्ग ।
तन-छाया ज्यौं धूप में , रहै साथ इक रङ्ग ॥६३॥

बुरौ तऊ लागत भलौ , भली ठौर पर लीन ।
तिय नैननि नीको लगै , काजर जदपि मलीन ॥६४॥

एकहिं भले सुपुत्र तैं , सब कुल भलौ कहात ।
सरस सुवासित बिरछ तैं , ज्यौं बन सकल बसात ॥६५॥

छमा खड्ग लीनै रहै , खल कौं कहा बसाय ।
अगिन परी तृन-रहित-थल , आपहिं तैं बुझि जाय ॥६६॥

ओछे नर के पेट में , रहै न मोटी बात ।
आध सेर के पात्र में , कैसे सेर समात ॥६७॥

बिगरनवारी बस्तु कौ , कहौ सुधारै कौन ।
डारै पै औटाय कै , मिसरी भोरे नौन ॥६८॥

अन-उद्यम सुख पाइयै , जो पूरब कृत होय।
दुख कौं उद्यम को करत , पावत है नर सोय ॥६६॥
प्यारी अन-प्यारी लगै , समै पाय सब बात।
धूप सुहावै सीत में , सो ग्रीषम न सुहात ॥७०॥
पावत बहुत तलास नहिं , मुख तैं निसरी बात।
आँधी में टूटी गुड़ी , को जानैं कित जात ॥७१॥
विरहानल व्याकुल भये , आयौ पीतम गेह।
जैसे आवत भाग तैं , आग लगे पर मेह ॥७२॥
एक एक अक्षर पढ़ै , जाने ग्रन्थ विचार।
पैंड पैंड हू चलत जो , पहुंचै कोस हजार ॥७३॥
लोकन के अपवाद कौं , डर करिये दिन रैन।
रघुपति सीता परिहरी , सुनत रजक के बैन ॥७४॥
कहा कहौं विधि की अविधि , भूले परम प्रवीन।
मूरख को सम्पति दई , पण्डित सम्पति हीन ॥७५॥
रहैं न कबहूं दोय खल , एक सदन के माहिं।
एक म्यान में द्वै खडग , जैसे मावैं नाहिं ॥७६॥
गहत तत्व-ज्ञानी पुरुष , बात विचारि विचारि।
मथनिहारि तजि छाछ को , माखन लेति निकारि ॥७७॥
विद्या लक्ष्मी पुरुष पै , होय नहीं इक ठाय।
नाहिन सुख दो सौति में , पिय पै एकहि जाय ॥७८॥
निरस बात सोई सरस , जहाँ होय हिय हेत।
गारी हू प्यारी लगै , ज्यौं ज्यौं समधिन देत ॥७९॥

इन लच्छन तैं जानिये , उर अज्ञान निवास।
ऊँघै कथा पुरान सुनि , विकथा सुनै हुलास ॥८०॥

उर उछाव हित धरम सौं , असुभ करम की हानि।
मन प्रसन्न रुचि अन्न सौं , ज्यौं ज्वर छूट्यो जानि ॥८१॥

किशन।

[सं० १७३१]

कवित्त।

ॐकार अमर अमार अविकार अज, अजर जु है उदार दारन दुरन्त को। कुञ्जर तें कीट परजन्त जग जन्तु ताके, अन्तर को जामी बहुनामी स्वामी सन्त को॥ चिन्ता को हरनहार चिन्ता को करनहार, पोषन भरनहार किसन अनन्त को। अन्तक तें अन्त दिन राखै को अनन्त विन, तातैं तन्त अन्त को भरोसो भगवन्त को॥ १॥

धन्धही में ध्यायो पै न ध्यायो है धरम रुख, पायो दुख द्वन्द में न पायो सुख पाइबो। गायो जान आन पै न गायो भगवान भान, आयो जो न ज्ञान कहा नर जोनि आइबो॥ मान मैं न मायो अन्ध काहू न नमायो कन्ध, किसन परेगो खरो ताहि पछताइबो। आपको ही भायो भायो पाप को उपायो पायो, बँधी मुठी आयो पै पसार हाथ जाइबो॥ २॥

ईहै प्रभुता को जो किसन प्रभु ताको त्यागै, छरी न विभूति तो त्रिभूति कहा धारी है। जौलौं भग तजी नाहिं तौलौं भगतजी नाहिं, काहे को गुसांई जो गुसांई सौं न यारी है॥ काहे को बिराहमन जाको न विराह मन, कहा पीर जो पै पर-पीर न विचारी है। कैसो वह जोगी जन जाको न विजोगी मन, आसन ही मार जान्यो आस नहीं मारी है॥ ३॥

उकति उपाई एती उमर गमाई कछु कीनी न कमाई काज भयो न भलाई को। औंधि जब आई तब कोऊ न सहाई भाई, राई भर कछू न बसाई ठकुराई को॥ आई पहुंचाई पछिताई माई बाई जाई, छूटो नातो टूटो ताँतो किसन सगाई को। इहाँ तो सदा ही धाम धूम ही चलाई, पर उहाँ तो नहीं है भाई राज पोपांबाई को॥ ४॥

ऋद्धि तैं न सिद्धि खरी जो तैं जीव कैसी जरी, तहाँ ले धरी जहाँ प्रवेश न समीर को। खरच्यो न खायो यौंहीं नर के जनम आयो, जादिन तें जायो सुख पायो न शरीर को॥ पीयो नीर छान्यो पै न लोहु अनछान्यो जान्यो, किसन कहु न जान्यो त्रास पर-पीर को। धोखे ही में जीव दयो भयो न सुकृत लयो, गयो भव खोई भयो नीर को न तीर को॥ ५॥

रीता ढोल नाँइ करै कहा पै बड़ाई साँच, सुमिरै न साँई कब ताँई भव खोई है। जेती तैं बुराई ढाई तेती बन आई पर, एती चतुराई दुखदाई अन्त होई है॥ किसन सभावे सगा कौन न कहावे लाल, काल तें छोड़ावै आडा आवै ऐसा कोई है। अरे

अविवेकी भेक कापै गही गाढ़ी टेक, " लेवे को न एक कछु देवे को न दोई है ॥ ६ ॥

लिख्यौ जो लिलाट लेख तामैं कहा मीन-मेख, करम की रेख देख टारिहू न टरी है। चूंप करी काहू चूहै साँप को पिटारो कुर्स्यों सो तो अनजाने पाने पनग के परी है॥ किसन अनुद्यम ही चल्यो अहि पेट भरि, उद्यम ही करत तुरन्त चूहा मरी है। देखो क्यों न करी काहू हुनर हजार नर, ह्वै है कछु सोई जु विधाता नाथ करी है ॥ ७ ॥

लीला की लगन माहिं ज्ञान की जगन नाहिं, जग न रहाय नर तोउ न रहायबो। चलै जर कोन वट को इहाँ करत हट, नदी तट तरु कौन भाँति ठहिरायबो॥ सपना जिहान तामैं अपना निदान कौन, जपना किसन जान तातै दुख जायबो। मोह में मगन सग मग न धरै है पग, नगन चलैंगे सङ्ग नग न चलायबो ॥ ८ ॥

एक ऊगे सूर करै भोजन कपूर पूर, एक कों तो पेट पूर भाजीहु न ताजी है। एक नर गाजी चढ़ि चलत चपल बाजी, एक पाजी आगे दौर दौरिबे ही राजी है॥ एक तो किसन लछी देखी लछमीहु लाजी, एक धन हीन मसकीन दीन माँजी है। कही न परति कुदरति ऐसी कारसाजी, अपने अपने यारों वखत की बाजी है ॥ ६ ॥

ओस की कनी-सी जैसे डाभ की अनी पै बनी, लेखिये न बार घनी देखिये झिलामली। जगत् की बाजी ताजी पै न ताते

हूजे राजी, देखी जाकी बाजी नटबाजी ज्यों चलाचली॥ महकै किसन जाकी महिमा मुलक माहिं, कहावे मलूक मीर मल्लिक महाबली। काल की अकाल बात घातै कब आनि घात, आज की न जानी जात काल की कहा चली॥ १०॥

औषध अनेक एक मौत व्यतिरेक छेक, नेक टेक धरि कै विवेक घर आइये। मौसम समै किसन कीजिये असम श्रम, बैठे क्रम क्रम पूंजी गाँठ की न खाइये॥ काल काल करत परत आन काल पाश, काल की न आस कछु आज की बनाइये। काया मैं न आई काई तौलौं करिले कमाई, आगि लगे मेरे भाई मेह कहाँ पाइये॥ ११॥

कौड़ी कौड़ी कै कै कोड़ी लाखन करोरी जोरी, तोऊ मानै थोरी जानै लीजै जग लूट कै। माया मैं अरूझ्यो पर स्वारथ न सूझ्यो परमारथ न बूझ्यौ भ्रम भार ही तैं छूट कै॥ जगत कों देत दगे आनि यमदूत लगे, किसन जो सगे वे हूं भगे न्यारे फूट कै। हन्स अन्स ऐंचि लयो अङ्ग रङ्ग भङ्ग भयो, जैसे बीन बजत गयो है तार टूट के॥ १२॥

खेत हेत एक तामैं उत्तम अधम कहा, भये पैदा भयो जब जोग मात तात को। कढ़े सब योनि द्वार मढ़े सब चाम ही तैं गढ़े सब माटी के गढ़ाव एक गात को॥ कीड़े सब नाज के रुधिर मांस सबन के, भरो मल-मूत धरो पिण्ड सात धात को। लायक गुमान के किसन भगवान जान, कोऊ जनि करौ अभिमान काहू बात को॥ १३॥

घरी पल पाउ न रहत ठहराउ करि, आवै कै न आवै फिरि लोह को-सो ताव रे। साँस तौ लौं आस ताही गौन को अभ्यास ऐसो, सहज उदास कित रहै करि भाव रे॥ ज्यों ज्यों भीजै काम्बली विशेष त्यों त्यों भारी होत, आगे ही किसन तातै कीजिये उपाव रे। साँस सो तो वाउ ताके लेखे तेरी आउ अरे, राउ अरु वाउ को बिसास कहा बावरे॥ १४॥

नायिका नि रासी यह बागुरीन भाषी खासी, लिये हासी पासी ताकै पास मैं न परना। पारधी अनङ्ग फिरै भौंहन धनुष धरै, प्रैन नैन बांन खिरै तातैं तोहि डरना॥ कुच है पहार हार नदी रोमराय तृन, किसन अमृत ऐन बैन मुख झरना। अहो मेरे मन-मृग खोल देख ज्ञान दृग, यह बन छोड़ कहूं और ठौर चरना॥ १५॥

नागिनी-सी बेनी कारी बागुरा-सी पाटी पारी, माँग जु सवारी चोर गली तोय टरना। तन सर तामैं जल जोबन सु चख झख, ग्रीव कंबु भुजा जु मृणाल मन हरना॥ नासु शुक दन्त दाखौ नाभी कूप कटि सिंह, किसन सुकवि जङ्घ रम्भ खम्भ बरना। अहो मेरे मन-मृग खोल देख ज्ञान दृग, यह बन छोड़ कहूं और ठौर चरना॥ १६॥

चलैं इह राह खरे शाह पातशाह छरे, धरे ही रहे परे भरे भण्डार दाम के। लूंबे दल-बादल से रहे दल बादल ह्र डूबे मनसूबे मनसूबे कौन काम के॥ तेरी कहा चली भोरे किसन सयाने हो रे, रहिओरे बाकी थोरे वासर मुकाम के। देखे तोरे

तोरे जोरे कोरेइ तमाम अब, केतेक चलावेगो तमाम दाम चाम के ॥ १७ ॥

छारही में ख्वार खर न्हाति जाति जलचर, धरतु जटा जु बर वरतु पतङ्ग है। ध्यान वक धरत रटत राम राम शुक, गाडर मुंडावै पशु अवसु निहङ्ग है॥ सहै तरु ताप घर करि कै न रहैं साँप, किसन दुराप आप अनुभौ अभङ्ग है। रङ्ग वहै रङ्ग कछु मोछ को न अङ्ग पर, यह मन चङ्ग तो कठौत ही मैं गङ्ग है ॥१८॥

जीवित जरासा दुख जनम जरासा तापै डर है खरासा काल सिर पै खरासा है। कोऊ विरला सा जोपै जीवै है पचासा, अन्त वन बीच वासा यही वतका खुलासा है॥ संध्या का-सा वान कान करिवर का-सा जान, चलदल-सा पान चपला-सा उजासा है। ऐसा सार हासा तापै किसन अनन्त आसा, पानी का वतासा तैसा तन का तमासा है॥ १६ ॥

झूठी काया माया के भरोसे भरमाया लाया, माया हू गमाया पर मूरख पौमाया है। ज्यों ज्यों समझाया त्यों त्यों जात मुरझाया, सुरझै न सुरझाया, ऐसा आपै उरझाया है॥ काँचा पाया पाया तातै कौन चैन पाया पर साँचा सोई साया जो किसन ग्रन्थ गाया है। दगा दिया काया जानी यम ने बुलाया आनी, काल बाज खाया तब याद प्रभु आया है॥ २० ॥

ढोयौ नीच घर हरचन्द वड़ वीर नीर, डोले रघुवीर-से ससीत सीत घाम मैं। भयो दुख भागी नल-सङ्ग लागी त्यागी तिय, मुञ्ज-से सभागी भीख माँगी रिपु गाम मैं॥ ऐसे ऐसे

किसन अनेक नेक नरन को, गयो है सो जनम तमामइ तमाम मैं। गोते खात गज तहाँ गाडर को कौन गजौ, अरे नर-बोरे तूतो कूच के मुकाम मैं॥ २१॥

निसको प्रयुञ्ज दिश दिश तैं परिन्द पुञ्ज, जैसे कहूं कुञ्ज मैं निवास लेत लसै है। होत हो सकारे जाति जाति न्यारे न्यारे अरु, प्यारेहु किसन याही रीति रङ्ग रसै है॥ आये हैं कहीं तै दाना पानी के सबब सब, जाहिंगे कहूं हीं यूही पेम फन्द फँसे है। योगरु विजोग को न कीजै यूं हरष शोग, पाहुने तैं घर बसे काके घर बसै है॥२२॥

दयो भोग भारी पै अघातु नाँय पापकारी, यातैं इच्छा चारी पेट चेटका करारी है। यामैं चीज डारी तेतो काम ही तैं टारी, ऐसी किसन निहारी यह कोठरी अन्धारी है॥ कहा नर नारी सिद्ध साधक धरम धारी, पेट ही भिख्यारी पृथ्वी पेट ही तैं हारी है। पेट वारी थारी न्यारी न्यारी है गुनहगारी, पेट ही बिगारी सारी पेट ही बिगारी है॥ २३॥

नर को जनम बार बार न गमार अरे, अजहु समार अवतार न बिगोइये। लीजेगो हिसाब तब दीजेगो जवाब कहा, कीजै जो सताब तो सताब शुद्धि होइये॥ पाप करि कै अज्ञानी सुख की कहा कहानी, घृत की निसानी कित पानी ज्यों बिलोइये। स्वार्थ तजीजै परमारथ किसन कीजै, जनम पदारथ अकारथ न खोइये॥ २४॥

फूट्यो फट्यो ख्वार जाके खुले षट चार द्वार, पींजरो असार यार तामैं पंछी पौन-सो । आवत पिछानिय न जाहि तातें जानिय न, वोलै तातें मानिये सु डोलै रुचि रौन सो ॥ करम को पेलो दाना पानी के सवव घेलो, रोनक किसन जानी भूल्यो मान भौन सो । पावै औधी हौन तौलो करि है कहीं न गौन, करै गौन पौन तो तमासो तामैं कौन सो ॥ २५ ॥

वालपने आपुने ही ख्याल मैं खुसाल लाल, पुन्य की न चाल खातु खेलत सुखात है । आई तरुनाई पै न आई करुनाई जरा, काया में जरा की काई आई-सी दिखात है ॥ गोत अनखात होत शिथिल सकल गात, किसन जरा की घात वसुधा विख्यात है । अरे अभिमानी प्रानी जानी तैं न ऐसी जानी, पानी के निकास ज्यों जवानी चली जात है ॥ २६ ॥

यम जैसे सीस परि ठाढ़े निस दीस अरि तासों विश्ववीस डरी ऐसी करि आँधरे । छारि दे हरामखोरी वूझीरे अवूझी तोरी, जगत् से तोरी जगदीश तैं तो साँध रे ॥ चलाचल साथ न विसारिय किसन नाथ, जैवो है दिखाते हाथ चढ़ै चहुं कान्ध रे । केती जिन्दगानी जोपै एति तें अनीति ठानी, अजौं पानी पहिली गुमानी पाल वाँध रे ॥ २७ ॥

रूठा जमराना भाना काया कमठाना जव, उठै ह्याँ तें थाना कहूँ करना पयाना है । आगु जो ठिकाना सो तो मुलुक विराना तिहाँ, गाँठही का खाना दाना वैठे नित खाना है ॥ ता तैं मन माना पूर करले खजाना अव, किसन सयाना जो तू दाना मरदाना

है। परै मरि आना मरै चूहा है दिवाना जैसे, ऐसे अनजाना नाचि नाचि मर जाना है ॥ २८ ॥

लसुन के लिये न्यारी खात कसतूरी डारी, अम्बर की क्यारी बारी चन्दन करैवे की। हरष भरानी भरी कञ्चन कलश रानी, सिंच्यो इन्द्र सानी पानी गङ्गा ही को दैवे की॥ दई कसबोइ त्यों त्यों चल्यो बद्‌बोइ होइ, भूलहु न करै कोइ इच्छा बोइ लैवे की। हाहारो उपाइ करो किसन उपाइ दाइ, प्रान क्यों न जाइ पर प्रकृति न जैवे की ॥ २९ ॥

खरजु अजान इनसान की न सान-बान, कहा मसतान महा खान मद पान मैं। मूढ़ रूढ़ तानै आपो आपही बखानै यापै ज्ञान मैं न काहु आनै जानै ज्ञान ध्यान मैं। चाल्यो अनमान भलो नाहिंन वृथा गुमान, किसन निदान दिल देहु दया-दान मैं। मानी सीख मेरी हैगी ऐसी गति तेरी यह, जैसी मूढ़ ढेरी हेरी राख की मसान मैं ॥ ३० ॥

लङ्का को अधीस दश शीश भुजा बीस जाके, दयो वर ईश अवनीसता सराहिबी। सागर सी खाई कुम्भकरन से भाई जा की, दुसह दुवाई ठकुराई अवगाहिबी॥ ऐसो राज साज गयो भयो जो अकाज एतो, हाथ प्रभु ही के लाज किसन निभाहिबी। झूठ ही में झूलै नीति-लता उन्मूलै फूलै, साहिब कों भूलै डूलै ऐसी कैसी साहिबी ॥ ३१ ॥

क्षीन भये अङ्ग ये अनङ्ग के तरङ्ग नये, न गये दुरित रङ्ग कहा सत-सङ्ग है। क्रोध ही में काम अभिमान मान आठों जाम, माया

मैं मुकाम गहे लोभ के उमङ्ग है ॥ नींब की निबोरी दीठी पकै तब होत मीठी किसन तिहारे तो निहारे तेइ ढङ्ग है । यिन ही वुभ़त लेश देखी कैसे भये केश, काग रंग हुंते सो अब कागद के रंग है ॥ ३२ ॥

श्रीपति ।

[सं० १७३१]

सवैया—

चारि के अङ्क-सी लङ्क विराजति चीकने चारु उरोज उठौ हैं ।
श्रीपति गोल कपोलन को लखि प्रान सयाने मुनीन के मोहैं ॥
आली री कोटि उपाय करौ किन रैनिह नन्दबबा कि सौं सौंहैं ।
मो हिय माँह गई गड़ि वाकी बड़ी बड़ी आँखि जुटी जुटी भौंहैं ॥

नारि नई रस रङ्ग रचो सिसकै सतराय न घूंघुट खोलै ।
झम्पत आनन यों बिलसै मनु पूरन-चन्द पयोधर ओलै ॥
बेनी छुटी है सचिक्कन स्याम सरोरुह ज्यों घट नील मैं डोलै ।
मानहुँ आनि कुटुम्ब समेत करै जमुना-जल काली कलोलै ॥२॥

ऊपर बैठि निसङ्क मयङ्क नचै छवि सों बिबि खञ्जन तामैं ।
बीच अडोल दुहूं दिसि मोहत है दस मानिक के दल तामैं ॥

वुभ़त=साबुन । लङ्क=कमर । पयोधर=समुद्र । मयङ्क=चन्द्र । बिबि=दो ।

श्रीपति स्याम मनोरथ भौंर नचै चहुंधा रति केलि-कला मैं।
कौन अपूरब चम्पक बेलि लगे बिबि हेम सरोरुह जामैं ॥३॥

चन्द्कला की कला कलधौत की कै चपला थिर है छबि छाजै।
कै ससि सूरज की किरनै यक ठौर है रूप अनूपम साजै॥
श्रीपति जोति को जाल किधौं अवलोकत ही दुख दीरघ भाजै।
पावक जाल कै दीपक माल कै लाल की माल कै बाल बिराजै॥

बैठी अटा पर औध बिसूरत पाये सँदेस न श्रीपति पी के।
देखत छाती फटै निपटै उछटै जब बिज्जु छटा छबि नीके॥
कोकिल कूकैं लगै मन लूकैं उठै हिय हूकैं बियोगिनि ती के।
बारि के वाहक देह के दाहक आये बलाहक गाहक जी के ॥५॥

कवित्त—

बादर रसाल पर दामिनी को ख्याल किधौं चम्पक की माल सी लसत बाल लाल पै। रति के मुकुर पै भुवङ्गिनी लसत कीधौं कारी कारी लर लटकत गोरे गाल पै॥ द्विजराज श्रीपति रसिकमनि सीसफूल रुचुकि रुचुकि कै परत आछे भाल पै। मेरी जान नखत समेत रवि नटवर थारी हाला भरि नाची काली के कपाल पै ॥६॥

घूंघुट उदय गिरिवर ते निकसि रूप सुधा सो कलित छबि कीरति बगारो है। हरिन डिठौना स्याम सुख सील बरखत

हेम=सोना। सरोरुह=कमल। कलधौत=सोना। चपला=बिजली। पावक=अग्नि। मुकुर=दर्पण। भुवङ्गिनी=सांपिनि। कलित=बना हुआ।

करखत सोक अति तिमिर बिदारो है॥ श्रीपति विलोकि सौति वारिज मलीन होति हरषि कुमुद फूलै नन्द को दुलारो है। रञ्जन मदन मन गञ्जन विरह विवि खञ्जन सहित चन्द-वदन तिहारो है॥७॥

फूले वारिजात में लखात है मधुप कैधौं सुखमा सरोवर में रसराज पैठो है। रति के मुकुर पै धरी है स्याम मनि कीधौं काम जू के रथ पै तिमिर छवि जैठो है। श्रीपति सुकवि कैधों सुन्दर गुलाव माँझ मृगमद वुन्द रूप परम परैठो है। कोमल कपोल पर तिल है अमोल मानो पूरन मयङ्क पै निसङ्क शनि वैठो है॥८॥

भौंरन की भीर लेकै दच्छिन समीर धीर, डोलति है मन्द अव तुम धौं कितै रहे। कहै कवि श्रीपति हो प्रवल वसन्त मतिमन्त मेरे कन्त के सहायक जितै रहे॥ जागहि विरह ज्वर जोरते पवन ह्वै कै पर धूम भूमि पै सँभारत नितै रहे। रति को विलाप देखि करुना-अगार कछू लोचन को मूंदि कै त्रिलोचन चितै रहे॥

चोप चढ़ो चौगुनो चतुरताई चातक के चल गति हन्स चित धारियो धरतु है। श्रीपति सुजान मन ललित कदम्ब फूल्यो मनोरथ मुदित मयूर विहरतु है॥ छविहारी हरी रूप वेलि झलरत जात सिसुता जवासो छिन छिन मैं जरतु है। वरसे मदन घन जोवन सलिल उर खेत मँह अङ्कुर उरोज निकरतु है॥ १०॥

वारिजात=कमल। मधुप=भौंरा। रसराज=कामदेव। त्रिलोचन=शङ्कर। चोप=उमङ्ग।

कञ्चन कलस पर पन्नग कुमार राजै आछी आरसी मैं रूप मुकता नचतु है। बिम्ब पर कीर कीर ऊपर कमल तामैं मनमथ धनु हाव-भाव कौ सचतु है। द्विजराज श्रीपति परम आचरज यह मुनिहू को मन प्रेम बेलि बिरचतु है। घन पर बिज्जु बिज्जु ऊपर सरद चन्द चन्द पर राहु ता पै सूरज नचतु है॥ ११॥

कीधौं स्याम घन पर दामिनी दिखाई देत दीपति दुरी सुमति मोह कवि जन की। कीधौं रसपाल हाट पर छबि जाल जुत सोवत है लाल माल जौहरी जुबन की॥ कीधौं मनमथ पाटी ऊपर गुलाब साटी परम सुखारी यारी श्रीपति के मन की। मैन मदमाती की छपति तिय छाती मानौ नील मनि पाटी पर लीक सुबरन की॥ १२॥

भूषित नषत धुरवारे धार धर पर दीपति दिखात देह दामिनि अपार की। कहै कवि श्रीपति हो सरद मयङ्क पै असङ्क विनसत धार तिमिर उदार की॥ कछुक मुछारे भोरे भोरे कारे कौलपर नाचत कुटिल पाँति मधुप कुमार की। मैन मदमाती पिय हिय सों लगति मानौ मरकत पाटी पर छबि लाल हार की॥ १३॥

फूले आस पास कास विमल अकास भयो, रही ना निसानी कहूं महि मैं गरद की। गुञ्जत कमल दल ऊपर मधुप मैन छाप-सी दिखाई आनि बिरह फरद की॥ श्रीपति रसिक लाल आली बनमाली बिन, कछू न उपाय मेरे दिल के दरद की। हरद समान तन जरद भयो है अब, गरद करत मोहि चाँदनी शरद की॥१४॥

पन्नग=साँप। कीर=तोता। लीक=रेखा। तिमिर=अन्धेरा। मरकत=पन्ना।

जल भरे झूमैं मानौं भूमैं परसत आप, दशहुं दिशान घूमैं दामिनी लये लये। धूर धार धूसरित धूम से धुधारे कारे, धोर धुरवान धाकैं छवि सों छये दये॥ श्रीपति सुकवि कहैं घरी घरी घहरात, तावत अतनतन ताप सों तये तये। लाल बिन कैसे लाज चादर रहैगी आज, कादर करत मोहिं वादर नये नये॥ १५॥

भैया भगवतीदास।

[सं० १७३१]

सवैया।

काहे को कूर तू क्रोध करै अति, तोहि रहैं दुख सङ्कट घेरे।
काहे को मान महाशठ राखत, आवत काल छिनै छिन नेरे॥
काहे को अन्ध तु बन्धत माया सों, ये नरकादिक में तुहै गेरे।
लोभ महादुख मूल है भैया, तू चेतत क्यों नहिं चेत सवेरे॥१॥

काहे को कूर तू भूरि सहै दुख, पञ्चन के परपञ्च भखाये।
ये अपने अपने रस को नित, पोखतु हैं तोहि लोभ लगाये॥
तू कछु भेद न बूझतु वञ्चक, तोहिं दगा करि देत बँधाये।
है अबके यह दाव भलो नर! जीत ले पञ्च जिनन्द बताये॥२॥

शुद्धि तें मीन पिये पय बालक, रासभ अङ्ग विभूति लगाये।
राम कहे शुक ध्यान गहे बक, भेड़ तिरै पुनि मूंड़ मुड़ाये॥

वस्त्र बिना पशु ब्योम चलै खग, ब्याल तिरै नित पौन के खाये।
एतो सबे जड़रीत विचक्षन! मोक्ष नहीं बिन तत्त्व के पाये ॥३॥

कर्म स्वभाव सों ताँतोसो तोरि कै, आतम लछन जानि लिये हैं।
ध्यान करै निहचै पद को जिहँ, थानक और न कोऊ ठये हैं॥
ज्ञान अनन्त तहाँ प्रतिभाषत, आपु ही आपु स्वरूप छये हैं।
और उपाधि पखारि कै चेतन, शुद्ध भये तेउ सिद्ध भये हैं ॥४॥

वे दिन क्यों न बिचारत चेतन, मात की कूख में आय बसे हो।
ऊरध पाँव नगे निशिवासर, रञ्च उसासनि को तरसे हो॥
आव संयोग बचे कहुं जीवत, लोगन की तब दृष्टि लसे हो।
आजु भये तुम यौवन के रस, भूल गये कित तैं निकसे हो ॥५॥

बालक है तब बालक सी बुधि जोबन काम हुतासन जारे।
वृद्ध भयो तब अङ्ग रहे थकि, आये हैं सेत गये सब कारे॥
पाँय पसारि पस्रो धरती महिं, रोवै रटै दुख होत महा रे।
बीती यों बात गयो सब भूलि तू, चेतत क्यों नहिं चेतन हारे ॥६॥

जो परलीन रहै निशिवासर, सो अपनी निधि क्यों न गमावै।
जो जग माहिं लखै न अध्यातम, सो जिय क्यों निहचै पद पावै॥
जो अपने गुन भेद न जानत, सो भवसागर में फिर आवै।
जो विष खाय सो प्रान तजै, गुड़ खाय जो काहे न कान बिंधावै ॥७॥

हे मन नीच निपात निरर्थक, काहे को सोच करै नित क्रूरो।
तूं कितहू कितहू पर द्रव्य है, ताहि की चाह निशा दिन झूरो॥

आवत हाथ कछू शठ तेरेजु, बाँधत पाप प्रणाम न पूरो।
आगे को बेल बढ़े दुख की कछु, सूझत नाहिं किधौं भयो सूरो ॥८॥

कवित्त—

ग्रीषम में धूप परै तामें भूमि भारी जरै, फूलत है आक पुनि अतिहि उमहिकैं। वर्षाऋतु मेघ झरै तामें वृक्ष केई फरै, जरत जवासा अघ आपहीतैं डहिकै॥ ऋतु को न दोष कोऊ पुन्यपाप फलै दोऊ जैसें जैसें किये पूर्व तैसे रहि सहिकैं। केई जीव सुखी होहिं केई जीव दुखी होहिं देखहु तमासो 'भैया' न्यारे नैकु रहिकैं ॥ ९ ॥

सुनो राय चिदानन्द! कहोजु सुबुद्धि रानी, कहैं कहा बेर बेर नेकु तोहि लाज है ?। कैसी लाज कहो कहा हम कछु जानत न, हमें इहाँ इन्द्रिन को विषै सुख राज है॥ अरे मूढ़ विषै सुख सेयें तू अनन्ती बेर, अजहूं अघायो नाहिं कामी शिरताज है। मानुष जनम पाय आरज सु खेत आय, जो न चेतै हन्सराय तेरो ही अकाज है॥ १० ॥

जेतो जल लोक मध्य सागर असंख्य कोटि, तेतौ जल पीयो पै न प्यास याकी गयी है। जेते नाज दीप मध्य भरे है अबार ढेर, तेतौ नाज खायो तोऊ भूख याकी नयी है॥ तातें ध्यान ताको कर जातैं यह जाँय हर, अष्टादश दोष आदि येही जीत लयी है। यहै पन्थ तूहीं साजि अष्टादश जाहिं भाजि होय बैठि महाराज तोहि सीख दयी है॥ ११ ॥

अपनी कमाई भैया पाई तुम यहाँ आय, अब कछु सोच किये हाथ कहा परि है। तब तो विचार कछु कीन्हों नाहिं बन्ध समै याके फल उदै आय हमै ऐसे करि है॥ अब पछताये कहा होत है अज्ञानी जीव, भुगते ही बनै कृति कर्म कहूं हरि है। आगे को संभारिकें विचार काम वही करि, जातें चिदानन्द फन्द फेर कै न धरि है॥ १२॥

केई केई बेर भये भू पर प्रचण्ड भूप, बड़े बड़े भूपन के देश छीन लीने हैं। केई केई वेर भये सुर भौनवासी देव केई केई बेर तो निवास नर्क कीने हैं॥ केई केई बेर भये कीट मलमूत माहिं, ऐसी गति नीच बीच सुख मान भीने हैं। कौड़ी के अनन्त भाग आपन विकाय चुके, गर्व कहा करै मूढ़! देख! दृग दीने हैं॥ १३॥

बैताल।

[सं० १७३४]

छप्पय-

एक अङ्ग भुज चार, शीश सोलह जो कहिये।
चार चरण सों चलै, नेत्र चौंसठ युग लहिये॥
द्वै मुख है परत्यक्ष, चौदहो भुवन में छाये।
नीति लोक में फिरै, देव सब पूजन आये॥
सात दीप नव खण्ड में, आदि अन्त जाको सुयश।
बैताल कहै विक्रम सुनो, योग शृङ्गार की वीर-रस॥१॥

मरै बैल गरियार मरै, वह अड़ियल टट्टू।
मरै करकसा नारि मरै, वह खसम निखट्टू॥
बाँभन सो मरि जाय, हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मरि जाय, जु कुल में दाग लगावै॥
अरु बे-नियाव राजा मरै, तबै नींद भरि सोइये।
बैताल कहै विक्रम सुनो, एते मरे न रोइये॥२॥

राजा चञ्चल होय, मुलुक को सर करि लावे।
पण्डित चञ्चल होय, सभा उत्तर दै आवै॥
हाथी चञ्चल होय, समर में सूंड़ि उठावै।
घोड़ा चञ्चल होय, झपटि मैदान दिखावै॥
हैं ये चारों चञ्चल भले, राजा पण्डित गज तुरी।
बैताल कहै विक्रम सुनो, तिरिया चञ्चल अति बुरी॥३॥

दया चट्ट ह्वै गई, धरम धँसि गयो धरन में।
पुन्य गयो पाताल, पाप भो बरन बरन में॥
राजा करै न न्याय, प्रजा की होत खुवारी।
घर घर में बे-पीर, दुखित भे सब नर-नारी॥
अब उलटि दान गजपति मँगै, सील सन्तोष कितै गयो।
बैताल कहै विक्रम सुनो, यह कलयुग परगट भयो॥४॥

मर्द सीस पर नवै, मर्द बोली पहिचानै।
मर्द खिलावै खाय, मर्द चिन्ता नहिं मानै॥
मर्द देय औ लेय, मर्द को मर्द बचावै।
गाढ़े सँकरे काम, मर्द के मर्दै आवै॥

पुनि मर्द उनहिं को जानिये, दुख-सुख साथी दर्द के।
बैताल कहै विक्रम सुनो, लच्छन हैं ये मर्द के ॥५॥
चोर चुप्प ह्वै रहै, रैन अँधियारी पावै।
सन्त चुप्प ह्वै रहै, मढ़ी में ध्यान लगावै॥
वधिक चुप्प ह्वै रहै, फाँसि पंछी लै आवै।
छैल चुप्प ह्वै रहै, सेज पर तिरिया पावै॥
वर पिपर पात हस्ती स्त्रवन, कोइ कोइ कवि कुछ कुछ कहैं।
बैताल कहै विक्रम सुनो, चतुर चुप्प कैसे रहै ॥६॥
ससि विन सूनी रैन, ज्ञान विन हिरदै सूनो।
कुल सूनो विनु पुत्र, पत्र विन तरुवर सूनो॥
गज सूनो विन दन्त, सलिल विन सायर सूनो।
विप्र सून विन वेद, वास विन पुहुप विहूनो॥
हरि नाम भजन विन सन्त, अरु घटा सून विन दामिनी।
वैताल कहै विक्रम सुनो, पति विन सूनी कामिनी ॥७॥
बुधि विन करै बेपार, दृष्टि विन नाव चलावै।
सुर विन गावै गीत, अर्थ विन नाच नचावै॥
गुन विन जाय विदेश, अकल विन चतुर कहावै।
बल विन बाँधे युद्ध, हौंस विन हेत जनावै॥
अन-इच्छा इच्छा करै, अनदीठी बाताँ कहै।
वैताल कहै विक्रम सुनो, यह मूरख की जात है ॥८॥
जीभि जोग अरु भोग, जीभि बहु रोग बढ़ावै।
जीभि करै उद्योग, जीभि लै कैद करावै॥

जीभ स्वर्ग लै जाय, जीभि सब नरक दिखावै।
जीभि मिलावै राम, जीभि सब देह धरावै॥
निज जीभि ओठ एकत्र करि, बाँट सहारे तोलिये।
बैताल कहै विक्रम सुनो, जीभि सँभारे बोलिये॥९॥

पग विन कटै न पन्थ, बाहु विन हटै न दुर्जन।
तप विन मिलै न राज, भाग्य विन मिलै न सज्जन॥
गुरु विन मिलै न ज्ञान, द्रव्य विन मिलै न आदर।
विना पुरुष सिंगार, मेघ विन कैसे दादुर॥
बैताल कहै विक्रम सुनो, बोल बोल बोली हटै।
धिक्क धिक्क ये पुरुष को, मन मिलाइ अन्तर कटै॥१०॥

अनन्य।

[सं० १७३५]

सवैया—

विधि भेद निषेद न जाने कछू, मन के अनुसार लही सो लही।
नहिं रीति है वेद पुरानन की, अनरीत सों टेक ठही सो ठही॥
समुझाये नहीं समझै गुरु के, उर के अनुमान कही सो कही।
यह तामसि ज्ञान अनन्य कहै, हठि मूरख गाँठ गही सो गही॥१॥

हर्ष न शोक न राग न रोषहु, बन्धन मोक्ष की आस नहीं है।
बैर न प्रीत न हार न जीत न, गार न गीत सो रीत ग्रही है॥
ऊँच न नीच न जात न पाँत न, द्योस न रात सुदृष्टि भही है।
निर्गुन ज्ञान अनन्य कहै, अवधूत अतीत की रीति यही है॥२॥

उदयनाथ (कवीन्द्र) ।

[सं० १७३६]

सवैया—

कुञ्जन ते मग आवत गावत राग बनावत देवगिरी को ।
सो सुनि कै वृषभानु-सुता तलफै जिमि पञ्जर जीव चिरी को ॥
तार थकै नहिं नैनन ते सजनी अँसुवान की धार झिरी को ।
मार मनोहर नन्द कुमार के हार हिये लखि मौलसिरी को ॥१॥

कवित्त ।

रनबन भू मैं तव भुज लतिका पै चढ़ी कढ़ी म्यान बाँबी ते विषम विष भरी है। जा रिपु को डसै सोतौ तजै प्रान ताही छन गारुड़ी अनेक हारे झारे ते न झरी है॥ भनत कविन्द्र राव बुद्ध अनिरुद्ध तनै जुद्ध बीरता सों एक तूही बस करी है। तरल तिहारी तरवारि पन्नगी को कहूं मन्त्र है न तन्त्र है न जन्त्र है न जरी है॥ २॥

श्रीधर ।

[सं० १७३७]

छन्द हरिगीतिका—

चहुं ओर फौजनि फौज सों मन मौज मारु महा परी ।
हथियार भार दुधार भर मनु मघा मेघन की झरी ॥

झिरि झिलम कुण्ड कुरी कुरी किरि गई बखतर की करी।
करि मारु मारु सँभारु थार सँभारु सुनियत ललकरी॥
घन घटा घोर घमण्ड सो सम घुमड़ि फर फौजैं रही।
धौंसे धोकारत गाज गहि तरवारि चमक छटा सही॥
झरतीर गोलिन वार गोला परत ओलासे तही।
महि मची मेदनि गूद कीच कृपान सैयद जब गही॥
मदभरे भ्रमत खरे अघाइ अघाइ करिवर थर अरै।
सिर स्त्रवत सोनित धार मनहुँ पहार सों झरना झरै॥

घनश्याम शुक्ल।

[सं० १७३७]

कवित्त—

बैठी चढ़ि चाँदनी में चन्द्रमा विलोकन को, उन्नत उरोजन ते उछरे हरा परैं। दमा छमा केतिक तिलोत्तमा है घनश्याम, रमा रति रूप देखि धसकी धरा परैं॥ जेवर जड़ाऊ मोर जगमगै अङ्गन ते, नेवर जड़ाऊ तेज तरनि तरा परैं। राधे मुख मण्डल मयूखन ते महाराज छूटि कै छपाकर के ऊपर छरा परैं॥ १॥

उमड़ि घुमड़ि घन आवत अटान चोट, घन घन जोति छटा छटकि छटकि जात। सोर करैं चातक चकोर पिक चहवार मोर ग्रीव मोरि मोरि मटकि मटकि जात॥ सावन लौं आवन सुनो है घनश्याम जू को, आँगन लौं आय पाँय पटकि पटकि

जात। हिये बिरहानल की तपनि अपार उर, हार गज मोतिन को चटकि चटकि जात ॥ २ ॥

चन्द्र अरविन्द बिम्ब बिद्रुम फनिन्द सुक कुन्दन गयन्द कुन्द कली निदरति है। चम्पा सम्पा सम्पुट कदलि घनश्याम कहाँ कुंकुम को अङ्गराग अङ्गन करति है॥ केहरि कपोत पिक पल्लव कलिन्दी घन, दरके निरखि दाह्यो छतिया बरति है। मेरे इन अङ्गन की नकल बनाई बिधि नकल बिलोके मोहिं कल ना परति है॥ ३ ॥

लाल।

[सं० १७३८]

सवैया—

बाँह डुलाइ चलै अति ऐंडसों, भौंहन ही हँसि बात कहे री।
गोल कपोल उतुङ्ग नितम्ब, विलोकत लोचन लागि रहे री॥
जानति है गड़ि जात हिये खन, जो भरि अङ्कम नेकु गहे री।
काहे न कान्ह रहे निपटै लटि ज्यों यह जोबन याहि लहे री ॥१॥

रतन।

[सं० १७३८]

सवैया-

निकसे नव निर्जन कुञ्जन ते अँग अङ्ग अनङ्ग के प्रेम जगे।
किये कानन केतकी की कलिका कमनीय कपोल पराग पगे॥

लखि यों विधि राधिका माधव की भरि वारि वलाहक ज्यों उमगे ।
बरसे नयना झरि लाइ भले निरखे तन को न निमेष लगे ॥१॥

उरते गिरि मोतिन माल परी कटि लागत कण्ठ तटी कल सों ।
भृकुटी तट मोरि कछू छवि सों करनाम्बुज डारि भुजावल सों ॥
अलवेलिय भाँति खुजावति कान सुरङ्ग खरी अंगुरीदल सों ।
तिरछे वलवीर हि वारहि वार विलोकत वालवधू छल सों ॥२॥

नेवाज।

[सं० १७३६]

सवैया—

छतिया छतिया सो लगाये दोऊ दोऊ जी में दुहूं के समाने रहैं ।
गई वीति निसा पै निसा न भई नये नेह में दोऊ विकाने रहैं ॥
पट खोलै नेवाज न भोर भये लखि दौस को दोऊ सकाने रहैं ।
उठि जैवे को दोऊ डेराने रहैं लपटाने रहैं पट ताने रहैं ॥१॥

मुख चुम्बन में मुख लै जो भजै पिय के मुख मैं मुख नायो चहै ।
गलवाहीं गोपाल के मेलत ही मुख नाहीं कहै मन ते न कहै ॥
नहिं देति नेवाज छुवै छतिया छतिया सों लगाये ते लागी रहै ।
कर खैंचत सेज की पाटी गहै रति में रति की परिपाटी गहै ॥२॥

वाँह दुहूं की दुहूं के उसीसें दुहूं हियसों हिय गाढ़े गहे हैं ।
दूसरी वाँह दुहूं दुहूं ऊपर दोऊ नेवाज जो नेह नहे हैं ॥

सोहै दुहूं के मिले मुखचन्द दुहूंन के स्वेद के बुन्द बहे हैं।
खोइकै दोऊ मनोज विथा श्रम अङ्क समोइ के सोइ रहे हैं॥३॥

सोये अकेले रहैं दिन मैं ससुरारि मैं काहू वै नाहिं सकात हैं।
भोजन काज जगाये नेवाज उठे रति केलि थके अरसात हैं॥
सारी निसा के जगे ढिग सासु के ज्यौं २ लला अङ्गिरात जम्हात हैं।
त्यों २ उतै लखि लाड़िली के बड़े लोचन लाजन सों गड़े जात हैं॥४॥

देखि हमैं सब आपुस मैं जो कछू मन भावै सोई कहती हैं।
ये घर हाई लोगाई सबै निसि दौस नेवाज हमैं दहती हैं॥
बातैं चवाव भरी सुनि कै रिसि आवति पै चुप ह्वै रहती है।
कान्ह पियारे तिहारे लिये सिगरे ब्रज को हँसिबो सहती हैं॥५॥

आगे तौ कीन्हीं लगालगी लोयन कैसे छिपै अजहूं जो छिपावति।
तू अनुराग कौ सोध कियो ब्रज की बनिता सब यौं ठहरावति॥
कौन सङ्कोच रह्यो है 'नेवाज' जो तू तरसै औ उन्हैं तरसावति।
बावरी जो पै कलङ्क लग्यो तौ निसङ्क ह्वै काहे न अङ्क लगावति॥६॥

सुनती हो कहा भजि जाहु घरै विधि जाहुगी मैन के बानन में।
यह बन्सी नेवाज भरी विष सों विष सो बगरावति प्रानन में॥
अबहीं सुधि भूलिहो मेरी भटू भभरो जनि मीठी सी तानन में।
कुलकानि जो आपनी राखी चहौ दै रहौ अँगुरी दोऊ कानन में॥७॥

देवीदास।

[सं० १७४२]

कवित्त--

कीरति को मूल एक रैनदिन दीवो दान, धरम को मूल एक साँच पहिचानिवो। बढ़िवे को मूल एक ऊँचो मन राखिवो औ जानिवे को मूल एक भली बात मानिवो॥ व्याधि मूल भोजन उपाधि मूल हाँसी देवी, दारिद को मूल एक आलस बखानिवो। हारिवे को मूल एक आतुरी है रन माँझ, चातुरी को मूल एक बात कहि जानिवो॥ १॥

मैमत मतङ्ग देखि फौज चतुरङ्ग देखि, जीतौं कोउ जङ्ग देखि प्रजा कर देति हैं। गढ़े गढ़ कोट देखि सूरन की जोट देखि, सम्पति अटोट देखि सुख सौं सचेति हैं॥ देवीदास तो पै महराजनि की नीति यहै वैरी तें बचैंगो सोई सदा सावचेति है। तातौं जैसे सुन्दर सरावा छत बाती छत, तैल छत दीप कौं बयारि मारि लेति है॥ २॥

सैयद गुलाम नबी 'रसलीन'।

[सं० १७४६]

दोहा--

वारन निकट ललाट यों, सोहत टीका साथ।
राहु गहत मनु चन्द पै, राख्यो सुरपति हाथ॥१॥

लाल माँग पटिया नहीं , मदन जगत को मार।
असित फरी पै लै धरी , रकत भरी तरवार ॥२॥
ढुरै माँग ते भाल लौं , लर के मुकुत निहारि।
सुधा बुन्द मनु बाल ससि , पूरत तम हिय फारि ॥३॥
मुकुत भये घर खोय के , बैठे कानन आय।
अब घर खोवत और के , कीजे कौन उपाय ॥४॥
यों तारे तिय दृगन के , सोहत पलकन साथ।
मनो मदन हिय सीस विधु , धरे लाज के हाथ ॥५॥
अमी हलाहल मद भरे , श्वेत श्याम रतनार।
जियत मरत झुकि झुकि परत , जिहि चितवत इक बार ॥६॥
तन सुवरन के कसत यों , लसत पूतरी श्याम।
मनौ नगीना फटिक मैं , जरी कसौटी काम ॥७॥
कोयन सर जिन के करे , सोयन राखे ठौर।
कोइन लोयन ना हनो , कोयन लोयन जोर ॥८॥
रे मन रीति विचित्र यह , तिय नैनन के चेत।
विष काजर निज खाय के , जिय औरन के लेत ॥९॥
गहि दृग मीन प्रबीन की , चितवनि बन्शी चारु।
भव-सागर में करत हैं , नागर नरन सिकारु ॥१०॥
दाग सीतला को नहीं , मृदुल कपोलन चारु।
चिन्ह देखियत ईठ की , परी दीठ के भारु ॥११॥

असित=काला। फरी=ढाल। मुकुत=मुक्ता, मुमुक्षु। कानन=कानों में, जङ्गल। विधु=चन्द्र। अमी=अमृत। हलाहल=जहर। रतनार=सुर्ख।

सुधा लहर तुव बाँह के , कैसे होत समान।
वा चखि पैयत प्रान को , या लखि पैयत प्रान ॥१२॥
छाक छाक तुव नाक सों , यों पूंछत सब गाँव।
किते निवासिन नासिके , लह्यो नासिका नाँव ॥१३॥
तेरस दुतिया दुहुन मिलि , एक रूप निज ठानि।
भोर साँझ गहि अरुनई , भए अधर तुव आनि ॥१४॥
अरुन दशन तुव वदन लहि , को नहिं करै प्रकास।
मङ्गल सुत आये पढ़न , विद्या बानी पास ॥१५॥
स्याम दसन अधरान मधि , सोहत हैं इहि भाँति।
कमल बीच बैठी मनो , अलि छवनन की पाँति ॥१६॥
रमनी मन पावत नहीं , लाज प्रीति को अन्त।
दुहूँ ओर ऐंचो रहै , ज्यों बिबि तिय को कन्त ॥१७॥
अद्भुत एनों परत तुव , मधुबानी श्रुति माहिं।
सब ज्ञानी ठवरे रहैं , पानी माँगत नाहिं ॥१८॥
नहिं मृगङ्क भू अङ्क यह , नहिं कलङ्क रजनीस।
तुव मुख लखि हारो कियो , घसि घसि कारो सीस ॥१९॥
मुख छवि निरखि चकोर अरु , तन पानिप लखि मीन।
पद-पङ्कज देखत भँवर , होत नयन रसलीन ॥२०॥
सूछम कटि वा बाल की , कहौं कवन परकार।
जाके ओर चितौत हीं , परत दृगन में बार ॥२१॥
यौं भुजबन्द की छवि लसी , झवियन फूंदन घौर।
मानो झूमत हैं छके , अमी कमल तर भौंर ॥२२॥

कठिन उठाये सीस इन, उरजन जोबन साथ।
हाथ लगाये सबन को, लगे न काहू हाथ ॥२३॥
निरखि निरखि वा कुचन गति, चकित होत को नाहिं।
नारी उर तें निकरि कै, पैठत नर उर माहिं ॥२४॥
गोरे उरजन स्यामता, दृगन लगत यह रूप।
मानो कञ्चन घट धरे, मरकत कलस अनूप ॥२५॥
निरखत नीवी पीत को, पलन रहत है चैन।
नाभी सरसिज कोस के, भौंर भये हैं नैन ॥२६॥
तुव पग तल मृदुता चितैं, कवि बरनत सकुचाहिं।
मन में आवत जीभ लों, मत छाले पर जाहिं* ॥२७॥

घन आनन्द।

[सं० १७४६]

सवैया—

मेरोई जीव जौ मारत मोहिं तौ प्यारे कहा तुमसों कहनो है।
आँखिन हू पहिचानत जो कछु ऐसोई भागनि कौ लहनो है॥
आस तिहारिये हो घन आनन्द कैसे उदास भये रहनो है।
जान है होत इते पै अजान जौ तौ बिन पावक ही दहनो है ॥१॥

---

* कितनी सुकुमारता है! तलवों की कोमलता इतनी बढ़ गयी है कि, वे उपमा के लिये भी जबान पर नहीं लाये जा सकते! क्यों? इसलिये कि कहीं फफोले न पड़ जांय!!

आस लगाइ उदास भए सु करी जग मैं उपहास कहानी।
एक बिसास की टेक गहाई कहा वस जो उर औरही ठानी॥
एहो सुजान सनेही कहाइ दई कित बोरत है बिनु पानी।
यौं उघरे घन आनन्द छाई कै हाय परी पहिचान पुरानी॥२॥

देखो कौं आरसी लै वलि नैक लसी है गुराई मैं कैसी ललाई।
मानो उदोत दिवाकर की दुति पूरनचन्दहिं भेंटन आई॥
फूलत कञ्ज कमोद लखैं घन आनन्द रूप अनूप निनाई।
तो मुख लाल गुलालहिं लाइकै सौतनि के हिय होरी लगाई॥३॥

प्रान पखेरू परे तरफैं लखि रूप चुगौ जु फँदे गुन गाथनि।
क्यों हतियै हितपालसुजानि दया विन व्याधि वियोग के हाथनि॥
सालत वान समान हिये खुलहे घन आनन्द जे सुख साथनि।
देहु दिखाइ दई मुखचन्द लग्यौ अब औधि दिवाकर आथनि॥४॥

साधन हीं मरियै भरियै अपराधनि वा धनि के घन छावत।
देखैं कहा सपनेहु न देखत नैन यों रैन दिना झरि लावत॥
जो कहूं जान लखै घन आनन्द तौ तव नेक न औसर पावत।
कौन वियोग भरे अँसुवा जो संयोग मैं आगे ही देखन धावत॥५॥

चूर भयौ चित चोर परे खनि, एहो कठोर अजौं दुख पीसति।
साँस हियै न समाइ सँकोचनि हाइ इते पर वा न कसीसति॥
ओटन चोट करो घन आनन्द नीके रहौ निसि द्यौस असीसति।
प्राननि बीच बसे हौ सुजान पै आँखनि दोष कहा जु न दीसति॥

सावन आवन हेरि सखी मन भावन आवन चोप विशेखी।
छाए कहूं घन आनन्द जान सँभार की ठौर लै भूलनि लेखी॥
बूंदैं लगैं सब अङ्ग उदै उलटी गति आपने पापनि पेखी।
पौन सों जागत आगि सुनीही पै पानी सों लागत आजु मैं देखी॥

पर-काजहिं देह को धारैं फिरैं परजन्य यथारथ ह्वै बरसौ।
निधि नीर सुधा के समान करौ सबही विधि सज्जनता सरसौ॥
घन आनन्द जीवन दाइक हौ कछु मेरी औ पीर हियै सरसौ।
कबहूं वा बिसासी सुजान के आँगनि मो असुवाँन को लै बरसौ॥

कान्ह परे बहुताइत मैं इकलैन की वेदन जानौ कहा तुम।
हौ मन मोहन मोहे कहूं सुबिधा बिमनैन को जानौ कहा तुम॥
बौरे वियोगनि आप सुजान हौ हाइ कछू उर आनौ कहा तुम।
आरति वन्त पपीहनि कौ घन आनन्द जू पहिचानौ कहा तुम॥९॥

छप्पय-

महो दूध सम गनै, हन्स वग भेद न जानै।
कोकिल काक न ज्ञान, करै मन एक प्रमानै॥
चन्दन काठ समान, राँग सम रूपौ तोलैं।
विन विवेक गुन दोष, मूढ़ कवि ओरनि बोलैं॥
प्रेम नेम हित चतुर जन, जे न बिचारत नैक मन।
सपनेहू न विलम्बियै, छिन तिन ढिग आनन्द घन॥१०॥

रनछोड़ ।

[सं० १७५०]

कवित्त—

चढ़ि गे अवधि ऐसे धिक मोह मेट्यो नाहिं, दियो दुख देह सु तो नेह विसरायो है। विरह की ज्वाला जाल जरि २ उठै जीव, पीव २ करैं यों अनङ्ग उर छायो है॥ आयो सासुसुत ता को तात चल्यो मिलिवे को, चढ़ि चित्रसारी नारी नीके चित लायो है। कहै रनछोर दोऊ मिले चारों भुजा जोरि, ससुर की छाती लगे वह सुख पायो है॥ १॥

कुन्दन ।

[स० १७५२]

कवित्त—

सूम पतिनी सों कहै सपने की वात सुन, अकथ कहानी एक वर-वस हास्यो तो। चाँदी को धस्यो तो जोरि जोरि कै कस्यो तो गाड़ भूमि में धस्यो तो फेर हाथ में निकास्यो तो॥ कुन्दन कहत कवि आयो एक ताहि समै, कविता पढ़े तें वाको देवो अनुसास्यो तो॥ होव कुल दाग वड़ो सुत को अभाग जो मैं, जाग न परो तो ये रुपैयो देइ डास्यो तो॥ १॥

दाता सुन्यो तोकों जव विक्रम सो जान्यो दिल, वात दुःख दर्दहू की कहिकै वताई मैं। तव तो न दीन्हों जव भोज सो

स्वभाव चीन्हो, भाँति भाँति तेरी बहु कीरतिहु गाई मैं॥ गुन तैं भयो न प्रश्न तब तो जान्यो मैं कृष्ण, तीजी वेर तन्दुल ज्यों कम्बल दिखाई मैं। खुद है उधार खाता देखा शून्य शङ्क दाता, मेरी चीज दे दे तेरी रीझ भरपाई मैं॥ २॥

घाघ।

[सं० १७५३]

मुए चामतें चाम कटावैं, सँकरी भुंइमां स्वावै।
घाघ कहै ई तीनिउ भकुवा, उढ़रि गये पर स्वावै॥१॥

सुथन पहिरे हर ज्वातैं, औ बोझु धरे अठिलायँ।
घाघ कहै ई तीनिउ भकुवा, पीसत पान चबायँ॥२॥

उधारु काढ़ि न्यौहारु चलावैं, छप्परु डारैं तारो।
सारे के सँग बहिनि पठावैं, तिनिउ का मुंह कारो॥३॥

दोहा—

सावन शुक्ला सप्तमी, जो गरजै अधरात।
तू पिय जैहो मालवा, हौं जैहौं गुजरात॥४॥

घर घोड़ा पैदल चलै, तीर चलावे बीन।
थाती धरै दमाद घर, जग में भकुवा तीन॥५॥

भिखारीदास ।

[सं० १७५५—१८१० तक]

सवैया—

भौन अन्धेरेहु चाहि अन्धेरे चमेली के कुञ्ज के पुञ्ज बने हैं ।
बोलत मोर करै पिक सोर जहाँ तहाँ गुञ्जत भौंर घने हैं ॥
दास रच्यो अपने ही विलास को मैन जू हाथन सों अपने हैं ।
कूल कलिन्दजा के सुखमूल लतान के वृन्द वितान तने हैं ॥१॥

कञ्ज सकोचि गड़े रहैं कीच मैं मीनन बोरि दियो दह नीरन ।
दास कहैं मृगहू को उदास कै वास दियो है अरन्य गँभीरन ॥
आपुस मैं उपमा उपमेय ह्वै नैन ये निन्दत हैं कवि धीरन ।
खञ्जनहूं को उड़ाय दियो हलके करि दीन्हें अनङ्ग के तीरन ॥२॥

प्रीतम प्रीति मई उनमानै परोसिन जानै सुनी तिहि सोठई ।
लाज सनी है बड़ी निमनी वर नारिन मैं सिरताज गनी गई ॥
राधिका को ब्रज की जुवती कहैं याहि सोहाग समूह दई दई ।
सौति हलाहल सौति कहै औ सखी कहै सुन्दरि सील सुधामई ॥

नैनन को तरसैये कहाँ लौं कहाँ लौं हियो विरहागि में तैये ।
एक घरी न कहूं कलपैये कहाँ लगि प्रानन को कलपैये ॥
आवै यहै अब 'दास' बिचार सखी चलि सौतिहु के गृह जैये ।
मान घटे ते कहा घटि है जुपै प्रान पियारे को देखन पैये ॥४॥

दास जू लोचन पोच हमारे न सोच सकोच विधाननि चाहै।
क्रूर कहै कुलटा कहै कोऊ न वेहू कहूँ कुल साननि चाहै॥
तातें सनेह में बूड़ि रहीं इतने ही में जानौ जो जानन चाहै।
आनन दै कहै आड़ गोपाल को आनन चाहिबो आनन चाहैं॥५॥

सखि तेहूँ हुती निसि देखत ही जिन पै वे भई हीं निछावरियाँ।
तिन पानि गह्यो हुतो मेरो तबै सब गाय उठीं ब्रज गाँवरियाँ॥
अँसुवा भरि आवत मेरे अजौं सुमिरे उनकी पग पाँवरियाँ।
कहि को है हमारे वे कौन लगैं जिनके सँग खेली हीं भाँवरियाँ॥

चन्द सो आनन मेरो विचारो तौ चन्दही देखि सिराओ हियो जू।
बिम्ब-सो जो अधरान बखानो तो बिम्बही को रस पीओ जियो जू॥
श्रीफलही क्यों न अङ्क भरौ जो पै श्रीफल मेरे उरोज कियो जू।
दीपति मेरी दिये सी है 'दास' तो जाऊँ हौं बैठि निहारो दियो जू॥७॥

दीपक जोति मलीनी भई मनि भूषन जोति की आतुरिया है।
दास न कौल कली बिकसी निज मेरी गई मिलि आँगुरिया है॥
सीरी लगै मुकतावलि तेऊ कपूर की धूरनि सो पुरिया है।
पौढ़े रहौ पट ओढ़े इती निसि बोले नहीं चिरिया चुरियाँ है॥८॥

ये विधि जो विरहागि के वान सों मारत हौ तो इहै बर माँगौं।
जो पशु होउँ तऊ मरिकै सहूं पाँवरी ह्वै हरि के उर लागौं॥
दास पखेरुन में करौ मोर जु नन्दकिशोर प्रभा अनुरागौं।
भूषन कीजिये तौ वनमालहिं जातें गोपालहिं के हिय लागौं॥९॥

हेरि अटान ते बाहेर आनि कै लाज तज्यौ कुलकानि बहायौ ।
कौन न कानन दीन्हो सखी सिखि कानन कानन लीन्हे फिरायो ॥
जाहि बिलोकिबे को अकुलात ही सोऊ सखी भरि आँखि दिखायो ।
तापर नेकु रहै नहिं चैननि मोहिं तौ नैननि नाच नचायो ॥१०॥

चीकनी चारु सनेह सनी चिलकै दुति मेचक ताहि अपार सो ।
जीति लिये मखतूल के तार तमी तमतार दुरेफ कुमार सो ॥
पाटी दुहूं बिच माँग की लाली बिराजि रही यौं प्रभा बिसतार सो ।
मानो सिंगार की पाटी मनोभव सींचत है अनुराग की धार सो ॥

सखि तो यह याचन आई हौं मैं, उपकार कै मोहिं जियावहि तू ।
तोंहि तातकी सौं निज भ्रातकी सौं, यह बात न काहू जनावहि तू ॥
तुव चेरी हौं होऊंगी 'दास' सदा, ठकुराइनि मेरी कहावहि तू ।
करि फन्द कछू मोहिं या रजनी, सजनी ब्रजचन्द मिलावहि तू ॥

दृग नासा न तौ तप जाल खगी, न सुगन्ध सनेह के ख्याल खगी ।
स्रुति जीहा बिरागै न रागै पगी मति रामै रगी औ न कामै रँगी ॥
तप में ब्रत नेम न पूरन प्रेम न भूति जगी न बिभूति जगी ।
जग जन्म वृथा तिनको जिनके गरे सेली लगी न नवेली लगी ॥

कवित्त--

आरसी को आँगन सोहायो छबिछायो नहरनि मैं भरायो जल उज्वल सुमन माल। चाँदनी विचित्र लखि चाँदनी बिछौना पर दूरि कै चन्दोअन को बिलसै अकेली बाल ॥ दास आस पास

बहु भाँतिन बिराजैं धरे पन्ना पोखराज मोती मानिक पदिक लाल। चन्द प्रतिबिम्ब ते न न्यारो होत मुख औ न तारे प्रति बिम्ब ते न न्यारो होत नख जाल ॥ १४ ॥

आली दौरि दरस दरस दौरि लेरी इन्दु, बदनी अटा मैं नँद नन्द भूमि थल मैं। देखादेखी होत ही सकुच छूटी दोउन की दोऊ दुहूँ हाथनि बिकाने एक पल मैं॥ दुहूँ हिय दास खरी अरी मैनसर गाँसी परी दृढ़ प्रेम फाँसी दुहुंन के गल मैं। राधे नैन पैरत गोविन्द तन पानिप मैं पैरत गोविन्द नैन राधे रूप जल मैं ॥ १५ ॥

नागरीदास।

[सं० १७५६—१८२१]

रोला—

उज्वल पख की रैन चैन उज्वल रस दैनी।
उदित भयो उडराज अरुन दुति मन हर लैनी ॥ १ ॥
महा कुपित ह्वै काम ब्रह्म अस्त्रहि छोड्यो मनु।
प्राची दिसि ते प्रजुलित आवत अगिनि उठी जनु ॥ २ ॥
दहन मानपुर भये मिलन को मन हुलसावत।
छावत छपा अमन्द चन्द ज्यों त्यों नभ आवत ॥ ३ ॥
जगमगाति बन जोति सोत अमृत धारा से।
नव द्रुम किसलय दलनि चारु चमकत तारा से ॥ ४ ॥

सेत रजत की रेन चैन चित मैन उमहनी।
तैसी मन्द सुगन्ध पौन दिन मनि दुख दहनी॥ ५॥

मधि नायक गिरिराज पदिक वृन्दावन भूषन।
फटिक सिला मनि शृङ्ग जगमगत दुति निर्दूषन॥ ६॥

सिला सिला प्रति चन्द चमकि किरननि छवि छाई।
बिच बिच अम्ब कदम्ब झम्ब झुकि पायनि आई॥ ७॥

ठौर ठौर चहुं फेर ढेर फूलन के सोहत।
करत सुगन्धित पवन सहज मन मोहत जोहत॥ ८॥

विमल नीर निरझरत कहूँ झरना सुखकरना।
महा सुगन्धित सहज वास कुमकुम मद हरना॥ ९॥

कहुं कहुं हीरन खचित रचित मण्डल सुरास के।
जटित नगन कहुं जुगुल खम्भ झूलनि विलास के॥ १०॥

ठौर ठौर लखि ठौर रहत मनमथ सो भारी।
विहरत विविध विहार तहाँ गिरि पर गिरिधारी॥ ११॥

कवित्त—

हाथी फेरे छाती पर मुगदर रूढे अङ्ग, केतक उपाय किये कोउ एक लागै ना। याहु ते अधिक श्रम क्यों न करो दशकन्ध अनुज के अन्तर तै नींद नेक भागै ना॥ कहि आये नागर जे आप काज महा काज, यातें काज कीजे उठि और जिय पागै ना। वेग लै कै आइये जू खटमल खाटन तें, खटमल काटे बिन कुम्भकर्न जागै ना॥ १२॥

सुनी ही कहावत सो साँची कीनी मच्छरन, छोटे इते खोटे महा दशन कराल हैं। सूइन की शिन्नहेकि विष के फुहारे परे, किधौं ले एक बचको करे तन लाल है॥ सुर नर नागर ये सबै नाक आये तन, काटि काटि खाये भये निपट बिहाल है। विष्णु दुरे जल माँझ, ब्रह्मा कौल नाल मधि महादेव हारि मानो ओढ़ी गज खाल है॥ १३॥

केकै के कहे तें उदङ्गल अमङ्गल भो, दशरथ प्रान दे कै उर्ध लोक कों गयो। मथुरी के कहे तें सर्वस गमायो शनि, ताको अपवाद सदा लोकन में ह्वै गयो॥ जानकी के कहे तें गयो है उठि देवरजु, भये बिन भाभी दशकन्ध हरि ले गयो। नागर निपट कथा जग में उजागर है, नारिन के कहे कहो कौन को भलो भयो॥ १४॥

रसनिधि।

[सं० १७६०]

दोहा—

रसनिधि वाकौ कहत हैं, याही तें करतार।
रहत निरन्तर जगत को, वाही के कर तार॥ १॥

सज्जन पास न कहु अरे, ये अनसमझी बात।
मौम रदन कहुं लोह के, चना चबाये जात॥ २॥

बाल बदन को मदन नृप, रूप इजाफा दीन।
नैन गजब पर भौंह जनु, मीनकेतु धर लीन॥ ३॥

रूप नगर वस मदन नृप , दृग जासूस लगाइ।
नेहिनि मन को भेद उन , लीनो तुरत मँगाइ ॥ ४ ॥
लाल भाल पै लसत है , सुन्दरु विन्दी लाल।
कियो तिलक अनुराग ज्यों , लख कै रूप रसाल ॥ ५ ॥
कुहू निशा तिथि पत्र में , वाचन कौ रहि जाइ।
तुव मुख ससि की चाँदनी , उदै करत है आय ॥ ६ ॥
मतवारे दृग गज कहूँ , ऐसे दीजत छोड़।
नेही दृग तन क्यों सकैं , इनकी झोंकैं ओड़ ॥ ७ ॥
रूप ठगौरी डारि कै , मोहन गो चित चोरि।
अञ्जन मिस जनु नैन ये , पियत हलाहल घोरि ॥ ८ ॥
दृग द्विज ये उठि प्रात ही , करि अंसुवन असनान।
रूप भूप पर जाँचहीं , छवि मुकताहल दान ॥ ९ ॥
साधक इक छूटत सहस , लगत अमित दृग गात।
अरजुन सम वानावली , तेरे दृग करि जात ॥१०॥
अरी नींद आवै चहै , जिहि दृग वसप सुजान।
देखी सुनी धरी कहूँ , दो असि एक मियान ॥११॥
एक दिना मैं एक पल , सकै न पल भर देख।
विरह पार कौ भावतो , कैसे होइ विशेष ॥१२॥
कहा भयो जो सिर धस्रो , कान्ह तुम्हैं करि भाव।
मोरपखा विन और तुम , उहाँ न पैहौ नाव ॥१३॥
अँधियारी निस विच नदी , तामैं भँवर अपार।
पार जवैया दरद कव , लहै रहे या वार ॥१४॥

रघुनाथ।

[सं० १७६०]

सवैया--

सूखति जाति सुनी जब सों कछु खात न पीवति कैसे धौं रैहै।
जाकी है ऐसी दसा अबहीं 'रघुनाथ' सो औधि अधार क्यों पैहै॥
ताते न कीजिये गौन बलाइ ल्यों गौन करे यह सीस बिसैहै।
जानति हो द्रुग ओट भये तिय प्रान उसासहि के सँग जैहै॥१॥

देखिबे को दुति पूनो के चन्द की हे रघुनाथ श्री राधिका रानी।
आई बोलाय के चौतरा ऊपर ठाढ़ी भई सुख सौरभ सानी॥
ऐसी गई मिलि जोन्ह की जोति में रूप की रासि न जाति बखानी।
बारन तें कछु भौंहन तें कछु नैनन की छबि तें पहिचानी॥२॥

मनभावन पूस मै रूस चल्यो चित बीच विचार बिदेस कियो।
सुनि कै सब सौतिन की सिगरी सुधि जाति रही अरु काँप्यो हियो॥
सकि है सरि को करि हे रघुनाथ उठाय के हाथ मै बीन लियो।
कछु गाय कै मेघ अकास मै छाय कै मैं तबहीं बरसाय दियो॥३॥

बैठी बिसूरति ही पिय आगम एते मैं कोइल की सुनि बानी।
जागि उठी बिरहागि महा लखि मैं रघुनाथ की सौंह सकानी॥
चन्दन लाय मिलाय कपूर निसा भरि सींचि गुलाब के पानी।
कौन कहै बतियाँ निसि की न तिया की तऊ छतियाँ सियरानी॥

बातें लगाय सखान तें न्यारो कै आज गह्यो वृषभान किसोरी।
केसरि सों तन मज्जन कै दियो अञ्जन आँखिन में बरजोरी॥
हे रघुनाथ कहा कहौं कौतुक प्यारे गोपालै बनाय कै गोरी।
छोड़ि दियो इतनो कहि कै बहुरो इत आइयो खेलन होरी॥५॥

कवित्त—

फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन, कहै रघुनाथ भरे चैन रस सियरे। दौरि आये भौंर से करत गुनी गुन गान, सिद्ध से सुजान सुख सागर सों नियरे॥ सुरभी सी खुलन सुकवि की सुमति लागी चिरिया सी जागी चिन्ता जनक के हियरे। धनुष पै ठाढ़े राम रवि से लसत आजु, भोर कैसे नखत नरिन्द भये पियरे॥ ६॥

सुथरे सिलाह राखै, वायु वेगी वाह राखै, रसद की राह राखै, राखे रहै बन को। चोर को समाज राखै, बजा औ नजर राखै, खबरि के काज बहुरूपी हरफन को॥ अगम भखैया राखै, सकुन लेवैया राखै, कहै रघुनाथ औ विचार बीच मन को। बाजी हारै कबहूं न औसर के परे जौन, ताजी राखै प्रजन को, राजी सुभटन को॥ ७॥

आप दरियाव पास नदियों के जाना नहीं, दरियाव पास नदी होयगी सो धावैगी। दरखत बेलि आसरे को कभौं राखत न, दरखत ही के आसरे को बेलि पावैगी॥ मेरे ही लायक जो था कहना सो कहा मैंने, रघुनाथ मेरी मति न्याव ही को

गावैगी। वह मोहताज आप की है आप उसके न, आप कैसे चलौ वह आप पास आवैगी ॥ ८ ॥

सम्पति के बढ़े सों प्रतिष्ठा बाढ़ै बाढ़ै सोच, कहै रघुनाथ ताके रखिबे के रुख को। मन माँगे स्वादनि लपेटि पेट पर्यो तासों, अङ्ग में अपार सङ्ग प्रगटो कलुष को ॥ दारा सुत सखा को सनेह सो सन्तापकारी, भारी है बचन यह बड़ेन के मुख को। जगत को जितनो प्रपञ्च तितनो है दुख, सुख इतनो जो सुख मानि लेनो दुख को ॥ ६ ॥

चरणदास।

[सं० १७६०]

दोहा—

सत गुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट।
मारे गोला प्रेम का ; ढहै भरम का कोट ॥ १ ॥
जग माहीं ऐसे रहो, ज्यों अम्बुज सर माहिं।
रहै नीर के आसरे, पै जल छूवत नाहिं ॥ २ ॥
दया नम्रता दीनता, छिमा सील सन्तोख।
इन कूं ले सुमिरन करै, निहचै पावै मोख ॥ ३ ॥
पहिले पहरे सब जगै, दूजे भोगी मान।
तीजे पहरे चोरही, चौथे जोगी जान ॥ ४ ॥
चरनदास यों कहत हैं, सुनियो सन्त सुजान।
मुक्ति मूल आधीनता, नरक मूल अभिमान ॥ ५ ॥

बाईं करवट सोइये, जल बायें स्वर पीव।
दहिने स्वर भोजन करै, तो सुख पावै जीव॥ ६॥
बायें स्वर भोजन करै, दहिने पीवे नीर।
दस दिन भूला यों करै, पावै रोग सरीर॥ ७॥
दहिने स्वर झाड़ा फिरै, बायें लघु शङ्काय।
युक्ती ऐसी साधिये, तीनों भेद बताय॥ ८॥

ब्रजचन्द।

[सं० १७६०]

कवित्त--

फूलन की माला मोसों कहत मुलाम ऐसी, फूलन की माला मेलि राखत न क्यों गरैं। मेरे दृग रोज ही बतावत सरोज ऐसे, लेइ कै सरोज रोज मन में न क्यों भरैं॥ हौं तौ री न जैहौं आजु वनमाली पास वोई, पिय आइ पास पाई इत को न क्यों धरैं। मेरो मुखचन्द सो बतावैं ब्रजचन्द रोज, कहौ ब्रजचन्दजू सों चन्द देखिबो करैं॥ १॥

गुमान।

[सं० १७६०]

कवित्त--

दिग्गज दबत दबकत दिगपाल भूरि, धूरि की धुंधेरी सों अँधेरी आभा भान की। धाम औ धरा को माल बाल अबला

को अरि, तजत परान राह चाहत परान की॥ सैयद समत्थ भूप अली अकबर दल, चलत बजाय मारु दुन्दुभी धकान की। फिरि फिरि फनतु फनीस उलटतु ऐसे, चोली खोलि ढोली ज्यों तमोली पाके पान की॥ १॥

सवैया--

देस प्रवाहन की सरिता सब ओर बहैं बहुतै सरसानी।
कानन कोठि अगोठि कुचाचल भार भरी धरनी अकुलानी॥
सूछम छाँह सरूप भई चित चाह नयी निहिचै नियरानी।
सीतल आप पियैं ससि मैं पर हीतल की तब ताप बुझानी॥२॥

दूलह।

[सं० १७६१]

कवित्त--

रति रमणीय तीय रम्भासी सरोज मुखी, रम्भा वाम लसै चारु मेनका प्रमानी है। कोकिल के बचन मधुर जाके सुखदान, मृग दृग छबि महा सुन्दर सुहानी है॥ कहै कवि दूलह सो केहरि समान कटि, जगपति जाकी सब जगत बखानी है। देखि नन्दलाल मोहै उरज उतङ्ग सोहै, को है जो न जोहै मुनि मानी महाज्ञानी है॥ १॥

हरषित गात स्वेद भरे दरशात बात, कहत बनै न रङ्ग छायो अँखियान मैं। कुञ्ज गई यातें जान्यो किन्सुक को माल साजो, चन्द सी बिराजी सो सखी लखी तियान मैं॥ शब्द वेद वाक्य

श्रुति स्मृति औ पुरानागम, त्यों ही निज तोप कह्यो आ चारो प्रमान में। है कहे गहे न कटि कान ब्रज सॅभवैरी, कहा देखिबो न कहा सुनिबो जहान में ॥ २ ॥

धरी जब बाहीं तब करी तुम नाहीं पाइ दियो पलिकाहीं नाहीं नाहीं कै सुहाई हौ। बोलत मैं नाही पट खोलत मैं नाहीं कवि दूलह उछाही लाख भाँतिन लहाई हौ॥ चुम्बन में नाहीं परिरम्भन में नाहीं सब आसन विलासन में नाहीं ठीक ठाई हौ। मेलि गलबाँही केलि कीन्ही चित चाही यह हाँ ते भली नाहीं सो कहाँ ते सीख आई हौ ॥ ३ ॥

लङ्क की बिसालता लै उरज उतङ्ग भये, रङ्ग कवि दूलह है तेरे मनसूबे को। ताहि कटि छीनता की नाती मानी सिंह हनै, तो गति गहैया गज अजब अजूबे को॥ सिद्धा औ असिद्धा चारो तुक में बिचारो भेद, छेद सह्यो मुक्ता तिहारी तन छूबे को। पोखराज भान को चढ़ावत कलान सीतमान मानो तो मुख समान सखी हूबे को ॥ ४ ॥

उत्तर उत्तर उतकरप बखानो "सार" दीरघ तें दीरघ लघू तें लघू भारी को। सब तें मधुर ऊख ऊख तें पियूप ना पियूप हूं ते मधुर है अधर पियारी को॥ जहाँ कमिकन को क्रमैं तें यथा क्रम "यथा संख्य" बैन, नैन, नैनकोन ऐसे धारी को। कोकिल तें कल, कञ्जदल तें अदल भाव जीत्यो जिन काम की कटारी नोकवारी को ॥ ५ ॥

सुलतान।

[सं० १७६१]

सवैया-

तुम चाले की बातैं चलावती हौ सुनि कै अति ही तनु छीजतु है।
छन नेकहु न्यारी जो होति कहूं थल मीनन की गति लीजतु है॥
जब लौं सुलतान न आवै घरैं तब लौं तो बिदा नहिं कीजतु है।
वहि पीतम की अनुहारि सखी ननदी-मुख देखि कै जीजतु है॥१॥

भूधरदास।

[सं० १७६५]

सवैया--

ध्यान-हुतासन मैं अरि इंधन, झोक दियौ रिपुरोक निवारी।
शोक हस्रो भवि लोकन को वर, केवल ज्ञान मयूख उघारी॥
लोक अलोक बिलोक भये शिव, जन्म जरा मृत पङ्क पखारी।
सिद्धन थोक बसैं शिवलोक, तिन्हैं पग धोक त्रिकाल हमारी॥१॥

वीर हिमाचल तैं निकसी गुरु, गौतम के मुख कुण्ड ढरी है।
मोह-महाचल भेद चली, जग की जड़ता-तप दूर करी है॥

चाले=गौना। ध्यान-हुतासन=ध्यान रूपी अग्नि में। रिपुरोक निवारी=कर्म शत्रुओं की रुकावट को निवारण किया। मयूख=किरण। पङ्क=कीचड़। पगधोक=पाँवाधोक, प्रणाम। मोह-महाचल=मोह रूपी महा पर्वत हिमालय को। जड़ता-तप=जड़ता या मूर्खता रूपी गर्मी।

ज्ञान पयोनिधि माँहि रली, बहु भङ्ग-तरङ्गनि सौं उछरी है।
ता शुचि शारद गङ्ग नदीप्रति, मैं अँजुरी निज सीस धरी है ॥२॥

तू नित चाहत भोग नये नर, पूरब पुन्य बिना किम पै हैं।
कर्म संयोग मिलै कहिं जोग, गहै तब रोग न भोग सकै हैं॥
जो दिन चार को ब्योंत बन्यौं कहूं, तो परि दुर्गति मैं पछितैहैं।
यों हित यार सलाह यही कि, "गई कर जाहु" निवाह न ह्वै हैं ॥३॥

मातपिता रज-बीरज सौं, उपजी सब सात कुधात भरी है।
माखिन के पर माफिक बाहर, चाम के बेठन बेढ़ धरी है॥
नाहिं तौ आय लगैं अब ही, बक बायस जीव बचै न घरी है।
देह दशा यह दीखत भ्रात, घिनात नहीं किन बुद्धि हरी है ॥४॥

बाल पनै न सँभार सक्यो कछु, जानत नाहिं हिताहित ही को।
यौवन वैस बसी बनिता उर, कै नित राग रह्यो लछमी को॥
यौं पन दोइ बिगोइ दये नर, डारत क्यों नरकै निज जी को।
आये है सेत अजौं शठ चेत "गई सु गई अब राख रही को" ॥५॥

बाय लगी कि बलाय लगी, महमत्त भयौ नर भूलत त्यौं ही।
वृद्ध भयै न भजै भगवान, विषै विष खात अघात न क्यौं ही॥

माखिन के=मक्खियों के पङ्खों जैसे पतले चमड़े के बेठन से (बेष्टन से) घिरी हुई। वैस=वयस, उम्र। पन=दो अवस्थाएँ। नरकै=नरक में। सेत=सफेद बाल। बलाय=प्रेतबाधा।

सीस भयो बगुला-सम सेत, रह्यो उर-अन्तर श्याम अजौं ही।
मानुष-भौ मुकताफल-हार, गवाँर तगा-हित तोरत यौं ही ॥६॥

चाहत हैं धन होय किसी बिध, तौ सब काज सरैं जियरा जी।
गेह चिनाय करूँ गहना कछु, ब्याही सुता सुत बाँटिये भाजी॥
चिन्तन यों दिन जाहि चले, जम आनि अचानक देत दगा जी।
खेलत खेल खिलारि गये, "रहि जाइ रुपी शतरञ्ज की बाजी" ॥७॥

तेज तुरङ्ग सुरङ्ग भले रथ, मत्त मतङ्ग उतङ्ग खरे ही।
दास खवास अवास अटा, धन जोर करोरन कोश भरे ही॥
ऐसे बढ़े तौ कहा भयौ हे नर, छोरि चले उठि अन्त छरे ही।
धाम खरे रहे काम परे रहे, दाम डरे रहे ठाम धरे ही ॥८॥

दृष्टि घटी पलटी तन की छबि, बङ्क भई गति लङ्क नई है।
रूस रही परनी घरनी अति, रङ्क भयौ परियङ्क लई है॥
काँपत नार वहै मुख लार, महामति सङ्गति छाँरि गई है।
अङ्ग उपङ्ग पुराने परे, तिशना उर और नवीन भई है ॥९॥

कृमिरास कुवास सराय दहै, शुचिता सब छीवत जात सही।
जिहिं पान किये सुधि जात हियै, जननी जन जानत नार यही॥

तगा-हित=सूत के धागे के लिये। चिनाय=चिनाकर, बनाकर। भाजी=विवाह वगैरः उत्सवों में जो मिष्ठान्न बाँटा जाता है, उसे भाजी कहते हैं। रुपी=जमी हुई। खवास=खुसामद करने वाला। छरे=अकेले। बङ्क=बाँकी, अटपट, कहीं पैर रखते हैं कहीं पड़ता है। लङ्क=कमर। नई=नई अर्थात् झुक गई, टेढ़ी हो गई। परनी=विवाही हुई। नार=गर्दन। सराय=सड़ा करके।

मदिरा सम आन निषिद्ध कहा, यह जान भले कुल मैं न गही।
धिक है उन कौं वह जीभ जलौ, जिन मूढ़न के मत लीन कही ॥१०॥

धन कारन पापिनि प्रीति करै, नहिं तोरत नेह जथा तिनकौ।
लव चाखत नीचन के मुंह की, शुचिता सब जाय छियैं जिनकौं ॥
मद मांस बजारनि खाय सदा, अंधले विसनी न करैं घिन कौं।
गनिका सङ्ग जे सट लीन भये, धिक है धिक है धिक है तिन कौं ॥

दिवि-दीपक-लोय वनी वनिता, जड-जीव पतङ्ग जहाँ परते।
दुख पावत प्रान गँवावत हैं, वरजे न रहै हठ सौं जरते ॥
इहि भाँति विचच्छन अच्छन के वश, होय अनीति नहीं करते।
परती लखि जे धरती निरखैं, धनि हैं धनि हैं धनि हैं नर ते ॥१२॥

दृढ़शील शिरोमनि कारज मैं, जग मैं जस आरज तेइ लहैं।
तिनके जुग लोचन वारज हैं, इहि भाँति अचारज आप कहैं ॥
पर कामिनी कौ मुखचन्द चितै, मुंद जाहिं सदा यह टेव गहैं।
धनि जीवन हैं तिन जीवन कौ, धनि माय उनै उरमाँय वहैं ॥१३॥

जे परनारि निहारि निलज्ज, हँसैं विगसैं बुधि-हीन वड़ेरे।
जूठन की जिमि पातर पेखि, खुशी उर कूकर होत घनेरे ॥

तिनकौ=यदि धन नहीं होता है, तो स्नेह को तिनके के समान तोड़ देती है। लव=लार, लाला। दिवि=दिव्य। अच्छन=इन्द्रियाँ। परती=पराई स्त्री। आरज=आर्य्य। वारज=कमल। जीवन=जीवों का। माय=माता। विगसैं=विकसित होवें। पातर=पत्तल।

है जिनकी यह टेव वहै, तिन को इस भौ अपकीरति है रे।
है परलोक विषै द्रुढ़दण्ड, कर शतखण्ड सुखाचल केरे ॥१४॥

राग उदै जग अन्ध भयौ, सहजैं सब लोगन लाज गवाँई।
सीख बिना नर सीख रहै, विसनादिक सेवन की सुघराई॥
तापर और रचै रस-काव्य, कहा कहिये तिनकी निठुराई।
अन्ध असुझन की अँखियान मैं, झोंकत है रज राम दुहाई ॥१५॥

कञ्चन कुम्भन की उपमा, कह देत उरोजन को कवि बारे।
ऊपर श्याम विलोकत कै, मनि नीलम की ढकनी ढँकि छारे॥
यौं सतवैन कहैं न कुपण्डित, ये जुग आमिष-पिण्ड उघारे।
साधन झार दई मुंह छार, भये इहि हेत किधौं कुच कारे ॥१६॥

ए विधि! भूल भई तुम त, समझे न कहाँ कसतूरि बनाई।
दीन कुरङ्गन के तन मैं, तृन दन्त धरैं करुना नहिं आई॥
क्यों न करी तिन जीभन जे, रसकाव्य करैं पर कौं दुखदाई।
साधु-अनुग्रह दुर्जन-दण्ड, दोऊ सधते बिसरी चतुराई ॥१७॥

छेम निवास छिमा-धुवनी बिन, क्रोध पिशाच उरै न टरैगौ।
कोमल भाव उपाव बिना, यह मान महामद कौन हरैगौ॥
आर्जव-सार कुठार बिना, छल-बेल निकन्दन कौन करैगौ।
तोष शिरोमनि मन्त्र पढ़े बिन, लोभ फणी विष क्यों उतरैगौ ॥१८॥

टेव=आदत। द्दढ़दण्ड=वज्र दण्ड। बारे=बालक मूर्ख। छिमा-धुवनी=क्षमा रूपी धूनी। आर्जव-सार=सरलता रूपी फौलाद की कुल्हाड़ी। तोष=सन्तोष रूपी उत्कृष्ट मन्त्र। फणी=सर्प।

काहे को बोलत बोल बुरे नर, नाहक क्यों जस धर्म गमावे।
कोमल बैन चवै किन ऐन, लगै कछु है न सबै मन भावै॥
तालु छिदै रसना न भिदै, न घटै कछु अङ्क दरिद्र न आवै।
जीभ कहे जिय हानि नहीं, तुझ जी सब जीवन कौ सुख पावै॥१९॥

अन्तक सौं न छुटै निहचै पर, मुरख जीव निरन्तर धूजै।
चाहत है चित मैं नित ही सुख, होय न लाभ मनोरथ पूजै॥
तौ पन मूढ़ बँध्यौ भय आस, वृथा बहु दुःख दवानल भूजै।
छोड़ विचक्षन ए जड़ लच्छन, धीरज धारि सुखी किन हूजै॥२०॥

जो धनलाभ लिलाट लिख्यो, लघु दीरघ सुकृत के अनुसारै।
सो लहि है कछु फेर नहीं, मरु देश के ढेर सुमेर सिधारै॥
घाट न बाढ़ कहीं वह होय, कहा कर आवत सोच विचारै।
कूप किधौं भर सागर मैं नर, गागर मान मिलै जल सारै॥२१॥

कवित्त—

कैसे करि केतकी कनेर एक कहि जाय, आक-दूध गाय-दूध अन्तर घनेर है। पीरी होत रीरी पै न रीस करै कञ्चन की, कहाँ काग-बानी कहाँ कोयल की टेर है॥ कहाँ भान भारौ कहाँ आगिया बिचारौ कहाँ, पूनौ को उजारौ कहाँ मावस अँधेर है। पच्छ छोरि पारखी निहारौ नेक नीके करि, जैनबेन और बैन इतनौं ही फेर है॥ २२॥

चवै=बोलै। किन=क्यों नहीं। ऐन=अच्छे। रीरी=पीतल। रीस=हिर्स-बराबरी। आगिया=खद्योत। मावस अँधेर=अमावस्या का अन्धेरा। और बैन=दूसरे धर्म वालों के वचनों में।

काहू घर पुत्र जायौ काहू के वियोग आयौ, काहू रागरङ्ग काहू रोआ रोई करी है। जहाँ भान ऊगत उछाह गीत गान देखे, साँझ समै ताही थान हाय हाय परी है॥ ऐसी जग रीत को न देखि भय भीत होय, हा हा मूढ़ तेरी मति कौनैं हरी है। मानुष-जनम पाय सोवत विहाय जाय, खोवत करोरन की एक एक घरी है॥ २३॥

जौलौं देह तेरी काहू रोग सौं न घेरी जौलौं, जरा नाहिं नेरी जासौं पराधिन परि है। जौलौं जमनामा बैरी देय ना दमामा जौलौं, मानै कान रामा बुद्धि जाइ ना बिगरि है॥ तौलौं मित्र मेरे निज कारज सँवार ले रे, पौरुष थकैंगे फेर पीछै कहा करि है। अहो आग आयैं जब झोंपरी जरन लागी, कुआके खुदायैं तब कौन काज सरि है॥ २४॥

सौ वरष आयु ताका लेखा करि देखा सब, आधी तौ अकारथ ही सोवत विहाय रे। आधी मैं अनेक रोग बालवृद्ध-दशाभोग, और हु सँयोग केते ऐसे बीत जाँय रे॥ बाकी अब कहा रही ताहि तू विचार सही, कारज की बात यही नीकै मन लाय रे। खातिर में आवै तौ खलासी कर इतने मैं, भावै फाँसि फन्द बीच दीनौं समुझाय रे॥ २५॥

बालपनै बाल रह्यौ पीछै गृहभार बह्यौ, लोकलाज काज बाँध्यौ पापन कौ ढेर है। अपनौ अकाज कीनौं लोकन मैं जस

दमामा=नगाड़ा। कान=आज्ञा। रामा=स्त्री। आय=आयु, उम्र।

लीनौं, परभौ विसार दीन्हौं विषै वश जेर है॥ ऐसे ही गई विहाय अलपसी रही आय, नर परजाय यह "आँधे की वटेर" है। आये सेत भैया अब काल है अवैया अहो, जानी रे सयानें तेरे अजौं हूं अँधेर है॥ २६॥

देखो भरजोवन में पुत्र को वियोग आयो, तैसैं ही निहारी निज नारी कालमग में। जे जे पुन्यवान जीव दीसत है यान ही पै, रङ्क भये फिरैं तेऊ पनहीं न पग में॥ एते पै अभाग धन-जीतव सौं धरै राग, होय न विराग जानै रहूंगौ अलग में। आँखिन विलोकि अन्ध सूसे की अँधेरी करे, ऐसे राजरोग को इलाज कहा जग में॥ २७॥

रूप को न खोज रह्यौ तरु ज्यौं तुषार दह्यो, भयौ पतझार किधौं रही डार सूनीसी। कूवरी भई है कटि दूवरी भई है देह, ऊवरी इतेक आयु सेर माहिं पूनीसी॥ जोवन नै विदा लीनी, जरा नें जुहार कीनी, हानि भई सुधि वुधि सबै बात ऊनीसी। तेज घट्यो ताव घट्यौ जीतव को चाव घट्यौ, और सब घट्यौ एक तिस्रा दिन दूनी सी॥ २८॥

अहो इन आपने अभाग उदै नहिं जानी, वीतराग-वानी सार दयारस-भीनी है। जोवन के जोर थिर जङ्गम अनेक जीव,

---

सेत=सफेद वाल। सूसे की अँधेरी करे=शशक (खरगोश) अपनी आँखें वन्द करके जानता है कि अब सब जगह अन्धेरा हो गया, मुझे कोई देखता ही नहीं है। ऊवरी=बाकी। पूनी=सेर भर रूई में एक पौनी के बराबर वाकी रही। ऊनसी=कमती। थिर=स्थावर जीव एकेन्द्रिय।

जानी जे सताये कछु करुना न कीनी है॥ तेई अब जीवरास आये परलोक पास, लैंगे बैर दैंगे दुख भई ना नवीनी है। उन्हीं के भय कौ भरोसौ जान काँपत है, याही डर "डोकरा नैं लाठी हाथ लीनी है"॥ २९॥

कहै पशु दीन सुन जग्य के करैया मोहि, होमत हुतासन मैं कौनसी बड़ाई है। स्वर्ग सुख मैं न चहौं "देहु मुझे" यौं न कहौं घास खाय रहौं मेरे यही मन भाई है॥ जो तू यह जानत है वेद यौं बखानत है, जग्य जलौ जीव पावै स्वर्ग सुखदायी है। डारै क्यौं न वीर यामैं अपने कुटुम्ब ही कौं, मोहिं जिन जारै "जगदीश" की दुहाई है॥ ३०॥

कानन मैं बसै ऐसो आन न गरीब जीव, प्रानन सौं प्यारौ प्रान पूंजी जिस यहै है। कायर सुभाव धरै काहू सौं न द्रोह करै सब ही सौं डरै दाँत लिये तृन रहै है॥ काहू सौं न रोष पुनि काहू पै न पोष चहै, काहू के परोस परदोष नाहिं कहै है। नेकु स्वाद सारिवे कौं ऐसे मृग मारिवे कौं, हाहारे कठोर तेरौ कैसें कर बहै है॥ ३१॥

ढईसी सराय काय पन्थी जीव बस्यौ आय, रत्न त्रय निधि जापै मोख जाको घर है। मिथ्या निशि कारी जहाँ मोह-अन्धकार भारी, कामादिक तस्कर समूहन कौ थर है॥ सोवै जो अचेत सोई खोवै निज सम्पदा कौं, तहाँ गुरु पाहरू पुकारै दया कर है।

परोष=परोक्ष में। कर बहै है=हाथ चलता है। थर= स्थल। पाहरू=पहरेदार।

गाफिल न हूजे भ्रात ऐसी है अन्धेरी रात, 'जाग रे वटोही' यहाँ चोरन कौ डर है ॥ ३२ ॥

आयौ है अचानक भयानक असाता कर्म, ताके दूर करिवे को वली कौन अह रे। जे जे मन भाये ते कमाये पूर्व पाप आप, तेई अव आये निज उदैकाल लह रे॥ एरे मेरे वीर काहे होत है अधीर या में, कोऊ कौ न सीर तू अकेलौ आप सह रे। भये दिलगीर कछू पीर न विनसि जाय, ताही तैं सयाने तू तमासगीर रह रे॥

कैसे कैसे वली भूप भू पर विख्यात भये, वैरी कुल काँपैं नेकु भौंहों के विकार सौं। लन्वे गिरि सायर दिवायर-से दिपै जिनौं, कायर किये हैं भट कोटिन हुंकार सौं॥ ऐसे महामानी मौत आये हू न हार मानी, क्यौंही उतरे न कभी मान के पहार सौं। देव सौं न हारे पुनि दाने सौं न हारे और, काहू सौं न हारे एक हारे होनहार सौं ॥ ३४ ॥

लोहमई कोट केई कोटन की ओट करौ, काँगुरेन तोप रोपि राखौ पट भेरिकैं। इन्द्र चन्द्र चौंकायत चौकस ह्वै चौकी देहु, चतुरङ्ग चमू चहुं-ओर रहौ घेरिकैं॥ तहाँ एक भौंहिरा वनाय वीच वैठो पुनि, वोलौ मति कोऊ जो वुलावै नाम टेरि कै। ऐसैं परपञ्च-पाँति रचौ क्यौं न भाँति भाँति, कैसैं हू न छोरै जम देख्यौ हम हेरिकैं ॥ ३५ ॥

सीर=साझा। दिलगीर=चिन्तित, दुखी। सायर=समुद्र। दिवायर=सूर्य। दाने=दैत्य। पट=किवाड़। चौंकायत=चौकन्ने। चमू=सेना।

सज्जन जो रचे तौ सुधारस सौं कौन काज, दुष्ट जीव किये कालकूट सौं कहा रही। दाता निरमापे फिर थापे क्यौं कलप-वृच्छ, जाचक बिचारे लघु तृण हूं तैं हैं सही॥ इष्ट के संजोग तै न सीरो घनसार कछू, जगत कौ ख्याल इन्द्रजाल सम है वही। ऐसी दोय दोय बात दीखैं विधि एक ही सी, काहे को बनाई मेरे धोखो मन है यही॥ ३६॥

जोई दिन कटै सोई आव मैं अवश्य घटै बूंद बूंद बीतै जैसैं अंजुली कौ जल है। देह नित छीन होत नैन तेज-हीन होत जोबन मलीन होत छीन होत बल है॥ आवै जरा नैरी तकै अन्तक-अहेरी आवै पर-भौ नजीक जात नर-भौ निफल है। मिलकै मिलापी जन पूंछत कुशल मेरी, ऐसी दशा माँही मित्र! काहे की कुशल है॥ ३७॥

छप्पय-

जो जगवस्त समस्त, हस्त तल जेम निहारै।
जग-जन को संसार, सिन्धु के पार उतारै॥
आदि-अन्त-अविरोध, वचन सबको सुखदानी।
गुन अनन्त जिहँ माहिं, रोग की नाहिं निशानी॥
माधव महेश ब्रह्मा किधौं, वर्द्धमान कै बुद्ध यह।
ये चिहन जान जाके चरन, नमो नमो मुझ देव वह॥३८॥
सकल-पाप संकेत, आपदा-हेत कुलच्छन।
कलह-खेत दारिद्र देत, दीसत निज अच्छन॥

आव=आयु। नैरी=नजदीक। अन्तक अहेरी=जमराजरूपी शिकारी। अच्छन=नेत्र

गुन समेत जस सेत, केत रवि रोकत जैसैं।
औगुन-निकर-निकेत, लेत लखि बुधजन ऐसैं॥
जुआ समान इह लोक मैं, आन अनीति न पेखिये।
इस त्रिसनराय के खेल कौ, कौतुक हू नहिं देखिये॥३९॥

जङ्गम जिय कौ नास, होय तब मांस कहावै।
सपरस आकृति नाम, गन्ध उर घिन उपजावै॥
नरक जोग निरदई, खाहिं नर नीच अधरमी।
नाम लेत तज देत, असन उत्तम कुल करमी॥
यह गिपट निंद्य अपवित्र अति, कृमिकुल-रास निवास नित।
आमिष अभच्छ या को सदा, बरजौ दोष दयाल चित्त॥४०॥

चिन्ता तजै न चोर, रहत चौकायत सारै।
पीटै धनी विलोक, लोक निर्दई मिलि मारै॥
प्रजापाल करि कोप, तोप सौं रोप उड़ावै।
मरै महा दुख पेखि, अन्त नीची गति पावै॥
अति विपति मूल चोरी विसन, प्रगट त्रास आवै नजर।
परवित अदत्त अङ्गार गिन, नीति निपुन परसैं न कर॥४१॥

कुगति वहन गुनगहन, दहन दावानलसी है।
सुजस चन्द्र घन घटा, देह कृश करन खई है॥

केत=जैसे सूर्य को केतुग्रह का बिमान रोक देता है। जङ्गम=एकेन्द्री को छोड़ कर बाकी सब जीवों को जङ्गम जीव कहते हैं। असन=भोजन। परवित=दूसरे का धन। अदत्त=बिना दिया हुआ। सुजस चन्द्र घन घटा=सुजश रूपी चन्द्रमा को ढकने के लिये बादलों की घटा। खई=क्षय रोग।

धन-सर-सोखन धूप, धरम-दिन साँझ समानी ।
विपति भुजङ्गनि वास, वांवई बेद बखानी ॥
इहि विधि अनेक औगुन भरी, प्रान हरन - फाँसी प्रबल ।
मत करहु मित्र यह जान जिय, पर-वनिता सौं प्रीति पल ॥४२॥
प्रथम पाण्डवा भूप, खेलि जूआ सब खोयौ ।
मांस खाय बक-राय, पाय बिपदा बहु रोयो ॥
बिन जानैं मद्‌पान जोग, जादौंगन दज्झे ।
चारुदत्त दुख सह्यो, बेसवा - बिसन अरुझे ॥
नृप ब्रह्मदत्त आखेट सौं, द्विज शिवभूत अदत्त रति ।
पर-रमनि राचि रावन गयौ, सातौं सेवत कौन गति ॥४३॥
ज्ञान महावत डारि, सुमति संकल गहि खण्डै ।
गुरु अङ्कुश नहिं गिनै, ब्रह्मव्रत विरख विहण्डै ॥
करि सिधंत सर न्हौन, केलि अघ रज सौं ठानै ।
करन चपलता धरै, कुमति करनी रति मानै ॥
डोलत सुछन्द मदमत्त अति, गुण पथिक न आवत उरै ।
वैराग्य खम्भ तैं बाँध नर, मन - मतङ्ग विचरत बुरै ॥४४॥

धरम-दिन साँझ समानी=धर्म रूपी दिन का अन्त करने वाली सन्ध्या । बांबई=सांप के रहने की बल्मीकि वा बांबी । बक-राय=बक नामक राजा । दज्झे=जले । बेसवा-बिसन=वेश्या व्यसन । ब्रह्मव्रत=ब्रह्मचर्य रूपी वृक्ष । करन चपलता=कानों की चपलता, इन्द्रियों के विषयों की चपलता । करनी=हथिनी । गुण पथिक न आवत उरै=गुण रूपी मुसाफिर पास नहीं आते हैं ।

गिरिधर।

[सं० १७७०]

कुण्डलिया—

पुत्र प्राण ते अधिक है, वारिउ गुग परमान।
सो दशरथ नृप परिहस्यो, वचन न दीन्हों जान॥
वचन न दीन्हों जान, वढ़ैन की बूझि बड़ाई।
वात रहै सो काज, और वरु सरवसु जाई॥
कह गिरिधर कविराय, भये नृप दशरथ ऐसे।
पुत्र प्राण परिहरे, वचन परिहरे न ऐसे॥ १॥

साईं वेटा वाप के, विगरे भयो अकाज।
हिरनाकुश अरु कन्स को, गयो दुहुन को राज॥
गयो दुहुन को राज, वाप वेटा मे विगरी।
दुश्मन दावागीर, हँसै वहु मण्डल नगरी॥
कह गिरिधर कविराय, युगन याही चलि आई।
पिता पुत्र के वैर, लाभ एकौ नहिं साईं॥ २॥

साईं ऐसे पुत्र सों, वाँझ रहै वरु नारि।
विगरी वेटा वाप सों, जाय रहै ससुरारि॥
जाय रहै ससुरारि, नारि के नाम विकानो।
कुल के धर्म नसाय, और परिवार नसानो॥
कह गिरिधर कविराय, मातु भूखै वहि ठाईं।
अरु कपूत क्यों भयो, वाँझ रहतिउँ वरु साईं॥ ३॥

नारी पर घर जाइ जो, अरे भलो नहिं मान।
जो घर रहै निदान सों, चाल ढाल पहिचान॥
चाल ढाल पहिचान, बहुरि उत्पात न होई।
जो कछु लागै दोष, अरे सुन आवै रोई॥
कह गिरिधर कविराय, समय पर देत है गारी।
मरौ पुरुष जिय जानि, जबै पर घर गइ नारी॥ ४॥

धोखे दाड़िम के सुवा, गयो नारियर खान।
खमखाई पाई सजा, फिर लागो पछतान॥
फिरि लागो पछितान, बुद्धि अपनी को रोयो।
निर्गुनियन के पास बैठि, गुण अपनो खोयो॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो मोरे नोखे।
गयी तुरत ही टूटि, चोंच दाड़िम के धोखे॥ ५॥

बनिया अपनै बाप को, ठगत न लावै बार।
निशि वासर जननी ठगै, जहाँ लेत अवतार॥
जहाँ लेत अवतार, मास दस उदरै राखै।
गुरु सों करै विवाद, आप पण्डित ह्वै भाखै॥
कह गिरिधर कविराय, बेंचि हरदी औ धनिया।
मित्र जानि ठगि लेहि, जहाँ लगि भगता बनिया॥ ६॥

दौलत पाइ न कीजिये, सपने में अभिमान।
चञ्चल जल दिन चार को, ठाउँ न रहत निदान॥
ठाउँ न रहत निदान, जियत जग में यश लीजै।
मीठे बचन सुनाय, विनय सब ही सों कीजै॥

कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निसि दिन चारि, रहत सब ही के दौलत ॥ ७ ॥
बेटा बिगरे बाप सों, करि तिरियन सों नेहु।
लटापटी होने लगी, मोहिं जुदा करि देहु ॥
मोहिं जुदा करि देहु, घरीमाँ माया मेरी।
लेहौं घर अरु द्वार, करौं मैं फजीहत तेरी ॥
कह गिरिधर कविराय, सुनों गदहा के लेटा।
समय परो है आय, बाप से झगरत बेटा ॥ ८ ॥
सोना लावन पिउ गये, सूना करि गये देश।
सोना मिले न पिउ मिले, रूपा ह्वै गये केश ॥
रूपा ह्वै गये केश, रोय रँग रूप गँवावा।
सेजन को बिसराम, पिया बिन कबहुं न पावा।
कह गिरिधर कविराय, लोन बिन सबै अलोना ॥
बहुरि पिया घर आव, कहा करिहौं लै सोना ॥ ९ ॥
साईं सब संसार में, मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गाँठ में, तब लग ताको यार ॥
तब लग ताको यार, यार सँग ही सँग डोलैं।
पैसा रहा न पास, यार मुख से नहिं बोलैं ॥
कह गिरिधर कविराय, जगत यहि लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति, यार बिरला कोइ साईं ॥ १० ॥
गुन के गाहक सहस नर, बिन गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय ॥

शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को इक रङ्ग, काग सब भये अपावन॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के।
बिनु गुन लहे न कोय, सहस नर गाहक गुन के॥ ११॥

साईं अवसर के पड़े, को न सहै दुख द्वन्द।
जाय बिकाने डोम घर, वै राजा हरिचन्द॥
वै राजा हरिचन्द, करैं मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी वेष, फिरे अर्जुन बलधारी॥
कह गिरिधर कविराय, तपै वह भीम रसोई।
को न करै घटि काम, परे अवसर के साईं॥ १२॥

बिना बिचारे जो करै, सो पीछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो, जग में होत हँसाय॥
जग में होत हँसाय, चित्त में चैन न पावै।
खान पान सन्मान, राग रँग मनहिं न भावै॥
कह गिरिधर कविराय, दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है जिय माँहि, कियो जो बिना बिचारे॥१३॥

बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुधि लेइ।
जो बनि आवै सहज में, ताही में चित देइ॥
ताही में चित देइ, बात जोई बनि आवै।
दुर्जन हँसै न कोय, चित्त में खता न पावै॥
कह गिरिधर कविराय, यहै करु मन परतीती।
आगे को सुख समुझि, होइ बीती सो बीती॥ १४॥

वैरीसाल।

[सं० १७७६]

दोहा—

नहिं कुरङ्ग नहिं ससक यह , नहिं कलङ्क नहिं पङ्क।
वीस विसे विरहा दही , गड़ी दीठि ससि अङ्क॥ १॥
यह सोभा अवलीन की , ऐसी परत निहारि।
कटि नापत विधि की मनौ , गड़ी आँगुरी चारि॥ २॥
विधु सम तुव मुख लखि भई , पहिचानन की सङ्क।
विधि याही ते जनु कियो , सखि मयङ्क मैं पङ्क॥ ३॥
लसति रोमावलि कुचन विच , नीले पट की छाँह।
जनु सरिता जुग चन्द्र विच , निश अंधियारी माँह॥ ४॥
कमल चढ़ावत काम है , हर ऊपर यहि चोप।
ह्वै प्रसन्न देहैं सुवर , रति संजोग तजि कोप॥ ५॥
अलि अब हम कीजै कहा , कासों कहैं हवाल।
उत धनु करपत मदन इत , करपत मनहिं गोपाल॥ ६॥
लई सुधा सब छीनि विधि , तुव मुख रचिवे काज।
सो अब याही सोच सखि , छीन होत द्विजराज॥ ७॥
सुनि तुव मुख निकसे वचन , मधुर सुधा को सोत।
जस्यो समर हर कोप झर , फेरि डहडहो होत॥ ८॥
दाहत आगि वियोग की , वाहि आठहू जाम।
तुम्हैं अछत अद्भुत सु यह , सुनौ सरस घनश्याम॥ ९॥

चलि देखौ ब्रजनाथ जू , झूठी भाखत मैं न।
कढ़त सलोने बदन ते , मधुर सुधा से बैन ॥१०॥
निरमल कीबे को मनहिं , करत स्याम रँग जोर।
अञ्जन आँजत दृगन ज्यौं , निरमल ताको कोर ॥११॥
जैसी कछु विधि नै दई , बड़ी विरह की झार।
तैसेई असुवाँ दये , तासु वुझावनहार ॥१२॥
निज नेवास को छोड़ि कै , लागी पलकन लीक।
वाही अकस लगी लला , अधरा अञ्जन लीक ॥१३॥
सखि केतो तुव रूप को , पारावार अपार।
जाहि चपल अति ललन मन , पैरि न पावत पार ॥१४॥
तुम ताके मन तासु मन , वसत विरह की ज्वाल।
तुम्हैं न बाधत नेक हू , बड़े सयाने लाल ॥१५॥
करत नेह हरि सों भटू , क्यों नहिं कियो विचार।
चहत बचायो बसन अब , बौरी बाँधि अंगार ॥१६॥
लसत लाल डोरे रु सित , चखन पूतरी स्याम।
प्यारी तेरे दृगन मैं , कियो तिहूं गुण धाम ॥१७॥
सेत कमल कर लेत ही , अरुन कमल छवि देत।
नील कमल निरखत भयो , हँसत सेत को सेत ॥१८॥
उयो विषद राका शशी , छायो भुवन प्रकास।
तऊ कुहू रजनी कियो , वाके नैननि वास ॥१९॥
ऐसे ही इन कमल कुल , जीति लियो निज रङ्ग।
कहा करन चाहत चरन , लहि अब जावक सङ्ग ॥२०॥

कर छुटाइ भजि दुरि गई , कनक पूतरिन माहिं।
खरे लाल बिलखत खरे , नेकु पिछानत नाहिं॥२१॥
जो नहिं ह्वाँ ते विकल है , भगि जातो अलिजाल।
तौ तुव हिय मैं जानियत , क्यों चम्पा की माल॥२२॥
निज प्रतिबिम्बन में दुरी , मुकुर धाम सुखदानि।
लई तुरत ही भावते , तन सुवास पहिचान॥२३॥
विरह तई लखि निरदई , मारत नहीं सकात।
मार नाम विधि ने कियो , यहै जानि जिय बात॥२४॥
तोष लहत नहिं एक सों , जात और के धाम।
कियो विधातै रावरे , याते नायक नाम॥२५॥
अलि ये उड़गन अगिनिकन , अङ्क धूम अवधारि।
मानहु आवत दहन ससि , लै निज सङ्ग दवारि॥२६॥
करत कोकनद मदहि रद , तुव पद हद सुकुमार।
भये अरुन अति दबि मनो , पायजेब के भार॥२७॥

शीतल।

[सं० १७८०]

पङ्कज पर वीर वधू वैठी उपमा लखि हो जा कुन्द कहीं।
कै शरद कमल दल पर विद्रुम देखै छूटै दुख दुन्द कहीं॥
पङ्कज दल ऊपर चुन्नी-सी वरणें मति रहु मुख मुन्द कहीं।
कुन्दन पर माणिक जड़े हुए जानी मिहँदी के वुन्द कहीं॥१॥

नग चुन्नी चौके जड़े हुये चम्पक दल मञ्जुल बैठे बन।
या पञ्च बाण ने तीरों की नोकों पर राखे आछे मन॥
नख लाल बिहारी के शीतल क्या शरद् चन्द्रमा के-से कन।
या विमल कञ्ज की कलियों पर जानी चढ़ि आये तारागन॥२॥

वरणन करने को क्या वरणों वरणों जग जोती बानी है।
ग्रह तीन उच्चके पड़े हुये जानी यह यूसुफ सानी है॥
शशि भवन जीव सफरी सुर गुरु कन्या बुध ज्योतिस गानी है।
इस लाल बिहारी जानी की क्या अर्ध चन्द्र पेशानी है॥३॥

उर अवा अनल में आँच दिया तुझ बिरह सङ्ग से पीसा है।
भरि खून जिगर को अय जालिम गुलजार रङ्ग दुति दीसा है॥
मज़नू फ़रहाद माधवानल इन सब मिल तुझे असीसा है।
दृग ठोकर ज़रब न मार यार दिल निपट करकरा सीसा है॥४॥

मुख शरद् चन्द्र पर श्रम सीकर जग मगे नखत गण जोती से।
कै दल गुलाब पर शबनम के हैं कणिका रूप उदोती से॥
हीरे की कनियाँ मन्द लगे हैं सुधा किरण के गोती से।
आया है मदन आरती को धर हेम थार पर मोती से॥५॥

कर छुयें गुलाब दिखाता है जो चौसर गूंथा बेली का।
गल बीच चम्पई रङ्ग हुआ मुसकान कुन्द रद केली का॥
दृग स्याह मरीचि लपेटे ही रँग हुआ सोसनी सेली का।
जानी यह तद गुण भूषण हैं पचरङ्गा हार चमेली का॥६॥

शृङ्गार रूप रस भरे हुये हैं सुधा किरण के जोती ये।
घाँधे सीने में मूरति-सी दरसावै रूप उदोती ये॥
परखे मुक्ताहल दृष्टी से झमकाहट जगमग जोती ये।
काढ़े हैं सुधाविन्दु में-से मैं शब्द ब्रह्म के मोती ये॥७॥

थी सरद चन्द्र की जोन्ह खिली सों वे था सब गुण जटा हुआ।
चोवा की चमक अधर बिहँसन रस भीजा दाड़िम फटा हुआ॥
इतने में ग्रसन समे वेला लखि ब्याल वड़ा अट पटा हुआ।
अवनी से नभ नभ से अवनी उछले अँगु नटका वटा हुआ॥८॥

रद देखे लाल विहारी के अनवेधे मोती मड़क गये।
कै पट दश कला छपाकर के इनहूं के किरचे कड़क गये॥
मुसकाते भरे लखे जब ते रस भीजें दाड़िम दड़क गये।
शर्मिन्दी कली चमेली की तड़िता के सीने तड़क गये॥९॥

जब तेरे रुख की हवा चली तब ते असमानी चङ्ग हुआ।
टङ्गा अरु काँपे सिरी पेट अरु भेद रूप सब अंग हुआ॥
नीचे ऊंचे अरु गोते हैं कन्नी का मुड़ना तंग हुआ।
रिश्ते से बँधा हुआ जानी दिल मेरा तुझे पतंग हुआ॥१०॥

हरदम पर दम कुछ दम पर दम तेरा ही सुमिरण करते हैं।
इकीस हज़ार छै सै स्वासों से रात और दिन भरते हैं॥
जानी मालूम तुझे क्या है ज्यों विरह सिन्धु को तरते हैं।
गिर दाव वड़ा ही छोटा-सा हम इसी फिकर में मरते हैं॥११॥

आँखों से देखे सौसन सी तन लगि चम्पक बे आब हुई।
नख चरण चन्द्रमा की किरणैं लखि ज़री तार बेताब हुई॥
मुख शरद चन्द्र पर नज़र गई जानी हरदम महताब हुई।
बे तरह जान को लेती है हाथों में गेंद गुलाब हुई॥१२॥

हम खूब तरह से जान गये जैसा आनँद का कन्द किया।
सब रूप सील गुन तेज पुञ्ज तेरे ही तन में बन्द किया॥
तुझ हुस्न प्रभा की बाकी ले फिर विधि ने यह फरफन्द किया।
चम्पकदल सोनजुही नरगिस चामीकर चपला चंन्द किया॥१३॥

ऋषिनाथ।

[सं० १७८०]

दोहा—

श्रीनन्दलाल तमाल सो, स्यामल तन दरसाय।
ता तन सुबरन बेलि सी, राधा रही समाय॥ १॥

कवित्त—

छाया छत्र ह्वै करि करत महिपालन को, पालन को पूरो फैलो रजत अपार ह्वै। मुकुट उदार ह्वै लगत सुख श्रौनन में जगत जगत हन्स हाँसी हीर हार ह्वै॥ ऋषिनाथ सदानन्द सुजस बिलन्द तम वृन्द को हरैया चन्द चन्द्रिका सुढार ह्वै। हीतल को सीतल करत घनसार ह्वै महीतल को पावन करत गङ्गधार ह्वै॥ २॥

गंजन ।

[सं० १७८६]

सवैया—

लाज के साज सबै बिसरे अरु सोच सकोच हिये ते गँवाये ।
नैनन के बस डोलत हैं पुनि मैन महा-मुनि मन्त्र पढ़ाये ॥
खोयो सखी धन धर्म सबै तिन सों बकि नाहक बैन थकाये ।
जासों कसो अपराध तहाँ पुनि पावन ह्वै परि पावन आये ॥१॥

जाति हुती जमुना तट तैं तहँ ठाढ़े हैं कान्ह चली मुख मोरी ।
प्रीति हिये उलही लखि जानि कै ओंठन ही हँसि ह्वै गई भोरी ॥
गञ्जन जू जिमि तूंबरी पानी दबी न रहै इमि प्रेम की चोरी ।
काँकरी पाँय चुभी तिय के सिसकी सुनि कै पिय नाक सिकोरी ॥२॥

जोबन रूप गुमान महा तिय आई हुती गति हन्स हरी-सी ।
मोहन की मुरली सुनि कै वह मोहि गई भई चित्र धरी-सी ॥
मार सुमारु करी अति ही ठगि ठाढ़ी रही मन मोद भरी-सी ।
अङ्ग हलै न चलै कहूं नेक हू ह्वै गई पाहन की पुतरी-सी ॥३॥

हौं तो धसो तट भीजिबे के डर बेगि तहाँ जमुना धसि न्हाई ।
धाइ कै आइ कै चीर लये बिनु धीर भई सब पूछि जन्हाई ॥
गञ्जन हीरा को मोतिन हूं को सु आजु लखो वृषभानु दुहाई ।
हाइ कहा करौं माइ रिसाइगी हार हमारे हरे हैं कन्हाई ॥४॥

कवित्त--

फूलि रहे वन उपवन घन घूमि घूमि झूमि रहे तरु जहाँ पौन परसत है। गुञ्जत भँवर डोलैं सौरभ झकोर ओलैं मोर पिक बोलैं सुनि मन करषत है॥ लाल पाग स्याम सीस चूनरी सुरङ्ग राधे रङ्ग रचि रह्यो अति नैन दरसत है। कुञ्ज भवन दम्पति अनङ्ग हुलसत ज्यों ज्यों मेह बरसत त्यौं त्यौं नेह सरसत है॥ ५॥

बोलत न सुनै कोऊ देखती न गुरु जन मन पति ही को सदा लिये मन तरसै। नीचिये रहति मुख घूंघुट लहति महा कहा कहौं जैसी लाज हिय बीचि तरसै॥ गञ्जन सुकवि कहै ऐसो निरवहै घर आँगन न आवै नैन सूरज न दरसै। पग उघरत पीर नख शिख चीर सोहै परपति मानि हियो पौनहू न परसै॥ ६॥

उतै सितासित जू मैं न्हात तन ताप हरैं इतै मैन ताप हरै देत नैन सैनी है। उतै पाप हरै यह कहत पुरान सब ए ऊ पापै हरै पिय ऐसी प्रीति पैनी है॥ उतै सरसुति को अभाव लखियत अरु गञ्जन कहत ए प्रगट मुख वैनी है। सङ्गम त्रिवेनी करै पावन जगत इत पिय तिय संगम सों पावन त्रिवेनी है॥ ७॥

नेक जो हँसौं तो होत लाल माल हीरन की नेक दृग हेरे मोहिं नील मनि झलकी। जो हौं मुख धोइबे की अंजुली भरौं लैं झोरी सखिन निहारी राती दुति होति जल की॥ जो हौं रचौ बीरन चिलक दुरैं जोबन की मेरे देखिबे को आँखैं गञ्जन की ललकी। आँगन कढ़ौं तो भौंर भीरन अन्धेरो होत पाउँ जो धरौं तो मही होत मखमल की॥ ८॥

शिवसिंह।

[सं० १७८८]

सवैया—

हौं जमुना जल जात अचानक, बानक सों नँदलाल ठई।
तब दौरि धस्यो कर सों कर को, उर लाइ लई जनु निद्धि पई॥
शिवसिंह जहीं परस्यो कुच को, तुतुराइ कह्यो अब छोड़ु बई।
भुज तें निबुकाइ गुपाल के गाल में, आँगुरी ग्वारि गड़ाइ दई॥१॥

बक्सी हन्सराज।

[सं० १७५३]

कृष्ण को गोचारण शिक्षा—

कान्ह कुंवर जब चले विपिन को तन मन आनँद बाढ़े।
जसुमति नन्द नैन भरि दोऊ देत सिखावन ठाढ़े॥
विपिन बीच जिनि जाव अकेले छोड़ि सखन को साथू।
भूल बिसर जिन डारो कबहूं कोंदर खन्दरन हाथू॥
तनक तनक बछरन को लैकै तनक दूरि तुम जइयो।
जो मैं दीन्हों कान्ह कलेऊ बैठ जमुन तट खइयो॥
कान्ह कुंवर सों कहत गरो भरि फिरि फिरि जसुमति मैया।
जब भूखे तुम होउ लाड़िले तब दुहि पीजो गैया॥
झाड़ होहिं जहँ सघन लतन के तहँ न तोरियो फूलन।
कबहूं नहीं होइ तुम ठाढ़े लागि वृक्ष के मूलन॥

हिले मिले रहियो ग्वालन मैं एक ठौर सब आछे।
जिन दौरियौ उपनये पावन हरुवाइल के पाछे॥
जहाँ होइ तृन आवृत धरनी तहाँ जात तुम डरियो।
जीव जन्तु तहँ होत घनेरे समझ बूझ पग धरियो॥
भौंर मछोह होय बृक्षन मैं कबहुँ न तिनहिं खिझइयो।
बिड़रानी गैयन के सामू भूलि-बिसरि जनि जइयो॥
बार बार बरजत हैं बाबा सुनियो बचन हमारो।
कण्टक तृन कँकरन के ऊपर कोमल पाँव न धारो॥
जहँ बामी जू मिले गोहन के तहँ बैठक तज दीजो।
होहिं बेमटे बरर-छताने तिन सों रार न कीजो॥
जहाँ होहिं चुर सिंह बाघ की तहाँ न कीजो फेरी।
जिन धरियो तुम धाय बिपिन मैं पूंछ बच्छरन केरी॥
सघन छाँह तर बैठि जमुन तट क़ान्ह कलेऊ कीजो।
बिपिन बिपिन ते गाय बहोरन पठै सखन को दीजो॥
ठौर ठौर पुनि बगर बगर के बछरा बिछुरि हिरैहैं।
ढूंढ़न तुम जिन जाव कहूं बन भटकत पाँव पिरैहैं॥
सुनो लाल यह सीख हमारी वे बछरन दुखदाई।
कबहूं भूलि न जइयो तेहि बन जेहि बन होत बिघाई॥
आपुस मैं कबहूं लरिकन सों भूलि न करौ लड़ाई।
हिले-मिले रहियो सबही सों बन-बन धेनु चराई॥
बार बार यह कहति जसोमति भरि भरि आनँद आँसू।
कबहुं भूलि जिन करियो साँवलि नागिनि को बिसवासू॥

जो हम कहैं सीख सो कीजो यही वात है भलियो।
कस्रो वैठि विसराम विरछ तर सामे घाम न चलियो॥
जो कछु सीख देइ वलदाऊ मान सीस धरि लीजो।
व्यानी गाय तुरत जो तेहि की तेली भूलि न पीजो॥
एक वात मैं कहत लाड़िले यह विशेष हू कीजो।
फूले फरे करेंछ विपिन मैं तिनको भूल न छीजो॥
विषधर विषम वसत वहि जागा यहै वात जग जानी।
गोधन को कवहूं जिन दीजो कालीदह को पानी॥
और खेल खेलौ गेंदन कौ ढेलन को मत खेलौ।
सुनो साँवले खेल डुडुरुवा हूडा दै नहिं खेलौ॥
कान उमेठ कुंवर कान्हर के हटकै जसुमति मैया।
जिन खेलो तुम डण्ड साँवरे रूखन पै जु विलैया॥
रूखन पै जिनि चढ़ो साँवरे पीपर पात न तोरो।
गैलन गिडी डण्ड जिन खेलौ यहै सिखापन मेरो॥
खाँई कूप वावरी वेहर नदिया नारो वाँको।
स्यामलिया रे सुन इन हूं को कवहूं कूदि न नाको॥
कन्सराय को राज कठिन है जमुना उतर न जइयो।
साँझ होन नहिं पावै प्यारे दिन वूड़त घर अइयो॥
जसुमति नन्द सीख यह दीनी अपने कुंवर कन्हैये।
वाँह पकरि आगे दै सौंपे दै अभारु वल भैये॥

सिखापन=शिक्षा। वूड़त=अस्त।

श्रीधर।

[सं० १७८६]

सवैया—

श्रीधर भावते प्यारी प्रवीन के, रङ्ग रँगे रति साजन लागे।
अङ्ग अनङ्ग-तरङ्गन सों सब, आपने आपने काजन लागे॥
किंकिनि पायल पैजनियाँ, बिछिया घुंघरू घन गाजन लागे।
मानो मनोज महीपति के, दरबार मरातिब बाजन लागे॥१॥

तोष।

[सं० १७४२]

सवैया—

तो तन मैं रवि को प्रतिबिम्ब परैं किरिनै सो घनी सरसाती।
भीतर हूं रहि जात नहीं अँखियाँ चकचौंध ह्वै जाति हैं राती॥
बैठि रहो बलि कोठरी मैं कहि तोष करौं बिनती बहु भाँती।
सारसी नैन लै आरसी सौं अँग काम कहा कढ़ि घाम में जाती॥१॥

लोचन लोल लसैं अँसुवा कन जाइ सो धाइ पै जाइ पुकारे।
या रतिया ते भई छतिया मह पीर नहीं पै लगै अति भारे॥
ऊतर ताहि दियो कहि तोष सो वाजि उठ्यो मनमोद नगारे।
तू जनि नेकु डेराइ इन्हैं बलि पीर सहैंगे विलोकन वारे॥२॥

मरातिब=नौबत।

लाज विलोकन देति नहीं, रतिराज विलोकन हीं को दई मति।
लाज कहै मिलियैन कवौं रतिराज कहैं हित सों मिलिये पति॥
लाजहुं की रतिराजहुं की कहि तोष नहीं कहि जात कछू गति।
लाल तिहारिये सौंह कहौं वह वाल भई हैं दुराज की रैयति॥३॥

मेरियो लाल भई अँखिया अँखिया लखि रावरी जावक जानो।
मेरे वियोग जगे कहुं रैनि सु हौंहूं कियो निसि जागि विहानो॥
हैं हम तो तुम एकई प्रान रच्यो विधि द्वै तन साँचु मैं मानो।
रावरे के हिय हार गड्यो लखि साँवरे जू हिय मेरो पिरानो॥४॥

फूल गुलाव के फूलि रहे द्रुग किंसुक से अधरा अधकारे।
झारि कै लाज पतौवन को किसलय सम जावक हैं अरुनारे॥
तोष लसै मृग के मद की तन लीक अली अवली मतवारे।
मोद अनन्त भयो उर अन्तर आये वसन्त ह्वै कन्त हमारे॥५॥

ते धनि तोष जो मोहन को सरवङ्ग लखैं धरि धीर लोगाई।
मैं नखते सिखलौं भरि साध कवौं इनते सखि देख न पाई॥
जौनहिं अङ्ग परै पहिले न टरैं तिनसों अँखिया दुखदाई।
मैं जकि जाति ठगी लगि जाति दोऊ अँखिया थकि जात वनाई॥६॥

इक दीनी अधीनी करैं वतियाँ जिनकी कटि छीनी छलामैं करैं।
इक दोष धरैं अपसोस भरैं इक रोष के नैन ललामैं करैं॥
कहि तोष जुटी जुग जङ्घन सों उर दै भुज स्यामैं सलामैं करैं।
निज अम्वर माँगैं कदम्ब तरे व्रज-वामैं कलामैं मुलामैं करैं॥७॥

सोई हुती पलँगा पर बाल खुले अँचरा नहिं जानत कोऊ।
ऊँचे उरोजन कंचुकी ऊपर लालन के चरचे दृग दोऊ॥
सो छवि पीतम देखि छके कवि तोष कहै उपमा यह होऊ।
मानो मढ़े मुलतानी बनात में शाह मनोज के गुम्मज दोऊ॥८॥

सुन्दरि कुंवरि।

[सं० १७९१]

कवित्त—

श्याम नैन सागर मैं नैन वारपार थके नाचत तरङ्ग अङ्ग अङ्ग रगमगी है। गाजर गहर धुनि बाजन मधुर बेन नागनि अलक जुग सोधै सगबगी है॥ भँवर त्रिभङ्गताई पानिप लुनाई तामैं मोती मनि जालन की जोति जगमगी है। काम पौन प्रबल धुकाव लोपी पाज तामें आज राधे लाज की जहाज डगमगी है॥ १॥

ठाकुर।

[सं० १७९२]

सवैया-

धिक कान जो दूसरी बात सुनैं अब एक ही रङ्ग रहो मिलि डोरो।
दूसरो नाम कुजात कढ़ै रसना जो कहै तो हलाहल बोरो॥
ठाकुर यों कहतीं ब्रज बाल सु ह्याँ बनिता को सुभाव है भोरो।
ऊधो जू वे अँखियाँ जरि जायँ जो साँवरो छाँड़ि तकैं तन गोरो॥१॥

का कहिए कोई पारख नाहिनै तातें हिये की जतैयत नाहीं ।
भागन भेंट भई कबहूं सु घरीकु विलोकें अघैयत नाहीं ॥
ठाकुर या घर चौचन्द को डर तातें घरी घरी ऐयत नाही ।
भेंटन पैयत कैसे तिन्हैं जिन्हैं आँखिन देखन पैयत नाही ॥२॥

वरुनीन में नैन झुकें उझकैं मनो खञ्जन मीन के जाले परे ।
दिन औधि के कैसे गनौं सजनी अँगुरीन के पोरन छाले परे ॥
कवि ठाकुर काहू सों का कहिए निज प्रीति किये के कसाले परे ।
जिन लालन चाह करी इतनी तिन्हैं देखिवे के अब लाले परे ॥३॥

राधिका श्याम लसैं पलका पर कापर जाति कही छवि हाल की ।
आपने हाथ से भावती लैकर प्रीति से अंजुरी जोरी गोपाल की ॥
ठाकुर तापें धरो मुख बाल नै को वरनै उपमा वहि काल की ।
पानिन में तिय आनन यों दिपै चन्द चढ़ी मनो कञ्ज सनाल की ॥४॥

रूप अनूप दई दियो तोंहि तो मान किये न सयान कहावै ।
और सुनौ यह रूप जवाहिर भाग वड़े विरले कोउ पावै ॥
ठाकुर सूम के जात न कोऊ उदार सुने सवही उठि धावै ।
दीजिये ताहि देखाय दया करि जो चलि दूरि ते देखन आवै ॥५॥

वा निरमोहिनि रूप की रासि न ऊपर के मन आनति ह्वै है ।
वारहिं वार विलोकि घरी घरी सूरति तौ पहिचानति ह्वै है ॥

चाह=प्रीति। पानिन में=हाथों में । आनन=मुंह । कञ्ज=कमल । सयान=चतुर ।

ठाकुर या मन की परतीति है जो पै सनेह न मानति ह्वै है।
आवत हैं नित मेरे लिये इतनौ तौ विशेष हू जानति ह्वै है॥६॥

अब का समझावति को समुझै बदनामी को बीज तो बो चुकी री।
तब तो इतनो न बिचार कस्यो यह जाल परे कहु को चुकी री॥
कवि ठाकुर जो रस रीति रँगी सब भाँति पतिव्रत खो चुकी री।
अरी नेकी बदी जो लिखी हती भाल में होनी हती सो तो हो चुकी री

वह कञ्ज सो कोमल अङ्ग गुपाल को सोऊ सबै पुनि जानती हौ।
बलि नेक रुखाई धरे कुम्हलात इतौऊ नहीं पहिचानती हौ॥
कवि ठाकुर या कर जोरि कह्यो इतने पै मनै नहिं मानती हौ।
दृग बान ये भौंह कमान कहौ अब कान लौं कौन पै तानती हौ॥

तन कौ तरसाइबो कौने बद्यौ मन तौ मिलिगौ पै मिलै जल जैसौ।
उनसौं अब कौन दुराव रह्यौ जिनके उर मध्य करौ सुख ऐसौ॥
ठाकुर या निरधार सुनौ तुम्हैं कौन सुभाव पस्यो है अनैसौ।
प्रानपियारी सुनो चित दै हिरदै बसि घूंघट घालिबो कैसौ॥९॥

सुरझी नहीं केतो उपाइ कियौ उरझी हुती घूंघट खोलन पै।
अधरान पै नेक खगी ही हुती अटकी हुती माधुरी बोलन पै॥
कवि ठाकुर लोचन नासिका पै मड़राइ रही हुती डोलन पै।
ठहरै नहीं डीठ फिरै ठठकी इन गोरे कपोलन गोलन पै॥१०॥

जब तैं दरसे मनमोहन जू तब तैं अँखियाँ ये लगीं सो लगीं।
कुलकानि गई भगि वाही घरी ब्रजराज के प्रेम पगीं सो पगीं॥

कवि ठाकुर नेह के नेजन की उर मैं अनी आन खगीं सो खगीं।
अब गाँव रे नाँव रे कोऊ धरौ हम साँवरे रङ्ग रगीं सो रगीं ॥११॥

लगी अन्तर मैं करै बाहिर को बिन जाहिर कोऊ न मानतु है।
दुख औ सुख हानि औ लाभ सबै घर की कोऊ बाहर भानतु है॥
कवि ठाकुर आपनी चातुरी सों सबही सब भाँति बखानतु है।
पर वीर मिलै बिछुरे की बिथा मिलि कै बिछुरै सोई जानतु है॥१२॥

काहे अरे मन साहस छाड़त काहे उदास ह्वै देह तजै है।
वे सुख ये दुख आये चले गये एक सी रीति रही नहिं रैहै॥
ठाकुर काको भरोस करैं हम या जग जालन भूल न ऐहै।
जाने सँजोग में दीन्हों वियोग वियोग में सो का सँयोग न दैहै॥१३॥

ठाढ़े रहैं घनश्याम उतै इत मैं पुनि आनि अटा चढ़ि झाँकी।
जानति हौ तुमहूं ब्रज रीति न प्रीति रहै कबहूँ पल ढाँकी॥
ठाकुर कैसे हूं भूलत नाहिनै ऐसी अरी वा बिलोकनि बाँकी।
भावत ना छिन भौन को बैठिबो घूंघट कौन कौ लाज कहाँ की॥

कवित्त--

कोमलता कञ्ज तैं गुलाब तै सुगन्ध लै के चन्द तें प्रकाश कियो उदित उजेरो है। रूप रति आनन तैं चातुरी सुजानन तैं नीर लै निवानन तैं कौतुक निबेरो है॥ ठाकुर कहत यों मसालौ विधि कारीगर रचना निहारि जन होत चित चेरो है। कञ्चन को रङ्ग लै सवाद लै सुधा को वसुधा को सुख लूटि कै बनायौ मुख तेरो है॥ १५॥

सामिल हो पीर मैं शरीर मैं न राखै भेद अन्तर कपट कछु होय सो उघरि जाय। ऐसो ठान ठाने तो बिना ही जन्त्र मन्त्रन तैं साँप के जहर को उतारे तो उतरि जाय॥ ठाकुर कहत कछु कठिन न जानी जाय हिम्मत किये तैं कहो कहा न सुधरि जाय। चारि जने चारिहु दिशा तैं चारो कोन गहि मेरु कौ हिलाय कै उखारैं तौ उखरि जाय॥ १६॥

सेवक सिपाही हम उन रजपूतन के दान जुद्ध जुरिबे में नेकु जे न मुरके। नीति दै निवारे हैं मही के महिपालन को कवि उनही के जे सनेही साँचे उर के॥ ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के जालिम दमाद है अदेनियाँ ससुर के। चोजन के चोज रस मौजन के पातसाहि ठाकुर कहावत पै चाकर चतुर के॥१७॥

राजा गुरुदत्तसिंह (भूपति)।

[सं० १७९२]

दोहा—

कच सिवार पङ्कज नयन, राजति भुजा मृणाल।
पावत पार न मीन मन, सरस रूप को ताल॥ १॥
रच्यौ कुरङ्ग सुरङ्ग दृग, जान्यो बिधि रसभङ्ग।
वै कानन मैं करि दये; ये कानन के सङ्ग॥ २॥
खरी अटा पर भावती, लख्यौ स्याम दृग जोरि।
लियो गुड़ी लौं ऐंचि मन, ल्याइ प्रेम की डोरि॥ ३॥

सुधा सरोवर तिय वदन , तिहि ढिग चिवुक निपान ।
करत रहत है रोज ही , दृग खञ्जन रस पान ॥ ४ ॥
मुख जोरे कोरे लगी , दृगनि करत चलि नीच ।
अब साँचे दृग मीन भे , चढ़ि तिय बेनी बीच ॥ ५ ॥
नई दुलहिया देह दुति , को बरनै अवदात ।
सहज रङ्ग लखि अधर को , सौती पान न खात ॥ ६ ॥
नथ दुर मुकुता तिय वदन , परसत परम प्रकास ।
मानहुं ससि भ्रम नखत वर , तजि आयो नभ वास ॥ ७ ॥
पाइ निकट वहु कुसुम सर , करत कुसुमसर जोर ।
अब वृन्दावन जाइवो , सखी कठिन नहिं थोर ॥ ८ ॥
मंजुल मुकुत निते गुहे , छुटे वार छवि देत ।
तारन सहित सुहावनी , छवि नभ की हरि लेत ॥ ९ ॥
एक रूप गुन एक सम , एक रीति सुभ साज ।
कुटिल अलक लखि जानियत , कुटिल रूप रसराज ॥१०॥
पवन झूंक झाँकन लग्यो , अञ्चल चलत दुसौन ।
तसो न को रस सिन्धु मैं , लखि तिय कान तसौन ॥११॥
हरि तिय देखे ही बने , अचिरिजु अँग गुन गेह ।
कटि कहिबे की जानिये , ज्यों गनिका को नेह ॥१२॥
सजि सिंगार तिय भाल मों , मृग मद बेंदी दीन ।
सुवरन के जयपत्र मैं , मदन मोहर सी कीन ॥१३॥

निपान=हौज । अवदात=सुन्दर । कुसुमसर=कामदेव । रसराज=शृङ्गार ।

तिय अङ्गन की सरि करै , क्यौं सिरीष सुकुमार ।
वै छिन मैं कुम्हिलात है , यै छिन ज्योति उदार ॥१४॥
सूखी वँसुरी आपु है , क्यौं जानै पर पीर ।
बजि २ रोजहिं आपु लौ , कियो चहत है बीर ॥१५॥
वसन गहो अब बस न है , लखि कै नेकु स्वरूप ।
बसन भयो मन बस न है , तरुनि तिहारे रूप ॥१६॥
अचल रहै तिय पिय निकट , नरम सचिव के काज ।
हिमकर कर गहि जनु फिरत , सदन सदन रतिराज ॥१७॥
अलप अरुन छवि अलप तम , अलप नखत दुति जाल ।
लियो विविध रँग नभ बसन , जनु प्राची बर बाल ॥१८॥
विरह विथा व्याकुल भई , बैठी सर तट बाल ।
मधुकर धूम मनौ उठत , जरत कञ्ज के बाल ॥१९॥
मिली ललकि उठि लाल को , टुटी लाल की माल ।
मनौ कढ़ी उर ते परै , विरह अनल की ज्वाल ॥२०॥
स्याम २ दुति ईठि तुव , कोऊ लखति न ईठि ।
तुम राधा सँग ही दुरो , परति राधिका दीठि ॥२१॥
सर २ यद्यपि मंजु है , फूले कञ्ज रसाल ।
बिन मानस मानस मुदित , कहु नहिं करत मराल ॥२२॥
सङ्गति दोष न होति क्यौं , रहि प्रेतन के पास ।
शिव! शिव! शिव हू को भयो , चिता भूमि मैं बास ॥२३॥
सङ्गति दोष न पण्डितनि , रहे खलनि के सङ्ग ।
विषधर विष ससि ईश मैं , अपने अपने रङ्ग ॥२४॥

विज्जु छटा प्रगटी मनौ , ठटी रूप ठहराति ।
नहिं आवति मेरी अँटी , नटी नटीसी जाति ॥२५॥
लेति आनि निसि घेरि कै , सीत तेज तन लागि ।
राखति प्रानन नाह बिन , सुरति नाह हिय लागि ॥२६॥
कुन्द कली हू ते सरस , बढ़ी दसन में काँति ।
राजति है कैधौं गुही , मंजुल मुकता पाँति ॥२७॥
नीले जरबीले छुटे , केस सिवार समाज ।
कै लपट्यो ब्रजराज रँग , कै लपट्यो रसराज ॥२८॥
लग्यौ सरस जावक सरस , कौन करै परभाग ।
की अन्तर ते बढ़ि चल्यौ , लाल बाल अनुराग ॥२९॥
गुरुजन न्यौते सब गये , करै को आदर भाव ।
उनये देखि पयोधरै , टिक्यो चहौ टिकि जाव ॥३०॥
लपटि बेलि सी जाति अँग , निघुटि नटी लौ जाइ ।
कोटि नवोढ़ा वारिये , वाकी बोलनि पाइ ॥३१॥
लखि २ स्याम सरूप सखि , कह्यो कछू नहिं जाइ ।
तजि कुरङ्ग गति नैन ये , गज गति लेत बनाइ ॥३२॥
ये समीर तिहुं लोक के , तुम हौ जीवन दानि ।
पिय के हिय मैं लागि कै , कब लगिहौ हिय आनि ॥३३॥
झुकति पलक झूमति चलति , अलक छुटी सुखदानि ।
नहिं बिसरै हिय मैं बसी , वा अलसौहीं बानि ॥३४॥

जरबीले=चमकदार । उनये=उठे । पयोधर=मेघ, स्तन ।

दलपतिराय तथा बन्शीधर।

[सं० १७९२]

कवित्त—

भोर भये आवत निकुञ्ज मधि मन्द मन्द परसत बेग बाढ़े पुलक सरीर है। अङ्ग २ कपि जऊ जतनन छाये तऊ लेत ऐंचि आँचर को आली अति धीर है॥ मोसों जो छिपावत सो पावसि हो कोतिक को करे कुटिलाई काहे जान्यो बलबीर है। तेरी सों न बलवीर जमुना के तीर जब जात लेन नीर तब लागत समीर है॥ १॥

पूरब हरित बनिता को मुख तामें पल रचना रुचिर वर मृगमद रङ्ग की। कीधौं नभ-सरवर फूले पुण्डरीक मध्य मेचक प्रवाहै अलि अवली अभङ्ग की॥ सुकवि न उपमा अनेक ऐसी कहि कवि बदन बखाने एक ये है विधि भङ्ग की। विरहिन निरखु हि न्हाखत निसोस याते दागिल दिखात याते आरसी अनङ्ग की॥ २॥

अधर पै दन्त छत दीन्हें थरी चकित ह्वै अङ्ग २ कम्प नाहीं नाहीं हठ लीनो है। छाँड़ि सठ ऐसे कहि ससकि जिनाइ नैन भौंहनि मरोरि कोप बचन प्रवीनो है॥ ऐसे मानिनी को कीनो चुम्बन अचानक ही अमृत अनूप तिनही ने तप पीनो है। गूढ़ गुन जाने बिन मूढ़ देवतान मिलि सागर मथन को विथाहीं श्रम कीनो है॥ ३॥

दोहा—

कोकन के विरहागि की , धूम घटा तम जान।
जनु अञ्जन बरखत गगन , मानो अथये भान ॥ ४ ॥
कर अम्बर पर धारि हैं , कलानाथ यहि हेत।
धरे राग वारुनि दिसा , निसि को करत सँकेत ॥ ५ ॥
चस्यो सिन्धु औ गगन मैं , वड़वा विज्जुरी संग।
ताप करत यह जुगुतहीं , चान्द वियोगी अंग ॥ ६ ॥

रसरासि।

[अनु० सं० १७९२]

सवैया—

केलि कलाकी झलानिकों झेली, रचि रसरासि सची सुख थाती।
अङ्गन अङ्ग समोय रही कछु, सोइ रही रस आसवमाती ॥
ऐसे मैं आय गयो है अचानक, कञ्ज पराग भस्रो उतपाती।
प्रीतम के हिय लागी तऊ उहिं सीरे समीर जराई ले छाती ॥१॥

दयाबाई।

[सं० १७९२]

दोहा—

दया कुंवर या जगत में , नहीं रह्यो थिर कोय।
जैसो वास सराय को , तैसो यह जग होय ॥ १ ॥

तात मात तुम्हरे गये , तुम भी भये तयार।
आज काल में तुम चलौ , दया होहु हुसियार॥ २॥
बड़ो पेट है काल को , नेक न कहूँ अघाय।
राजा राना छत्रपति , सब कूं लीले जाय॥ ३॥
साधु सङ्ग में सुख बड़ो , जो करि जाने कोय।
आधो छिन सतसङ्ग को , कलमख डारे खोय॥ ४॥
बौरी है चितवत फिरूँ , हरि आवें केहि ओर।
छिन उठूँ छिन गिरि परूँ , राम दुखी मन मोर॥ ५॥

सोमनाथ।

[स० १७९४]

सवैया—

न्हान जो जाइ तौ सङ्ग सखी बनि पाँवड़े पाँवरी के करिबो करै।
केसरि लाइ सँवारि कै आड़ निहारि कै नेह नदी तरिबो करै॥
जो ससिनाथ न डीठि परै कुल कानि तैं नारि कछू डरिबो करै।
तौ निसि वासर साँवरिया घर की नित भाँवरिया भरिबो करै॥

कहि कै इत झूठ उहाँ उन सौं मिलि कै निसि मैं रसरीति करी।
अब भोर भये उठि आये दुरे दुरे बातन ही सौं सुमीति करी॥
ससिनाथ सुजान हौ रावरे तौ सब ही विधि आपनि जीति करी।
हम हीं यह लाल अनीति करी तुम सौं बिनु जाने जो प्रीति करी॥

न्यारु निहार तरैयनि की द्युति लाग्यौ महा विरहा तनु तावन।
ए ससिनाथ सुनौ मन मैं अति शूल गनै न त्यों कञ्ज से पावन॥
पीत दुकूल मैं फूलनि लै अलबेली के प्रेम की सिद्धि बढ़ावन।
कान्ह दिवारी की रैनि चल्यौ बरसाने मनोज के मन्त्र जगावन॥

नेकु न चैन परे दिन रैनि कहा कहिये सुख बारिद पै तिनि।
चन्द्रक नीर ते सौ गुनी होति बुझै न हजार उपाय ठयो गिनि॥
टेरहीं सौं व्रजबालनि के उर और ही आगि को बीज बयो जिनि।
री जिहि बंस भई बँसुरी तिहि बंस को बंस निबंस भयो किनि॥

कञ्चन से तन सारी सुरङ्ग किनारी सो दामिनि जोति जितौनि वै।
ओट अली की अचानक आइ हरे हँसि पीर वियोग वितौनि वै॥
और कहा कहिये ससिनाथ करी उन ता छिन हेत हितौनि वै।
नैननि मैं कसकैं अजहूं बरछी सी बनी तिरछौंही चितौनि वै॥५॥

कवित्त—

बीती लरिकाई न झलक तरुनाई आई निरखैं सुहाई अङ्ग औरै ओप अति है। तुलाचल संक्रमन की सी दिन राति कोऊ घटि बढ़ि है न साधे ठीक ठहरति है॥ दरस को अन्त ज्यौं उजेरो न अँधेरो पाख सोमनाथ उपमा प्रवीन परसति है। दोऊ वैस सन्धि मैं छबीली प्रानप्यारी वह अरुन उदै की कञ्ज-कली-सी लसति है॥ ६॥

ग्वालनि के सङ्ग वन वीथिन भ्रमे हौ ताते अङ्ग २ स्वेद जल-कन सगबगे हैं। खेल ही मैं विमल विभावरी विहानी उहाँ

आलस तैं पागे पग होत डगमगे हैं॥ सोमनाथ अलबेले पेंच सरसत आछे कैसे मुखचन्द के बनाऊ जगमगे है। जानति हौं मोहन सुजान रावरे के नैन मेरेई अनूप अनुराग रगमगे हैं॥ ७॥

ठाढ़ी बतराति इत राति ही परोसनि सों जासी तिय दूसरी न पूरब पछाहीं मैं। डीठि परि गई तहाँ औचक सुजान कान्ह औंचकाई प्रगट पछीति परछाहीं मैं॥ सोमनाथ त्योंहीं प्रान-प्यारे कौं सुनाइ कह्यो तिय ने सखी सौं तरुनाई की उछाहीं मैं। बन्सीवट निकट हमै तू मिलियो री काल्हि कातिक मैं न्हाऊँगी तरैयन की छाहीं मैं॥ ८॥

उतही है मन याते सूधो न परत पग अङ्ग अरसात भुरहरे उठि आये हौ। रङ्ग मगी अँखियाँ अनूप चित चोरे लेत सोमनाथ आछै इह रूप लखि पाये हौ॥ हम सो तो बोलिबो बिहँसिबो विसास्रो पिय सबै विधि उनहीं के हाथन बिकाये हौ। काहे को नटत वेई बैननि प्रगट होति अनुराग जिनको लिलाट धरि लाये हौ॥ ६॥

आवत अनेक और आवैगे घने पै वैसो कौन धौं रिझावैगो सुधा सी तान गावैगो। सोमनाथ फूलनि के गहने बनाइ चारु अङ्ग सरसावैगो अनङ्ग उपजावैगो॥ राजि परिजङ्क पै निसङ्क नित चाँदनी मैं छतियाँ लगावैगो वियोगहि बुझावैगो। सुख कौं दिवैया वह प्यारो परदेसनि तैं फेरि कब आवैगो सखी री धन लावैगो॥ १०॥

उछाहीं=उछाह, उत्साह। तरैयन=तारा। भुरहरे=सुबह।

राखति न तिन के परोसिन के पाप कहूं काहू समै भूले हूं जो नाउँ मुख ते कहैं। पञ्चमुख करि कै पठावती महेसपुर जे नर हुलासनि सों न्हात रचि टेक हैं॥ सोमनाथ कहै अहे सुन्दर तरंगे गंगे बूझत हौं तुम्हैं ऐसे संसय अनेक है। केते तोमै वैल औ फनिन्द चन्द वाला केती केती मुण्डमाल औ वघम्बर कितेक हैं॥

दिनकर किरन वरुन दिसि लीन भई गगन कछुक ससि किरन वनाई है। सङ्कुचित पङ्कज कुमुद विकसित रञ्च पञ्चसर नवल प्रतिञ्च धुनि लाई है॥ फूली साँझ सुन्दर सुहावनी निहारतहीं सोभा कवि सोमनाथ वरनि सुनाई है। वालम के आगम उमङ्गनि ते मानों भई रैनि मुख मंजुल अमन्द अरुनाई है॥ १२॥

थरहर कुन्दनि कदलि अरविन्दन पै गुञ्जरत भँवर समीप सरवर है। फरकत कोक सुरसरि की तरङ्ग सङ्ग भेंटत कलपवेलि काम तरवर है॥ विद्रुम सुरङ्गनि मैं हीरा की जगति जोति सोमनाथ कहै सो मधुरता को घर है। देखौ लसै दामिनि न छत्र जलधर मै नछत्र पति अङ्क मैं विचित्र दिनकर है॥ १३॥

सोने सो सरीर आसमानी रङ्ग चीर तामै औरै ओप कीनी रखि रतन तरौना वै। सोमनाथ कहैं इन्दिरा सी जगमगै वाल गाढ़े कुच ठाढ़े मनु ईस जुग मौना है॥ कारी घुंघुरारी मन्द पवन झकोर लागे फरहरै अलक कपोलनि के कोना छ्वै। सो छवि अनिन्द मनौ पान सुधाविन्दु करि इन्दु मधि खेलत फनिन्दनि के छौना है॥ १४॥

शिवदासराय।

[सं० १७९४]

दोहा—

वृद्ध तिया रक्षा तजै , रहै काम नहिं देहि।
ज्यों कुम्भार सोवै सुखी , चोर न मटियाँ लेहि॥ १॥
श्रवन सुन्यो नैननि लख्यो , यामैं संसै नाहिं।
कूप जो खोदै आनहीं , परै आपु तेहि माहिं॥ २॥
क्रम करि भागहिं पाइये , सुख सम्पति धन धाम।
ल्यायो कोउ न जन्म ते , निज सँग ध्वजा निसान॥ ३॥

शिव।

[सं० १८०१]

कवित्त--

सनि कै परागन सों रागन रचत भौंर ह्वै रहे मदन्ध बौर भौंरनि झुके परैं। प्रगट पलासन हुतासन से सुलगत बन ओर मन देत अङ्ग अङ्ग प्रजरैं॥ कहै शिव कवि आई विषम बसन्त ऋतु ऐसे में विदेस बातैं कोऊ हियरे धरैं। देखो नये पल्लव पवन लागे डोलैं मानो चलत बिदेसिन बिदेस को मने करैं॥१॥

गोरी के हथोरी शिव कवि मेहँदी के विन्दु इन्द्र-ती को गन जाके आगे लगै फीको है। अँगूठा अनूप छाप मानो ससि आयो

आप कर कञ्ज के मिलाप पात तजि हीको है ॥ आगे और आँगुरी अँगूठी नीलामनि युत वैठो मनो चाय भरो चेट्टुआ अली को है । दवि के छली सों कोमलाई सों ललाई दौरि जीतत चुनी को रङ्ग छोर छिगुनी को है ॥ २ ॥

देवकीनन्दन ।

[स० १८०१—१८५७ तक]

सवैया—

जाऊँ अन्हान जसोमति के घर होतीं तहाँ वनिता यक ठोरी ।
रूप सराहतीं मेरो उहाँ मन रीझती रीझ भरी रस बोरी ॥
घूंघुट खोलतीं तोलतीं आनँद वाँधती नैनन प्रेम की डोरी ।
हेरतीं मो मुख चोरी सबै ह्वै चकोरी रहै नन्द गाउँ की गोरी ॥१॥

खञ्जन मीन वखानि कुरङ्गन वारत कञ्जन प्रीति पको करै ।
डोरन पूतरि डोरन मोरन औरनि मैं जदुवीर छको करै ॥
लावो करै मन गायो करै गुन पायो करै रसरङ्ग थको करै ।
मेरे बड़े २ नैनन ओर वड़े २ नैनन स्याम तको करै ॥२॥

राति रहे हौ रहौ उनहीं के इहाँ हम सों खु कौन विचारौ ।
कौन है गीत हमारे कहा उनके रसरंग कवित्त खु ठारौ ॥
लीजे सलाम विदा हम होइँगी मेरे मनै सो करौं निरधारौ ।
रोज हमारो मिलै हम कौ उन कौ तुम मौज है रोज निहारौ ॥३॥

अन्हान=स्नान करने । तको करै=देखा करता है । रोज=दैनिक वेतन, सदा ।

हम जात विदेस कह्यो पिय ने परभात ही प्यारी के तीर खरे ।
कवि नन्दन ऊँची उसासन लै मुख मोह सों दोऊ के पीर परे ॥
भरि आयो दुहूंन को हेरि हियो अब माँगै बिदा को बिदा को करे ।
उमड़े दृग ते अँसुआ ज्यौं बहे त्यौं रहे मिलि दोऊ गरे मै गरे ॥४॥

मुकुता गुन लालन सों मैं गुही रस की गति त्यौं पहिचानि परै ।
तुम देखी उहाँ नँदलाल कहूं वह बाल कहूं असनान करै ॥
यहु जो कहूं दैव को जोगु लगै हमै भावै वही मन मारि परै ।
मिलि बेनी मैं जोति त्रिबेनी रहै हरि बेनी त्रिबेनी न जानि परै ॥५॥

वाही के प्रेम गयो पगि मो मनु आनि हरो है हमारो हियो क्यों ।
देवकीनन्दन भूलि गई सुधि साँवरो रूप बखान कियो क्यों ॥
गाइ कै गान लगाइ महा दृग सो छतिया मै रमाय दियो क्यों ।
मोहन की मनमोहिनी माल दै मोहिं तू मालिनि मोहि लियो क्यों ॥

कवित्त—

नीकी नीकी राह ढूंढ़ि चलत अरन्य भूमि करत बसन छाँह भूले सुख धाम के । देवकीनन्दन कहै सीतल पियावै जल हलंबल चलत न ऐसे वस बाम के । सुन्दर परखि फल राखत सिया के हेत ताकत मुखारविन्द सुखु लेत नाम के । ग्रीषम के आतप की तीखन लपट धावै सीता जू के श्रम सों पसीना आवै राम के ॥७॥

कोमल विमल सुकुमार सीधे सीलमान लसत विसाल पैंधे भूषन सुऐन है। देवकीनन्दन कहै खात पान झलकत अरुनाई कण्ठ सुघराई मन चैन है ॥ अभै नये जोबन सुगन्धन समारै सदा

मीठे मन मीठे बैन खञ्जन से नैन है। जोरे रूप रंगन चलत चित च्चोरे चोरे गोरे गोरे गात तैसे भोरे भोरे बैन है ॥ ८ ॥

जगमगी जोवन के जोति की जुन्हाई होत सोने कैसे रंग सव गात की गोराई है। देवकीनन्दन कहै लाँवे २ केस झूमै चूमै मग चलत विसेप अधिकाई है। अंगन ते उठत सुगन्ध की झकोर कैयो यौवन लौ मँहक समीर लै मिलाई है। आई है निकुञ्ज एक वाल लाल देखि आई वड़े २ नैनन की वड़ी सुघराई है ॥ ६ ॥

मोतिन की माल तोरि चीर सव चीर डारे फेर नहिं जैवो आली दुख चिकरारे हैं। देवकीनन्दन कहै धोखे नाग छौनन के अलकैं प्रसून नोचि २ निरधारे हैं॥ मानि मुख चन्द्रकला चोटै दई अधरनि तीनौं ए निकुञ्जन मैं एक तार तारे हैं। ठौर ठौर डोलत मराल मतवारे तैसे मोर मतवारे त्यों चकोर मतवारे हैं॥

छल कै लै आई सखी नवल तिया को वन आये ना कन्हाई मन करत विचारसी। देवकीनन्दन कहै सोन जुही फूलन मैं चम्पा तरु फूलन मैं मिलि जात हारसी॥ जिय मैं करत चित हेरत हरेई हरे गुलसब्बो चाँदनी मैं देखत वहार सी। मौलसिरी जालन मैं चम्पा तरु आलन मैं मौलसिरी डारन मै डोलै लगि डारसी ॥ ११ ॥

कुञ्जनि मैं खञ्जन की चलनि निहारत ही दृग अरविन्दन की आभा दरसाइ जात। देवकीनन्दन कहैं फिरि नहीं भूलै मोहिं

अभै=अवै, अभी। हरेई हरे=धीरे धीरे।

व्रह बानि ही मैं कोर कठिन सताइ जात ॥ कैसे जीबो आली बनमाली बिन फागुन मै देखत ही रङ्ग अङ्ग २ पियराइ जात । आइ जात स्याम सुधि कालिन्दी बिलोकत हीं छाइ जात मैन पीर आँसू नैन आइ जात ॥ १२ ॥

किशोर ।

[सं० १८०१]

सवैया—

फूलन दे इन टेसू कदम्बन अम्बन बौरन छावन दे री ।
री मति मन्द मधुव्रत पुञ्जन कुञ्जन सोर मचावन दे री ॥
को सहि है सुकुमार किशोर अरी कल कोकिल गावन दे री ।
आवत ही बनि है घर कन्तहिं बीर बसन्त हि आवन दे री ॥१॥

यह सौति सवादिन जा दिन तें मुख सों मुख लायो हियो रसु री ।
निस द्यौस रहै न घरी सुघरी सुनि कानन कान्हर की जसु री ॥
यक आपस बेधस बेध करै असुरी दृग आनि ढरै अँसुरी ।
अब तो न किशोर कछू बसुरी बसुरी ब्रज बैरिनि तूँ बँसुरी ॥२॥

सुन्दर सोहै सुगन्धित अङ्ग अभङ्ग अनङ्ग कला ललिता है ।
तैसी किशोर सुहात सुयोगिनि भोगिनि हूं को मनोहरता है ॥
सङ्ग अली अवली रवि राजत अङ्ग रसीली बशी करता है ।
कोमलता युत वीर बसन्त की बैहर की बनिता की लता है ॥३॥

मधुव्रत=भौंरा । बैहर=वायु ।

मोतीदाम—

लिये कर कञ्जन कञ्चन थार, सजे तिन मैं नव मंगल साज।
उड़ावहिं वीर अबीर गुलाल, विशाल रहे बहु बाजन बाज॥
जमाय किशोर मनोहर राग, भरी अनुराग समारि समाज।
अली अलबेलि नवेलि चली, ब्रजराज वसन्त बधावन आज॥४॥

कवित्त—

धावे तकि धावति सवैर तजि काम काम धायो कर धनुष सुधाकर धराधरी। हहरि उठे हैं सब लोग लोक सोर करि कल विरहिनि को न परत जरा भरी॥ कहत 'किशोर' भौंर भौंर ठौर ठौरन मैं दौरनि मची है अति मौरनि तरा भरी। तेहवन्त तरुन गुमान गुन गेहवन्त नेहवन्त निरखि वसन्त की भरा भरी॥ ५॥

मलै गिरि मारुत के मिसि विरहाकुलनि दिशि दिशि व्यालन को विष बगरायो है। ता पर किशोर तैसे पञ्चम नवल राग कोक की कलान भीनो कोकिलन गायो है॥ को न सुनि मोचै मान लोचै कान्ह मिलन को सोचै कौन श्याम देखि नभ घन छायो है। आमन के झौर लागे अङ्कुरन मौर लागे भौंर लागे भ्रमन वसन्त अब आयो है॥ ६॥

अम्बनि ते अम्बर तैं द्रुमनि दिगम्बर तैं अपर अडम्बर तैं सखि सरसो परै। कोकिल की कूकन तैं हियन की हूकन तैं अतन भभूकन तैं तन परसो परै॥ कहत किशोर कञ्ज पुञ्जन तैं कुञ्जन

तैं मंजु अलि गुञ्जन तैं देखु दरसो परै। वसन तैं बासन तैं सुमन सुबासन तैं बैहर तैं बन तैं बसन्त बरसो परै ॥ ७ ॥

कढ़ी जल केलि तैं नवेली अलवेली तीय अङ्ग अङ्ग भूषण उमङ्ग उर लसतें। कहत किशोर मुख धोय पोंछि आँचल सों ठाढ़ि भई तीर मैं छबीली छवि लसतें ॥ कर उलटाय कर काँधे पैं आँगी बंध गही रही गई बाल लाज लखि वसतें। सनमुख सबल बिलोकि रनधीर मानों खेंचत सुभट वीर तीर तरकस तें ॥ ८ ॥

रामजीभट्ट ।

[सं० १८०२]

सवैया—

मौलसिरी लखि रावरे को रुख कौंलन ते फिरतो न रँगीनो।
सेवती चम्पकली की समाजहिं सोन जुही बलि नेकु न चीन्हों ॥
रामजी लाल मैं रंग सोहावनो देखत ही मन मैं हरि लीनों।
जानि नवेली बहार बही वह मो गरे को तुम हार न कीनों ॥१॥

भूपर पाउँ धरै जबहीं बिनु जावक जावक की अरुनाई।
स्वास समीर लगे लचकै कटि फूल गुलाब गहे गरुआई ॥
भेद छिपाइ सखीन सों चातुर आपने हाथन सेज बिछाई।
देखहि आरसी मन्दिर मैं हर काम की काम ही पूजन आई ॥२॥

चञ्चलताई तजी न अवै गति पायन हू न सिखाई मरालन।
छीनता नेकु लही कटि ने अरु पीनता यौंहीं उरोज रसालन॥
रामजी देखत ही तम हीन लगे अवै सौतिन के उर सालन।
आनन ओप सुधाधर की न भटू किहिं हेत लटू भये लालन॥३॥

घूमै तहीं चख रावरे चञ्चल भूमै कहूं जित ही पगु दीजै।
माधव हाँसी करैं सखियाँ अँखियाँन वचाही सिखावन लीजै॥
गोल कपोल दुहूं अधरान को दन्त वचाइ सुधारस पीजै।
हेरति होइ कहूं ननदी तव लाल सनेह मनै मन कीजै॥४॥

कवित्त।

स्वेद कन जाली अंसुमाली की तपनि आली शुकी कहूं खण्डे तो अधर विम्व वूझे हैं। वेनी जानि साँपिनी सु चोंथी है कलापिनी ने पापिनी चकोरी को कपोल चन्द सूझे हैं॥ रामजू पियारे पै पठाई तै न गई तहाँ वन्द कंचुकी के कहूं झार मैं अरुझे हैं। उरज सरोज ये स्वयंभु शम्भु किंसुक से कुञ्जनि के कोने कहौ कौने आजु पूजे हैं॥ ५॥

उरज उतङ्गन को मोतिन के हार दीन्हें कण्ठ कण्ठ-सीरी दीन्हों वाजू वन्द वाँह को। मन्द २ चलनि गयन्द गति जीति लीन्हीं सखि लौं न साथ लीन्हीं चली चित चाह को॥ लाज लाजवती की चलावैं फेरि फेरि लावैं नेह वरजोरी कै मिलावत है

सालन=सालना, पीड़ा देना। पीनता=स्थूलता। अंशुमाली=सूर्य। कलापिनी=मयूरी।

नाह को। धारा बीच जैसे नाव पूरब को चाहति है लिये जात जैसे हठि खेवट पछाह को ॥ ६ ॥

अतर गुलाबी चोवा चोटिन फुलेल लाय अलकै निकासी नाग निकसे बिलन ते। चूनरी चुनाइ चटकीली कारचोवन सों साजि कै सिंगार सरसीले भान भान ते॥ बैठी पिय पास पिय भाषत विदेस गौन घूंटत प्रवाह वारि नारि अँखियान ते। शाखा कलपद्रुम ते मोतिन को पाँति टूटी तारे बाँधि कूदे की कतारे आसमान ते ॥ ७ ॥

पुखी।

[सं० १८०३]

सवैया--

फूले अनारन किंसुक डारन देखत मोद महा उर माँचै।
माधुरे भौरन अम्ब के बौरन भौरन के गन मन्त्र से बाँचै॥
लागि रहीं बिरही जन के कचनारन बीच अचानक आँचै।
साँचै हुंकारै पुकारै पुखी कहि नाचै बनैगी बसन्त की पाँचै॥१॥

पीनस वारो प्रवीन मिलै तौ कहाँ लौं सुगन्धी सुगन्ध सुंघावै।
कायर कोपि चढ़ै रन मैं तौ कहाँ लगि चारन चाउ बढ़ावै॥
जो पै गुनी को मिलै निगुनी तौ पुखी कहु क्यों करि ताहि रिझावै।
जैसे नपुंसक नाह मिलै तो कहाँ लगि नारि सिंगार बनावै॥२॥

जीवन।

[सं० १८०३]

कवित्त।

छैल ब्रजचन्द एतो छल करि रहे गैल राधिका नवेली वनी चम्पे की कली नई। वाही खोरि आवै हरि हरखि निरखि फूलै आजु भेंट ह्वै है कवि जीवन भली भई॥ ताही मग आवत अचानक ही परी दीठि मुरि मुसक्याई उन दाहिनी गली लई। कहि रहे कान्ह नेक ठाढ़ी होहु सुने जाहु सुनी है जू सूनी है जू कहति चली गई॥ १॥

रसनायक।

[सं० १८०३]

कवित्त—

तट की न घट भरैं मग की न पग धरैं घर की न कछु करैं बैठी भरैं साँसु री। एकै सुनि लोटि गई एकै लोट-पोट भई एकन के द्रग ते निकसि आये आँसुरी॥ कहै रसनायक सो ब्रज-बनितान बधि बधिक कहाय हाय भयो कुल हाँसु री। करिये उपाय बाँस डारियो कटाय नाहीं उपजैगो बाँस नाहीं बाजै फेरि बाँसुरी॥१॥

कुमारमणि भट्ट।

[सं० १८०३]

सवैया—

गावैं बधू मधुरे सुर गीतनि प्रीतम सङ्ग न बाहेर आई।
छाई कुमार नई छिति मैं छवि मानो बिछाइ नई दरियाई॥
ऊँचे अटा चढ़ि देखि चहूं दिसि बोली यों बाल गरो भरि आई।
कैसीं करौं हहरै हियरा हरि आये नहीं उलही हरियाई॥१॥

बोधा।

[सं० १८०४]

सवैया—

अति छीन मृनाल के तार हु ते तेहि ऊपर पाँव दै आवनो है।
सुई बेह ते द्वार सकी न तहाँ परतीति को टाँड़ो लदावनो है॥
कवि बोधा अनी घनी नेज हु ते चढ़ि तापै न चित्त डरावनो है।
यह प्रेम को पन्थ कराल महा तरवार की धार पै धावनो है॥१॥

वह प्रीति की रीति को जानत थो तब हीं तो बच्यो गिरि ढाहन तैं।
गजराज चिकारि कै प्रान तज्यो न जलो सँग होलिका दाहन तैं॥
कवि बोधा कछू न अनोखो यहै का बनै नहीं प्रीति निबाहन तैं।
प्रह्लाद की ऐसी प्रतीति करै तब क्यों न कढ़ै प्रभु पाहन तैं॥२॥

लोक की लाज औ सोच प्रलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ।
गांव को गेह को देह को नातो सनेह में, हांतो करै पुनि सोऊ॥
बोधा सुनीति निवाह करै घर ऊपर जाके नहीं सर होऊ।
लोक की भीति डेरात जो मीत तो प्रीति के पैंड़े परै जनि कोऊ॥

एक सुभान के आनन पै कुरबान जहाँ लगि रूप जहाँ को।
कैयो सतक्रतु की पदवी लुटियै तकि कै मुसकाहट ताको॥
सोक जरा गुजरा न जहाँ कवि बोधा जहाँ उजरा न तहाँ को।
जान मिलै तो जहान मिलै नहिं जान मिलै तो जहान कहाँ को॥४॥

अनतैं नित काहू के होन न पाव समान के लोग अयोगिया रे।
दुख तेरो कहा सुनिहैं दुखिया ह्वै रहे सब आपुहीं सोगिया रे॥
करौं वारनै तोपै वुधा वर ही पुरहूत के पूरन भोगिया रे।
बसु रे बसु राधे के पायन में मन जोगिया प्रेम वियोगिया रे॥५॥

पक्षिन को बिरछोहैं घने बिरछान को पक्षियो हैं बड़े चाहक।
मोरन को हैं पहार घने औ पहारन मोर रहैं मिलि नाहक॥
बोधा महीपन को मुकुता औ घने मुकुतानि को होहिं बेसाहक।
जो धन है तो गुनी बहुतै अरु जो गुन हैं तो अनेक हैं गाहक॥६॥

तैं अब मेरी कही नहिं मानति राखति है उर जोम कछू री।
सो सब की छुटि जात भटू जब दूसरो मारि निकारत झूरी॥
बोधा गुमान भरी तब लौं फिरबो करौ जौलौं लगी नहिं पूरी।
पूरी लगे लखि सूरन की चकचूर ह्वै जात सबै मगरूरी॥७॥

कहिबे को व्यथा सुनिबे को हँसी को दया सुनि के उर आनतु है ।
अरु पीर घटै तजि धीर सखी दुख को नहिं कापै बखानतु है ॥
कवि बोधा कहे में सवाद कहा को हमारी कही पुनि मानतु है ।
हमै पूरी लगी कै अधूरी लगी यह जीव हमारोई जानतु है ॥८॥

रितु पावस स्याम-घटा उनई लखिकै मन धीर धिरातो नहीं ।
पुनि दादुर मोर पपीहन की सुनिकै धुनि चित्त थिरातो नहीं ॥
जब ते बिछुरे कवि बोधा हितू तब ते उर दाह थिरातो नहीं ।
हम कौन सों पीर कहै अपनी दिलदार तो कोऊ दिखातो नहीं ॥६॥

प्रेम की पाती प्रतीति कुंडी दृढ़ताई के घोटन घोटि बनावै ।
मैन मजेजन सों रगरै चित चाह को पानी घनो सरसावै ॥
बोधा कटाक्षन की मिरचैं दिल साफी सनेह कटोरे हिलावै ।
मो दिल होय सुखी तबहीं जब रङ्ग मै भावती भङ्ग पिआवै ॥१०॥

द्वार मै प्यारो खरो कब को लख ती हियरे सों लगाइन लीजै ।
तू तौ सयानी अनोखी करी अब फेरि कै ऐसी न चित्त धरीजै ॥
बोधा सोहाग औ सोभा सबै उड़िजैबे के पन्थ पै पाउँ न दीजै ।
मानि ले मेरी कही तू लली अहे नाह के नेह मथाह न कीजै ॥११॥

काँपत गात सकात बतात है साँकरी खोरि निसा अँधियारी ।
पात हू के खरके छरकै धरकै उर लाय रहै सुकुमारी ॥
बीच मैं बोधा रचै रस रीति मनो जग जीति चुक्यो तेहि बारी ।
यों दुरि केलि करै जग मैं नर धन्य वहै धनि है वह नारी ॥१२॥

क्रूर मिले मगरूर मिले रन-सूर मिले धरे सूर प्रभा को।
ज्ञानी मिले औ गुमानी मिले सनमानी मिले छविदार पता को॥
राजा मिले अरु रङ्क मिले कवि बोधा मिले निरसङ्क महा को।
और अनेक मिले तौ कहा नर, सो न मिल्यो मन चाहत जाको॥१३॥

कवहूं मिलिवो कवहूं मिलिबो यह धीरज ही मै धरैवो करै।
उर तैं कढ़ि आवै गरे तैं फिरै मनकी मनही मैं सिरैवो करै॥
कवि बोधा न चाउ सरी कवहूं नित हीं हरवी सो हिरैबो करै।
सहते ही वनै कहते न बनै मन ही मन पीर पिरैबो करै॥१४॥

कवित्त—

हिलि-मिलि जानैं तासों हिलि मिलि लीजै आप हिलि मिलि जानै ऐसो हितू न विसाहिये। होय मगरूर तासों दूनी मगरूरी कीजै लघुता ह्वै चलै तासों लघुता निबाहिये॥ बोधा कवि नीति को निवेरो यहि भाँति करो आपको सराहै ताहि आपहू सराहिये। दाता कहा सूर कहा सुन्दर प्रवीन कहा आपको न चाहै ताहि आप हू न चाहिये॥ १५॥

दोहा—

यथा नारङ्गी रेशमी, तिहि समान कुच दोइ।
पूरब पुण्यन ते पुरुष, ग्रहण करत है सोइ॥१६॥
केलि करी सिगरी निशा, निशा न मानी चित्त।
साहस कै माधो चल्यो, मोहिं विदा दे मित्त॥१७॥
सुन सुभान नर देह धरि, कलि में सुखी न कोय।
नृप रोगी परजा निधन, गुनी वियोगी होय॥१८॥

तौलौं तो जीवो भलो , कहा साँझ कह भोर ।
जौलौं प्यारी बगल में , कर में उरज कठोर ॥१९॥
विधि विनऊँ कर जोरि कै , मोहि देहि द्वै ईठ ।
कै मृग-नैनी बगल में , कै मृगछाला पीठ ॥२०॥

सोरठा—

बधिर भले वह कान , जे प्रीतम बिछुरन सुनैं ।
बोधा धृक वे प्रान , प्राणनाथ बिछुरत रहैं ॥२१॥
रसना जरि किन जाय , जान कहै दिलजानि सों ।
गेह लगै किन जाय , भाव बिना सम भाकसी ॥२२॥
बोधा धृक वह जीव , जो प्रीतम बिछुरत जियत ।
बिछुरत देखै पीव , ऐसे दृग फूटे भले ॥२३॥
नेह करे का जात , सब कोऊ सब से करै ।
अरे कठिन यह बात , करिबो और निबाहिबो ॥२४॥
बिछुरे दरद न होत , खर सूकर कूकुरन को ।
हन्स मयूर कपोत , सुघर नरन बिछुरन कठिन ॥२५॥

शम्भुनाथ मिश्र ।

[सं० १८०६]

सवैया—

नलिनी जल मध्य को आड़ करै जुग फूटे जुराफ उड़ावहि को ।
मन चुम्बक बीच को लोहो भयो तहाँ दूसरो रूप देखावहि को ॥

कवि शम्भु सनेह की रीति यही बिछुरे जल मीन जिआवहि को।
गुन वारे गोपाल की आँखिन तें अरुझीं अँखियाँ सरुझावहि को ॥१॥

मैलो कै डारत पीत पटा घर जानै न पैये बोलावन धावत।
लाल मलीन ह्वै जात जबै जब बारहिं बार सनेह लगावत॥
न्हाइये औ रहिये कवि शम्भु ए धोइबो मो पै नहीं बनि आवत।
तू फल पावत एरी भटू हम साँवरे रङ्ग नहीं कल पावत ॥२॥

हठि माँगत बाट किधौं लछिमी की सरोज सो आनि सेवार अरे।
किधौं आरती के घर तें उत शम्भु समूह फनी छवि को बगरे॥
इमि राधिका के मुख के चहुं वार विराजत बार महा सुथरे।
भजि चन्द चल्यौ बिचल्यौ रन तें तम वृन्द मनो जुरि पाछे परे ॥३॥

गाँव के लोग धरैं जब नाव चबाव चहूं दिसि ते उनयो है।
भीतर शम्भु सदा रहिये जमुना को नहायबो छूटि गयो है॥
देखत ही लगि जात कलङ्क निसङ्क ह्वै काहू न अङ्क लयो है।
गोकुल में अरी नन्दलला अबलान को चौथि को चन्द भयो है ॥४॥

लै परजङ्क निसङ्क नवेली कों अङ्क में लाय लगे गहि गूंमन।
उरुन सों कसिकै कवि शम्भु सुजान को भेंटि लगे मुख चूंबन॥
गोरे करेरे तरेरे उरोजन दै कर लागे लला झुकि झूंमन।
गूंजन लागो गरो गरबीली को नीर भरी पुतरी लगि घूंमन ॥५॥

दृग लाल विशाल उनींदे कछू गरबीले लजीले से पेखहिंगे।
कब धो बिथुरी सुघरी अलकैं झपकी पलकैं अवरेखहिंगे॥

कवि शम्भु सुधारति भूषन भेष विलोकतु यों जग लेखहिंगे ।
अँगिराति उठी रति-मन्दिर ते कबधौं वह भाँवती देखहिंगे ॥६॥

कान्हर की नित शम्भु कथा सुनि कै इमि कामिनी कौतुक पागी ।
सोवत जागत हू जो मनै मन मै मनमोहन के रँग रागी ॥
दन्त को दाग दियो पिय ध्यान मै ध्यानहीं तें तब सोवत जागी ।
आपु दिया ढिग आरसी लै अधरा अधरातक देखन लागी ॥७॥

आयो बसन्त दहन्त सखी घर आये न कन्त न पाये सँदेसन ।
शम्भु कहै पथिकाये सबै अब कोऊ विदेसी रहे न विदेसन ॥
चन्दमुखी द्रुग ते अँसुवा ढुरि आनि परे कुच याही अँदेसन ।
मानो मयङ्क सरोजन तें मुकताहल लै लै चढ़ावै महेसन ॥८॥

ज्यौं त्यौं रह्यो अब लौं जिय तूं अब आयो बसन्त कछू न बसैहै ।
शम्भु सुगन्धित सीतल मन्द समीरनि पीर गँभीर उठै है ॥
क्यों ठहरैगो करैगो कहा जब कोकिला कूकि कै कूकि सुनै है ।
औरन तेरो फबैगो कछू वलि सङ्ग कुहूकु तुहू कढ़ि जैहै ॥९॥

कवित्त—

सोवै लगे घर के बगर के केवार खुले बीती निज जान जुग जाम जुग जामिनी । चुप चाप चोरा चोरी चौंकत चकत चित चली हित पास चित चाह भरी मानिनी ॥ पैठत सकेत के निकेत शम्भु सोभा देखि ऐसी बन बीथिन बिराजि रही कामिनी । चामीकर चोर जानै चम्पलता भौंर जानै चाँदनी चकोर जानै मोर जानै दामिनी ॥

बिहारी (द्वितीय)।

[सं० १८०६]

कवित्त--

बैठिये न जहाँ तहाँ कीजै न कुसङ्ग सङ्ग कायर के साथ शूर भागै पर भागै है। काजल की कोठरी में कैसो हू सयानो जाय काजल की एक रेख लागै पर लागै है॥ देखो एक बागन में फूलन की वासन में, कामिनी के सङ्ग काम जागै पर जागै है। कहत बिहारीलाल कठिन विराग पन्थ, सोवत को प्रेम फन्द लागै पर लागै है॥ १॥*

भगवन्तराय खीची।

[सं० १८०६]

कवित्त--

सुख भरिपूरि करैं दुखन को दूरि करैं जीवन समूरि सो सजीवन सुधार की। चिन्ता हरिबे को चिन्तामनि सी विराजै कामना को कामधेनु सुधा संजुत सुमार की॥ भनै भगवन्त सूधी होत जेति और देत साहिबी समृद्धि देखि परत उदार की। जन मन रञ्जनी है गञ्जनी विथा की भय भञ्जनी नजरि अञ्जनी के ऐंड़दार की॥ १॥

सोवत=सोहबत, सङ्गति। * ये जाति के राव तथा बुन्देलखण्ड के थे।

विदित विशाल ढाल भालु कवि जाल की है ओट सुरपाल की है तेज के तुमार की। जाही सों चपेटि कैं गिराये गिरि गढ़ जासों कठिन कवाट तोरे लङ्किनी सुमार की॥ भनै भगवन्त जासों लागि लागि भेंटे प्रभु जाके त्रास लखन को छुभिता खुमार की। ओड़ै ब्रह्म अस्त्र की अवाती महाताती वन्दौ जुद्ध मदमाती छाती पवन-कुमार की॥ २॥

बलदेव।

[सं० १८०६]

सवैया—

थाकी निकाई न पाई केहूं तिय मैनका मैन की जाई सी लागै।
कानन लागैं लसै वह नैन कहै मृदु वैन सुधारस पागै॥
नाद सँगीत कलान प्रवीन लखे तन-दीपति के तम भागै।
द्यौस लगै घर कञ्चन लीपो सो राति जुन्हाई कि जोति न जागै॥

भौंहे विलोके रहै सदा सासु की जोई कहै सो करै परि पाँइनि।
नन्द-जिठानी रहै सुख पाये सु देखत ही करैं चौगुनो चाइनि॥
सूधिय रीति सदा वलदेवजू जानै नहीं कछु धाइ उपाइनि।
केती तिया सुकिया सुनी-देखी न देखी-सुनी कहूं ऐसे सुभाइनि॥

कवित्त—

दान हठ ठानै दोष और के वखानै, रीति भाँति नहिं जानै औ न मान खाँड पूरी सें। विद्या को न लेश त्यौं न वेष रूप रेख

कछू, हुज्जति हमेश वाज आवैं नहीं कूरी सें॥ खीझि केश राखैं चिप खैहे इमि भाँखे, चट टेढ़ी करि आँखें चीरि डारे तन छूरी सें। कलियुग के काजन को साजे तजी लाजन को, ऐसे द्विजराजन को दण्डवत् दूरी सें॥ ३॥

पद्माकर।

[सं० १८१०—१८६० तक]

सवैया—

जाहिरे जागत सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बैनी।
त्यौं पदमाकर हीर के हारन गङ्ग तरङ्गन कों सुखदैनी॥
पायन के रँग सों रँगि जात सी भाँति ही भाँति सरस्वती सेनी।
पैरे जहाँई जहाँ वह वाल तहाँ तहाँ ताल मैं होत त्रिवेनी॥१॥

चौक मैं चौकी जराय धरी तिहि पै खरी बार बगारत सौंधे।
छोरि धरी हरी कंचुकी न्हान कों अङ्गन तैं जगे जोति के कौंधे॥
छाई उरोजन की छवि यौं पदमाकर देखत ही चकचौंधे॥
भाजि गई लरिकाई मनो लरि कै करि कै दुहुँ दुन्दुभि औंधे॥२॥

जाहि न चाह कहूं रति की सु कछू पति को पतियान लगी है।
त्यौं पदमाकर आनन मैं रुचि कानन भौंह कमान लगी है॥
देति तिया न छुवै छतियाँ बतियाँन मैं तो मुसक्यान लगी है।
प्रीतमैं पान खवाइबे को परजङ्क के पास लौं जान लगी है॥३॥

बगारत=फैलाती। कौंधे=प्रकाश, चमक। औंधे=उलट कर।

ऊधम ऐसो मचो ब्रज मैं सबै रङ्ग तरङ्ग उमङ्गनि सींचैं।
त्यौं पद्माकर छज्जनि छातनि छ्वै छिति छाजतीं केसर कीचैं॥
दै पिचकी भजी भीजी तहाँ परे पीछे गोपाल गुलाल उलीचैं।
एक ही सङ्ग इहाँ रपटे सखी ए भये ऊपर हौं भई नीचैं॥४॥

पिय पागे परोसिनि के रस मैं बस मैं न कहूं बस मेरे रहै।
पद्माकर पाहुनी सी ननदी न नदी तजैं पै अचसेरे रहै॥
दुख और यों कासों कहौं को सुनै ब्रज की बनिता दृग फेरे रहै।
न सखी घर साँझ सबेरे रहैं घनश्याम घरी घरी घेरे रहै॥५॥

अब ह्वै है कहा अरबिन्द सो आनन इन्दु के हाथ हवाले पस्रो।
पद्माकर भाषै न भाषे बनैं जिय ऐसे कछूक कसाले पस्रो॥
इक मीन बिचारो बँध्यो बनसी पुनि जाल के जाइ दुमाले पस्रो।
मन तो मनमोहन के सँग गो तन लाज मनोज के पाले पस्रो॥६॥

साहस हूं न कहूं रुख आपनी भाषैं बनै न बनै बिन भाखैं।
त्यौं पद्माकर यों मग मैं रँग देखति हौं कब की रुख राखैं॥
वा विधि साँवरे रावरे की न मिलै मरजी न मजा न मजाखैं।
बोलनि वान बिलोकनि प्रीति की वो मन वे न रहीं अब आँखैं॥७॥

किंकिनि छोरि छपाई कहूं कहूं बाजनी पायल पाँय तैं नाई।
त्यौं पद्माकर पातहु के खरके कहूँ काँपि उठै छवि छाई॥
लाज हिं तैं गड़ि जात कहूँ अड़ि जात कहूँ गज की गति भाई।
वैस की थोरी किसोरी हरे हरे या विधि नन्द किसोर पै आई॥८॥

मण्डप ही मैं फिरै मँडरात न जात कहूँ तजि नेह को औनो।
त्यों पद्माकर तोहिं सराहत बात कहै जु कहै कहुँ कौनो॥
ये बड़ भागिनी तो सी तुही बलि जो लखि रावरो रूप सलौनो।
व्याह ही तें भये कान्ह भटू तब ह्वै है कहा जब होइगो गौनो॥६॥

करि कन्द को मन्द दुचन्द भई फिरि दाखन के उर दागती हैं।
पद्माकर स्वादु सुधा सों सिरै मधु तें महा माधुरी जागती हैं॥
गनती कहा येरी अनारन की ये अँगूरन तें अति पागती हैं।
तुम बातैं निसाँठी कहौ रिस मैं मिसिरी तें मिठी हमैं लागती हैं॥

आछे किये कुच कंचुकी मैं घट मैं नट कैसे बटा करिबे को।
मो दृग दूपे किये पद्माकर तो दृग छूट छटा करिबे को॥
कीजे कहा बिधि की बिधि को दियो दाखन लोट पटा करिबेको।
मेरो हियो कटिबे को कियो तिय तेरो कटाछ कटा करिबे को॥

झाँकति है का झरोखे लगी लग लागिबे को इहाँ झेल नहीं फिर।
त्यौं पद्माकर तीखे कटाछन की सर कौसर सेल नहीं फिर॥
नैनन हीं की घला घलकै घन घावन को कछु तेल नहीं फिर।
प्रीति पयोनिधि मैं फँसि कै हँसि कै कढ़िबो हँसी खेल नहीं फिर॥

बैन सुधा सी सुधा सी हँसी बसुधा मैं सुधा की सटा करती हौ।
त्यौं पद्माकर बारहिं बार सु बार बगारि लटा करती हौ॥
बीर बिचारे बटोहिन पै बिन काज ही तो यौं छटा करती हौ।
बिज्जु छटा सी अटा पै चढ़ी सु कटाछनि घालि कटा करती हौ॥

कै रति रङ्ग थकी थिर ह्वै पर्यङ्क पै प्यारी परी सुख पाय कै।
त्यौं पदमाकर स्वेद के बुन्द रहे मुकताहल से तन छाय कै॥
बिन्दु रचे मेंहदी के लसे कर ता पर यों रह्यो आनन छाय कै।
इन्दु मनो अरबिन्द पै राजत इन्द्र-बधून के बृन्द बिछाय कै॥१४॥

चन्द्रकला चुनि चूनरी चारु दई पहिराय सुनाय सु होरी।
बेंदी बिसाखा रची पदमाकर अञ्जन आँजि समाजि कै रोरी॥
लागी जबै ललिता पहिरावन कान्ह को कंचुकी केसर बोरी।
हेरि हरे मुसकाय रही अँचरा मुख दै बृषभानु किसोरी॥१५॥

शुभ सीतल मन्द सुगन्ध समीर सबै छल छन्द से छ्वै गये हैं।
पदमाकर चाँदनी चन्द हु के कछु और ही डौरनि च्वै गये हैं॥
मनमोहन सों बिछुरे इत ही बनिकै न अबै दिन द्वै गये हैं।
ससि वे हम वे तुम वेई बने पै कछू के कछू मन ह्वै गये हैं॥१६॥

हे ब्रजचन्द चलौ किन वा बन लूकैं बसन्त की ऊकन लागी।
त्यौं पदमाकर पेखो पलाशन पावक सी मनौ फूकन लागी॥
वै ब्रजवारी बिचारी बधू बनवारी हिये लौं सु हूकन लागी।
कारी कुरूप कसाइनैं ये सु कुहू कुहू कैलिया कूकन लागी॥१७॥

फाग के भीर अभीरन में गहि गोबिन्द लै गई भीतर गोरी।
भाई करी मन की पदमाकर ऊपर नाय अबीर की झोरी॥
छीन पितम्बर कम्मर तें सु बिदा दई मीड़ि कपोलन रोरी।
नैन नचाइ कह्यो मुसक्याइ लला फिरि आइयो खेलन होरी॥१८॥

केसर रङ्ग रँगी सिर ओढ़नी कानन कीन्हे गुलाव कली हौ।
भाल गुलाल भलों पद्माकर अङ्गन भूषित भाँति भली हौ॥
औरन को छलती छिन मैं तुम जांती न औरन सों जु छली हौ।
फागु मैं मोहन को मन लै फगुवा मैं कहा अब लैन चली हौ॥१९॥

आवत नाह उछाह भरे अवलोकिवे को निज नाटक-शाला।
हौं नचि गाइ रिझावहुंगी पद्माकर त्यौं रचि रूप रसाला॥
ए सुक मेरे सु मेरे कहै यों इतै कहि वोलियो वैन विशाला।
कन्त विदेश रहे हौ जिते दिन देहु तिते मुकुतान की माला॥२०॥

एक ही सेज पै सोवत हैं पद्माकर दोऊ महा सुख साने।
सापने मै तिय मान कियो यह देखि पिया अति ही अकुलाने॥
जागि परे पै तऊ यह जानत पौढ़ि रही हम सों रिस ठाने।
प्रानपियारी के पा परि कै करि सौंह गरै की गरै लपटाने॥२१॥

आई सु न्योति वुलाई भली दिन चारि को जाहि गोपालहिं भावै।
त्यौं पद्माकर काहू कह्यो कै चलो वलि वेग ही सासु वुलावै॥
सो सुनि रोकि सकै को तहाँ गुरु लोगन में यह व्यौंत वनावै।
पाहुनी चाहै चल्यौ जव हीं तव हीं हरि सामुहैं छींकत आवै॥२२॥

चित्र के मन्दिर तैं इक सुन्दरी क्यों निकसै जिन्हें नेह नशा है।
त्यौं पद्माकर खोलि रही दृग वोलै न वोल अडोल दशा है॥
भृङ्गी प्रत सङ्ग तें भृङ्ग ही होत जु पै जग में जड़ कीट महा है।
मोहन मीत को चित्र लखैं भई चित्र ही सी तो विचित्र कहा है॥

कौन है तू कित जाति चली ? बलि बीती निशा अधराति प्रमाने ।
हौं पद्माकर भावति हौं निज भावत पै अबहीं मुहिं जाने ॥
तौ अलबेली अकेली डरै किन ? क्यों डरौं मेरी सहाय के लाने ।
है सखि सङ्ग मनोभव सो भट कान लौं बान सरासन ताने ॥२४॥

जात हती निज गोकुल में हरि आवैं तहाँ लखि कै मन सूना ।
तासों कहौं पद्माकर यों अरे साँवरे बावरे तैं हमें छू ना ॥
आज धौं कैसी भई सजनी उत वा विधि बोल कढ़्योई कहूं ना ।
आनि लगायो हियो सों हियो भरि आयो गरो कहि आयो कछू ना ॥

चोरन गोरिन में मिलि कै इतै आई है हाल गुवाल कहाँ की ।
कौन विलोकि रह्यो पद्माकर वा तिय की अवलोकनि बाँकी ॥
धीर अबीर की धूंधुरि में कछु फेर सों कै मुख फेरिकै झाँकी ।
कै गई काटि करेजनि के कतरे कतरे पतरे करिहाँ की ॥२६॥

या अनुराग की फागु लखौ जहँ रागती राग किसोर किसोरी ।
त्यौं पद्माकर घालि घली फिरि लाल ही लाल गुलाल की झोरी ॥
जैसी की तैसी रही पिचकी कर काहू न केसरि रङ्ग मैं बोरी ।
गोरिन के रँग भींजिगो साँवरो साँवरे के रँग भींजिगी गोरी ॥२७॥

आई है खेलन फाग यहाँ वृषभानुपुरा तें सखी सङ्ग लीने ।
त्यौं पद्माकर गावती गीत रिझावती भाव बताय नवीने ॥
कञ्चन की पिचकी कर में लिये केसर के रँग सों अङ्ग भीने ।
छोटी सी छाती छुटी अलकैं अति वैस की छोटी बड़ी परवीने ॥२८॥

कवित्त—

सुन्दर सुरङ्ग नैन सोभित अनङ्ग रङ्ग अङ्ग अङ्ग फैलत तरङ्ग परिमल के। वारन के भार सुकुमारि को लचत लङ्क राजै परिजङ्क पर भीतर महल के॥ कहै पदमाकर विलोकि जन रीझै जाहि अम्बर अमल के सकल जल थल के। कोमल कमल के गुलावन के दल के सु जात गड़ि पायन विछौना मखमल के॥ २९॥

रति विपरीत रची दम्पति गुपति अति मेरे जान मानि भय मनमथ नेजे तें। कहै पदमाकर पगी यों रस रङ्ग जामें खुलिगे सु अङ्ग सव रङ्गन अमेजे तें॥ नीलमणि जटित सु वेंदी उच्च कुच पै पस्यो है टूटि ललित ललाट के मजेजे तें। मानो गिस्यो हेमगिरि-शृङ्ग पै सुकेलि करि कढ़ि कै कलङ्क कलानिधि के करेजे तें॥ ३०॥

गोकुल के कुल के गली के गोप गाँउन के जौ लगि कछू को कछु भारत भनै नहीं। कहै पदमाकर परोस पिछवारन तें द्वारन तें दौरि गुन औगुन गनै नहीं॥ तौ लौं चलि चातुर सहेली आइ कोऊ कहूं नीके कै निचोरै ताहि करत मनै नहीं। हौं तो स्याम रङ्ग मै चुराइ चित चोरा चोरी वोरत तो वोस्यो पै निचोरत बनै नहीं॥ ३१॥

आली हौं गई ही आजु भूलि वरसाने कहूं तापै तू परै है पदमाकर तनेनी क्यौं। व्रज-वनिता वै वनितान पै रची है फाग तिन मैं जु ऊधमिनि राधा मृगनैनी यौं॥ घोरि डारी केसर सु वेसर विलोरि डारी वोरि डारी चूनरि चुचात रङ्ग रैनी ज्यौं।

मोहिं झकझोरि डारी कंचुकि मरोरि डारी तोरि डारी कसनि बिथोरि डारी बेनी त्यौं ॥ ३२ ॥

आरस सों आरत सम्हारत न सीस पट गजब गुजारत गरीबन की धार पर। कहै पद्माकर सुगन्ध सरसावै सुचि बिथुरि बिराजैं बार हीरन के हार पर॥ छाजति छबीली छिति छहरि छरा के छोर भोर उठि आई केलि मन्दिर के द्वार पर। एक पग भीतर सु एक देहरी पै धरै एक करकञ्ज एक कर है किवार पर ॥ ३३ ॥

सजि ब्रजचन्द पै चली यौं मुखचन्द जाको चन्द चाँदनी को मुख मन्द सो करत जात। कहै पदमाकर त्यों सहज सुगन्ध ही के पुञ्ज बन कुञ्जन मैं कञ्ज से भरत जात॥ धरत जहाँई जहाँ पग है सु प्यारी तहाँ मंजुल मजीठ ही की माठ से ढुरत जात। हारन तैं हीरा सेत सारी की किनारिन तैं बारन तैं मुकता हजारन झरत जात ॥ ३४ ॥

साँझ के सलोने घन सबुज सुरङ्गन सों कैसे कै अनङ्ग अङ्ग अङ्गनि सताउतौ। कहै पद्माकर झकोर झिल्ली सोरन को मोरन को माहत न कोऊ मन ल्याउतौ॥ काहू बिरही की कही मानि लेतो जोपै दई जग मैं दई तो दयासागर कहाउतौ। पावस बनायो तो न बिरह बनाउतो जो बिरह बनायो तौ न पावस बनाउतौ ॥ ३५ ॥

आई तजि हौं तो ताहि तरनि तनूजा तीर ताकि ताकि तारापति तरफति ताती सी। कहै पद्माकर घरीक ही मैं

घनश्याम काम तौ कतलवाज कुञ्जन है काती सी॥ याही छिन वाही सों न मोहन मिलोगे जोपै लगनि लगाइ ऐती अगिनि अवाती सी। रावरी दुहाई तौ बुझाई न बुझैगी फेरि नेह भरी नागरी की देह दिया वाती सी॥ ३६॥

कूलन मैं केलि मैं कछारन मैं कुञ्जन मैं क्यारिन मैं कलिन कलीन किलकन्त है। कहै पदमाकर पराग हू मैं पान हूं मैं पानन मैं पीक मैं पलाशन पतङ्ग है॥ हार मैं दिसान मैं दुनी मैं देश देशन मैं देखो दीप दीपन मैं दीपत दिगन्त है। वीथिन मैं व्रज मैं नवेलिन मैं वेलिन मैं वनन मैं वागन मैं वगरो वसन्त है॥ ३७॥

सिन्धु के सपूत सुत सिन्धु तनया के वन्धु, मन्दिर अमन्द सुभ सुन्दर सुहाई के। कहै पदमाकर गिरीश के वसे हौ सीस तारन के ईस कुल कारन कन्हाई के॥ हाल ही के विरह विचारी व्रज वाल ही पै ज्वाल पै जगावत गुआल सी जुन्हाई के। येरे मतिमन्द चन्द आवत न तोहि लाज ह्वै कै द्विजराज काज करत कसाई के॥३८॥

दूरि ही ते देखति विथा मैं वा वियोगिनी की आई भले भाजि ह्याँइ लाज मढ़ि आवैगी। कहै पदमाकर सुनो हो घनश्याम जाहि चेतत कहूं जो एक आहि कढ़ि आवैगी॥ सर सरितान की न सूखत लगेगी वार येती कछु जुलमिनि ज्वाला वढ़ि आवैगी। ताके तन ताप की कहा मैं कहौं वात मेरे गात ही छुये ते तुम्है ताप चढ़ि आवैगी॥ ३९॥

प्रानन के प्यारे तन ताप के हरनहारे नन्द के दुलारे व्रज वारे उमहत हैं। कहै पदमाकर उरूजे उर अन्तर यों अन्तर चहे हूं जे

न अन्तर चहत हैं॥ नैननि बसे हैं अङ्ग अङ्ग हुलसे हैं रोम रोमनि रसे हैं निकसे हैं को कहत हैं। ऊधो वे गोविन्द कोऊ और मथुरा मैं इहाँ मेरे तो गोविन्द मोहि मोहि मैं रहत हैं॥ ४०॥

घर ना सुहात ना सुहात बन बाहिर हूं बाग ना सुहात जो खुशाल खुशबोही सों। कहै पद्माकर घनेरे धनधाम त्योंही चैन ना सुहात चाँदनी हूं जोग जोही सों॥ साँझ हू सुहात ना सुहात दिन माँझ कछु व्यापी यह बात सो बखानत हौं तोही सों। राति हु सुहात ना सुहात परभात आली जब मन लागि जात काहू निरमोही सों॥ ४१॥

मोंहि लखि सोवत विथोरी गो सु बेनी बनी तोरि गो हियो को हार छोरि गो सु गैया को। कहै पद्माकर त्यों घोरि गो घनेरो दुख बोरि गो बिसासी आज लाज ही की नैया को॥ अहित अनैसो ऐसो कौन उपहास यहै सोचत खरी मैं परी जोवत जुन्हैया को। बूझैंगी चवैया तब कैहौं कहा दैया इत पारि गो को मैया मेरी सेज पै कन्हैया को॥ ४२॥

देखि पद्माकर गोविन्द को अनन्द भरी आई सजि साँझ ही तैं हरखि हिलोरे मैं। ए हरि हमारेई हमारे चलो झूलन को हेम के हिंडोरन झुलान के झकोरे मैं॥ या विध बधून के सु बैन सुन बनमाली, मृदु मुसुक्याय कह्यो नेह के निहोरे मैं। काल्हि चलि झुलैंगे तिहारेई तिहारी सौंह, आज तुम झूलो ह्याँ हमारेई हिंडोरे मैं॥ ४३॥

नैनन ही सैन करै बीरी मुख दैन करै लैन करै चुम्बन पसारि प्रेम पाता है। कहै पदमाकर त्यों चातुरी चरित्र करै चित्त करै सोहैं जो विचित्र रति राता है॥ हाव करै भाव करै विविध विभाव करै बूझै प्यौ न एते पै अबूझन को भ्राता है। ऐसी परवीनि को कियो जो यह पुरुष तौ बीस बिसै जानी महा मूरख बिधाता है॥ ४४॥

चन्दन।

[सं० १८१०—१८४६]

सवैया—

छिति मण्डल कै नभ मण्डल मेघ उमण्डि दसौ दिसि धाय रहे।
कवि चन्दन चारु सों चातक मोर हरे वन सोर मचाय रहे॥
पिय पावस मैं बिछुरे वनितान सों आवनहार सो आय रहे।
केहि कारन हाय विहाय हमैं हरि जाय विदेश मैं छाय रहे॥१॥

व्रज वारी गँवारी अनारी सबै यह चातुरता न लुगाइन मैं।
वर वारिनि जानि अनारिनि सी गुन एकौ न चन्दन नाइन मैं॥
छवि रङ्ग सुरङ्ग के बुन्द लसैं छवि इन्द्र-बधू लघुताइन मैं।
चित जो चहँदी ठगि सी रहँदी कहँ दी महँदी इन पाइन मैं॥२॥

सूदन।

[सं० १८११—१८३०]

कवित्त—

अनी दोऊ बनी घनी लोह-कोह सनी घनी धर्मनु की मनी बान बीतत निषंग मैं। हाथी हटि जात साथी सङ्ग न थिरात श्रोन भारती मैं न्हात गङ्ग कीरति तरङ्ग मैं॥ भानु की सुता सी कवि सूदन निकारी तेग बाहत सराहत कराहत न अङ्ग मैं। वीर रस रङ्ग मैं यों आनँद उमङ्ग में सो पशु पशु प्राग होत गोधन को जङ्ग मैं॥ १॥

बाप विष चाखै भैया षट मुख राखै देखि आसन मैं राखै बस बास जाको अचलै। भूतन के छैया आस पास के रखैया और काली के नथैया हू के ध्यान हू से न चलै॥ बैल बाघ वाहन वसन कौं गयन्द खाल, भाँग कौ धतूरे कौं पसार देतु अचलै। घर को हवालु यहै शङ्कर की बाल कहै लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै॥ २॥

चौंकत चकत्ता जाके कत्ता की कराकनि सौं सेल की सराकनि न कोऊ जुरै जङ्ग है। कैयक अमीर मीर धीर तैं फकीर करै वीर वलबीर कौं सदा ही सुभी सङ्ग है॥ सूदन सकल देश देशन अदेश भयो भाजत दुवन ज्यौं लियैं तुरङ्ग तङ्ग है। जैति कौं निधान तेज भान के समान मान आजु तौ जहान मैं सुजान मुख रङ्ग है॥ ३॥

गरद गुवार मैं अपार तरवार धार मानों नीहार मैं किरनि भीर भान की। कहरि लहरि प्रलै सिन्धु मैं अधीर मीन मानौ धुरवान मैं तमक तड़ितान की॥ दावानल ज्वाल है कि दावा कौ अचल चल ऐसी जङ्ग देखी तहाँ प्रवल पठान की। भृकुटी भयान की भुजान की उभय सान मङ्गल समान भई मूरति सुजान की॥ ४॥

गेंदा से गुलुफ गुलमेंहदी से अन्तभार कुणय कलित तास खोपरी सु भाल की। नासा गुलवासा मुख सूरज मुखी से भुज कलगा वधूक ओठ जीव द्युति लाल की॥ कोकनद कर ज्यौं करन गुल कोकन से इन्दावर नैन चाल जाल अलि माल की। पानी किरवानी सौं हसानी कर सूरज के पर-भूमि फूली फुलवारी मनौ काल की॥ ५॥

एकै एक सरस अनेक जे निहारे तन भारे लाज भारे स्वामि-काम प्रतिपाल के। चङ्ग लौं उड़ायो जिन दिल्ली को वजीर वीर पारी बहु मीरनु किए हैं वे-हवाल के॥ सिंह बदनेस के सपूत श्री सुजानसिंह सिंह लौं झपटि नख दीने करवाल के। वेई पठनेटे सेलु साँगन खखेटे भूरि धूरि सौं लपेटे लेटे भेटे महाकाल के॥ ६॥

वैठे एक आसन सुत्रासन के वासन ते भूषन उजासन प्रकाश वहु कीनौ है। सरस विलोकि फेरि कर के परस भये दरसि दरसि दोऊ रति मति कीनौ है॥ भुजन उसारि लीनी उर सौं लगाइ प्यारो अरस परस अधरामृत कौं लीनौ है। दोऊ जल

जात मुख मानो मन जात जान इन्दु अरविन्दु कौ मिलाप करि दीनौ है ॥ ७ ॥

महल सराइ से रवाने बूआ बूबू करौ मुझै अपसोच बड़ा बड़ी बीबी जानी का। आलम में मालूम चकत्ता का घराना यारों जिसका हवाल है तनैया जैसा तानी का॥ खने खानै बीच सैं अमाने लोग जानैं लगे आफत ही जानो हुआ ओज दहकानी का। रब की रजा है, हमैं सहना बजा है वख्त हिन्दू का गजा है आया छोर तुरकानी का ॥ ८ ॥

तूरा तैं तरेर दैं दरेरनु सौं दिल्ली दावि प्रबल पठान ना उड़ायो पौन पत्ता सौ। कूरम रठौर हाड़ा खीची और पँवार राना बाना डारि छूटे बाँधि कीनौ एक बत्ता सौ॥ सूदन सपूत ससि बन्श अवतन्स बीर ताही दिल्ली पति कौ लपेटि राख्यौ गत्ता सौ। जाहर जगत्ता है जवाहर प्रताप तत्ता जाके कर कत्ता सौं चकत्ता जासौं लत्ता सौं ॥ ९ ॥

हारे देखि हाड़ा मन मारे कमधुज बन्स कूरम पसारे पाइ सुनत नगारे के। केते पुर जारे केते सुभट संहारे तेई जोरि दल भारे ब्रज भूमि पै हँकारे के॥ टारे मधुसूदन सवारे बदनेस प्यारे ब्रज रखवारे निजु बन्स अवधारे के। होत ललकारे सूर सूरज प्रताप भारे तारे से छिपैंगे सब सुभट सितारे के ॥ १० ॥

छप्पय-

धरि सत रज तम रूप, सृजति पालति सङ्घारति।
आरत लखि सुर राज, विपति असुरन कौं पारति॥

धूम चण्ड अरु मुण्ड, महिष रकता रज भञ्जति।
सुम्भ निसुम्भ चवाई, चारु दस लोकन रञ्जति॥
जाकी विभूति पर ब्रह्म हूं, निरगुन तैं गुन मय बरनि।
मुनि देव मनुज सूदन रटत, जयति जयति शङ्कर घरनि॥११॥

रूपसहाय।

[सं० १८१३]

सवैया—

सावन के दुखदावन यों घनश्याम विना घन आनि सतावै।
तैसे मिलो तिन्हैं आनि ये मोर सु जोर के सोर जरे पै जरावै॥
प्यारे को नाम सुनाय सखी हिये पापी पपीहा ये सूल उठावै।
नेह नवेली मरी अब हौं दिन दोइक पीय जु और न आवै॥१॥

जसुराम।

[सं० १८१४]

कवित्त।

केते देश केते गाम ठाम केते लोक केते वा मैं फेर केते दूर केतेक हुजूर हैं। केती मेरी आमद खरच को प्रमान केतो कितनो विकार वा मैं केतो साच कूर हैं॥ केतो मेरे सेन राजे मेरी सुख चाहे केते केतो मेरे देनो केतो खजाना को पूर है।

राजनीति राजबंशी राजन कों जसुराम रोज उठ इतनो बिचारिबो जरूर है ॥ १ ॥

भूखन आभूखन सुवासन सों नाना भाँति बनाय न बनाईबो सदाई तमाम को। बैठबो अदालत को मिसलत मिटायबो जहाँ जैसो होय ऐसो साज मनमाम को ॥ गज की सिलामती सिलामती सिपाइन की रङ्ग रोशनाई दोऊ चाहत मुदाम को। राजनीति राजबंशी राजन कों जसूराम एतो तो बनाय कीजै होत नीम साम को ॥ २ ॥

चाबूक सवार जल तरन अरु धनूर घात जोत ज्ञान ब्रह्म भेद् कोक लहिये। गीतन सङ्गीत नट्ट विद्या वेद् व्याकरन अच्छर अमोल तप हू की गति लहिये ॥ एती बात सुरता सों चतुर सों वाहि भाँति बाहन कौ फेर फेर बेगे गुन गहिये। जसू मीन सूरत में हन्स के कुमार जैसे कहे राजहन्स के कुमार ऐसे कहिये ॥ ३ ॥

पत्थर सो बोल कहुं डारिये न काहू पर डारिये तो हीर सं लपेट कर डारियै। मुख तैं बिगारिये न चित्त तैं बिसारिये न महा रोस भयो तोऊ मन माहीं मारियै ॥ एक घाव ही सों कूप खोद्यौ नहिं जात कहूं धीरे धीरे लिये काम सब ही सुधारियै। राजनीति राज के वजीरन कों जसूराम गुड़ ही तैं मरै वाको बिष तैं न मारियै ॥ ४ ॥

दोहा—

जो दीजै परधान पद , तो कीजै इतवार ।
जो इतवार न होय जसु , तो परधान निवार ॥ ५ ॥

राजनीति सबही पढ़े , सब तें राखे स्नेह ।
जा के किमत नहिं जसू , लगे कुलच्छन एह ॥ ६ ॥
चोरी चुगली पर तिया , कोऊ काम कुकाम ।
एती बात न जानिये , सोऊ रैयत नाम ॥ ७ ॥
रैयत सब राजी रहै , मेटन राउत मान ।
आमद घटै न राय की , ऐसे करै प्रधान ॥ ८ ॥

बालकृष्ण ।

[सं० १८१४]

कवित्त--

प्यार ना प्रभू सों बड़े लम्पट लबार जार यार कलदार के पुकारे पैसे पैसे हैं। धर्म-से सरोवर कों पङ्किल करन काज मानौं यमराज की सवारी हू के भैंसे हैं॥ तीरथ पुरान व्रत मन्दिर विरोधी क्रोधी इन के समान और निन्दक न ऐसे हैं। कहै कवि बालकृष्ण दिल मैं विचार देखो ऐसे जो पै आर्य तो अनार्य फिर कैसे हैं॥ १ ॥

सहजोबाई ।

[सं० १८१५]

दोहा--

सहजो तारे सब सुखी , गहै चन्द औ सूर ।
साधू चाहै दीनता , चहै बड़ाई कूर ॥ १ ॥

भली गरीबी नवनता, सकै न कोई मारि ।
सहजो रुई कपास की, काटै ना तरवारि ॥ २ ॥
साहन को तो भै घना, सहजो निरभै रङ्क ।
कुञ्जर के पग बेड़ियाँ, चींटी फिरै निसङ्क ॥ ३ ॥
ना सुख दारा सुख महल, ना सुख भूप भये ।
साधु सुखी सहजो कहै, तृष्णा रोग गये ॥ ४ ॥
सीस कान मुख नासिका, ऊँचे ऊँचे ठाँव ।
सहजो नीचे कारने, सब कोउ पूजे पाँव ॥ ५ ॥
दीर्घ बुद्धि जिनकी महा, सील सदा ही नैन ।
चेतनता हिरदै बसै, सहजो सीतल बैन ॥ ६ ॥

हीरालाल ।

[सं० १८२१]

कवित्त—

चञ्चल लबारी चोर चुगुल हरामखोर कुड़े ही कुपात्र ऐसे तैसे को न धारियै। गीता ही पुरान श्रुति निन्दा ही करत रहै ऐसे ही अधम हू की सङ्ग हू ते हारियै ॥ पुत्री अरु भगिनी पर दुष्ट जो कुदृष्टि धरै दोस्ती में दगा बचन चूके वो निवारियै । हीरालाल कहै यारो चतुर को सीख देनी ऐसे ही मनुष्य वाको दो दो जूता मारियै ॥ १ ॥

राजिया। ❀

[स० १८२५]

सोरठा--

रोग अगनि अरु राड़, जाण अलप कीजै जतन।
वधियाँ पछै विगाड़, रोक्या रहै न राजिया॥ १॥

नन्हा मिनख नजीक, उमरावाँ आदर नहीं।
ठाकर जिण नें ठीक, रण मैं पड़सी राजिया॥ २॥

गहलो गण्डक गुलाम, बुचकार्‌याँ बाथ्याँ पड़ै।
कूट्याँ देवै काम, रीस न कीजै राजिया॥ ३॥

सुख मैं पीत सवाय, दुख मैं मुख टाला दिये।
जो की कहसी जाय, राम कचेड़ी राजिया॥ ४॥

मुख ऊपर मीठास, घट माहिं खोटा घड़ै।
इसड़ाँ सूँ इकलास, राखीजै नह राजिया॥ ५॥

दुष्ट सहज समुदाय, गुण छोड़ै अवगुण गहै।
जौंक चढ़ी कुच जाय, रातो पीवै राजिया॥ ६॥

कारज सरै न कोय, वल प्राक्रम हिम्मत बिना।
हलकार्‌याँ की होय, रँग्या स्याल्याँ राजिया॥ ७॥

❀ ये सोरठे उन्हीं में के हैं जो शेखावाटी (जयपुर) के ढाणी नामक गाँव के खिड़िया चारण कृपाराम बारहठ कवि ने 'राजिया' नामक नौकर कृत सेवा से प्रसन्न होकर उसका नाम अमर कर देने के अभिप्राय से उसको सम्बोधन कर के सैंकड़ों सोरठे रचे थे। —सम्पादक।

गुण अवगुण जिण गाँव, सुणै न कोई साँभलै।
उण नगरी बिच नाँव, रोही आछी राजिया॥ ८॥
गह भरियो गजराज, मह पर वहै आपह मतै।
कुकरिया बेकाज, रुगड़ भुसै किम राजिया॥ ९॥
असली री औलाद, खून कसाँ न करै खता।
बाहै बद बद बाद, रोड़ दुलता राजिया॥१०॥
पल पल में कर प्यार, पल पल में पलटै परा।
बैमतलब रा यार, रहै न छाना राजिया॥११॥
हिम्मत किम्मत होय, विन हिम्मत किम्मत नहीं।
करै न आदर कोय, रद कागद रो राजिया॥१२॥
कूड़ाँ कूड़ प्रकाश, अणहूंती मेलै इसी।
उड़ती रहै अकाश, रजी न लागै राजिया॥१३॥
उपजावै अनुराग, कोयल मन हरषित करै।
कड़वो लागै काग, रसना रा गुण राजिया॥१४॥
गुणी सपत सुर गाय, कियो किसब मूरख कन्हैं।
जाणै रूनो जाय, रोही में नर राजिया॥१५॥
रोटी चरखो राम, अतरो मुतलब आपरो।
कीं डोकरियाँ काम, राज कथा सूं राजिया॥१६॥
अवनी रोग अनेक, ज्याँरो विध कीधो जतन।
इण परकत री एक, रची न औषध राजिया॥१७॥
हुन्नर करो हजार, स्याणप चतुराई सहित।
हेत कपट विवहार, रहै न छानो राजिया॥१८॥

नारी दास अनाथ, पण माथै चाढ्याँ पछै।
हियै ऊपरलो हाथ, राल्यो न जावै राजिया ॥१९॥
ऊँचै गिरिवर आग, जलती सह देखै जगत्।
पर जलती निज पाग, रती न दीसै राजिया ॥२०॥
हित कर जोड़ै हाथ, कामण सूं न करै कवण।
नमे त्रिलोकीनाथ, राधा आगल राजिया ॥२१॥
समर सियाल सुभाव, गलियाराँ गाहिड़ करै।
इसड़ा तौ उमराव, रोट्याँ मुंहगा राजिया ॥२२॥
लावाँ तितर लार, हर कोई हाका करै।
सिंहा तणी सिकार, रमणो मुसकल राजिया ॥२३॥
मुतलब सूं मनवार, नौंत जिमावै चूरमो।
बिन मतलब मनवार, राब न पावै राजिया ॥२४॥
जिण रो अन जल खाय, खल तिण सूं खोटी करै।
जड़ाँ मूल सूं जाय, राम न राखै राजिया ॥२५॥
हिये मूढ़ जो होय, की सङ्गत ज्याँरी करै।
काला ऊपर कोय, रङ्ग न लागै राजिया ॥२६॥
सुध हीणा सिरदार, मत हीणा राखे मिनख।
अस आँधो असवार, राम रुखालो राजिया ॥२७॥
कूड़ा निलज कपूत, हिया फूट ढाँढ़ा असल।
इसड़ा पूत अऊत, राँड जणे क्यूं राजिया ॥२८॥
औगुण गारा और, दुखदायी सारी दुनी।
चोदू चाकर चौर, राँधे छाती राजिया ॥२९॥

कीधेला उपकार, नर कृतघन जाणै नहीं।
त्याँ लग त्याँरी लार, रजी उड़ावो राजिया ॥३०॥
समझणहार सुजाण, नर मौसर चूकै नहीं।
ओसर रो अवसाण, रहै घणा दिन राजिया ॥३१॥
प्रभुता मेरु प्रमाण, आप रहै रज कण इसा।
जिके पुरुष धन जाण, रवि मण्डल विच राजिया ॥३२॥
ना नारी ना नाह, अद् विचला दीसे अपत।
कारज सरे न काह, राँडोला सूं राजिया ॥३३॥

भौन।

[सं० १८२५]

सवैया—

कानन लौं द्रुग लागि रहे सो विचारति वाल खरी जल के तट।
लागे कहा सरसीरुह यों कहि श्रौनन मैं कर फेंकति औंचट॥
चन्द मुखी कै सेवार की सङ्क सों पोंछति लोभन की तति लै पट।
श्रोनी को भार न जानति है हौं थकी बहुतै यों सखी सों करै रट॥

हौ अनुराग प्रवीन पिया औ मनोहर हौ प्रभु हौ छवि कीन्हें।
भूषित हौ नव-यौवन सों सिगरी अवला मत आनँद चीन्हें॥
भौन कहै कहि कै अस वैन चितै पिय ओर रही द्रुग दीन्हें।
और कछू न बनै कहते अँसुवा भरि वाल द्रुगञ्चल लीन्हें॥२॥

चन्द्रकला हर के सिर मैं अपनो प्रतिबिम्ब बिलोकि न भावै।
और बसी बनिता जिय जानि भयो भ्रम सो अति ही दुख पावै॥
कम्प सो चञ्चल चारु चुरी बलकै सु महा रुचि को उपजावै।
कौतुक एक भयो बहुतै गिरिजा कर सों हर को डरपावै॥३॥

गोकुल मैं बिपरीति भई कुल कानि गई सो कहौं केहि पाहीं।
आनि अस्यो हम सों भ्रम और के ऐंठत भौंह उमेठत बाहीं॥
गैल गहै बिन काजहिं को कबि भौन कहै यों करै चित चाहीं।
देखती हैं सिगरी सखियाँ यहि साँवरे कोऊ सिखावत नाहीं॥४॥

बारिद बारि सों मज्जन कै घन कानन मध्य मैं बास ठयो है।
सीतल चन्दन बिन्दुन कै पुनि देव मनोजहिं पूजि लयो है॥
भौन कहै कियो राति जगा अरु लाज हुती सो तो दान दयो है।
का न भै पूरन री तपस्या अँखियान को आतिथि जो न भयो है॥

सुन्दरि एक ते एक बनी मृगनैनी महा तन की सुकुमारै।
खेलिबे को फगुवा बहु भाँतिन आपने आपने द्वार बिचारै॥
कैसी करै मन एकई है कबि भौन कहै केहि पास पधारै।
प्यारी लगै सिगरी सखियाँ अँखिया द्वै कहौ केहि ओर निहारै॥६॥

बारन जैसो फिरै मद अन्ध बिलोकत और तिया सुकुमारन।
मान रह्यो निसि बासर हीं लहकै लखि लोचन लाल हजारन॥
जारन हूं की नहीं यह रीति घटै कछु प्रीति किये अपकारन।
कारन कौन भटू इनको जो बँध्यो मन बार बधून के बारन॥७॥

रङ्क महा बहु बासर को जिमि पावै घनो गथ भूमि कही है।
भौन कहै विलसै अति हीं पै तऊ घन आनँद बारिज ही है॥
या तन के बिछुरे अब लौं विरहानल ज्वाल की आँच दही है।
लाल को रूप लखे अँखियाँ अनिमेष भई अलसात नहीं है॥८॥

कवित्त--

लटि गये भूषन बसन सब फटि गये कटि गये हार बार मुख पर छाये हैं। ऊरध उसासै चलै धक धक हियो होत अङ्ग अङ्ग श्रम ते प्रसेद कन धाये हैं॥ भौन कवि कहै कछू कहत बनै न बात कण्टकित गात नैन नीर भरि आये हैं। नाहक पठाई तोहिं नायक नवल पास मेरे हेत आली तैं घनेरे दुख पाये हैं॥ ९॥

जाको पति भूषन बसन पहिरावै आनि सोई धन्य बाल भाग ताही के सराहिये। एती अनरीति करै हार उर तूरि धरै कहत बनै न पै कहाँ लौं मौन गहिये॥ भौन कवि कहै यह मेरे अभिलाष होत जटित जराइ वारे भूषन जो लहिये। अङ्ग दुखिबे के डर सकल उतारे लेत आली निज नाह के गुनाह कहा कहिये॥ १०॥

आवनि सरद कैसी आवनि पिया की पाइ ह्वै गयो तिया को तन अम्बरु अमल है। बदन कलाधर की औरै छवि छाइ रही भाइ रही सारी सेत चाँदनी विमल है॥ भौन कवि कहै हास कास को प्रकास तैसे कैसे कै निकट आइ विहरत भल है। नागरि के नैन जुग नाह को निरखि नेह नीर मैं विकसि रहे नील ज्यों कमल है॥ ११॥

चन्दन उसीर नीर सीतल समीर धीर लागत समीर पीर दूनी सरसति है। भौन कवि कहै जोग जीवे को न जानि परै ऐसी ऐसी या विभावरी विषम दरसति है॥ चैत चारु चाँदनी अचेत करि डारै मन कहाँ लौं सँभारै अङ्ग अङ्ग झरसति है। बार बार तोहि मैं पुकारौं हित लागि सखी आउ भाजि भौन आजु आगि बरसति है॥ १२॥

नाथ।

[सं० १८२६]

सवैया-

वट-पल्लव में लिख बैन को अङ्क सु श्याम सखीन के हाथ दियो।
बैठी हि गोपिका-मण्डल में लखि यों तिह त्यों कर भाव नयो॥
कवि नाथ करी उन चातुरता पिय को हिय हेत पिछान लियो।
न हकार कियो न नकार कियो सु वकार को छेक रकार कियो॥

सोहत अङ्ग सुभाय के भूषण भौंर के भाल लसैं लट छूटी।
लोचन लोल कपोल बिलोकत तीय तिहू पुर की छवि लूटी॥
नाथ लट्टू भए लालन जू लखि भामिनी भाल की वन्दन बूटी।
चोप सों चारु सुधा रस लोभ बिधी विधु मैं मनो इन्द्र-वधूटी॥२॥

कवित्त--

हरि जैसे भालवारी हरि जैसे चालवारी हरि जैसे चालवारी हरि की कटारी है। हरि जैसे रङ्गवारी हरि जैसे अङ्गवारी हरि

मुखवारी आँखें हरि अनियारी है॥ हरि सो खनक वारी हरि जैसे लङ्कवारी हरि सिर सारि तामें हरि ही किनारी है। कहै कवि नाथ ऐसी सरस त्रिया के सङ्ग नेह न किया तो यह जिन्दगी अकारी है॥ ३॥

चन्दमुखी कहना नहीं कभी चूक हू ते श्याम चन्द में कलङ्क मेरो मुख ना कलङ्क है। एक पख मन्द एक पख मैं अमन्द शशी मेरे तुण्ड पै हमेश तेज निरशङ्क है॥ सागर की छाया परै सागर के नन्द हू पै मेरी रूप छाया सदा अवनि अनङ्क है। कहै कवि नाथ कन्थ बदत हो देखे बिन कहाँ श्रीराम अरु कहाँ पति लङ्क है॥ ४॥

पतिनी कहत यातु मान पतिनी की बात पति पति राखौ लति छाड़ौ पतितान की। सान की न बात जैहैं अवसान को सन्है है जान देहु अभिमान घात दुख खान की॥ मेरे अरमान की पुजैये आस सुख रास नाथ यें निदान की है बात तुव ध्यान की। सुगति ति दान की है उन्नति सुमान की है जानकी दिये बिना कुशल नाहिं जान की॥ ५॥

प्यारी नारी आन की अनारी जन ठान चाहैं आन की हैं बात ये कुठारी निरवान की। ये मति नदान की है गति हू अजान की है छोटी खोटी बानि की है लति पतितान की॥ जानकी कुचाल नाथ जान की जवाल लाये वह भक्ति ध्यान की है शक्ति भगवान की। कहै तिय मेरी बात ज्ञान की है ध्यान की है जानकी न लाये हो निशानी घर जान की॥ ६॥

राम खैहौं सारी वात नाम खैहौं निज घात पैहौं केतौ उतपात सैहौं निज हान की। लैहौं नहिं दण्ड मोहिं अष्ट सिद्धि नवो निद्धि देव पद हू तें ना उछैहौं प्रन ठान की ॥ सकल गवैहौं चीज पछितैहौं कर मीज नाथ ना कहैहौं खोज पैन पैज जानकी। सवै सिन्धु मैं वहैहौं सारी हानि लैहौं फरे जान दैहौं जान पै न जान दैहौं जानकी ॥ ७ ॥

हरिसिंह ।

[स० १८२८]

सवैया--

लोह कटारि सवै कोऊ बाँधत ज्ञान कटारि सु दुर्लभ भाई ।
लोह कटारि जु खाइ मरे जन सो अवतार धरे भव भाई ॥
ज्ञान कटारि को खावत हैं सँत ब्रह्म स्वरूप अखण्ड ह्वै जाई ।
फेरि कवौं जनमें न मरै हरि सङ्ग सन्ताप कछू न रहाई ॥१॥

पूरणदास ।

[स० १८२८—१८६२ तक]

राग काफी-

कोण सुणेगो हार रे करुणा सागर विन ।
अँगुरी दई श्रवण विच काँई, दिन्हों विरद विसार रे ।
गजराज तार कर ॥१॥

विगरै कहा गुसाँई मेरो, लाजेगो विरद तिहार रे।
हँसै जग देकर तारी ॥२॥
जन "पूरण" की सुनो वीनती, मार भावै चाहै तार रे।
पर्यो शरणागत तेरी ॥३॥

राग सोरठ-

अब हरि कहाँ गये करुणा केत।
अधम उधारण पतिताँ पावन कहत पुकारया नेत ॥१॥
मोहि भरोसो लाखाँ बाताँ खाली जाय न खेत ॥२॥
सुत अपराध करै बहुतेरा जननी तजत न हेत ॥३॥
"पूरणदास" पर अति निठुरता अजहूं सार न लेत ॥४॥

भंजन।

[सं० १८३०]

सवैया—

अम्बर वीच पयोधर देखि कै कौन को धीरज सो न गयो है।
भञ्जन जू नदिया यहिं रूप की नाव नहीं रवि हू अथयो है॥
पन्थ की राति बसो यह देस भलो तुमको उपदेस दयो है।
या मग वीच लगै वह नीच जु पावक मैं जरि प्रेत भयो है॥१॥

कवित्त—

कोऊ कहैं है कलङ्क कोऊ कहै सिन्धु पङ्क कोऊ कहै छाया है तमोगुन के भास की। कोऊ कहै मृगमद कोऊ कहै राहु पद

कोऊ कहै नीलगिरी आभा आस-पास की ॥ भञ्जन जू मेरे जान चन्द्रमा को छीलि विधि राधे को वनायो मुख सोभा के विलास की। ता दिन तें छाती छेद भयो है छपाकर के वार पार दीखत है नीलिमा अकास की ॥ २ ॥

चन्द्नराय ।

[सं० १८३०]

सवैया—

आजु गई हुती हौं जमुना जल लेन धरे सिर गागरि खाली ।
देख्यो जु कौतुक मैं तट जाइकै सो अब तोसों कहौं सुनु आली ॥
गुम्फित पल्लव फूलन की वनमाल हिये यों लसै वनमाली ।
नील पहार के मध्य विहार करै मिलि कै मनो हन्स सु व्याली ॥१॥

सन्नम ।

[सं० १८३४]

दोहा—

तन मन जोवन जारि कै , भस्म करी सव देह ।
सन्नम ऐसा वीरहा , अजू टटोरत खेह ॥ १ ॥
अनभावन नियरे वसै , मन भावन परदेश ।
इन देखै उन दरस विन , है दुःख वढ़त हमेश ॥ २ ॥

गोकुलनाथ ।

[सं० १८३४]

सवैया--

वारिज सो मुख मीन से नैन सेवार से बारन की सुखदा सी ।
कम्बु सो कण्ठ लसैं कुच कोक से भौंर सी नाभि भरी भ्रम भासी ॥
गोकुल धार सी रोमावली लहरी सी लसै त्रिवली छविरासी ।
लाल विहार करो रस में वह बाल बनी सुख की सरिता सी ॥१॥

सुवन्श शुक्ल ।

[सं० १८२४]

सवैया---

प्यारी सु आनि अचानक आलिन प्रीतम की कहि दीन्हीं अवाई ।
भूरि भरी पुलकावली यों सब अङ्गन में सुखमा सरसाई ॥
बाल उताल सुवन्श कहै नन्दलाल के देखन को उठि धाई ।
भार नितम्बन को न गयो कटि टूटन की मन सङ्क न आई ॥१॥

देव सुरासुर सिद्ध-बधून के एतो न गर्व जितो यहि ती को ।
आपने जोबन के गुन के अभिमान सबै जग जानत फीको ॥
काम की ओर सिकोरत नाक न लागत नाक को नायक नीको ।
गोरी गुमानिनि ग्वारि गँवारि गनै नहिं रूप रतीक रती को ॥२॥

लतीफ़।

[सं० १८३४]

सवैया—

चन्द सों आगरी है मुख जोति, बड़े अति नैन समासम दोऊ।
मूंदत हाथ में आवत नाहिंन, कैसे कै जाय छिपै कहौ कोऊ॥
मावस रैनि की पूनो करै कुल, थोरक सो मुख खोलत सोऊ।
देखि लतीफ़ यह व्रजवाल सु आवत री यह खेल के खोऊ॥१॥

सब रैनि जगी हरि के सँग राधिका वासर वास उतारति है।
अति आलसवन्त जम्हाति तिया अँगिराति भुजान पसारति है॥
सरकी अँगिया जु हरे रँग की सु लतीफ़ महा छवि पारति है।
मनु है जो पुरैनि के पातन में उरझो चकवा तेहि टारति है॥२॥

सिंह।

[सं० १८३५]

सवैया—

हास ही हांस में मान भयो पिय पौढ़ि रहे पलिका पट तानि है।
मान छुड़ावै को बैठी विसूरति काह कहै धौं पिया मुख मानि है॥
सिंह उरोज दै पाँयन पौढ़ि कै काम के वान लगौं तब जानि है।
पीतम नेह सों अङ्क भरयो लगि प्यारी गरे मुरि कै मुसकानि है॥

समासम=सम-विषम। बासर=दिन। बास=वस्त्र। पुरैनि=कमल पत्र।

बांकीदास ।

[सं० १८३८]

सवैया—

पारस की परवाह नहीं, परवाह रसायन की न रही है ।
वङ्क सौं दूर रहौ सुरपादप, चाह मिटी कित मेरु मही है ॥
देवन की सुरभी दिस दौर, थकी मन की सब साची कही है ।
माँगहौं एक मरूपति मान कौं, नाथ निभायगो टेक गही है ॥१॥

दोहा—

सूर न पूछै टीपणौ , सुकन न देखै सूर ।
मरणाँ नूं मङ्गल गिणै , समर चढ़ै मुख नूर ॥ २ ॥
कृपण जतन धन रौ करै , कायर जीव जतन्न ।
सूर जतन उण रौ करै , जिण रौ खाधौ अन्न ॥ ३ ॥
दामोदर दीजै मती , कायर काँठै वास ।
सरणै राखै सूर रै , तेथ न व्यापै त्रास ॥ ४ ॥
हाथल बल निरभै हियौ , सरभर न को समत्थ ।
सीह अकेला सञ्चरै , सीहाँ केहा सत्थ ॥ ५ ॥
कवण बन्ध मारग करै , दिस च्याऊँ निस दीह ।
सीहाँ सूं साँकै सको , साँकै किण सूं सीह ॥ ६ ॥
चमर ढुलै नह सीह सिर , छत्र न धारै सीह ।
हाथल रा बल सूं हुवौ , औ मृगराज अबीह ॥ ७ ॥

———

शिवलाल।

[सं० १८३६]

सवैया--

धावन कोऊ पठाऊँ उतै उन तौ इहि औसर में कह्यो आवन।
गावन एरी लगे मुरवा धुरवा नभ-मण्डल में लगे धावन॥
छावन जोगी लगे शिवलाल सु भोगी लगे हैं दशा दरसावन।
तावन लागो वियोगिनि को तन सावन वारि लगे वरसावन॥१॥

मनीराम मिश्र।

[सं० १८३६]

सवैया--

एक कवर्ग के अन्त को अङ्क चवर्ग के द्वै मनीराम गनीजै।
चारि टवर्ग के वीच विना तजि जानि थकार पवर्ग न कीजै॥
तीनि यवर्ग के छाँड़ रकार ते और षकार हकार न कीजै।
वर्नन कीन विचारि कै चित्त ये मित्त कवित्त के आदि न दीजै॥१॥ *

संगम।

[सं० १८४०]

कवित्त--

समै कौ न जानै सीख काहू की न मानै रारि कठिन को ठानै सो अजानै भई जाति है। पीछे पछितैहै घात ऐसी नहिं पैहै टेक

---

* ङ भ ञ ट ठ ढ ण थ प फ व भ म र ल व ष ह।

तेरी रहि जैहै कहा टेढ़ी भई जाति है॥ "सङ्गम" मनावै तोहिं हित की सिखावै सीख जा बिन न भावै भौन ताहीं सों रिसाति है। मोसों अठिलाति बिन काम को हठाति प्यारी तू तो इतराति इत राति बीती जाति है॥ १॥

मुरलीधर।

[सं० १८४०]

सवैया—

तब नीचहि नैन किये रहतीं अब नैन तैं नैन नचावति हौ।
तब होती लजीली लखैं गति कों अब प्रेम जू लङ्क लचावति हौ॥
तब बोलती हूं न बुलाय कहूं अब तो बतियान रचावति हौ।
हिलकीन के सोर गये कित वै ससकीन के सोर मचावति हौ॥ १॥

रामचन्द्र।

[सं० १८४१]

कवित्त—

नूपुर बजत मानि मृगा से अधीन होत मीन होत जानि चरनामृत झरनि को। खञ्जन से नचैं देखि सुखमा सरद की सी मचैं मधुकर से पराग के सरनि को॥ रीझि रीझि तेरे पद-छवि पै तिलोचन के लोचन ये अम्ब धारैं केतिक धरनि को। फूलत

धरनि=वेश।

कुमुद से मयङ्क से निरखि नख पङ्कज से खिलैं लखि तरवा-तरनि को ॥ १ ॥

दाड़िम जपा से वन्धु जीव से चरन तल कोकनद दल के से जावक जगे रहैं। जाही जूही मालती सी प्रपद गोराई गोल गुलुफ गुलाव कलिका से उमगे रहैं ॥ कुन्द नख चम्पे की आँगुरी निरखि अम्ब तेरे पद वागन परागन पगे रहैं। रीझि रीझि शङ्कर नयन रसराते इहाँ रैन दिन माते मधुकर से लगे रहैं ॥ २ ॥

नीलमनि नूपुर की आभा रही छाय तामैं छवि-जल पाय ललकत भरि पूर से। जावक की रेखा विज्जु लेखा चमकत तामैं आभरन हीरन के जुगुनू जहूर से ॥ वरखत सदा सुधाधारा सार सोभामय चरन तिहारे अब लखि घन घूर से। विसद वकाली-सी नखाली रुचि राचैं तामैं नाचैं चन्द्रचूड़ चख मुदित मयूर से ॥ ३ ॥

वोलैं कहूं नूपुर ज्यों मोर चटकाली धुनि लाली कहू जावक की साँझ सरसई है। तरपै तड़ित की सी जेहर जड़ित जोति कहूं नख नखत उसेत लखि लई है ॥ फूले कहूं पद तल कोकनद के से दल प्रपद जुन्हाई छवि अचरज मई है। तो पद चमक चक चाने चन्द्रचूड़ चख चितवत एक टक जक वँध गई है ॥ ४ ॥

शान्त नख रुचि में सिंगार है सिंगारन में घुंघुरू मुखन मृदु हास रस वरसैं। करुना भरे हैं प्रभु अदभुत एक जिनै वैरी

तरनि=सूर्य। दाड़िम=अनार। कोकनद=कमल। आभरन=गहना। तड़िज=बिजली।

बीर निरखि भयानक से तरसैं॥ जामें जानि परत बिभत्स को अभाव जाको रुद्र चख रसिक सुभावनि तें परसैं। अम्ब तेरे चरनारविन्दन कविन्दन को शुद्ध नवो रस के उदाहरन दरसैं॥६॥

कृष्णलाल।

[सं० १८४२]

सवैया—

सूकि सफेत भई बिरहै जरि सोई गँगे गनि ऊरध दैनी।
अङ्ग मलीन अँगार के धूमसि सो जमुना जग जाहिर रैनी॥
ताहि समै भयो प्यारे को आवन सो अनुराग गिरागति लैनी।
कृष्ण कहै तब ही वर बालकै आय कढ़ी ततकाल त्रिबेनी॥१॥

सागर बाजपेयी।

[सं० १८४३]

सवैया—

जाकै लगै सोई जानै बिथा, पर पीर मैं को उपहास करै ना।
सागर ये चित मैं चुभि जात हैं, कोटि उपाय करौ बिसरै ना॥
नेक सी काँकरी जाके परै सु तौ पीर के कारन धीर धरै ना।
एरी सखी कल कैसे परै जब आँखि मैं आँखि परै निसरै ना॥१॥

जाके लगै गृह-काज तजै अरु मात पिता हित तात न राखैं।
"सागर" लीन है चाकर चाहकै धीरज हीन अधीन है भाखैं॥

व्याकुल मीन ज्यों नेह नवीन में मानो दई बरछीन की सांखैं।
तीर लगै तरवारि लगै पै लगै जनि काहू से काहू की आँखैं॥२॥

विश्वनाथसिंह।

[सं० १८४६]

सवैया—

जो बिन कामहि चाकर राखत ऐन अनेक वृथा बनवावै।
आमद ते अधिको करै खर्च रिनै करि व्योहरे व्याज बढ़ावै॥
बूझत लेखा नहीं कछु ऐनहिं नीति की रीति प्रजा न चलावै।
भाखत है विसुनाथ ध्रुवै वहि भूपति के घर दारिद आवै॥१॥

झूठो सुनै तहकीक करै नहिं ओछेन सङ्गति में मन लावै।
रीझ पचाय डरे रन को विसना जो अठारहौ खूब बढ़ावै॥
ठट्ठा में प्रीति कुपात्र में दान कवीन हुँ जान गुमान जनावै।
भाखत है विसुनाथ ध्रुवै अस भूपति ना कबहूं जस पावै॥२॥

होय नहीं कबहूं बस काहु समै सब में निज भाव जनावै।
राखे रहै हुकुमैं सब पै कहुं मित्र बनाय न तेज गँवावै॥
साम औ दाम औ दण्ड औ भेद की रीति करै जु सबै मन भावै।
भाखत है विसुनाथ ध्रुवै कला षोडसौ भूपति राज बढ़ावै॥३॥

वृन्दावन।

[सं० १८४८—१९०५]

सवैया—

अति रूप अनूप रतीपति तें, न सचीपति तें अनुभूति घटी है।
कवि वृन्द दशों दिशि कीरति की, मनों पूरनचन्द प्रभा प्रकटी है॥
सब ही विधि सों गुनवान बड़े, बल बुद्धि विभा नहिं नेक हटी है।
जिन चन्द पदाम्बुज प्रीति बिना, जिमि सुन्दर नारी की नाक कटी है

नर जन्म अनूपम पाय अहो, अब ही परमादन को हरिये।
सरवज्ञ अराग अदोषित को, धरमामृत पान सदा करिये॥
अपने घट को पट खोलि सुनो, अनुभौ रसरङ्ग हिये धरिये।
भवि वृन्द यही परमारथ की, करनी करि भौ तरनी तरिये॥२॥

नर नारक आदिक जोनि विषैं, विषयातुर होय तहाँ उरझै है।
नहिं पावत है सुख रञ्च तऊ, परपञ्च प्रपंञ्चनि में मुरझै है॥
जिन नायक सों हित प्रीति बिना, चित चिंतित आश कहाँ सुरझै है।
जिय देखत क्यों न विचारि हिये, कहुं ओस के बूंद सों प्यास बुझै है॥

जिय पूरब तौ न विचार करै, अति आतुर ह्वै बहु पाप उपावै।
नित आनँद कन्द जिनन्द तनें, पद पङ्कज सो नहिं नेह लगावै॥
जब तास उदै दुख आन परै, तब मूढ़ वृथा जग में बिललावै।
अब पाप अताप बुझावन कोशन, आगि लगे पर कूप खुदावै॥४॥

सचीपति=इन्द्र। विभा=वैभव।

जब ही यह चेतन मोह उदै, पर वस्तु विषै सुख कारन धावै ।
तब ही दिढ़ कर्म जँजीरन सों, बँधि कै भव चारक वास में आवै ॥
जिन नायक सों विन प्रीति किये, कहु को भवबन्धन काटि छुड़ावै ।
विष खाय सों क्यों नहिं प्रान तजै, गुड़ खाय सो क्यों नहिं कान विंधावै

जानत वेद पुरान विधान, प्रधानन में अगवान अती को ।
लौकिक रीति विषै बुद्धिवान, जहान में जासु प्रतीति व्रती को ॥
जो निज आतम रूप न जानत, शुद्ध स्वभाव गहै न जती को ।
तो कवि वृन्द कहो तिहिं को, वह एक रती बिन एक रती को ॥

पावक कुण्ड प्रचण्ड भयो, ब्रहमण्ड उमण्डि रही जब ज्वाला ।
राम की वाम सिया अभिराम, उठी तब ही जपि नाम की माला ॥
वारिज पाँय पधारत ही तिहिंवार कियो सर स्वच्छ विशाला ।
क्यों न सुनो जन की विनती, जन आरत भञ्जन दीनदयाला ॥७॥

द्रोपदी चीर दुशासन खैंचत, मध्य सभा मह लाज न आई ।
भीषम कर्ण युधिष्ठिर देखत, पारथ सों न कछू वनि आई ॥
धारि के धीर पुकारत ही, तिहिं औसर चीर विशाल बढ़ाई ।
क्यों न सुनो जन की विनती, जन आरत भञ्जन हे जदुराई ॥८॥

श्रीत्रिशला जिनकी जननी, तिनकी भगिनी लघु चन्दना हेरी ।
सम्यक सील सुरूप निधान के, सङ्कट माहिं परी पग वेरी ॥
वीर जिनेश गये तहँ आप, कटी दुख फन्द रटी सुर भेरी ।
मैं अति आतुर टेरत हौं, अब श्रीपतिजी पत राखहु मेरी ॥६॥

आग विषैं जुग नाग जरन्त, विलोकि तुरन्त तिन्हें तिहिं बेरी ।
पास कुमार दियो नवकार, उबार दियो दुख दुर्गति सेरी ॥
सो तत्काल भये धरनेश्वर, औ पदमावति पुन्य भरेरी ।
मैं प्रभु को तज जाऊँ कहाँ अब, श्रीपतिजी पत राखहु मेरी ॥१०॥

सेठ सुदर्शन आनँदवर्षन, सम्यक सर्षन कर्षन कामा ।
ताहि तिया वश भूप लगाय, कलङ्क निशङ्क जो शील ललामा ॥
शूली चढ़ावत ध्यावत ही तिहिं, दीन्हों सिंहासन श्रीअभिरामा ।
आज विलम्ब को कारन कौन है, आरतभञ्जन कीरति धामा ॥११॥

थान ।

[सं० १८४८]

सवैया—

लोचन लाली विलोचन की छवि-कञ्ज बिलोक तजै मन माखैं ।
देखि महूस चुपायो महाँ परि पूजि हिये की बड़ी अभिलाखैं ॥
ऐसी अपूरब देखी नहीं गति साँची कहौं करि सौंहन लाखैं ।
प्यारे ये पान कहाँ के धौं है मुख खाये भली रचती रँग आखैं ॥१॥

भूलि गई हित की बतियाँ पतियान पठै कै करी चित चोरनि ।
धीर समीर के तीर गोविन्द जू हाथन जोरि हहा कै निहोरनि ॥
लागै यहै जिय मैं कवि थान जू नेही कहाय कै नेह की तोरनि ।
सूधि हू आँखिन ना चितवौ अब हेरनि सीखी है नैन की कोरनि ॥

महूस=महुआ ।

घसि केसरि रङ्ग गुलाल गुलाब सों मोहन पै बरसावती मैं।
पियरो पट छीन सँयोग सखीन के कज्जल नैंन लगावती मैं॥
मधुरी मुसकानि विलोकि हिये विछुरे को वियोग बहावती मैं।
सजनी व्रज भूपन को जो कहूं करि फागुन के मिस पावती मैं॥

कवित्त--

धीर हैं समीर जहाँ जमुना के तीर तीर गुञ्जत मलिन्द वृन्द सुमन समाज ते। तहाँ जाय बाँसुरी बजाई गाई साराँग है ग्रीषम की दुपहरी सोहै अति साज ते॥ नाद सुनि बन्सी विष-मई भई गई नाहिं थान कवि झूठी भई आज व्रजराज ते। छूटन न पाई या अदाई गुरु लोग लाज मैं तो बाज आई अब ऐसे गृह काज ते॥ ४॥

सहज सरीर की सुवास मलयज मानि भौंरन की भीर चहुं ओरन रचत है। हरखत हन्स गन बरखत नख मोती बेनी लखि ब्याली मोर माली चै नचत है॥ जैवो वृन्दावन को अन्हैवो जमुना को छूटो जीव बन-जीवन ते कैसे के बचत है। बानक मैं चारु चित चन्द मुख जानि चहुं ओरन चकोरन की चाचरि मचत है॥ ५॥

चीरा की लहर है गहर कुसुमई रङ्ग तुर्रा की तरङ्ग छवि छटा उछलत है। जामा अगरई तामे किरमिजी कोर दई जोरा जेवदार जरकसी झलकत है॥ थान कवि दुपटा दुदामी को गुलाबी

साराँग=राग-विशेष। मलयज=चन्दन। ब्याली=सांपिन। चाचरि=कोलाहल।

फेंटा केसरि तिलक श्रुति कुण्डल लसत है। वाके नवरङ्गी लाल सङ्गी गोप ग्वालन के हाथ मैं नरङ्गी को उछालत चलत है ॥६॥

चण्डीदान ।

[सं० १८४८—१८६२]

कवित्त--

पनी को प्रचण्ड अण्ड कीनूं पञ्चभूत पिण्ड जापे धस्यो जीव मण्ड बानी को बनाय रे। सङ्कट गरभ हस्यो पोखन भरन कस्यो बुद्धि प्रकास धस्यो वदन बताय रे॥ अन्तर को जामी जासों मत ह्वै हरामी फेरि परि हैं तो खामी कौन करिहैं सहाय रे। तारन तरन जाको कारन समझि उर चारन भयो तो गिरिधारन को गाय रे ॥ १ ॥

बेनी बैंतीकाले ।

[सं० १८४९]

सवैया--

हाथ छ-सात फिरै मग में पग जावक दीन्हें बिना हू ललाई।
वेनी मधुव्रत घेरे रहैं कब हूं तन मैं न सुगन्ध लगाई॥
फेरे रहैं मुखचन्द तऊ घर घेरे रहै निसि दौस कन्हाई।
ऊंचे उरोज वड़ी अखियाँ ये बड़े बड़े केस भये दुखदाई॥१॥

गुञ्जत भौंर पराग भरे खरे सोहत लाल रलासन के गन।
बङ्क है द्वैज के चन्द समान बखान करैं पुहुमी के सबै जन॥
और कछू उपमा न बनै तब बेनी बिलोकि बिचार कियो मन।
होत समागम हाल बसन्त के लागे नखच्छत मानौ बनी तन॥२॥

कवित्त—

थल ते सुजल पर जल ते सुथल पर उथल पथल जल थल उनमाथी को। बरस कितेक बीते जुगुति न चलै एको बिना दीनबन्धु साँकरे में होत साथी को॥ मन बच करम पुकारत प्रगट बेनी नाथन के नाथ औ अनाथन सनाथी को। बल करि हारे हाथा हाथी सब हाथी तब हाथा हाथी हरखि उबारो हरि हाथी को॥३॥

साँझ तें कलावन्त से करत अलापचारी लोहू चूस लेत हैं बनाय मुंह भोरे तैं। चटक चलाये हाथ आपने लगत चोट दूनो दुख देत हैं बसन झकझोरे तैं॥ धूप तैं न धुवाँ तैं न जन्त्र मन्त्र औषध तैं मानत न मच्छर अधीन कर जोरे तैं। मूंदे तन व्याकुल उघारे फारि फारि खात मूंदे ना उघारे नींद आवत निहोरे तैं॥४॥

दोहर पिछौरी चपकन की चलावै कौन रोंके ना रहत राति सौ गुने बसन के। चहूं ओर चाव भरे चपके देवालन मैं चौंक चौंक चौंके परे दीरघ दसन के॥ जातक विचारि लोग सातक न आवै जहाँ पातक प्रसिद्ध सुख घातक रसन के। नीबी मैं

फरे हैं आसमान ते झरे हैं कीधौं खाते उघरे है ये अहाते मैं मसन के॥ ५॥

अड़ि जात बाजी औ गयन्द गन गड़ि जात सुतुर अकड़ि जात मुसकिल गऊ की। दामन उठाय पाय धोखे जो धरत होत आप गड़ काप रहि जात पग मऊ की॥ बेनी कवि कहै देखि थर थर काँपै गात रथन को पथ न बिपति बरदऊ की। बार बार कहत पुकारि करतार तोसों मीचु है कबूल पै न कीच लखनऊ की॥ ६॥

एकै खड़े रोवैं एकै बसन निचोवैं एकै जखम को टोवैं देखि देह थहराति है। एकै लेत थाहैं ऊँची करि करि बाँहै एकै जोर को उगाहैं ना जुगुति ठहराति है॥ बेनी कवि कहै और कहाँलौं बखान करौं ऐसेई सकल मुसकिल दिन राति है। एकै फँसे कटि लगि एकै गिरवान लगि आप गर काप शिखा साफ़ फ़हराति है॥ ७॥

पाय प्रभुताई कछु कीजिये भलाई इहाँ नाहीं थिरताई बैन मानिये कविन के। जस अपजस रहि जात पुहुमी के बीच मुलुक खजाना बेनी साथ गये किन के॥ और महिपालन की गनती गनावै कौन रावन से ह्वै गये त्रिलोक बस जिनके। चोपदार चाकर चमूपति चँवरपति मन्दिर मतङ्ग ये तमासे चार दिन के॥

राग कीन्हें रङ्ग कीन्हें तरुनी प्रसङ्ग कीन्हें अङ्ग कीन्हें चीकने सुगन्ध लाय चोली मैं। देह रचे गेह रचे सुखद सनेह रचे बासर

बाज=घोड़ा। गयन्द=हाथी। शुतुर=ऊँट।

बिताय दीन्हें नाहक ठठोली में॥ बेनी कवि कहै अब ऐसी दसा देखियत दिना चारि स्वांग से दिखाय चले होली में। बोलत न डोलत न खोलत पलक हाय काठ से परे हैं आठ काठ की खटोली में॥ ६॥

कलित कसौटी पर सुवरन रेख जैसे चम्पक की माल ज्यों तमाल पर छाई है। महानील मनि पर पुखराज साज जैसे जैसे सुर गुर सोभा गगन में गाई है॥ इन्दीवर मिलित विमल मकरन्द जैसे बेनी ऐसे थल या उकति मन आई है। बिज्जु घनश्यामै अभिरामै रति कामै जैसे तैसे घनश्यामै मिलि वामै दुति पाई है॥ १०॥

गगन में कूप नील पद्मी अनूप तहाँ कञ्चन सिढीन की निकाई मन भाई है। सुकृती सुगम शैल उन्नत अधिक फेरि जहाँ सुरसरि को धवल धार धाई है॥ कम्बु पै कलानिधि कलानिधि पै खञ्जरीट खञ्जरीट ऊपर अरुन अरुनाई है। भानु के समीप ही छपा की छवि छाई तहाँ बेनी कवि तापर बिमल दुति पाई है॥ ११॥

कान्ह।

[सं० १८५२]

सवैया—

कानन लौं अँखियाँ ये तिहारी हथेरी हमारी कहाँ लग फैलिहैं।
मूँदे हू पै तुम देखती हौ यह कोर तुम्हारि कहाँ लौं सकेलिहैं॥

कान्हर हू को सुभाउ यहै उनको हम हाथन ही पर झेलिहैं।
राधेजी मानो बुरो के भलो अँखिमूंदनो सङ्ग तिहारे न खेलिहैं ॥१॥

कुण्डलिया—

खर को तुरग न नीपजै, साजै अतिसै साज।
फूहर होय न पद्मिनी, कगवा बनै न बाज॥
कगवा बनै न बाज, काँच कञ्चन नहिं होवै।
मर्कट गल में हार, जाय जङ्गल मैं खोवै॥
कथै सु कवि या कान्ह, स्वभाव न पलटै नर को।
साजै अतिसै साज, तुरग न निपजै खर को॥ २॥

रण्डी मित्र न कीजिये, अकल भ्रष्ट हो जाय।
भक्ति गमावै इष्ट की, जीवत नर कों खाय॥
जीवत नर कों खाय, जहाँ लगि होय असङ्गा।
वाँ तक नर का नेह, पलँग पर करै प्रसङ्गा॥
कथै सु कवि या कान्ह, रहे सन्तों में भण्डी।
अकल भ्रष्ट हो जाय, मित्र नहिं करना रण्डी॥ ३॥

मिसरी घोरै झूठ की, ऐसे होय हजार।
जहर पिलावै साच का, सो विरला संसार॥
सो विरला संसार, पटन्तर उनका ऐसा।
मिसरी जहर समान, जहर है मिसरी जैसा॥
कथै सु कवि या कान्ह, भूल मत जैयो भोरै।
जिनके सिर पैज़ार, झूठ की मिसरी घोरै॥ ४॥

गुनदेव।

[स० १८५४]

कवित्त।

एक समै पूरन उद्योत जोत ससि भयो सुनि कै ग्रहन देखें लोक सब धाइ कै। ज्योति की सी ज्वाल बाल इन्दु सो मुखारबिन्द कहै गुनदेव म्हेल ठाढ़ी भइ आई कै॥ चन्द्र और चन्द्रमुखी यही ग्रसूं याही ग्रसूं ऐसे ही विचार निसि सारी ही विताइ कै। चन्द भयो अस्त चन्द्रमुखी निज गृह आयी राहु गयो गेह निज हिये पछिताइ कै॥ १॥

यशवन्तसिंह।

[स० १८५५]

सवैया—

लै सपने अपने मन की दुलही उलही छवि भाग भरी सी।
अङ्क निसङ्क सो लै परयङ्क लला मुख चूमि सु चारु घरी सी॥
यों लपटी चपटी हिय सों जसवन्त विशाल प्रसून-छरी सी।
नैनन के खुलतै वह मूरति पास परी उड़ि जात परी सी॥१॥

छूटी लटैं लटकैं मुख पै जलविन्दु लसै मनो पोहत मोती।
बोलत बोल तमोल विराजत राजत हैं नथ मे ससि गोती॥
ओज सरोज उरोज कली सु भली त्रिबली-तट आनँद ओती।
जोरति नेह मरोरति भौंह सुचोरति चित्त निचोरति धोती॥२॥

चन्द्रशेखर वाजपेयी 'शेखर'।

[सं० १८५५]

सवैया—

प्रात प्रभाकर की रुचि रञ्जित पङ्कज की पखुरी छवि जाली ।
कै अनुराग प्रभा प्रगटी सब रागिनी रागन की परनाली ॥
सेखर नैनन कों सुख दैन किधौं रति की रुचि नैनन घाली ।
पूरित राग-रजोगुन सी मनभावती के मुख पान की लाली ॥१॥

कवित्त—

अरुन असित सित सोभा के सदन कीधौं भयो गुन तीनों को उद्योत एक सङ्ग है। कैधौं लसैं पङ्कज मैं पद्दिक पुनीत जोति मरकत मानिक मयूखन को रङ्ग है। सेखर उदित चारु चन्द की कला है किधौं अग्र अँगुरीन के अनूप रुचि अङ्ग है। न्यारी लसैं प्यारी के पगन नख श्रेणी किधौं रति सुखदैनी या त्रिबेनी की तरङ्ग है ॥ २ ॥

कैधौं कढ़ी वामो ते भुजङ्गिनी लसत कैधौं कञ्चन अजिर लीक नीलम की थोरी सी। कैधौं कुचगिरि तैं गिरो है स्रोत कालिन्दी को कैधौं काम काढ़ी लीक सञ्चि रस बोरी सी॥ देखियत सेखर कै वाम उर आरसी मैं राजैं स्याम अञ्जन की राखी करि न्योरी सी। राजैं रोम राजी नाभी ऊपर अनूप परी कूप के किनारे स्याम रेसम की डोरी सी ॥ ३ ॥

मयूखन=किरणें। अजिर=आँगन, चौक।

अरुन २ ओप पल्लव तरुन के से परन विलोक तैं तरुन वस होने के। मुकता मनीन वारी पहुंची पहूंचन मैं परत न पेखि पगे रङ्ग सङ्ग दोने के॥ वलय वलित राजैं कोमल ललित कर सेखर विलोकत मनोज दुख खोने के। मानो रचे मदन महीपति के खेलिबे को जटित जवाहिर सरोज जुग सोने के॥ ४॥

दरसत दूरि तैं द्रगनि सरसत मोद तरसत जीव परसे कों कण्ठ कर को। लसत जराऊ रङ्ग रङ्ग के रतन माल ग्रीवा सीस मण्डित प्रबाल जाल बर को॥ सेखर सुहाये तामें मोतिन के हार चारु उपमा निहारि निरधार करै नर को। आस पास तारन को फरस बिछाय मानो ग्रहन समेत धस्यो सङ्ख चक्रधर को॥ ५॥

सुन्दर सरस सोहै मोहै दरसत तन परसि प्रमोद को प्रकास होत तन मैं। बैठो उड़ि अम्बुज के ऊपर अनूप अली चलत न चित्त चुम्ब्यो सौरभ सघन मैं॥ सेखर सुरुचि रस की सी छींट छवि देत छैल को सुमन आयो सोभा के सदन मैं। भावती के वदन विराजै स्याम बिन्दु मनौ गरक गोविन्द भो गुलाब के सुमन मैं॥ ६॥

पङ्कज के कोस-थली कुन्द की कली है भली कीधौं चन्द मण्डल मैं मुकतावली सी है। कीधौं हेम सम्पुट मैं हीरन की पाँति पर अधर ललाई सों अधर दुति दीसी है॥ दासौ को निहारि दिल दरक्यो दुखी ह्वै देखि सेखर विसेषि छवि देति मंजु मीसी है। अरुन असित सित सोभा को सदन सोहै मोहै मन भावती की दसन बतीसी है॥ ७॥

काजर कलित कोरैं कञ्ज से सुरस पुञ्ज तीखे २ तरल बसी करन जी के ये। मीन-गति मुरत मनोज मनरञ्जन ये गञ्जन गुमान के रसी करन पीके ये॥ सानधारे सेखर निधान सुखमा के बाँके छाके नेह आसव नसा के नित ही के ये। सील सने सलज सलोने सुख दैन प्यारी नेह भरे निपट नुकीले नैन नीके ये ॥८॥

गोरे २ गोल अङ्ग अमल अमोल रङ्ग चोरे लेत चित रस बोरे परसत हैं। आबदार लसत गुलाब के सुमन सुचि विसद बँधूक ज्यौं सुगन्ध बरसत है॥ सेखर अरुन रुचि आसन रुचिर राजैं जोबन नरेश के जलूस सरसत हैं। नैन सुख दैन छवि ऐन मृग-नैनी तेरे मैन कै से मुकुर कपोल दरसत हैं॥ ९॥

कैधौं चन्द मण्डल मैं खेलैं खञ्जरीट जानि सीत को प्रसङ्ग अङ्ग सङ्ग विषधारे हैं। किधौं रचे जोबन-नरेस मन रञ्जिबे को सेत रङ्ग वारे रसराज के अखारे है॥ कैधौं सौति गन के सुहाग चोरिबे को तम सेखर कै कामदेव आसन निहारे हैं। कैधौं रही लागि मंजु कञ्जन मैं लाज कैधौं कामिनी के आज नैन अञ्जन सुधारे हैं॥ १०॥

जावक दिये ते और अरुन लखे मैं ये तो सहज सुभाव ही अलौकिक अरुन हैं। कोमल विमल मंजु कञ्ज से कहत नीके फीके से लगत मुख उपमा बरुन हैं॥ पल्लव पुनीत टटके से वटके से कहै सेखर न तेऊ रस रञ्जक धरन हैं। रस भरे रङ्ग भरे सरस उमङ्ग भरे भावती के मृदुल मनोहर चरन हैं॥ ११॥

कैधौं धस्यो आप ही उतारि रङ्गभूमि तामैं मैन की कमान को अनूप गुन ओज सों। कैधौं मिल्यो मन मैं उमाह करि राहु ताहि लाइ लीन्यो उर सों मयङ्क मन मौज सों॥ रेख तम सार की कुमार चारु पन्नगी को पीवत सुधा को सार सेखर सरोज सों। गोरे मुख भावती के अलक अरूझी किधौं छलकै सिंगार रस धार हेम-हौज सों॥ १२॥

पन्नग के पात मैं प्रवालन की पाँति तापै पद्दिक की पाँति की प्रभा सी अभिलाषी है। कैधौं कालिन्दी मैं वह्यो बानी को प्रवाह चाहि तामैं भली कुन्द की कली सी गहि नाखी है॥ पाटी पारि प्यारी की सँवारि माँग सेंदुर सों तामें मंजु मुकतावली यों रचि राखी है। तमोगुण रासि में रजोगुन की रेख मानौ तामें लिखी सुरुचि सतोगुन की साखी है॥ १३॥

नखत से मोती नथ वेंदिया विमल जोति तैसेई तरौना लसैं लोने मुख थाट मैं। हेरत हरत मन मनिन मयूषैं मंजु छवि की छटा सी छूटै छैलन की आट मैं॥ चन्दन के विन्दु पै जवाहिर जटित नीको टीको लसै भावती के ललित लिलाट मैं। मानौं सोधि सुदिन सनेह के वढ़ाइवे कौं बैठे सोम सूरज जराऊ हेम पाट मैं॥ १४॥

थोरी थोरी वैस की किसोरी तन गोरी गोरी भोरी भोरी बातन सों हियरो हरति है। केतकी तें रस कही न परै कुन्दन सी चञ्चला तें चौगुनी मरीचिका धरति है। जगर मगर होति इन्दु वदनी की दुति सेखर अवास कौं प्रकासित करति है।

मानो मँज्यो मंजु मैन मुकर महल तामैं अमल अधूम महताब सी बरति है॥ १५॥

थोरी थोरी बैस वारी नवल किसोरी सबै भोरी भोरी बातनि बिहँसि मुख मोरतीं। बसन विभूषन विराजति बिमल बर मदन मरोरन तरकि तन तोरतीं॥ प्यारे पातसाह के परम अनुराग रगी चाय भरी चायल चपल द्रग जोरतीं। काम अव-लासी कलाधर की कला सी चारु चम्पक लता सी चपला सी चित चोरतीं॥ १६॥

भाजे मीर जादे पीर जादे औ अमीर जादे भागे खान जादे प्रान मरत बचाइ कै। भागि गज बाजी रथ पथ न सँभारैं परैं गोलन पै गोल सूर सहमि सकाइ कै॥ भाग्यो सुलतान जान बचत न जानि बेगि बलित बितुण्ड पै बिराजि बिलखाइ कै। जैसे लगे ज़ङ्गल मैं ग्रीषम की आगि चलै भागि मृग महिष बराह बिललाइ कै॥ १७॥

भाजे जात रङ्क से ससङ्कित अमीर परैं भीरन पै भीर धरैं धीर न रहै थिरे। जङ्गल की जार मैं पहार मैं पराइ परे एकै बारि धार मैं उछार मारि कै परे॥ कम्पित करी पै साह साहब अला-उदीन दीन दिल बदन मलीन मन मैं खिरे। प्रबल प्रचण्ड पौन पच्छिमी हमीर मारे बद्दल समान मुगलदल उड़े फिरे॥ १८॥

खेत रन थम्भ के हमीर रनधीर बली सेना पातसाह की कृपान मुख मारी है। लुत्थन पै लुत्थ परे घायल बसत्थ परे हत्थ कहूं मत्थ खात आमिष अहारी है॥ लोहू के अलेल मैं गलेल

देत भूत भिरै रुण्डन को प्रेत औ पिसाच सहचारी है। तारी देत कालिका किलकि किलकारी दै कै भारी मुण्डमालिका महेस उर डारी है॥ १६॥

भुजंग-प्रयात—

दुहूं ओर सों घोर यों तोप बाजै, प्रलै काल के से मनौ मेघ गाजै।
हलै मेरु, डोलै महि, सेस कम्पै, उठी धूम धारा धुजै भानु झम्पै॥
भई बान बन्दूक की मार भारी, मनौ बारि धारा महा मेघ बारी।
उड़ै सोर प्याले निराले चमंकै, घटा जोट मैं दामिनी सो दमंकै॥
लगैं कोट मैं आनि कै जोर गोला, न पाषान टूटै कहूं एक तोला।
जहीं साह की फौज में आगि लागैं, उड़ै केतिकौ केतिकौ दूरि भागैं॥
लगे बान गोली गिरैं सूर ऐसे, गिरह खात पंछी गिरहबाज जैसे।
परी मार ऐसी दुहूं ओर भारी, परैं साह की फौज में खग्गधारी॥
फटे टोप कुण्डी तनं त्रान फूटे, फटे अंग अंगं नरे प्रान छूटे।
उठायंत एकै करैं एक जंगं, लुरैं एक लोटैं परे अंग भंगं॥२४॥

करन।

[सं० १८५७]

कवित्त—

कण्टकित होत गात विपिन समाज देखि हरी हरी भूमि हेरि हियो लरजतु है। एते पै करन धुनि परत मयूरनि की चातक पुकार तेह ताप सरजतु है॥ निपट चवाई भाई बन्धु जे बसत

गाँउ दाउँ परे जानि कै न कोऊ बरजतु हैं। अरजो न मानी तू न गरजो चलत बेर एरे घन बैरी अब काहे गरजतु है॥ १॥

भोजराज।

[सं० १८५७]

कवित्त—

शशि के प्रकाश पास माणिक की केती ज्योति रबि के प्रकाश तारा तेज ना धरत है। शूर रनधीर आगे कायर को ठौर कहाँ फनि दीठि आगे कबौं दीप न जरत है॥ मृगमद वास पास केवड़ो कपूत सम करम के आगे रूप पानी त्यों भरत हैं। कवि भोजराज कहैं सुने क्यों न कान देत वर्ण चारों चतुर की चाकरी करत हैं॥ १॥

राय ईश्वरी प्रताप नारायण।

[सं० १८५६]

सवैया—

मोह को जाल पसार चहूं दिसि सन्तत खेलत काल अहेरो।
भाग तू मोह मया तजि मूरख काहु को तू न कोऊ कहुं तेरो॥
नश्वर या तन को समबन्ध प्रताप छुटै छिन साम सवेरो।
छोड़ि सबै भ्रम-जाल निरन्तर श्रीवन में बस हे मन मेरो॥१॥

महेश।

[सं० १८६०]

सवैया—

सुनि बोल सुहावन तेरे अटा यह टेक हिये में धरौं पै धरौं।
मढ़ि कञ्चन चोंच पखौवन में मुकताहल गूंदि भरौं पै भरौं॥
सुख पींजरे पालि पढ़ाइ घने गुन औगुन कोटि हरौं पै हरौं।
बिछुरे हरि मोहिं महेस मिलैं तोहिं काग ते हन्स करौं पै करौं॥१॥

मून।

[सं० १८६०]

कवित्त—

उतै आई नाइका नवेलिन विहाय मून इतै कढ़े वेलिन ते स्याम यहि धा करी। जुरिगे दुहूं के दृग लालची लजीले लोल ललित रसीले लोक-लाज को विदा करी॥ मुरि मुसक्याइ कै छबीली पिकवैनी नेक करत उचार मुख बोलन को वाँ करी। ताक री कुचन वीच काँकरी गोपाल मारी साँकरी गली में हाँ करी न ना करी॥ १॥

विम्ब मैं प्रवाल मैं न जपा पुष्पमाल मैं न ईंगुर गुलाल मैं न किञ्चित निहारे मैं। दाड़िम प्रसून मैं न मून धरा सून मैं न इन्द्र की वधून मैं न गुञ्जा अंधियारे मैं॥ है कुसुम रङ्ग मैं न कुंकुम पतङ्ग मैं न जावक मजीठ कञ्ज पुञ्ज वारि डारे मैं। राधे जू

तिहारी पद-लालिमा की समता को हेरि हारे कविता न आवत विचारे मैं ॥ २ ॥

गुरुदत्त शुक्ल ।

[सं० १८६३]

सवैया-

देह धरे जग मैं दृग डोरि सों ऐसी चलै गति नेह नई को ।
तोसों जिमीं असमान को अन्तरु कैसे मिलै दिल प्रेम मई को ॥
एरे ! चकोर मैं टेरे कहौं अपसोसु बड़ो यहु दोसु दई को ।
और तो चन्द के सोगु नहीं इक तेरे वियोग सों रोगु छई को ॥

तैसे चकोरिये संग बिना अँग अंग भये विरहागि सों ताते ।
होती न जो दृग डोरो बँधी न चलौ गुरुदत्त हिये न सिराते ॥
या विधि रच्छक पच्छ न होतो तौ पच्छ सबै जरिकै वरि जाते ।
जो न ससी स्रवतो सुधाधार तो कैसे चकोर अँगार चबाते ॥२॥

यह बन्धु अहै बड़वानल को नथमोती यों ज्वाल से जागत है ।
यह सीस के फूलहु ताप करै तन नागर मो विष पागत है ॥
मृदु हार हिये कसकै गुरुदत्त कठोर उरोजन लागत है ।
यह दाग कपोलन में सितलान को दाग करेजे मो दागत है ॥३॥

सुख बालपना को भयो सपनो, सुख मात पिता को न साथ चरो ।
जग जीवन हू को न स्वाद मिलो, जुवती उनमाद सो बादि हरो ॥

पन तीजे मैं तू अपने मन मैं गुरुदत्त कहा धौं गरूर करो।
अब टेक यहै करिये सुक जू भजौ राम अजौं पिजरा म परो ॥४॥

जान्यो न स्वाद कछू उनमाद को वाद विवाद बड़ा गुन थोरा।
पायो नहीं सुख सौरभ को गुरुदत्त कहै क्यों जनावत जोरा॥
कोंचत चोंच सौं नोचत हौ कहा नोचत प्रान न होत निहोरा।
छांड़ि कै फूलनि कौं फलकौं रस ढूंढ़त काठ मैं तू कठ फोरा ॥५॥

नेकु हँसी सो भई नखतावलि मालती कुन्द जुही न पै दाया।
वैन कहे ते भई वै सुधागति सो भई हन्सन की शुचि काया॥
जोति से भूपण पोत से लागत यौं 'गुरुदत्त' करी विधि माया।
चन्द भयो मुख को प्रतिविम्ब उदै भई चाँदनी अङ्ग की छाया ॥६॥

जगदीशलाल।

[सं० १८६५]

सवैया—

सावन कौं लखिकै सुकुमार वढ़ी वरसावन तैं हिय हूकैं।
त्यौं जगदीश झरै झरना झनकारत झींगुर झार उलूकैं॥
कारी घटा घन की गरजैं इत चातक कीर कदम्बन कूकैं।
ये अलि मोहि जरावन कौं दइमारे मयूर घरी नहिं चूकैं ॥१॥

रीति गई रजपूतन की अरु, प्रीत गई निज नारिन केरी।
त्यौं जगदीश प्रतीत गई श्रुति, नीति गई नृप के तन टेरी॥

बीत गई सिगरे जग की मति, जीति गई हरि के जन हेरी।
या कलिकाल कृपा करि लाल जू, राखिये लाज सबै विधि मेरी॥

बात कभू न करैं हंस राज की, जात मैं जाय कैं नैक न बोलैं।
त्यों जगदीश हजारन की हिय, बात सुनै अपनी नहि खोलैं॥
प्रीत परोसिन तैं न तजैं, पर वस्तु सदा विष के सम तोलैं।
झूठ कभू न कहैं मुखतैं, हरि नाम जपैं नर होत अमोलैं॥३॥

सन्तन को करिये नित संग, असन्तन के पथ पाँउ न दीजै।
त्यौं जगदीश भजैं हरि कौं बलि, औरन को उपचार न कीजै॥
बाद बिवाद करै न वृथा, सिगरे कुल लोगन को जस लीजै।
राखिये जीवन पै जु दया, बिन हिंसक होय सदा जग जीजै॥४॥

कवित्त—

सरद सरोज सी सुखात दिन द्वैक ही तैं, हेरि हेरि हिय में हिमन्त सरसावैरी। कहे जगदीश बात शिशिर सुहात नाहिं, सुमति वसन्त सुखकन्त बिसरावैरी॥ ग्रीषम विषम ताप तन कौं तपाय तिय, बोलत न वैन मन मैन मुरझावैरी। पावस पयान पिय सुनिकै सयानि आज, अम्बुज अनूप दृग बून्द बरसावैरी॥५॥

विजयनाथ।

[सं० १८७०]

कवित्त—

आज छत छत्रिन को भानसो असत भयो, आज पात पंछिन को पारिजात परिगो। आज मान सिन्धु फूटो मञ्जन मरालन को,

आज गुन गाढ़ को गिरीस गञ्ज गिरिगो ॥ आज पन्थ पन को पताका टूटो विजैनाथ, आज होस हरष हजारन को हरिगो। हाय हाय जग के अभाग तखतेस राज, आज कलिकाल को कन्हैया कूच करिगो ॥ १ ॥

जीवनलाल ।

[सं० १८७०]

कवित्त—

निरखि निरखि नैन सुनि सुनि गान वैन, हरखि हरखि मैन सैन रचिवो करैं। फिर फिर फेरि लै लै इत उत आतु जातु, उठि उठि वैठि वैठि अति पचिवो करैं॥ सुनहु सुजान प्यारी आँखें अनियारी वारी, रोके हू कहाँ लगि यो तापै वचिवो करैं। उमँगि अनङ्ग राग रङ्ग मधु भृङ्ग भयो, तेरे सङ्ग सङ्ग मन मेरो नचिवो करैं॥ १ ॥

वदन मयङ्क पै चकोर ह्वै रहत नित, पङ्कज नयन देखि भौंर लौं भयो फिरै। अधर सुधारस के चाखिवें कौ सुमन सु, पूतरी ह्वै नैन निके तारन तयो फिरै॥ अङ्ग अङ्ग गहन अनंग को सुभट होत, वानि गान सुनि ठगे मृग लौं ठयो फिरै। तेरे रूप भूप आगैं पिय को अनूप मन, धरि वहु रूप वहुरूप सो भयो फिरै ॥२॥

विधि कृत चन्द्र तै अनन्दित चकोर जन्तु, तव यश चन्द्र तैं कविन्द्र सुख पातु हैं। वह निशि राजै यह दिवा निशि सम राजै,

वह सकलङ्क अकलङ्क यहाँ भातु है ॥ वाहि लखै कञ्ज पुञ्ज मुकुलित होत याहि, लखि कवि वृन्द मुख कञ्ज विकसातु है। ह्रास वृद्धि वाकैं यह बढ़ै नित भूपराम, वाके अरि राह यातैं अरि राह आतु है ॥ ३ ॥

———

सूर्य्यमल्ल।

[स० १८७२—१९२५]

दुर्मिला छन्द-

दुव सेन उदग्गन खग्ग समग्गन अग्ग तुरग्गन बग्ग लई।
मचि रङ्ग उतङ्गन दङ्ग मतङ्गन सज्जि रनङ्गन जङ्ग जई ॥
लगि कम्प लजाकन भीरु भजाकन वाक कजाकन हाक बढ़ी।
जिम मेह ससम्बर यों लगि अम्बर खण्ड अडम्बर खेह चढ़ी ॥१॥

फहरक्कि दिशान दिशान बड़े बहरक्कि निसान उड़ैं बिथरैं।
रसना अहिनायक की निकसैं कि पराझल होलिय की प्रसरैं ॥

उछलते हुए अग्र भाग वाली दोनों ही सेना के सैनिकों ने कृपाण उठा कर घोड़े आगे बढ़ाये, रण विजयी और सजित उन्नत हाथियों ने युद्ध मचाया। वीरों की ललकार सुन कर, लज्जित होने वाले तथा भागनेवाले कायर काँपने लगे। सजल बादलों के सदृश आकाश में धूलि छा गयी ॥१॥ दिश-दिशाओं में उड़ती हुई बड़ी और छोटी ध्वजायें ऐसी प्रतीत होने लगी मानो शेषनाग की जिह्वा निकल रही है अथवा होली की झल (ज्वाला) निकल रही है। हाथियों के घण्टों की ठनकार और भेरी (दुन्दुभि) की भनकार होने लगी। कवच-कड़ियें बजने लगी। घोड़ों के लोह बख्तरों की झनकार से, बाणों के

गज घण्ट ठनङ्किय भेरि भनङ्किय रङ्ग रनङ्किय कोच करी ।
पखरान भनङ्किय वान सनङ्किय चाप तनङ्किय ताप परी ॥२॥

धमचक्क रचक्कन लग्गि लचक्कन कोल मचक्कन तोल कढ्यो ।
पखरालन भार खुभी खुरतालन व्याल कपालन साल वढ्यो ॥
डगमग्गि सिलोच्चय शृङ्ग डुले भगमग्गि कृपालन अग्गि भरी ।
वजि खल्ल तवल्लन हल्ल उभल्लन भूम्मि हमल्लन घुम्मि भरी ॥३॥

मचि घोरन दोर दुओर समीरन जोर उमीरन घोर जम्यों ।
अभमल्ल उछाहन हड्ड हठी कछवाहन गाहन चाह कम्यों ॥
सुत्र जैत इतैं भट देव सही करि स्वामि मही हित सङ्ग सज्यो ।
दुहुं ओर कुलाहक तोप दगी लगि भद्द वलाहक नद्द लज्यो ॥४॥

सनसनाने से और धनुष-टङ्कार से भयङ्करता छा गई ॥२॥ पृथ्वी-धारक वाराह, युद्ध टक्करों से झुकने लगा। कितने बोझ से वाराह मचक सकता है, भूमि लचकने से इसका अन्दाजा लग गया। पाखर-युक्त घोड़ों के भार और उनकी चुभने वाली खुरतालों से शेषनाग के कपाल में दर्द बढ़ गया। पर्वत हिल कर उनके शिखर डुलने लगे और जगमगाती तलवारों से आगि भड़ने लगी। उस हल्ले के बढ़ाव में तबलों के समान खालें (चमड़ी) बजने लगी और हमलों से पृथ्वी घूमने लगी ॥३॥ घोड़ों की दौड़ से दोनों ओर की पवन चलकर सरदारों का भयङ्कर बल दृढ़ हुआ। उस समय हठी हाडा अभयसिंह कछवाहों को मारने की चाह से चला। उधर जैतसिंह का पुत्र देवसिंह अपने स्वामी (बुधसिंह) की भूमि के लिये सुसज्जित हुआ। दोनों ओर की तोपों की आवाज से भाद्रपद का मेघ भी लज्जित हो गया ॥४॥ उधर से प्रबल उत्साही कछवाहों ने तुरन्त घोड़ों की लगामें उठाई। साथ ही तहलका मचाने वाला सालमसिंह

उततैं कछवाहन उग्र उछाहन वेग सु वाहन बग्ग लई ।
बनि बुंदिय बालम जङ्ग सु जालम सङ्गहि सालम दौर दई ॥
परि रिद्धि कृपालन चण्ड चुहानन गिद्धि उड़ानन गूद गहैं ।
गन धीर गुमानन पीर प्रमानन वीर कमानन तीर वहैं ॥५॥

बढ़ि बुत्थिन बुत्थि छई वसुधा लगि लुत्थिन लुत्थि परैं प्रजरैं ।
घट सेल घमाकन रङ्ग रमाकन हड्ड सु हाकन हौंस हरैं ॥
लखि खग्ग उदग्गन मग्ग लगी जुरि अच्छरि जग्ग प्रजापति ज्यों ।
गल बांह करैं करि वीर वरैं गमनैं गन गैवर की गति ज्यों ॥६॥

छननङ्कि उड़ानन बान छये ठननङ्कि गयन्दन घण्ट घुरे ।
फननङ्कि दुवाहन टोप फटे रननङ्कि सिपाहन कोच रुरे ॥
डुलि भैरुव डैरुव तैं डहकी डरि डाकिनि साकिनि चौंकि चली ।
नचि नारद नच्च विशारद व्हाँ बिबि वारद भाँति मिले खुरली ॥७॥

बुन्दी का पति बन कर दौड़ा । चहुवानों के खड्गों की झड़ी से गीध उड़ते हुए ही मस्तक-मज्जा लेने लगे ॥५॥ मांस की बोटियों से पृथ्वी छा गई । शव पर शव गिरने और जलने लगे । युद्ध-खिलाड़ियों के शरीर पर बरछों की चोट के घमाकों से और हाडाओं की हाक से होश भूले जाते थे । तलवारों की नोक ऊँची होते ही अप्सरायें मिल कर चली आने लगीं, मानो प्रजापति के यज्ञ में जाती हो । वे गलबहियाँ डार के वीरों को बरने लगीं और मस्त हाथी के समान घूमती हुई चलने लगीं ॥६॥ छनंक शब्द से उड़ने वाले बाण छा गये, ठनङ्क शब्द करके हाथियों के घण्टे बजे, फनङ्क शब्द करके वीरों के टोप फटे और रनङ्क शब्द करके सिपाहियों के कवच बजे । भैरव के डमरू से चमकी हुई डाकिनियाँ और शाकिनियाँ भय भ्रांत इधर

कट्टि खग्ग कलाप रु दन्त कढैं कटि कुम्भ मउत्तिन मेह फुरैं।
तरिता तनु तेग तहाँ तरकैं घन गज्ज मतङ्गज गज्ज घुरैं॥
बक पन्तिय दन्तिय दन्त बढ़े चहु ओर अचानक अभ्भ चढ़े।
कटिकैं उड़ि चातक घण्ट कढे प्रति पक्खर भेक अनेक पढ़े॥८॥

यह आनि सुमाकर मैं बरखा बढ़ि माधव मास अमा विथुरो।
लखि नायक सूरन हूरन हूरन अङ्गन अङ्ग अनङ्ग फुरो॥
इत सूरन चन्दन अस्र चढे रसकैं उत हूरन राग रचे।
उमहे इत सिन्धुन की ध्वनि तैं समुहे उत सिंजित सद्द मचे॥९॥

इत डाकिनी दूति कजाकिनी ओ इत साकिनी नाकिनी या ससखी।
सब हूर सुहागिनी इक्क अभागिनी बुद्ध विभागिनी सो बिलखी॥

उधर चौंक चलीं। नृत्य-निपुण नारद नाचने लगा और शस्त्र विद्या-विशारद वीर दो मेघों के समान मिल गये॥७॥ हाथियों की गर्दनें कट कर दन्त निकलने लगे और कुम्भस्थल कट कर मोतियों की वर्षा होने लगी। चमकती हुई बिजली की भाँति तलवारें चल रही हैं और मेघ गर्जना के समान हाथी गर्जना कर रहे हैं। बगुलों की पंक्ति के समान हाथियों के दन्त कट कर अचानक चारों ओर आकाश में उछल रहे हैं और हाथियों के घण्टे कट कर पपीहों के समान निकल रहे हैं। पाखर रूप मेंढक बोल रहे हैं॥८॥ इस प्रकार पुष्पों की खान ऐसी वसन्त ऋतु में वैशाख मास की अमावस्या के दिन वर्षा बढ़ी, जहाँ वीर पतियों को देख कर अप्सराओं के अङ्ग में काम जागृत हुआ। इधर वीरों के चन्दन रूपी रुधिर चढ़ा और उधर प्रीति पूर्वक अप्सरायें गाने लगीं। वीर गण सिन्धवी राग की ध्वनि पर उत्साहित हुए और उधर सन्मुख अप्सराओं के भूषणों के शब्द होने लगे॥९॥ युद्ध करानेवाली डाकिनी और शाकिनी सखियों सहित तथा अप्सराओं ने यात्रा की। वे सब

द्रुत हार सिंगार बिगारि दये धुपि अञ्जन रोदन वारि बह्यो ।
कर कङ्कन फोरि मरोरि कलापहिं छोरि अलापहिं ताप सह्यो ॥१०॥

यह आइय डाकिनी की सिखई धव हीन भई अब छोह छई ।
अति आरति अच्छरि की लखि कैं हसि डाकिनी डिंडिम डक्क दई ॥
सहनाइय सुंडिन की करिकैं गन बावन गावन में गहकैं ।
कटि मुण्ड रु रुण्ड फिरैं इतकों चउसट्ठिन झुण्ड नचैं चहकैं ॥११॥

दोहा—

बिन माथै बाढे दलाँ , पोढे करज उतार ।
तिण सूराँ रो नाम ले , भड़ बाँधै तरवार ॥ १२ ॥
इला न देणी आपरी , हालरियाँ हुलराय ।
पूत सिखावै पालणै , मरण बड़ाई माय ॥ १३ ॥
भाभी देवर एकलो , सोचीजे न लगार ।
मूझ भरौसो नाह रो , फौजाँ ढाहण हार ॥ १४ ॥

हूरें सुहागिनें हुईं केवल एक वही दुहागिन और निर्भाग्य रही जो बुधसिंह के बँट में आई थी। वह रोने और बिलखने लगी। उस अभागिन ने शीघ्र ही अपने हार शृङ्गार बिगाड़ दिये। अश्रु-जल से नेत्रों का कज्जल धुप गया। हाथों के कङ्कणों को फोड़ कर, कटि मेखला (कणगती) को मरोड़ कर और गाना छोड़ कर दुःख सहा ॥१०॥ यह अप्सरा डाकिनी के सिखाने से बुधसिंह को वरने यहाँ आई थी सो पति-हीन होकर अत्यन्त क्रोधित हुई। इस अप्सरा की अत्यन्त पीड़ा देख कर डाकिनी ने हँस कर अपनी डिमडिमी बजाई और उधर हाथियों की कटी हुई सूंडों की सहनाइयें बना कर बावन भैरव उन्मत्त होकर बजाने लगे। रुण्ड और मुण्ड कट कर गिरने लगे और इधर चौसठ योगिनियों का झुण्ड नाचने और गाने लगा ॥११॥

अमल कचोलाँ ऊझलै , होदाँ केसर रङ्ग।
पीव जके घर जावताँ , सीस न लीजे सङ्ग॥ १५॥
भड़ सोही पहली पड़ै , चील विलग्गां चैंक।
नैन वचावै नाह रा , आप कलेजो फैंक॥ १६॥
दिन २ भोलो दीसतो , सदा गरीवी सूत।
काकी कूंजर काटतां , जाणवियो जेठूत॥ १७॥
रण खेती रजपूतरी , वीर न भूलै वाल।
वारह वरसां वापरो , लहै वैर लङ्काल॥ १८॥

छप्पय–

पत्र मण्डि प्रच्छन्न, दूत मण्डू पठवायो।
सुनि चौंडा सजि सेन, अद्ध रजनी गढ़ आयो॥
करि हल्ला चढ़ि कोट, धस्यो वीराधिवीर वल।
कुंवर जोध भजि कढ़िग, मारि लीन्हों नृप रनमल॥
मुकलहिं पट्ट गद्दी अरपि, रहि तटस्थ जग जश लियउ।
हिन्दवान! वत्त धारहु हृदय, करहु जेम चौंडा कियउ॥१६॥

चौंडाजी की विमाता राठौडा ने पत्र लिख कर गुप्त रूप से उनके पास मांडू में भेजा। पत्र बांचते ही चौंडाजी कुछ सेना लेकर चित्तौड़ आये और अर्द्ध रात्रि के समय वड़ी वीरता के साथ दुर्ग में प्रवेश किया। और राठौड़ महाराजा रनमलजी को वहाँ हीं परलोकवासी किया। उस समय कुंवर जोधाजी भाग कर निकल गये। पश्चात् चौंडाजी ने अपने सौतेले छोटे भाई मोकलजी को राजगद्दी पर वैठाया और स्वयं तटस्थ रह कर निरुपम यश के भागी हुये। हे आर्य जनों! इस पवित्र चरित्र पर ध्यान लाओ और चौंडाजी के सहश सत्कार्यों में प्रवृत्ति करो।

कवित्त—

फौजन तैं ओजन तैं जोजन कढ़त दूर, अर्चिन के ओजन तैं जोपै रहै रुकि-रुकि। पाउस के अभ्र से अखण्ड धूम मण्डल मैं, तापन तैं तापन तपायौ लज लुकि-लुकि॥ बिस्मय प्रलै बिनु त्रिलोक ओक ओक आनै, चौंक चन्द्रचूड़हु समाधि जात चुकि-चुकि। काल के से टोला गुरु गोला गिरिबे तें मही, ब्याल-फन-दोला चढ़ि झोला लेत झुकि-झुकि॥ १२॥

पजनेस।

[सं० १८७२]

सवैया—

पावरी आनि भिखारी मनो पजनेस लला नित देत है फेरी।
जी की कठेठी अठेठी गँवारिनि नेकं नही कबहूं हँसि हेरी॥
आँधरे रूप के जोम तें बावरी जानै नहीं पर पीर घनेरी।
नन्द कुमारहिं देखि दुखी छतियाँ कसकी न कसाइनि तेरी॥१॥

मीनन की गति हीन भई छवि कञ्जन खञ्जन की सुख दैन।
अनूप सोहात मनोज विसाल सुतीक्षण धार है बान से पैन॥
धरे अति सान कहा खरसान भनै पजनेस मृगा सम तैन।
लखे नँद नन्द परै नहीं चैन सु राजत भावती के अस नैन॥२॥

ओजन=प्रताप। अर्चिन=अग्नि। अभ्र=मेघ। तापन=सूर्य। ओक=घर। चन्द्रचूड़=शिव। गुरु गोला=बड़े गोले। दोला=हिंडोला। पावरी=द्वारपर।

कवित्त--

चन्द्रिका मैं मुकुट मुकुट मैं सु चन्द्रिका है चन्द्रिका मुकुट मिलि चन्द्रिका अजोर की। नगन मैं अङ्ग अङ्ग नग नग अङ्गन मैं कवि पजनेस लखै नजर करोर की॥ तनु विज्जु दाम मध्य विज्जु तनु मध्य तनु विज्जु दाम मिलि देह दुति दुहुं ओर की। तीन लोक झाँकी ऐसी दूसरी न झाँकी जैसी झाँकी हम झाँकी बाँकी जुगुल किशोर की॥ ३॥

छहरै छबीली छटा छूटि छिति मण्डल पै उमग उजेरी महा ओज उजवक सी। कवि पजनेस कञ्ज मंजुल-मुखी के गात उपमाधिकात कल कुन्दन तवक सी॥ फैली दीप दीप दीप दीपति दिपति जाकी दीपमालिका की रही दीपति दवक सी। परत न ताब लखि मुख माहताव जब निकसी सिताब आफताव के भभक सी॥ ४॥

वैठी विधु वदनी कृसोदरी दरीची बीच खींचि पी निसङ्क परजङ्क पर लै गयो। भनै पजनेस भुज लपटि लला के लगी झपटि सुनीवी कर जङ्घन समै गयो॥ भोरो भोरो गोरो मुख सोहै रति भीत पीत रति क्रम रक्त रति अन्त सो रजै गयो। मानो पोखराज तें पिरोजा भयो मानिक भो मानिक भये पै नील मनि नग ह्वै गयो॥ ५॥

चन्द्रिका=चाँदनी। छहरै=फैलती है। छबीली=सुन्दर। छिति=पृथ्वी। ओज=जोश। माहताव=चन्द्र। सिताव=किरण। आफताव=सूर्य। कृसौदरी=पतली कमरवाली। दरीची=झरोखा, खिड़की।

कवि पजनेस पुन्य परम विचित्र भूमि केतिक फनूस झाड़ जोतैं जरैं ज्वाला सी। करत प्रदोष व्रत पूजन किसोरी गोरी डेरे कर आरती उजेरे शील साला सी॥ मुकुर नवीन तैं निहारी बर बिन्द नीकी भिदुरावलीश दीपदान बहु बाला सी। मानो व्योम गङ्गा की गँभीर धीर धारा धसी दीपक चढ़ावै देव कन्या दीप माला सी॥ ६॥

जाने जात गोरे गोरे करतल नूरन पै कीरत गुहत बार छोर न अलेखे तें। पजन प्रभंज नाजनी के नूर नाजुक पै नाज भीजें नेक चित्र लाज कृत लेखे तें॥ उपमा अभूत भूत भीत रन भारती के तातें यह विसद बिसेखिए बिसेखे तें। चाहैं कछु कहन कहे तें पै न कहि आवै ताब तम हीन दृष्टि परत न देखे तें॥ ७॥

किरनि सी कढ़ि आई अङ्गना उघारे गात कवि पजनेस छैल छिति पै छहरिगो। उझकि झपाक मुख फेर प्यारे रुख ओर हेरि हेरि हरखि हिमंचल पै अरिगो॥ आधो मुख मलित अबीर ते सुकेश हाय नख रेख चिह्नित उरोजन पै झरिगो। मानो अर्ध चन्द्र को प्रकाश अर्ध चन्द्रिका पै है कै चन्द्रचूर चन्द्रचूड पै बगरिगो॥ ८॥

कवि पजनेस मन्मथ के श्रवन पर सम्बुल झुलत भाल वृष-भान नन्दनी। सूतु दै सुधासो विधि बुध बिधु अङ्क वङ्क दस गुनी दीपति प्रकासी जगवंदनी॥ स्वेद कन मध्य दीठि रक्षक रिठौना तापै छूटी लट डोलत कला जनु कलिन्दनी। मुख अर-

व्योम=आकाश। नूर=ज्योति। चन्द्रचूड=शङ्कर।

बिन्द तें समेटि मकरन्द वुन्द मानो निज नन्दन चुनावत मलिन्दनी ॥ ६ ॥

सम्पुट सरोज कैधों सोभा के सरोवर में लसत सिंगार के निसान अधिकारी के। कवि पजनेस लोल चित्त वित्त चोरिबे को चोर इकठौर नारि ग्रीव वरकारी के॥ मन्दिर मनोज के कलित कुम्भ कञ्चन के कलित ललित कैधों श्रीफल विहारी के। उरज उठौना चक्रवाकन के छौना कैधों मदन खिलौना ये सलौना प्रान प्यारी के ॥ १० ॥

सेवकराम।

[सं० १८७२—१६३८]

सवैया—

उनये घन देखि रहैं उनये डुनये से लताद्रुम फूलो करैं।
सुनि सेवक मत्त मयूरन के सुर दादुर ऊ अनुकूलो करैं॥
तरपैं दरपैं दवि दामिनि दीह यही मन माँह कवूलो करैं।
मनभावती के सँग मैनमई घन स्याम सवै निसि झूलो करैं ॥१॥

वंशी बजावत आनि कढ़े वनिता बनी देखन को अनुरागीं।
हौंहूं अभाग भरी डगरी मगरी गिरे चौंकि सवै डरि भागीं॥
लागै कलङ्क न सेवक सों इन्हैं फौरिहौं सौति सुभाव लै जागीं।
हाय हमारी जरै अँखियाँ विष वान ह्वै मोहन के उर लागीं ॥२॥

मुख भावन भूषित जाको विलोकि न चन्द की ओर चितैबो भलो।
अधरामृत पान कै सेवक जाके पियूष सों कौन हितैबो भलो॥
जिहिं लायकै अङ्क निसङ्क दई न परीन को रङ्क मितैबो भलो।
धिक ताकै बिना पलकौ तजिकै न वियोग में वैस वितैबो भलो॥

जब ते सुनि देखे बसे मन में, तब ते फिरि भेंट भई नई री।
जल हीन से मीन दुखी अँखिया, तलफैं दिन रैनि विथा भई री॥
विधि सों अब सोच नहीं सपने में, गह्यो कर मैं हूं उठी दई री।
मन मानी भई नहिं सेवक सों तजि नैनन नींद किते गई री॥४॥

हमको कत कैसे कहाँ न लखैं नित ऐसी विथा जिय जागती हैं।
न गनाय गुनाय मनाय जनाय बनाय वही रँग रागती हैं॥
कसकैं न सकैं कढ़ि कैसे हु सेवक सोहन-सी दिल दागती है।
परतीन की सैन सुधा सों भरी बरछीन ते सौगुनी लागती हैं॥५॥

ऋषिजू।

[सं० १८७२]

सवैया--

दरवाजे न जैये लजैये सबै बरिआई कलङ्क लगाइबो है।
सुनि कै क्यहि भाँति सो धीर धरौं मृदु बाँसुरी तान को गाइबो है॥
इहि बाँस की कौन कहै ऋषिजू सु पतिब्रत पूरो छुड़ाइबो है।
सुनु री सजनी ब्रज को बसिबो तरवार की धार को धाइबो है॥

बेनी प्रवीण ।

[स० १८७४]

सवैया—

काल्हि हीं गूंथि बबा कि सौं मैं गजमोतिन की पहिरी अति आला ।
आई कहाँ ते इहाँ पुखराग की सङ्ग येई जमुना तट बाला ॥
न्हात उतारी मैं बेनी प्रबीन हँसै सुनि बैननि नैन बिसाला ।
जानति न अँग की बदली तब ते बदली २ कहै माला ॥१॥

दीन्हो उन्हे अरुझाय सखीन औ हा हा ह हा कै हँसै भरि मोद मैं ।
देखत ठाढ़ी तहाँ ललिता लला नाहक ही लरे बाल बिनोद मैं ॥
साखी पै बेनी प्रबीन कहै अबै भाजि दुरे हैं कहूं उतकोद मैं ।
को हैं हमारे हमैं क्यों कहैं कछु यों सिसकै परी सासु की गोद मैं ॥

भोर ही न्यौती गई ती तुम्हैं वह गोकुल गाँउ की ग्वालिनि गोरी ।
आधिक राति लौं बेनी प्रबीन कहा ढिग राखि कियो बरजोरी ॥
आवै हँसी हमैं देखत लालन भाल मैं दीन्हीं महावर घोरी ।
येते बड़े ब्रज मण्डल मैं न मिली कहूं माँगे हू रञ्चक रोरी ॥३॥

जान्यो न मैं ललिता अलि ताहि जो सोवत माहिं गई करि हाँसी ।
लाये हिये नख नाहरि के सम मेरी तऊ नहिं नींद बिनासी ॥
लै गई अम्बरु बेनी प्रबीन वोढ़ाय लटी दुपटी ढँग मासी ।
तोरी तनी तन छोरि बिभूषण भूलि गई गल देन को फाँसी ॥४॥

भृकुटी धनु बेसर मोर मनौ मनि मानिक इन्द्र-बधू जितु है।
दुति दामिनि कोर हरी बन बेलि घटा घन घूंघुट सों हितु है॥
उमगो रस बेनी प्रवीन रसाल भयो अब चातक सो चितु है।
हित रावरे नील किसोर लला अबला भई पावस की रितु है॥५॥

मालिनि ह्वै हरवा गुहि देत चुरी पहिरावै बने चुरहेरी।
नाइनि ह्वै निरवारत केस हमेस करै बनि योगिनि फेरी॥
बेनी प्रवीन बनाइ बिरी बरईनि बने रहै राधिका केरी।
नन्दकिसोर सदा वृषभानु की पौरि पै ठाढ़े बिके बने चेरी॥६॥

आनि कढ़ो यहि गैल भटू महि मण्डल में अलबेलो न औरु है।
देखत रीझि रही सिगरी मुख माधुरी को जु कछु नहिं छोरु है॥
बेनी प्रवीन बड़े बड़े लोचन बाँकी चितौनि चलाकी को जोरु है।
साँची कहै ब्रज की जुवती यहु नन्द लड़ैतो बडो चित चोरु हैं॥

कारीगरी मैं करी बहुतै न जरी गई तौ कछु बैन भलाई।
जानत हौ तुम मोहन लाल सोनारि अनारिनि क्यों ठहराई॥
रीझि कै बेनी प्रवीन भई मन खीझि कै बात गई न कन्हाई।
लाइये हीरा अमोलक लाल अबै पहुंची तुरतै बनि आई॥८॥

बहु दौस बिदेस बिताइ पिया घर आवन की घरी आली भई।
वह देस कलेस वियोग कथा सब भाषी यथा बन माली भई॥
हँसि कै निसि बेनी प्रवीन कहै जब केलि कला की उताली भई।
तब या दिसि पूरुब पूरुव की लखि बैरनि सौति सी लाली भई॥

मोर की पाखैं किरीट बन्यो कछु लाखैं लगाई न नन्द घनेरे।
गोविन्द ये तो गरूर करौ गुन कौन से बेनी प्रवीन अनेरे॥
पीत पिछौरी कसे कटि में घटि जानत औरनि आपुन नेरे।
चाकर चेरे परे चरवा के हैं, ऐसे हमारे बबा के घनेरे॥१०॥

कैसे कहावत बेनी प्रवीन बबा कि सों हा हा हमैं मति छूने।
आय परैगी कहूं ननदी वह नाहक नाय धरैं दिन दूने॥
याज हौं आई सनेह सों रावरे बावरे बोलत लाज बिहूने।
जाहु चले भले मोहन लाल जू पैठि पराये परे घर सूने॥११॥

घनसार पटीर मिलै मिलै नीर चहै तन लावै न लावै चहै।
न बुझै बिरहागिनि झार झरीहू चहै घन लावै न लावै चहै॥
हम टेर सुनावतीं बेनी प्रवीन चहै मन लावै न लावै चहै।
अब आवै विदेश ते पीतम गेह चहै धन लावै न लावै चहै॥१२॥

कवित्त--

उमड़ि मदन ज्यों सकोचहिं दबाये देत परत सकोच की समाज तब सोच है। बढ़ि कै सकोच त्योंही मदन दबाये देत परत मदन के सहाय सब पोच है॥ देखत अकेली अलबेली के तबेली परी बिहँसि प्रवीन बेनी गह्यो कर जो चहै॥ केलि के महल माँझ उर कुरुखेत बाके करणारजुन मदन भयो सकोच है॥१३॥

व्याली सी विषम बेनी आलिन बनाई जिन तिन सों प्रवीन बेनी लीजै कछु करु है। और मेरी एनी मुख चन्द की कहानी सुनौ दिन ही मैं कीन्हे रहै चाँदनी पसरु है॥ कैसे कढ़ि सकैं

भृकुटी धनु बेसर मोर मनौ मनि मानिक इन्द्र-बधू जितु है ।
दुति दामिनि कोर हरी बन बेलि अटा घन घूंघुट सों हितु है ॥
उमगो रस बेनी प्रवीन रसाल भयो अब चातक सो चितु है ।
हित रावरे नौल किसोर लला अबला भई पावस की रितु है ॥५॥

मालिनि ह्वै हरवा गुहि देत चुरी पहिरावै बने चुरहेरी ।
नाइनि ह्वै निरवारत केस हमेस करै बनि योगिनि फेरी ॥
बेनी प्रवीन बनाइ बिरी बरईनि बने रहै राधिका केरी ।
नन्दकिसोर सदा वृषभानु की पौरि पै ठाढ़े बिके बने चेरी ॥६॥

आनि कढ़ो यहि गैल भटू महि मण्डल में अलबेलो न औरु है ।
देखत रीझि रही सिगरी मुख माधुरी को जु कछु नहिं छोरु है ॥
बेनी प्रवीन बड़े बड़े लोचन बाँकी चितौनि चलाकी को जोरु है ।
साँची कहै ब्रज की जुवती यहु नन्द लड़ैतो बडो चित चोरु हैं ॥

कारीगरी मैं करी बहुतै न जरी गई तौ कछु बैन भलाई ।
जानत हो तुम मोहन लाल सोनारि अनारिनि क्यों ठहराई ॥
रीझि कै बेनी प्रवीन भई मन खीझि कै बात गई न कन्हाई ।
लाइये हीरा अमोलक लाल अबै पहुंची तुरतै बनि आई ॥८॥

बहु दौस बिदेस बिताइ पिया घर आवन की घरी आली भई ।
वह देस कलेस वियोग कथा सब भाषी यथा बन माली भई ॥
हँसि कै निसि बेनी प्रवीन कहै जब केलि कला की उताली भई ।
तब या दिसि पूरुब पूरुब की लखि बैरनि सौति सी लाली भई ॥

मोर की पाखैं किरीट बन्यो कछु लाखैं लगाई न नन्द धनेरे ।
गोविन्द ये तो गरूर करौ गुन कौन से वेनी प्रवीन अनेरे ॥
पीत पिछौरी कसे कटि में घटि जानत औरनि आपुन नेरे ।
चाकर चेरे परे चरवा के हैं, ऐसे हमारे बवा के घनेरे ॥१०॥

कैसे कहावत वेनी प्रवीन बवा कि सौं हा हा हमैं मति छूने ।
आय परैगी कहूं ननदी वह नाहक नाय धरैं दिन दूनें ॥
धाज हौं आई सनेह सों रावरे बावरे बोलत लाज बिहूने ।
जाहु चले भले मोहन लाल जू पैठि पराये परे घर सूने ॥११॥

घनसार पटीर मिलै मिलै नीर चहै तन लावै न लावै चहै ।
न बुझै विरहागिनि झार झरीहू चहै घन लावै न लावै चहै ॥
हम टेर सुनावतीं वेनी प्रवीन चहै मन लावै न लावै चहै ।
अब आवै विदेश ते पीतम गेह चहै धन लावै न लावै चहै ॥१२॥

कवित्त—

उमड़ि मदन ज्यों सकोचहिं दबाये देत परत सकोच की समाज तब सोच है। बढ़ि कै सकोच त्योंहीं मदन दबाये देत परत मदन के सहाय सब पोच है॥ देखत अकेली अलबेली के तवेली परी बिहँसि प्रवीन वेनी गह्यो कर जो चहै॥ केलि के महल माँझ उर कुरुखेत वाके करणारजुन मदन भयो सकोच है॥१३॥

ब्याली सी विषम वेनी आलिन बनाई जिन तिन सों प्रवीन वेनी लीजै कछु करु है। और मेरी एनी मुख चन्द की कहानी सुनौ दिन ही में कीन्हे रहै चाँदनी पसरु है॥ कैसे कढ़ि सकैं

बढ़ि कोठरी की पौरि आगे लिखि दीन्हो करम विरञ्चि याही घरु है। तुम बन बागन बिहार करौ मेरी बीर हमैं उहाँ मोरन चकोरन को डरु है॥ १४॥

सोभा पाई कुञ्ज भौन जहाँ जहाँ कीन्हो गौन सरस सुगन्ध पौन पाये मधुवनि है। वीथिन बिथोरे मुकताल मराल पाये आलिन दुसाल साल पाये अनगनि है॥ रैनि पाई चाँदनी फटक सी चटक रुख सुख पाये प्रीतम प्रवीन बेनी धनि है। बैन पाये सारिका पढ़न लागी कारिका सी आई अभिसारिका की चारु चिन्तामनि है॥ १५॥

तीरथ नहान मेरे घर के गये हैं सब तेरे आइबे को हमैं काहू सों न कहने। गाढ़ो परो ठाढ़ो ढिग देहैं ना बटोही तोहीं लोग निरमोही ह्याँ परैगी बात सहने॥ साजिये रसोई ह्याँ बिराजिये प्रवीन बेनी लीजिये न माँगत कछू जो तुम्हैं चहने। द्वारे राम साला है पिछारे बनमाला है हवेली परी आला है अकेली मोहिं रहने॥ १६॥

जोग की न कहियो वियोग की न कहियो औ भोग की न कहियो न सोग सर साइयो। हित की न कहियो अहित की न कहियो औ इतको न कहियो न चित की जताइयो। बूझै जो प्रवीन बेनी रसिक रसाल लाल बालन को हाल वा विहाल हू न गाइयो। ऊधो मन भावन को सहज सुभावन को सावन सोहावन को आवन सुनाइयो॥ १७॥

मुकताल=मोती। वीथिन=गलियें। बिथोरे=बिखरे।

गरजि घुमण्डिले सकल महि-मण्डिले तू दण्ड विरहीन को उमण्डि अब पेंठैगो। दादुर पपीहा दीह दारुन देखाइ दुख मोरन को सोर तन तोर कर पैठैगो ॥ चपला कृपान वुन्द बान से प्रवीन वेनी सीतल समीर प्रान अधिक अमेठैगो। जारी हौं वसन्त की लेथारी मारी ग्रीषम की पावस कलङ्क तेरे सीस चढ़ि वैठैगो ॥ १८ ॥

गजराज।

[स० १८७४]

सवैया—

सूने अवास में पाइकै बालम वाल विनोद के वृन्द बढ़ावै।
छन्द कवित्त पढ़ै बहुतै गजराज भनै सुर पञ्चम गावै॥
कञ्ज विलोकति कोरन सों मुसकाति महा छवि छाक छकावै।
है निरसङ्क भरो चहै अङ्क मैं वालम वङ्क पै अङ्क न आवै॥१॥

दीनदरवेश।

[सं० १८७५]

कुण्डलिया—

गड़े नगारे कूच के, छिनभर छाना नाहिं।
को आज को काल को, पाव पलक के माहिं॥

पाव पलक के माहिं, समझ ले मनवा मेरा।
धरा रहै धन माल, होयगा जङ्गल डेरा॥
कहै दीनदरवेश, गर्व मत करे गुमारे।
छिनभर छाना नाहिं, कूच के गड़े नगारे॥ १॥
बन्दा बाजी झूठ है, मत साची कर मान।
कहाँ बीरबल गङ्ग है, कहाँ अकबर खान॥
कहाँ अकबर खान, बड़ों की रहै बड़ाई।
फतेसिंह महाराज, देख उठ चल गये भाई॥
कहै दीनदरवेश, समर पैदाहि करन्दा।
मत साची कर मान, झूठ है बाजी बन्दा॥ २॥
रुपैया तोहि रङ्ग है, जगत भगत बश कीन।
सच्चा तुझ को तो कहूं, जो बश कर ले दीन॥
जो बश कर ले दीन, दाम कछु दिन पलटावै।
धन्य ताहि अवधूत, झपट में कबू न आवै॥
कहै दीनदरवेश, दीन क्यों नहीं तपैया।
जगत भगत बश कीन, रङ्ग है तोहि रुपैया॥ ३॥
बन्दा बहुत न फूलिये, खुदा खिंवैगा नाहिं।
जोर जुलुम ना कीजिये, मर्त्यलोक के माहिं॥
मर्त्यलोक के माहिं, तुजरबो तुर्त दिखावै।
जेता करै गुमान, सोहि नर खत्ता खावे॥
कहै दीनदरवेश, भूल मत गाफिल गन्दा।
खुदा खमन्दा नाहिं, बहुत मत फूले बन्दा॥ ४॥

दाता नहिं शूरा नहीं, नहीं धरम नहिं नेम।
सो आया संसार में, जान जनावर जेम॥
जान जनावर जेम, करी नहिं सुकृत करणी।
जाण्या नहिं जगदीश, भार मारी वह धरणी॥
कहै दीनदरवेश, जीवता अवगत जाता।
नहीं धरम नहिं नेम, नहीं शूरा नहिं दाता॥ ५॥

रामसहायदास।

[सं० १८८७]

दोहा—

सीस झरोखे डारि कै, झाँकी घूंघुट टारि।
कैंवर सी कस कै हिये, बाँकी चितवनि नारि॥ १॥
बेलि कमान प्रसून सर, गहि कमनैत बसन्त।
मारि मारि विरहीन के, प्रान करै री अन्त॥ २॥
मनरञ्जन तव नाम को, कहत निरञ्जन लोग।
जदपि अधर अञ्जन लगे, तदपि न नींदन जोग॥ ३॥
सखि सँग जाति हुती सुती, भटभेरो भो जानि।
सतरौहीं भौंहन करी, बतरौहीं अँखियानि॥ ४॥
भौंह उचै अँखिया नचै, चाहि कुचै सकुचाय।
दरपन मैं मुख लखि खरी, दरप भरी मुसकाय॥ ५॥

ल्याई लाल निहारिये, यह सुकुमारि विभाति।
उचके कुचके भार ते, लचकि लचकि कटि जाति ॥६॥
सतरोहैं मुख रुख किये, कहे रुखोहैं वैन।
सैन जगे के नैन ये, सने सनेह दुरै न ॥ ७ ॥
खञ्जन कञ्जन सरि लहैं, वलि अलि को न बखानि।
एनी की अँखियान ते, ये नीकी अँखियानि ॥ ८ ॥
गुलुफनि लौं ज्यों त्यों गयो, करि करि साहस जोर।
फिरि न फिरुो मुरवानि चपि, चित अति खात मरोर ॥ ९ ॥
पेखि चन्द्रचूड़हि अली, रही भली विधि सेइ।
खिन खिन खोंटति नखन छद, नखनहुं सूखन देइ ॥ १० ॥

रणधीरसिंह।

[सं० १८७८]

कवित्त—

गहे काज करति छिनक दौरि हेरै द्वार, छिनक उठाय घर जाती जल लैन को। चकचक ताकती इतै उतै बिलोकि काहू, मुरि मुसुकाय ललचाय जोरि नैन को॥ मैन मदमाती अठिलाती छाती ऊँची करि, खोलति छिपाती चली जाती देती सैन को। लेजुरी गिराती फेरि फेरि फिरि आती, लेन पथ मैं फिराती त्यों बढ़ाती जाती चैन को ॥ १ ॥

विजय।

[सं० १८७८]

सवैया--

लखि कै दृग मीन छिपे वन में मन में अरविन्द सकाने रहैं।
बड़ी वेनी भुजङ्गिनि देखि फखैं करि केहरि चाहि लजाने रहैं॥
उकसौंहे उरोजन देखि विजै मन्न देवन के ललचाने रहैं।
मुखचन्द की पेखि प्रभा दिन में दिल में चकवा चकवाने रहैं॥१॥

पूरणमल।

[सं० १८७८]

सवैया--

शीतल वायु वहै निसि वासर शीतल अम्बर भूमि लता है।
सीत के भीत सवे जग कम्पित कीनो कठोर हिमन्त हला है॥
ऐसे में पीव पयान जो ठानत दीनी दई तुमैं कौन सला है।
मैं कर जोरि करौं हौं निहोरि दिना दश और रहौ तो भला है॥

कवित्त--

ललित लवङ्ग लवलीन मलयाचल की, मंजु मृदु मारत मनोज सुखसार है। मौलसिरी मालती सुमाधवी रसाल मौर, भौंरन पै गुञ्जत मलिन्दन को भार है॥ कोकिला कलाप कल कोमल कुलाहल क, पूरण प्रतिच्छ कुहू कुहू किलकार है। वारिका

विहार बाग बीथिन बिनोद बाल, विपिन विलोकिबो वसन्त की बहार है ॥ २ ॥

शिवसिंह सेंगर।

[सं० १८७८]

सवैया-

पियो जब सुधा तब पीवै को कहा है और लियो शिवनाम तब लेइबो कहा रह्यो। जान्यो जिन रूप तब जानै को कहा है और त्याग्यो मन आस तब त्यागिबो कहा रह्यो॥ भनै शिवसिंह तुम मन मैं विचारि देखो पायो ज्ञान धन तब पाइबो कहा रह्यो। भयो शिवभक्त तब ह्वैबे को कहा है और आयो मन हाथ तब आइबो कहा रह्यो ॥ १ ॥

ग्वाल।

[सं० १८७६]

सवैया—

विधि को सिर पञ्चम खण्ड भयो, मुनि नारद नाचे कपी मुख लेते।
शिव भीलिनी के बस होइ भ्रमे, सुरराज के जिह्व भये तन जेते॥
उद्धव रावरे नेक सखा सम, देखें है धोक ग्वालिनि देते।
एक ही भोग के आसन पै भख मारत जोग के आसन केते ॥१॥

यह सावन आयो सुहावन है, तरसावन मानसों भागि रहौ।
जल धारन सों थल पूरि रहे, सुर मींड़े मलारन रागि रहौ॥
कवि ग्वाल दया करि देखौ इतै, रिस दागन तें जिन दागि रहौ।
अनुरागि रहौ निसि जागि रहौ, रस पागि रहौ गल लागि रहौ॥२॥

फाग की फैल करी मिलि ग्वालिन, छैल बिसाल रसालन ऊपर।
लालकी लाल मुठी को गुलाल, पस्रो उड़ि बाल के बालन ऊपर॥
त्यों कवि ग्वाल कहै उपमा, सुखमा रहि छाय सो ख्यालन ऊपर।
पङ्ख पसारि सुरङ्ग सुआ उड्यो, डोलै तमाल की डारन ऊपर॥

फाग मैं राग की लाग दिली खिसि आँख मिलामिलि प्रानन वारैं।
बाल के ओछे उरोजन ऊपर लाल दई पिचकारी की धारैं॥
ते उचटी कवि ग्वाल तवै तिहि की सुखमा उपमा जु उचारैं।
मानों उतङ्ग उमङ्ग भरे सु छुटे इक रङ्ग फुहारे हजारैं॥४॥

कवित्त--

और विष जेते तेते प्राण के हरैया होत वंशी के कढ़े की कभू जात न लहर है। सुनते ही एक सङ्ग रोम रोम रचि जाय जीय जारि डारैं पारैं वेकली कहर है॥ "ग्वाल" कवि लाल! तो सौं जोरि कर पूछत हौं साँच कहि दीज्यो जो पै मो पर महर है। बाँस मैं कि वेध मैं कि होठ मैं कि फूंक मैं कि आँगुरी की दाव मैं कि धुनि मैं जहर है॥ ५॥

जिसका जितेक साल भर में खरच उसे चाहिये तो दूना पै सवाया तो कमा रहै। हूर सा परी सा नूर नाजनी सहूर वारी

हाजिर हमेश होय दिल तो थमा रहै ॥ ग्वाल कवि साहब कमाल इल्म सोबत हो याद में गुसैयाँ की हमेश बिरमा रहै। खाने की हमा रहै न काहू की तमा रहै जो गाँठ में जमा रहै तो खातिर-जमा रहै ॥ ६ ॥

दिया है खुदा ने खूब खुशी करो ग्वाल कवि खाना पीना लेना देना यहाँ रह जाना है। केतेक उमीर उमराव बादशाह भये कर गये कूच फिर लग्यो न ठिकाना है ॥ हिलो मिलो प्यारे जान न रन्दगी की राह चलो जिन्दगी जरासी तामें दिल बह-लाना है। आवे परवाना बने एक ना वहाना याते नेकी कर जाना फेर आना है न जाना है ॥ ७ ॥

आशा करि आये हैं मलिन्द मतवारे मंजु उपवन वासी सुख पुञ्ज सरसावेंगे। गुञ्जत गुमान तजि वाको सनमान कर कर अपमान तो जरूर मुरझावेंगे ॥ ग्वाल कवि कहै तो मैं मृदुल सुगन्ध दोहु याही को सुजस यह जग में बढ़ावेंगे। एरे ए गुलाब गुल गालिब गुलों में थार काँटे तन लाये हो तो फेर नहिं आवेंगे ॥

द्वारे पर झूठ पछवारे पर झूठ झुक्यो दोहुन किनारे पर झूठ उलहत है। अङ्गन में झूठ औ दलान माहिं झूठ बसै कोठे माहिं झूठ छत ऊपर वहत है ॥ ग्वाल कवि कहत सलाहन में झूठ झूठ सैनन में बोलन में झूठ ही कहत है। हाथी भर झूठ जाके उर में बसत सदा ऊँठ भर झूठ जाके मूठ में रहत है ॥ ९ ॥

चाहिये जरूर इनसानियत मानस कौ नौबत बजे पै फेरि भेर बजनो कहा। जात औ अजात कहा हिन्दु औ मुसलमान जासों

करी प्रीति तासों फेरि भजनो कहा ॥ ग्वाल कवि जाके लिये सीस पै बुराई लई लाज हू गमाई तासों फेरि लजनो कहा । केतो काहू रङ्ग में न रँगियो सुजान प्यारे रंगे तो रँगेई रहो फेरि तजनो कहा ॥ १० ॥

शशि मुख सूखि गई तब तैं बिकल भई बालम बिदेश हु को चलिवो जबै कयो । दूध दही श्रीफल रुपैयो धरि थारि माहिं माता सुत भाल जबै रोल कै टीको दयो ॥ ताँदुर बिसर गई बधु तें कह्यो ले आव तब तैं पसीनो छूट्यो मन तन कों तयो । ताँदुर ले आई तिया आँगन में ठाढ़ी रही करके पसारबे में भात हाथ में भयो ॥ ११ ॥

सोंह खाय साँची सो सुनाय हो सरोज नैनी कौन सी सखी तें सीख सीखी ऐसी चाही है । केलि करबे को चह्यो जब मैं मयङ्क मुखी तब तकी बङ्क अस लागी गलबाँही है ॥ ग्वाल कवि बाँहि को गहत बाँहि खैंच लेति बाँहि को छुड़ावै अरु डारै गर-बाँही है । हाँ ही है कि नाहीं है कि नाहीं माहीं हाँ ही है कि हाँही ही में नाहीं है ये कैसी तेरी हाँही है ॥ १२ ॥

चन्द बदनी के इद नीके सीतला के दाग आनन पै रहे जाग जेब सरसत है । काम जौहरी के मोती फैल परे कोऊ कहै जोबन को फूल्यो बाग फूल बिलसत है ॥ ग्वाल कवि कहै कोऊ कोऊ यों बतावत हैं मेरे मन माहिं कछु और दरसत है । चीकने कचन सों फिसलि फूट्यो कंध मनं भये टूक टूक ताके कनिके लसत है ॥ १२ ॥

बाग बन डब्बे फब्बे फवनि अनेकन सों सरसों प्रसून पुख-राज दरसायो है। मोतिये सु मोतिये है सेवती सरस हीरे ठौर ठौर बौर भौंर पन्नन को लायो है॥ ग्वाल कवि कहत कुसुम मंजु मानिक है सौरभ पसार पुंज पानिप सुहायो है। शोभा सिरताज ब्रजराज महाराज आजु रितुराज जौहरी जवाहिर लै आयो है ॥ १३ ॥

सरसों के खेत की बिछायत बसन्ती बनी तामें खड़ी चांदनी बसन्ती रतिकंत की। सोने के पलङ्ग पर बसन बसंती साजे सोन जुही मालैं हालैं हिय हुलसंत की॥ ग्वाल कवि प्यारो पुखराजन को प्यालो पूरी प्यावत प्रिया को करै बात विलसंत की। राग में बसंत बाग बाग में बसंत फूल्यो साग में बसंत क्या बहार है बसन्त की ॥ १४ ॥

ग्रीषम की गजब धुकी है धूप धाम धाम गरमी झुकी है जाम जाम अति तापिनी। भीजे खस-बिजन झुलैं हू न सुखात स्वेद गात न सुहात बात दावा सी डरापिनी॥ ग्वाल कवि कहै कोरे कुंभन तें कूपन तें लै लै जलधार बार बार मुख थापिनी। जब पियो तब पियो अब पियो फेर अब पीवत हू पीवत बुझै न प्यास पापिनी ॥ १५ ॥

सिन्धु तैं कढ़ी है किधौं बाड़वा अनल अब दावा औ जठर मिली कीन्ही ताप भरकी। कीधौं महारुद्र जू के तीसरे विलोचन की खुलन लगी है कहूं कोर तेज तरकी॥ ग्वाल

बिजन=व्यजन, पङ्खा।

कवि कहत सुदर्शन को म्यान कीधौं उघस्यो कहूं ते टूटि सीवन है सरकी। हाय विरहीन की कि लाय विरहागिन की देत है जराय जैठी धूप दुपहर की॥ १६॥

वरफ सिलान की विछायत बनाय करि सेज संदली पै कन्द जल पाटियतु है। गालिब गुलाब जल जाल के फुहारे छूटैं खूब खस खाने पै गुलाब छांटियतु हैं॥ ग्वाल कवि सुन्दर सुराही फेर सोरा माहिं ओरा को बनाय रस प्यास डाटियतु है। हिम-कर आननी हिवाला सी हिये तैं लाय ग्रीषम की ज्वाला के कसाला काटियतु है॥ १७॥

जेठ को न त्रास जाके पास ये विलास होय खस के मवास पै गुलाब उछस्यो करै। जुही के मुरव्वे डव्वे चांदी के वरक भरे पेडे पाग केवरे मैं वरफ पस्यो करैं॥ ग्वाल कवि चन्दन चहल मैं कपूर चूर चन्दन अतर तर वसन खस्यो करैं। कंज मुखी कंज नैनी कंज के विछौनन पै कंजन की पङ्खी कर-कंज तैं कस्यो करैं॥ १८॥

भान की तपन वन उपवन जारै लागी तैसी तेज लूयें लोल लागें ज्वाल जाला सी। ताल नदीं नालन के नीर तैं रन्धन लागे तातें लाल सुनहु उपाय एक आला सी॥ ग्वाल कवि प्यारी की छवीली छाती छाँह छिप्यौ चन्दन सी हांसी देह चन्दन रसाला सी। पाला सी विलोकन हिवाला सी लपट जाकी लीजै चलि कंठ मेलि मालती की माला सी॥ १६॥

लाय=लपट।

झूम झूम चलत चहूंधा घन घूम घूम लूम लूम भूप छ्वै छ्वै धूम से दिखाते हैं। तूल कैसे पहल पहल पर उठे आवैं महल महल पर से हिये सुहात हैं। ग्वाल कवि भनत परम तम सम केते छम छम छम डारे बूंदैं दिन रात हैं। गरज गये हैं एक गरजन लागे देखो गरजत आवै एक गरजत जात हैं॥ २०॥

प्यार सों पहिर पिसवाज पौन पुरबाई ओढ़नी सुरङ्ग सुर पाय चमकाई है। जग जोति जाहिर जवाहिर सों दामिनी है अमित अलापन की गरज सुनाई है॥ ग्वाल कवि कहै धाम धाम लसि नाचैं रांचैं चित्त बित्त लेत मोद नाचत महाई है। बञ्जनी विराग हू की अति परपञ्चनी है कञ्चनी सी आज मेघ माला बनि आई है॥

ल्याई श्यामसुन्दरै छबीली व्रजबाम छलि ठाढ़ी जहाँ पौर वृषभान की किसोरी है। बोल उठि नारी किलकारी गारी तारी दै कै आयो यह आयो अरी छाछ निज चोरी है॥ ग्वाल कवि कोऊ गुलचावै औ रचावै रङ्ग अङ्गन चलावै औ नचावै डारि रोरी है। केती कहैं गोरी बरजोरी को न मानो बुरो होहो लाल होरी लाल होरी लाल होरी है॥ २२॥

रघुराजसिंह।

[सं० १८८०—१९२६]

सवैया—

माधुरी माधव की यह मूरति देखत ही दृग देखे घनेरी।
तीनि हू लोक की जो रुचिराई सुहाई अहै तिनही के घनेरी॥

सोभा सचीपति औ रति के पति की कछु आई न मेरे मनै री।
हेरि मैं हास्रो हिय उपमा छवि हू छवि पाई विराजित नैरी ॥१॥

व्रज में जेहि के मुरली धुनि को सुनि कै यह कौतुक होत भयो।
परिवार बिसारि हियै हरि धारि सु गोपिका छाड़ि अवास दयो ॥
कर नूपुर कङ्कन पायन में कटि किंकिण को करि हारु लयो।
नँद नन्दन के ढिग को यों गई सरितागण सागर को ज्यों गयो ॥

मुख देखत ही मनमोहन को अति सोहन जोहन लागी जवै।
नहिं नैन हिलै नहिं बैन चलै नहिं धाय मिलै नहिं शीश नवै ॥
व्रजबालन हाल लख्यो अस लाल उताल कियो उर माल तवै।
रसरास विलास में हास हुलास सों पूरण कै दिय आश सवै ॥३॥

महाराजा मानसिंह 'द्विजदेव'।

[सं० १८८०—१९३०]

सवैया—

न भयो कछु रोग को योग दिखात न भूत लग्यो न वलाय लगी।
न कोऊ कहूं टोनो डिठोनो कियो नहिं काहू की कीन्हीं उपाय लगी
द्विजदेव जू नाहक ही सबके हिये औषधि मूल की चाय लगी।
सखि बीस बिसे निसि याही कहूं वन बौरे वसन्त की वायु लगी ॥

यह भीगि गई धौं किते अँगिया छतियां धौं किते यहि रङ्ग रँगी।
उवटे हू न छूटत दाग हँहाँ कब की हौं छुड़ावति ठाढ़ी ठगी ॥

सुनि बात इती मुख नाइनि के अति सूधी सयान पने सों पगी ।
मुख मोरि उतै मुसक्यानि तिया इत नाइनि हूं मुसक्यान लगी ॥२॥

आजु सुभाय नहीं गई बाग बिलोकि प्रसून की पाँति रही पगि ।
ताही समै तँह आये गोपाल तिन्हैं लखि औरो गयो हियरो ठगि ॥
पै 'द्विजदेव' न जानि पस्यो धौं कहा त्यहि काल परे अँसुवा जगि ।
तू जो कहै सखि लोनो स्वरूप सो मो अँखियान में लोनी गई लगि ॥

ऐसई चाहि चवाई चहूं कहैं एक की बात हजार बखानी ।
द्यौस छ-सातक सों चरचा ब्रजमण्डल मैं अति ही अधिकानी ॥
सो न कछू समुझै द्विजदेव रही धौं कहा हिय में अब ठानी ।
बादि ही मोंहि दहै दिन राति सखी यह जारिवे जोग जवानी ॥४॥

कौन को प्राण हरैं हम यों द्दग कानन लागि मतो चहैं बूझन ।
त्यों कछु आपुस ही में उरोज कसाकसी कै कै चहैं बढ़ि बूझन ॥
ऐसे दुराज दुहूं वय के सब ही को लग्यो अब चौचन्द सूझन ।
लूटन लागी प्रभा कढ़ि के बढ़ि केश छवान सों लागे उरूझन ॥

मद हीने गयन्द बसे बन में छबि नाहक छीनी मरालन सों ।
हुते सारस जे वे सुभाव सुहावन भाजि बचे कहूं तालन सों ॥
इतने में न भूलै कोऊ द्विजदेव पुकारि कहौं ब्रज बालन सों ।
अबहीं नहिं है हैं खराब किते घर मोहन की इन चालन सों ॥६॥

बिकसेऊ प्रसूनन के रस के निस आँसू सदा ढरकेई रहैं ।
'द्विजदेव' लखे मन सन्तन हूं के अनन्त कुढ़े करकेई रहैं ॥

'द्विजदेव जू शारद चन्द्रिका जानि चकोर चहूं परकेई रहैं।
मुसुकानि विलोकत वा तिय की मुकुता लर में लरकेई रहैं ॥७॥

है रजनी रज मे रुचि केती कहा रुचि रोचन रङ्ग रसाल मे।
त्यों करहाट मे केसर मे 'द्विजदेव' न है द्युति दामिनि जाल मे॥
चम्पक मे रुचि रञ्जक ऊ नहिं केतिक है रुचि केतकि माल में।
ती तन को तनको लखिये तौ कहा द्युति कुन्दन चन्द मशाल में॥

चित चाहि अबूझ कहै कितने छवि छीनी गयन्दन की टटकी।
कवि केते कहैं निज बुद्धि उदय यहिं सीखी मरालन की मटकी॥
द्विजदेव जू ऐसे कुतर्कन में सब की मति यौंही फिरै भटकी।
वह मन्द चलै किन भोरी भटू पग लाखन की अँखिया अटकी ॥६॥

कवित्त-

चहकि चकोर उठे शोर करि भौंर उठे बोलि ठौर ठौर उठे कोकिल सुहावने। खिलि उठीं एकै बार कलिका अपार हिलि हिलि उठै मारुत सुगन्ध सरसावने॥ पलकन लागी अनुरागी इन नैननि पै पलटि गये धौं कबै तरु मन भावने। उमँगि अनन्द अँसुवान लौं चहूंधा लागे फूलि फूलि सुमन मरन्द बरसावने॥१०॥

पाखुरी लै साजी सेज सेवती की बेलिन चमेलिनहूं सरस वितान छवि छाई हैं। फैलो चहूं गहब गुलाबन को गन्ध धूरि धुंधुरित सुरभि समीर सुखदाई है॥ चारों ओर कोकिल चकोर मोर शोरन सों ओर छिति छोरन अनन्द अधिकाई है। आज

ऋतुराज के समागम के काज हेत धाम धाम बेलिन के आनन्द बधाई है ॥ ११ ॥

विक्रम।

[सं० १८८०]

दोहा—

जय जय जय असरन सरन , हरन सकल भव पीर।
जन विक्रम मङ्गल करन , जय जय श्री रघुवीर ॥ १ ॥
जो उरझैं सुरझैं सखी , लखी नवल अवरेच।
सुरझाये सुरझै नहीं , परपञ्ची के पेच ॥ २ ॥

सोमनाथ (द्वितीय)।

[सं० १८८०]

कवित्त—

सोने-सो शरीर तापै आसमानी रङ्ग चीर औरै ओप कीनी रवि रतन तरौना द्वै। सोमनाथ कहै इन्दिरा-सी जगमगै बाल गाढ़े कुच ठाढ़े मानो ईश जुग भौना द्वै ॥ कारी घुंघुरारी मन्द पवन झकोर लागे फरहरै अलक कपोलन के कौना द्वै। सो छबि अमन्द गनों पान सुधाबिन्दु करि इन्दु पर खेलत फनिन्दन के छौना द्वै ॥ १ ॥

प्रताप साहि।

[सं० १८८२]

सवैया--

उमड़ी नभ मण्डल तै सुमड़ी घुमड़ी घन घोर घटा घहरैं।
जल धारन धूंधुरि कै धुरवा मुरवा गिरि शृङ्गन पै कहरैं॥
लहरैं लतिका वन वागन मैं चहुं ओरन विज्जु छटा छहरैं।
मन भावन सावन की गति देखि वियोगिनि के हियरा हहरैं॥१॥

विहँसै दुति दामिनि सी दरसैं तन-जोति जुन्हाई उई सी परै।
लखि पायन की अरुनाई अनूप ललाई जपाकी जुई सी परै॥
निकरै सी निकाई निहारे नई रति रूप लुनाई तुई सी परै।
सुकुमारता मंजु मनोहरता मुख चारुता चारु चुई सी परै॥२॥

कवित्त—

लपटि रही है लता तरुन तमालन सों विटप विसालन प्रभाव दरसत है। शीतल सुखद छाँह, हीतल हरनहार, सीतल समीरन सनेह सरसत है॥ कहै परताप कल कुसुम कदम्बन ते झरि झरि अवनि पराग परसत है। उमँगि प्रमोद चहुं कोद ते अधिक आजु प्यारे वन वीथिन विनोद वरसत है॥ ३॥

चञ्चला चपल चारु चमकत चारों ओर, झूमि झूमि धुरवा धरनि परसत हैं। सीतल समीर लगै दुखद वियोगिनि, सँयोगिनि

धुरवा=वादल। गिरि=पहाड़। जुन्हाई=चाँदनी। चारुता=खूबसूरती, सौन्दर्य। विटप=पेड़। कदंवन=समूह। अवनि=पृथ्वी। वीथिन=गलियें।

समाज सुख साज सरसत हैं॥ कहै परताप अति निबिड़ अँधि-यारी महँ मारग चलत नहीं सम दरसत है। झुमड़ि झलानि चहुं कोद ते उमड़ि आजु धाराधर धारन अपार बरसत हैं॥ ४॥

झिल्ली गन बेदरद बोलत हैं चारो ओर, धावत निशङ्क नभ मेघन की मूकैं ये। दादुर पपीहा दसौ दिसन पुकारै बहै अनल समाज तैसी झंझा नभ झूकें ये॥ कहै परताप धीर धोरवा धुरारै आरै, बान सम बूंदैं ते चलावत न चूकैं ये। जारै अङ्ग देती विरहागिनि की लूकैं हिये ह्वै कै उपजावती मयूरन की कूकैं ये॥ ५॥

प्रात सुनि प्रीतम को गवन विदेसवै बचन बाल श्रवन मैं सूल से सलत हैं। अतर गुलाब पान पानी की कहानी कहा अतन के तन मैं तरङ्ग उछलत हैं॥ राखै मन ही मैं भेद भाखै ना सखीजन सों आंखिन ते आप आप आँसू यों चलत हैं। धोखे वारि कन के अँचै कै अनुमानि फेरि मेरे जान मीन मुकु-तान उगिलत है॥ ६॥

कोकरत मन्त्रन के अमित उपायन सु चायन बढ़ाय भूरि भायन भरत है। कहै परताप जीति खग मृग खञ्जन औ कञ्जन चकोरन की आभा निदरत हैं॥ रस बरसाय अनुराग सरसाय करि प्यारे मन मोहन को हीतल हरत है। भृकुटी कमान तानि मैन बिरदैती भरे नैन कमनैती आजु कौन पैं करत है॥ ७॥

अतन=कामदेव। सरसाय=बढ़ाकर। बिरदैती=बिरदावै। कमनैती=तीरन्दाजी।

कूजत विहङ्ग अङ्ग आनन्द उमङ्गन सों कुसुमित विटप विलास घन वन में। वहत समीर, सीरी कलित कलिन्दी कूल सुरभित सुख उपजावे तन मन में॥ कहै परताप अति सुन्दर सोहाई कुञ्ज देखन सिधारी आजु अलिन के गन मैं। सुमन समाज मिलि मंजु मञ्जरीन आलि गुञ्जत हैं मधुर मलिन्द मधुवन मैं॥ ८॥

सहज सुभाय ऊभी अङ्गन अनोखी वाल अङ्गनि अनूप ओप आभा अधिकाई की। लसनि हसनि लोने लङ्क की लचनि तैसी उझकनि झुकनि चितौनी चञ्चलाई की॥ कहै परताप गोरे गात की गोराई मिलि झांई सी झलमलात आभा अँगनाई की। वदन मयङ्क की मरीचिन अमन्द पेखि मन्द सी लगत आजु शरद जोन्हाई की॥ ९॥

करि जल केलि गल वाँह मेलि आलिन की कनक लता सी चपलाती जोति ज्वै गई। कहै परताप झुकि झांकनि झलाझल की ताखनि तिरीछे तीछे नैनन चितै गई॥ भृकुटी मरोरन की कोरनक घन हूं की चाहि चहुं ओरन तें कहर चितै गई। चोरिचित चखनि रङ्गीली रस वोरि वोरि मोरि मुख मटकि मरोरि मन लै गई॥ १०॥

वहत समीर तैसी सीतल सुगन्ध मन्द करत अयोग व्रत योगिन को भङ्ग है। गुञ्जत है मंजु कुञ्ज कुञ्जन मदन्ध मकरन्द

सीरी=शीतल। मलिन्द=भौंरा। आभा=ज्योति। मरीचिन=किरणें। तिरीछे=टेढ़े। तीछे=कठोर।

लै मलिन्द पाप पुहुप प्रसङ्ग है ॥ कहै परताप द्रग देखिये जहाँई तहाँ फैलि रही भूपर रङ्गीली नवरङ्ग है। मान गढ़ ढाहत कृपान कर धारि आजु लैकर वसन्त सङ्ग आवत अनङ्ग है ॥ ११ ॥

चारु चतुरानन चतुर करि लेखनी सों दींन्हों लिखि जैत पत्र जग जस जाल को। सुकृत को वासन सु आसन अनन्त हू को विघन विनासन सदाही सुर पाल को ॥ कहै परताप दीपै दीपति को धाम लसै अति अभिराम मुनि मानस रसाल को। कुंकुम तिलक जुत भ्राजैं छवि छाजै राजै विमल विसाल भाल दसरथ लाल को ॥ १२ ॥

डोरे रतनारे बिच कारे और सारे सेत जिनके निहारे ते कुरङ्ग गन भूले हैं। आनन्द उमाहन सु कैधौं विधु-मण्डल मैं शरद के खञ्जन सुभाय अनुकूले हैं ॥ जनक सुता के मुखचन्द के चकोर कैधौं बरने न जात अति उपमा अतूले हैं। राजै राम लोचत मनोज अति ओज भरे शोभा के सरोवर सरोज जुग फूले है ॥ १३ ॥

तरुन तमाल पर कञ्चन लता है कैधौं कैधौं नील गिरि सुर-आलय प्रचार है। कीधौं नील मनि पै विराजत कनक-रेख कीधौं घन बीच दामिनी की अनुहार है ॥ कैधौं रस-राज को मिलन आयो वीर रस कीधौं नील कञ्ज पर केसरि की धार है।

रतनारे=सूर्ख। सेत=सफेद। कुरङ्ग=मृग। विधु=चन्द्र। सरोवर=तालाव। सरोज=कमल। जुग=दो।

अति अभिराम राम मुनि मन मीत पीत असित के आसन विराजै छविदार है ॥ १४ ॥

सुखमा भली है लघु नलिन दली हैं हरि भाँतिन भली है कै फली हैं सुरतर की। कोमल अमल खल दलन विदूषै सदा भूषै कञ्जकरन मयूषै दिनकर की ॥ कहै परताप कर तलन के पल्लव कै सुन्दर सुवेस लेखनी है पञ्चसर की। नगन जरी है मनि मैन मुदरी है मंजु प्रभाकर पुरी है आँगुरी है रघुवर की ॥

मुनि मन मानस के मंजुल मराल राजै परम विसाल भाल चसत सुरेश के। अङ्कुलित ध्वज चारु चिह्नित सुदेश सदा हरत कलेस एक जीवन महेश के ॥ जनक सुता के कर कञ्जन सों ललित हैं खण्डन कलुष शिरमण्डन है शेष के। मङ्गलकरन दुख दारिद हरन सदा वोजमय चरन सरोज अवधेश के ॥ १६ ॥

गुनसिन्धु ।

[स० १८८२]

कवित्त--

जमुना समीर तीर भरै गई नीर वीर मीन मन मोद मोहिं दपटि दपेटि जात। फैले हैं सुकेस आसपास ते सुवेस लखि विरही भुजङ्ग जानि आनि आनि भेटि जात ॥ भनै गुनसिन्धु

मयूष=किरण। दिनकर=सूर्य। मण्डन=भूषण।

राजै कञ्जन सरोज भरे सहसा समेटि माँझधारे गरगेरि जात ।
जहाँ जहाँ कञ्ज रहैं दिन को प्रकाश भरे मेरो मुखचन्द जानि
सम्पुटी समेटि जात ॥ १ ॥

रामदयाल नेवटिया ।

[सं० १८८२]

छप्पय—

बीत रही सब आयु तदपि, बीती नहिं आशा ।
अजहुं चहूं सुख भोग, रोग भय बड़ा तमाशा ॥
शिथिल हो गइ देह, बात पित कफ ने घेरा ।
श्वेत केश सन्देश, समन का लाया नेरा ॥
शक्ति हीन इन्द्री भई, भक्ति लेश नहिं तनक मन ।
तृष्णा को तज रे अधम, भजत क्यों न राधारमन ॥१॥

सिन्धु होय जल बिन्दु, इन्दु सम होय दिवाकर ।
अनल कमल को फूल, तूल सम होय धराधर ॥
माहुर मधुप समान, भूप भ्राता जिमि जानै ।
शत्रु होय निज दास, लोक आज्ञा सब मानै ॥
पाप होय हर जाप सम, को दुराय नहिं भूपरै ।
आनन्द कन्द ब्रजचन्द्र जब, करुना निधि किरपा करै ॥२॥

दोहा—

दूजो आदर ना करै, वाको कछु न दोष ।
मैं तेरो तू ना सुनै, यह भारी अफसोस ॥ ३ ॥

सोरठा-

मैं कीनौं बहु दोष , एक भरोसे आपके ।
तुम ही करिहौ रोष , तो पापी की कवनि गति ॥ ४ ॥

राजा लक्ष्मणसिंह ।

[सं० १८८३—१९५३]

सवैया--

रसबीच मैं लै चलियो निरविन्ध्य कौ जो मग तेरो निहारती हैं ।
कटि किंकिनि मानो विहङ्गम पाँति तरङ्ग उठे झनकारती हैं ॥
मनरञ्जनि चालि अनोखी चलै अरु भौंर की नाभि उघारती हैं ।
चतरात है मीत सों आदि यही तिय विभ्रम मोहनी डारती हैं ॥१॥

मीत के मन्दिर जाति चली मिलि हैं तहँ केतिक राति में नारी ।
मारग सूझ तिन्हे न परै जब सूचिका भेदि झुकै अँधियारी ॥
कञ्चन रेख कसौटी सी दामिनि तू चमकाइ दिखाइ अगारी ।
कीजियो ना कहुं मेह की घोर मरें अबला अकुलाइ विचारी ॥२॥

दीनदयालगिरि ।

[अनु० सं० १८८३—१९२२]

दोहा—

सुपन रूप संसार है , मोह नींद के माहिं ।
बोध रूप जागे बिना , ताके दुख नहिं जाहिं ॥ १ ॥

कोटि विघन दुख मैं सुजन , तजै न हरि को नाम।
जैसे सती हुतास को , गिनै आपनो धाम ॥ २ ॥
सङ्ग पाय कै बुधन के , छिद्र निहारैं नीच।
बिलहिं बिलोकैं भुजग ज्यों , रङ्गभवन के बीच ॥ ३ ॥
बिन धन बुध अधिकै सजै , नहीं कृपिन धनवान।
सहजहिं सोहत केशरी , नहिं भूषनयुत स्वान ॥ ४ ॥
पराधीन सुख अलप है , अरु मूरख वैराग।
छनक छाप घन की छजै , जैसे थिरता काग ॥ ५ ॥
कहा धरम उपदेश है , मूढ़न केर समीप।
वृथा कथा है बुधन की , यथा अन्ध कर दीप ॥ ६ ॥
बुरे भले पर है न कछु , औसर सबै प्रमान।
चना लगे प्रिय भूख में , नहिं पीछे पकवान ॥ ७ ॥
इक बाहर इक भीतरैं , इक मृदुहू दिसि पूर।
सोहत नर जग त्रिविध ज्यौं , बेर बदाम अँगूर ॥ ८ ॥
केहरि को अभिषेक कब , कीन्यो विप्र समाज।
निज भुज के बल तेज तें , विपिन भयो मृगराज ॥ ९ ॥
मलिन काज मैं खलन की , मति अति होति अनूप।
ज्यौं उलूक तम मैं लखैं , प्रगट चराचर रूप ॥१०॥
नहिं विद्या जस शील गुन , गह्यो न साधु समीप।
जनम गयो योंही वृथा , ज्यौं सूने घर द्वीप ॥११॥
प्रीति सुखद है सुजन की , दिन दिन होय विसेख।
कबहूं मेटे ना मिटै , ज्यौं पाहन की रेख ॥१२॥

पीछे निन्दा जो करैं, अरु मुख पै सनमान।
तजियै ऐसे मीत को, जैसो ठग पकवान॥१३॥
निज सदनहुं नहिं मानहीं, निरधन जन को कोय।
धनी जाय पर घर तऊ, सुर सम पूजा होय॥१४॥
निज नारी तजि मलिन जन, करै अपर तिय राग।
पीवत सरिता नीर ज्यों, घट के जल को काग॥१५॥

कुण्डलिया—

करनी विधि की देखिये, अहो न बरनी जाति।
हरनी के नीके नयन, बसै विपिन दिन राति॥
बसै विपिन दिन राति, बरन बर बरही कीने।
कारी छवि कलकण्ठ, किये फिरि काक अधीने॥
बरनै दीनदयाल, धीर धन तें बिन धरनी।
बल्लभ बीच वियोग, बिलोकहु विधि की करनी॥१६॥

पिय तें बिछरे तोहिरी, बिते बहुत हैं रोज।
पिय पिय पपिहा जड़ रटै, तू न करै पिय खोज॥
तू न करै पिय खोज, किते दुरमति में भूली।
होन लगे सित केस, कौन मद में अब फूली॥
बरनै दीनदयाल, सुमिरि अजहूं तेहि हिय तें।
हैं सब तेरी चूक, नहीं कछु तेरे पिय तें॥१७॥

पति के ढिग जनि जार पै, मार नयन के बान।
जानत सब बिभिचार तब, गुनत न नाह सुजान॥

गुनत न नाह सुजान, कृपामय मानि अपानी।
बाँह गहे की लाज, बिचारत स्वामि सुज्ञानी॥
बरनै दीनदयाल, बैन सुनि एरी मति के।
ह्वै अपजस अघ अन्त, किये छल सनमुख पति के॥१८॥

तेरे ही अनुकूल पिय, किन बिनवै प्रिय बोलि।
घट में खटपट मति करै, घूंघट को पट खोलि॥
घूंघट को पट खोलि, देखि लालन की शोभा।
परम रम्य बुध गम्य, जासु छवि लखि जग लोभा॥
बरनै दीनदयाल, कपट तजि रहु प्रिय नेरे।
बिमुख करावनिहार, तोहि सनमुख बहु तेरे॥१९॥

ए रे मेरे धोबिया, तोसों भाखत टेरि।
ऐसी धोनी धोइ जो, मैलो होय न फेरि॥
मैलो होइ न फेरि, चीर इहि तीर न आवै।
साबुन लाउ विचार, मैल जातें छुटि जावै॥
बरनै दीनदयाल, रङ्ग चढ़ि है चहुं फेरे।
जो तू दै है धोय, भले जल उज्ज्वल ए रे॥२०॥

भौंरा अन्त बसन्त के, हैं गुलाब इहि राग।
फिरि मिलाप अति कठिन है, या बन लगे दवागि॥
या बन लगे दवागि, नहीं यह फूल लहैगो।
ठौरहि ठौर प्रभात, बड़ो दुख तात सहैगो॥
बरनै दीनदयाल, किते दिन फिरिहै दौरा।
पछतैहै कर दये, गये ऋतु पीछे भौंरा॥२१॥

रम्भा झूमत हौ कहा, थोरे ही दिन हेत।
तुम से केते ह्वै गये, अरु ह्वै हैं यहि खेत॥
अरु ह्वै हैं यहि खेत, मूल लघु साखा हीने।
ताहू पै गज रहै, दीठि तुम पै प्रति दीनी॥
बरनै दीनदयाल, हमै लखि होत अचम्भा।
एक जन्म के लागि, कहा झुकि झूमत रम्भा॥२२॥
नाहीं भूलि गुलाब तू, गुनि मधुकर गुञ्जार।
यह बहार दिन चार की, बहुरि कटीली डार॥
बहुरि कटीली डार, होहिगी ग्रीषम आये।
लुवैं चलैंगी सङ्ग, अङ्ग सब जैहैं ताये॥
बरनै दीनदयाल, फूल जौलौं तो पाहीं।
रहे घेरि चहुं फेरि, फेरि अलि ऐहैं नाहीं॥२३॥
आछी भाँति सुधारि कै, खेत किसान बिजोय।
नत पीछे पछतायगो, समै गयो जब खोय॥
समै गयो जब खोय, नहीं फिरि खेती ह्वै है।
लै है हाकिम पोत, कहा तब ताको दैहै॥
बरनै दीनदयाल, चाल तजि तू अब पाछी।
सोउ न सालि सँभालि, विहङ्गन तै विधि आछी॥२४॥
राही सोवत इत किते, चोर लगैं चहुं पास।
तो निज धन के लेन को, गिनैं नींद की स्वाँस॥
गिनैं नींद की स्वाँस, बास बसि तेरे डेरे।
लिये जात बनि मीत, माल ये साँझ सबेरे॥

बरनै दीनदयाल, न चीह्नत है तू ताही।
जाग जाग रे जाग, इतै कित सोवत राही ॥२५॥

मोतीराम।

[सं० १८८५]

कवित्त—

डुबकी लै उभकी पस्रो है केश आनन पै, मानो शशिमण्डल पै श्याम घन घिरिगो। करन सँवारि कै उघारि दीन्हों मोतीराम लोचन लुनाई वैसी पाई है न मिरिगो॥ विप्र को बुलाइ मुसकाइ अधरानन में, देन लगी दच्छिना तनिक चीर चिरिगो। गात की गोराई देखि भूली सुधि पुरोहित की, लगी टकटकी टका गोमती में गिरिगो॥ १॥

नवीन।

[सं० १८८५]

कवित्त—

सूरज के रथ कैसे पथ के चलैया चारु न थके थिराहि थान चौकरी भरत हैं। फाँदत अलगैं जब बाँधत छलङ्ग जिन जीनन ते जाहिर जवाहिर झरत हैं॥ मालवेन्द्र भूप की सवारी के अनूप रूप गौन में दपेटि पौनहू को पकरत है। करि

करि बाजी जिन्हैं लाजै चपलाजी देखि तेरे तेज बाजी पर बाजी सी करत हैं ॥ १ ॥

रामकृष्ण चौबे ।

[सं० १८८५]

कवित्त--

द्रुपदसुता को गहि ल्यायो है सभा के बीच नीच यों दुसासन कुमति मन में भरी। देखे भूप भीषम करन द्रोन मौन गहि खैंचत बसन उर धीर काहु ना धरी ॥ दीनन के नाथ तुम ऋषिका के नाय नाथ अम्बर बढ़ायो है पुकारी जब हे हरी। नन्द के दुलारे रामकृष्ण जगतारे सुनो पीतपटवारे देर मेरी बार क्यों करी ॥ १ ॥

गुलाबसिंह ।

[सं० १८८७—१९५०]

सवैया—

केस निहारि सुकेसि लजाय, भई अहिनी कबरी कबरीसी ।
अङ्ग अगै छवि छीन लगै, सुर नाग सुता सबरी सबरीसी ॥
सो सखियाँ सङ्ग लै घरतैं, निकसी करि कै जबरी जबरीसी ।
देखि भलौ रङ्ग मौन कहो, कस होन लगी अबरी अबरीसी ॥१॥

दाजन दै दुर जीवन को अरु लाजन दै सजनी कल वारे।
साजन दै मम को नव नेम निवाजन दै मन मोहन प्यारे॥
गाजन दै ननदीन गुलाब विराजन दै उर में गुन भारे।
भाजन दै गुरु लोगन को डर बाजन दै अब नेह नगारे॥२॥

अति चाह भरी जमुना जल को, बरजेहु खिझे नित ऐबो करैं।
सखियान की सीख सुनै न कछू, अपनी कहिकै मुसकैबो करैं॥
द्युति दूनी बढ़ाय गुलाब कहै, गुरु लोगन ते न सकैबो करैं।
नव नागरी रूप उजागरी सो, भरि गागरी क्यों ढरकैबो करैं॥३॥

कीच भरी कल क्यारिन मैं, शुक सारिका ते न कछू भय पानौं।
कण्टक बेलि बिसालन सौं, तरु जाल वितान तहाँ उरझानौं॥
सङ्ग न कोऊ सहेली गुलाब, स्व हाथन तें चुनि नेम निभानौं।
हेत महेश के प्रात प्रसून को, आज भटू मोहिं बाग लौं जानौं॥४॥

अति शीतल मन्द सुगन्ध समीर, हरैं विरही जन दागन कौ।
सरसन्त बसन्त गुलाब गुलाब, बढ़ावत है अनुरागन कौ॥
सुख होत महा सबके हिय मैं, लखि नीरजवन्त तड़ागन कौ।
सखि री दुख एक अपार अरे, पतझार करै बन बागन कौ॥५॥

मीन पतङ्ग करैं तन त्याग, तऊ जल दीप न जानत जोऊ।
चातक और चकोर की ओर, चितौत न मेघ निशाकर दोऊ॥
दानव देव कहा नर नाग, गुलाब चराचर है जग सोऊ।
जानत है करिबो सब नेह, निबाहिबो नेह न जानत कोऊ॥६॥

मीन विना जल जी न धरैं, गति खीन करैं अगिनी परदी की।
जानत नाहिं कुरङ्ग चकोरहिं, नाद निशाकर जी गरदी की॥
कञ्ज गुलाव तचैं अति ही, विपदा न हरै रवि हूं सरदी की।
बेदरदी दरदी न लखै गति, जानत है दरदी दरदी की॥७॥

दास।

[सं० १८८७]

सवैया—

नारद साज कहो कवि कौन है कौन सो अङ्ग है दान को दीवू।
कौन जरे मधि मित्रन ते सँग कारन वीर को कौन गनीवू॥
काम की वाम को नाम कहा अरु मापकी दारि मैं कौन खटीवू।
षट प्रश्नन के षट उत्तर येह विना कर नारि उचारति नीवू॥१॥ *

कवित्त—

प्रथम लगाय रज मलय सुगन्ध अङ्ग, ठोक भुजदण्ड सद भूखन अकथ के। रति बहु भाँति तेई दाव बहु भाँति करैं, जोरहि समझ आली प्रेम ही अनथ के॥ तज तरु माली पट कटि ते लपटि दोऊ, हटत न नेक कोऊ तजैया लाज पथ के। भट्ट कवि दास कहै तल्फ के अखारे मांहि, भये गथपत्थ दोऊ मल्ल मनमथ के॥२॥

---

* छः प्रश्नों के उत्तर—वीणा, हाथ, स्त्री, उत्साह, रति और नीवू।

बिड़दासिंह 'माधव' ।

[सं० १८८७]

सवैया-

लखि घात परौसनि सैन दई बस नेह मनोतिहिं गेह गयो ।
धरि माधव अङ्क मयङ्कमुखो कल काम कलानि कलाप ठयो ॥
परिरम्भन चुम्बन हौंन लगे इतने महिं आनि विहान भयो ॥
बुधिहीन विरञ्चि ते का कहिये सपनौं न सँपूरन होन दयो ॥१॥

विपरीत रची सपने रमनी लटलूमि कपोलन ओप बढ़ैं ।
अरविन्द मलिन्दन की अवली कि कलानिधि पै अहि-बाल चढ़ैं ॥
उचकैं कुच माधव लङ्क लचे कल किंकिन कोक-कला सी पढ़ैं ।
तजि वैरिनि नैनन नींद गई पै अजौं हिय तैं न अनन्द कढ़ैं ॥२॥

इहिं चोर मिहीचनी गाज परो बिन काज अजान मैं आय फँसी ।
उर छूइबे के डुरि औरन तैं हरवाय अँध्यारे निकुञ्ज धसी ॥
रँग साँवरो माधव सूझि पस्रो न अचानक ठोकर खाय खसी ।
चुरियाँ भइ चूर भरे अँग धूर तुम्है बिन बात क्यों आत हँसी ॥३॥

प्रीति परे करि प्रीतम की परि प्रेम पयोधि भलैं अवगाह्यौ ।
गारि सही गुरु लोगन की रु वृथा विरहानल मैं तन दाह्यौ ॥
माधव मैं समुझी न मनै यह ह्वैहै चवाइन को चित चाह्यौ ।
रावरे काज तजी कुल लाज भलौ ब्रजराजजू नेह निबाह्यौ ॥४॥

प्रिया संग केलि ठई सपने मिलि माधव चित्त लह्यौ अति चैन ।
उरून उठाय उरोज गहे मन लोल भयो अधरामृत लैन ॥

समेटन अङ्क मयङ्कमुखी सिसकी भरिकै कहै कोमल बैन।
बजी कल पीठि पै पैजनियाँ इतने महिं नींद गई तजि नैन ॥५॥

सपने नव बाल इकन्त विलोकि अचानक जाय भुजान भरी।
मुख चूमि उरोज हिये विच लाय मिलाय उरू चित चाही करी ॥
कहि माधव अङ्ग द्रवें करि सी सफरी जिम अङ्कमैं तैं उछरी।
कर ऐंचि धरौं परयङ्क लै फेरि इतै अखियाँ दुखिया उघरी ॥६॥

कोयल कूक तैं हूक हिये उठि है चपलान तैं प्रान डरैंगे।
देखि कै बुंदन की झरि लोचन सोचन सों अँसुवान झरैंगे ॥
माधव पीव की याद दिवाय पपीहरा चित्त को चेत हरैंगे।
प्रीति छिपी अब क्यों रहिहैं सखि ए बदरा बदनाम करैंगे ॥७॥

कलङ्क धरै पुनि दोष करै निसि मैं विचरै रहि बङ्क हमेस।
उदै लखि मित्र को होत मलीन कमोदिनि को सुखदानि विसेस ॥
रखै रुचि माधव वारुनी की बपुरे विरहीन को देत कलेस।
न जानिये काह विचारि विरञ्चि धस्यो यहि चन्द को नाम दुजेस ॥

लेखराज।

[सं० १८८८—१९४८]

सवैया—

पाग पराग सी सीस इतै उतै है खुटिला प्रभा खोवत भानु की।
बंशी धरे अधरा पै इतै उतै अमृत सी धुनि पूरित गान की ॥

यों लेखराज सु साँवरे गोरी की जोरी निरन्तर अन्तर ध्यान की।
हीय सुकञ्ज थली मैं भलो भली नन्दलला औ लली वृषभान की॥

करि अञ्जन मञ्जन गञ्जन को मृग कञ्जन खञ्जन औझखियाँ।
पल कोट की ओट बचाय कै चोट अगोट सबै सुख मैं रखियाँ॥
लेखराज रहै अभिलाष लखाय कै लाखन पूरे किये सखियाँ।
तेइ हाय विहाय हमैं जरि जाय ये जी को जवाल भई अँखियाँ॥२॥

नील वलाहक मैं अवली बगुली की बलाय सी लावन दे री।
कैलिया कूक सु लूक सी फूंकि है मोरन सोर मचावन दे री॥
धूर धुरारे धरा पै धरे धुरवा के अधीर हि धावन दे री।
लाख उपावन कै मनभावन आइ हैं सावन आवन दे री॥३॥

बारे ते प्रीति बराबरि की करि हौ गगरी भरि आपु उठावै।
आपुहि आइ कै धेनु दुहै हमहीं तहँ आइकै धेनु दुहावै॥
हौं जब बेचन जात दही थही आपुहि आइकै दान चुकावै।
आपु लियो कुबरी जो सनेह सु तो हम क्यों नहिं जोग पढ़ावै॥

कवित्त-

वलि छलि वलि जात अलि वलि वंलि जात, हेरि हिय दलि जात सोति अति खलि जात। मीन दुरि जल जात जलजात पलि जात जलि जात खञ्ज मृग बन को निकलि जात॥ लेखराज ढिंग लाज उर ते न ढलि जात टलि जात जुग जाम जामिनि वदलि जात। नग में कचलि जात डग में बिचलि जात पग में न चलि जात मग में मचलि जात॥ ५॥

अम्ब अकुरान लागे केसू कलियान लागे कोकिला रथान लागे कोक कारिकान के। भरन सुदान लागे राग हू उड़ान लागे अलि मँडरान लागे विविध विधान के॥ लेखराज मान लागे जान कामी प्रान लागे पान पियरान लागे तपन सु भान के। छाती सरसान लागे छत सरसान लागे पञ्चसर सान लागे पञ्च सरसान के॥ ६॥

भावनादासजी।

[सं० १८६०—१६६५]

सवैया--

कवि ते विपरीत विबोधन के जिन तो वनिता अवला बरनी।
अपने बल तें जग माहिं चराचर जन्तुन के मन की हरनी॥
जेहि चञ्चल नैन प्रहारन तें सुर नायक आदि परै धरनी।
हम तो जिय जानत हैं सबला अवला की कहा इतनी करनी॥१॥

त्रिवली सी तरङ्ग चलै तिन में चकई चक उच्च उरोज महारे।
मुख पङ्कज हू सी प्रभा विलसे सफरी जुग लोचन है अनियारे॥
भये भौंर समान सुनाभि मनो मदनालय सीप नितम्ब करारे।
भव वारिधि पार तरो जो चहै तज कामिनी रूप तरङ्गनि प्यारे॥

जल डारत शीतल आग हुवै रवि आतप छत्र तें नाहिं रहाहीं।
करि अङ्कुस तैं बस होत सदा पशु देखत दण्डन क्रोध कराहीं॥

रुज औषध पान किये न रहै विष मन्त्र उचारन तें उतराहीं।
विधि औषध एक को एक रच्यो जग में जन मूढ़ को औषध नाहीं॥

भव भोग सबै छिन भंगुर से इनहीं तैं सदा जनमै रु मरै।
तोहिं तैं केहि कारण तैं मन मूढ़ भ्रमै भव में दुख माँहि परै॥
सुखदायक सीख कहूं तुमको हमरे बच जो बिसवास करै।
सब आस की पासन कौं हरिकैं निज आतम में चित क्यों न धरै॥

कवित्त--

विष्ठा मल मूत्र घर मातु को उदर तामें जठराग्नि ज्वाल तैं जरै हैं दस मासरे। जोबन में कामिनी बिजोग तें बिरह सोग भोग रोग रूप बस फिरत उदास रे॥ नारी प्रान प्यारी हू बुढ़ापे माँहि देत गारी तोहू पै अनारी ना निवारी मोह पासरे। अति ही कलेस को निवास जग वास तामें लेसहू कहाँ है कहो आनँद की आसरे॥ ५॥

पावक की ताप तैं तपायमान लोहन पैं पर्‌यो पय बिन्दु ताको नाम न रहायो है। पङ्कज के पात पर परत प्रमान मानो दिव्य गुन पूर दूरि मुक्ता सो दिखायो है। स्वाति समै सागर में पर्‌यो सुक्ति सम्पुट में मोताहल भयो सो प्रसिद्ध मन भायो है। ताही तैं अधम मध्य उतम असेष गुन प्रापति को हेतु एक सङ्ग ही कहायो है॥ ६॥

रुज=बीमारी। मोताहल=मोती।

गोपालचन्द्र।

[सं० १८९०—१९१७]

सवैया—

बातनि सों समुझावति हौ मोहिं मैं तुमरो गुन जानति राधे।
प्रीति नई गिरिधारन सों भई कुञ्ज में रीति के कारन साधे॥
घूंघट नैन दुरावन चाहति दौरति सों दुरि और है आधे।
नेह न गोयो रहै सखि लाज सों कैसे रहे जल-जाल के बाँधे॥१॥

दोहा—

धनहिं राखिये विपति हित, तिय राखिय धन त्यागि।
तजिये गिरिधरदास दोउ, आतम के हित लागि॥ २॥

लोभ न कबहूं कीजिये, या मैं विपति अपार।
लोभी को विश्वास नहिं, करे कोऊ संसार॥ ३॥

लोभ सरिस अवगुन नही, तप नहिं सत्य समान।
तीरथ नहिं मन शुद्धि सम, विद्या सम धन आन॥ ४॥

सकल वस्तु संग्रह करै, आवै कोउ दिन काम।
वखत परे पर ना मिलै, माटी खरचे दाम॥ ५॥

पुन्य करिय सो नहिं कहिय, पाप करिय परकास।
कहिवे सों दोउ घटत हैं, बरनत गिरिधरदास॥ ६॥

पावक वैरी रोग रिन, सेसहु राखिय नाहिं।
ए थोरेहू बढ़हिं पुनि, महा जतन सों जाहिं॥ ७॥

मिल्यो रहत निज प्राप्ति हित , दगा समय पर देत।
बन्धु अधम तेहि कहत है , जाको मुख पर हेत॥ ८॥
रूपवती लज्जावती , सीलवती मृदु बैन।
तिय कुलीन उत्तम सोई , गरिमा धर गुन ऐन॥ ९॥
अति चञ्चल नित कलह रुचि , पति सों नाहिं मिलाप।
सो अधमा तिय जानिये , पाइय पूरब पाप॥१०॥
जनक बचन निदरत निडर , बसत कुसङ्गति माहिं।
मूरख सो सुत अधम है , तेहि जनमे सुख नाहिं॥११॥
सुख दुख अरु विग्रह विपति , यामे तजै न सङ्ग।
गिरिधरदास बखानिये , मित्र सोइ वर ढङ्ग॥१२॥
सुख में सँग मिलि सुख करै , दुख में पाछो होय।
निज स्वारथ की मित्रता , मित्र अधम है सोय॥१३॥
आप करै उपकार अति , प्रति उपकार न चाह।
हियरो कोमल सन्त सम , सुहृद सोइ नरनाह॥१४॥
मन सों जग को भल चहै , हिय छल रहै न नेक।
सो सज्जन संसार में , जाके विमल विवेक॥१५॥
उद्यम कीजै जगत में , मिले भाग्य अनुसार।
मोती मिले कि शङ्ख कर , सागर गोता मार॥१६॥
उद्यम में निद्रा नहीं , नहिं सुख दारिद माहिं।
लोभी उर सन्तोष नहिं , धीर अबुध में नाहिं॥१७॥
सासु पासु जोहत खरी , आँखि आँसु उर लाजु।
गौनो करि गौनो चहत , पिय विदेश बस काजु॥१८॥

पति दैवत कहि नारि कहँ , और आसरो नाहिं।
सर्ग-सिद्धी जानहु यही , वेद पुरान कहाहिं ॥१९॥

कवित्त—

आजु अलबेली अलबेले सङ्ग रङ्गधाम रति विपरीत पूरी प्रीति सों करति है। उझकि २ झुकि २ लचकीलो लङ्क अति ही असङ्क अङ्क प्यारे को भरति है॥ गिरिधरदास उभै उरज उतङ्ग सोहैं उपमा कहत बानी लाजहिं धरति है। मानो दुइ तुम्ब राखि छाती के तरे तरुनि सुरत समुद्र वेप्रयास ही तरति है॥ २०॥

हरिदास (बांदा निवासी)।

[सं० १८९१]

सवैया—

कोमल कञ्जन की कलिका अलि काहे न चित्त तहाँ तू रमायो।
मञ्जरी मंजु रसालन की तिनको रस क्यों नही तो मन भायो॥
कुञ्जन औरै अनेक लता हरिदास जू आयो वसन्त सुहायो।
छोंड़ि गुलावन को वन तू कटसेरुवा पै केहि कारण आयो॥१॥

रावराना।

[सं० १८९१]

कवित्त—

फाग खेलि स्याम सङ्ग सदन सिधारी प्यारी राजै द्युति दामिनी सी भामिनी भरी अनङ्ग। कवि रावराना वैठि रतन

सिंहासन पै दर्प भरी दर्पन लै भूषन सँभारै अङ्ग ॥ चन्दमुख चन्दन ते चन्द की कला सी खासी कञ्चन की झारिन में जल भरि लाई गङ्ग। कोमल कपोलन ते धोवै ज्यों गुलाल लाली त्यों २ होति आली अति गहब गुलाबी रङ्ग ॥ १ ॥

भवानीप्रसाद पाठक।

[सं० १८६१]

सवैया--

कोटि कला करि काम कलोलनि सारी निशा सो निसा करि जीकी
सोइ रही रचि कै बिपरीति सु पौढ़ पिया छतिया पर पीकी ॥
स्याम लला अबला लखि कै कवि भावन जू उपमा जिय ठीकी।
काम सोनार सराफ़ विचच्छन कुन्दन लीक कसौटिहिं लीकी ॥१॥

साकलि कै सिंगारु सुख स्वादनि ज्वालित कै विरहानल ज्वाला।
काम के मन्त्र भनै सु मनै मन रोम खरे परिचारक चाला ॥
आँसुनि को अभिषेक छिनै छिन जीव पस्रो बलि को प्रतिपाला।
लाल तुम्है मिलिवे के मनोरथ होम करै प्रतिवासर वाला ॥२॥

कानन काहू कहानी सुनी कबहूं कहूं आनि कही मिस कौने।
भावन भावती जू के भयो तन बीस विसे अनुराग न पौने ॥
ता दिन ते इन ते है विदा सुख साजन जानी कहाँ दुहुं गौने।
चाहत चारिहु ओर चके जलरूप थके दृग ये मृग छौने ॥३॥

कवित्त-

ना खिन टरत टारे ता खिन ते आँखिन ते जा खिन निहास्यो रूप सुन्दर सलोना सो। नाहिं नै जकरि जात याको मनु मेरी वीर छुवत बिछुकि जात छोटो छाग छौना सो। भेद हिं न खोलति है खेद लिये डोलति है कुपिन गँवायो मनु लाखु मन सोना सो। मैऽब समुझौं ना काहू कैसो दहु सोना देव नन्द को डिठौना कछु डारि गयो टोना सो॥ ४॥

अस्त भयो बालापन सूरज समान देखौ अङ्ग दुति पश्चिमा सी आई है कछुक लाल। सिंजित सुहाई धुनि झींगुर की भाई सुनि चन्द उयो चाहत में रावरे के भाग भाल॥ प्रीति रजनी की सजनी की ह्वै है भावन जू जैहै तम असुताई वैहै प्रेम तारा जाल। नागर तू नायक है ध्यान सुखदायक है भोग के न लायक है वैस-सन्धि संध्याकाल॥ ५॥

शंकरसहाय अग्निहोत्री।

[सं० १८९२]

सवैया-

अंग आरसी-से जु पै भाखत हौ हरि आरसी ही को निहारा करौ।
समनैन जो खञ्जन जानत तौ किन खञ्जन ही सों इसारा करौ॥
भनि शङ्कर शङ्कर से कुच तौ कर शङ्कर ही पर धारा करौ।
मुख मेरो कहौ जो सुधाकर सो तौ सुधाकरै क्यों न निहारा करौ॥

प्रबाल से पाँय चुनी से लला नख दन्त दिपै मुकतान समान।
प्रभा पुखराज सी अङ्गनि मैं बिलसैं कच नीलम से दुतिमान॥
कहै कवि शङ्कर मानिक से अधरारुन हीरक सी मुसुकान।
विभूषन पन्नन के पहिरे बनिता बनी जौहर की सी दुकान॥२॥

स्वरूपदास।

[सं० १८९२]

सवैया—

सीस के भूषन भूमि परे कटि, सातकी वीर के बान के मारे।
द्रोन कहै हँसि के कुरुराज जू आये भले कर मुण्ड उघारे॥
बीज को बोवत पूत दुसासन जान्यौ नहीं फल लागि हैं खारे।
जो प्रिय होइ सो जाहिर कीजिये पाग मँगावें कि चूनरी प्यारे॥

द्रोन कहै भ्रकुटी करि बङ्क भये सुत कायर मङ्गल गावै।
राज-सभा बिच नाहर रूप रु काम परे पर स्यार कहावै॥
क्यों तुम से नृप पूत दुसासन गाल बजाय कै वीरता पावै।
सात्यकी तैं बचे जन्म भयो नयो सूप बजावे कि थाल बजावै॥२॥

मात पिता जु सुभद्रा धनञ्जय द्वै पख तेज कभी बिसरै नाँ।
जेष्ठ तो कष्ट में दुष्ट परैं न कनिष्ठ की कष्ट में पृष्ठ फिरै नाँ॥
तात को भ्रात डरैं बहु शत्रु में भ्रात को तात सदैव डरै नाँ।
काके की होड़ भतीज करै नहिं काको भतीज की होड़ करै नाँ॥

कवित्त-

भीम को दियो हो विष ता दिन बुयो हो बीज लाखा गृह भयें ताको अङ्कुर लखायो है। द्यूत क्रीडा काल सों विस्तार पाय बड़ो भयो द्रौपदी हरन भये मञ्जरी तैं छायो है॥ मच्छ गाय घेरी जबै पुष्प फल भार भस्रो तैं नै ही कुमन्त्र जल सींचि के बढ़ायौ है। विदुर के वचन कुठार तैं न कस्यो वृक्ष वाको फल पाको भूप! तेरी भेंट आयो है॥ ४॥

सुयोधन कोप कियें सुभ्रदानन्द पै चल्यौ ताको देखि सेना-पति द्रोण अकुलायो है। वार वार वरजौं मैं वरज्यो न मानै शठ मेरी दृष्टि वाल प्रलै-काल सो लखायो है॥ अकेलै कुमार लाखों लोक तेरी वाहिनी के मारि कै अवारि जम लोक कों पठायो है। आसवी को छक्यो ज्यों असावधान जात कितैं आगै देखि महावीर वासवी को जायो है॥ ५॥

प्रात भएँ अग्रज तिहारो सो सँवारी रथ, सारथी ह्वै सैन्य बीच अभय विहारी है। कपि की गरज घोस देवदत्त गाण्डिव को, रिपु रिपु नारिन के गरव प्रहारी है॥ नामाङ्कित बान मेरे पानि को सँजोग पाय, आछे २ वीरन के प्रान को अहारी है। जैसैं अत्र रोवे तेरे पुत्र की कलत्र प्यारी! तैसैं पुत्र शत्रु की कलत्र तू निहारी है॥ ६॥

दोहा—

प्रात अस्त लों ना रहै, जयद्रथ वा मम प्रान।
दोउ रहै तो होहु भल, मोकों नरक निदान॥ ७॥

शरण युधिष्ठिर कृष्ण की , अथवा भजि नहिं जाय।
जो इन्द्रादि सहाय तोहुं , पितृन दैहुं मिलाय॥ ८॥

जवाहिर।

[सं० १८९५]

सवैया—

गोपी अन्हाइ चलीं गृह को रहे गोप सबै तक श्री नँदनन्दहि।
मारग में चलि राधे कह्यो गिरी बेसरि मेरी कियो छल छन्दहि॥
ढूंढ़न को गई लौटि जवाहिर जानै नहीं कछु या फर फन्दहि।
सीस नवाइ कै हेरै जलै तले हेरै लगी हँसि श्री ब्रजचन्दहि॥१॥

मुरारिदान (बूंदी)।

[सं० १८९५—१९६४]

कवित्त—

कीरति तिहारी सेत शत्रुन के आनन में ठौर ठौर अहो निसि मेचक मिलावै है। बहुत प्रताप तप्त साधु जन मानस को ऐसो सीर अमृत ज्यों सीतल करावै है॥ प्रभु से प्रतापी प्रजापालन प्रचण्ड दण्ड उत्तम प्रजाद चित्त सज्जन चुरावै है। महाराव राजा श्रीदिवान रघुबीर धीर रावरे गुनूं के रवि लच्छन स्वभावै है॥१॥

रामगोपाल।

[सं० १८८६]

कवित्त—

चन्द हौ सुचेरो भयो चाकर चिराकै भई, मीन मृग मौन गही सूने भये सौंधे है। खञ्जन के रञ्ज हुयो कोकिल कमीन हुये, किंशुक कसाई मरे चीता चित चौंधे है॥ भूपति अनङ्ग की सु अङ्ग सरदारी सब, मालती के मलिन मान मन मौंधे है। दामिनि दबैल हुई रति विधवा सी हुई, मदन महीप के नगारे आज औंधे है॥ १॥

बलदेवप्रसाद अवस्थी 'द्विजबलदेव'

[सं० १८९७]

सवैया—

न सौतन को तन ताको कवौं यों कियो तुमको बलदेव जू बन्द।
पराए से ह्वै धौं कहाँ चलि जात पराय कै प्रेम के काचित फन्द॥
लसी उर मान बिना गुन की तौ रही है कहा अब साँच को सन्द।
चितै तिरछौहैं हितै दरसाय इतै जनि आयो करो नँद नन्द॥१॥

कहा है है कछू नहिं जानि परै सब अङ्ग अनङ्ग के जोरि जरे।
उतै वीथिन मैं बलदेव अचानक दीठि प्रकाशक प्रेम परे॥
हँसिकै गे अयान दयान दई है सयान सबै हियरे के हरे।
चले कौन ये जात लिए मन मो सिर मोर की चन्द्रकला को धरे॥

कवित्त--

जैहैं मोहि खग मृग शैल बन बलदेव बृन्दावन बीच बसि बाँसुरी बजावेंगे । झलकि झलकि मोर मुकुट दिखाय छवि मन्द हास झलकि ललकि बर लावेंगे ॥ पल पल चलन चहत बिन देखे जौन तौन प्राण परसि प्रमोद पुञ्ज पावेंगे । घाली नैन सैन मतवाली करि डाली आली पाली प्रीति तेइ बनमाली आज आवेंगे ॥ ३ ॥

आनन निहारि कै अमन्द चन्द बन्द मानौ पाणि की प्रभा को पेखि जलज लजात हैं । द्विज बलदेव कंचुकी के फरकौहैं कुच प्रेम के प्रवाह परि पल्लवित गात हैं ॥ खेलै लगी फाग राग रङ्ग सङ्ग गोपन के कहर कटाक्ष पै मनोज मन मात हैं । गारी गाय गोपन को नन्दलाल गालन में मलि मलि रोली बाल बलि २ जात हैं ॥ ४ ॥

लछिराम ।

[सं० १८९८]

कवित्त-

वार लकवारहिं लपेटि गुण बन्धन मैं मन्मथ चक्र लौं सवारि मगरूरो है । मंजु मपि बलित बहार जा वसन भंसो राहु रवि-सङ्गमो विलास ब्रजरूरो है ॥ लछिराम राधे अङ्ग चम्पक बरन पर सोहैं करै सौतिन गरब चक चूरो है । समय सुमन स्याम सुन्दर सरूरो फलयौ जूरो सुभ सिखर सुहाग फल पूरो है ॥ १ ॥

स्याम घन रङ्ग तेज तरल त्रिभङ्ग सौंहें लोचन सनेही सीख मानि रहिवो करो । लछिराम चौंचन्द चवायन परोसिनी तें वन्द करि कान सानमान सहिवो करो ॥ त्रिभुवन वारि नट नागर मुकुट पर साखन दै गौरि मन कह गहिवो करो । अभिलाख लाखन धरौंगी पौरि ताखन पै माख न करौंगी व्रज लाख कहिवो करो ॥

फसनि भुजानि की सुजानि की कही न जाति उमदानि अङ्गन अनङ्ग की घनी रहै । छूटि छूटि जाते वार विथुरे सुकंधन पें लिपिगे सिंगारन वनावति जनी रहै ॥ कवि लछिराम जाहि निशान पुरति के हू निसापूरि करिवे के व्यौंत हि ठनी रहै । रैनि सव जागी अनुरागी दिन हू मैं वाल लाल उर लागिवे की लालसा वनी रहै ॥ ३ ॥

उरज महेश उदै वदन सुधाकर कौं वेनी वङ्क लोचन त्रिवेनी रङ्ग आला है । वेंदी भाल वेसरि वुलाक विहँसनि सीरी मदन मरोरही के कतरै कसाला है ॥ तीरथ अरत प्रतिविम्बित पराग-पग लछिराम खोलैं तीनों तापन दिवाला है । साला सी रतन रतनाकर विसाला व्रज जाला पाप काटिवे को वाला है कि माला है ॥ ४ ॥

भीरते अहीरन की विछलि परो धों कहा जितै जलकेलि तू सदा विहारियत है । लछिराम औचक उलटि परी अञ्जन ते रुख तिरछोहैं यो पुरुष कारियत है ॥ सुमन सिरीष सुकुमार मन मोहन पै कहर कटाछन वजर पारियत है । अजव अधीर वीर वारो जमुना के वीर तीरथ के तीर काहू तीर मारियत है ॥ ५ ॥

मरम न खोलैं खरी भरम न बोलैं कछू अजब अतोलैं पीर हीयरै धरी रहै। खान-पान सौरभ सिंगारहु सँवारैं कौन स्वास मैं सहेलिन की मति भरमी रहै॥ लछिराम कीरति कुमारी छाम तनमन ज्वाला मुखी विरह लपट लहरी रहै। सौंरि कर साँवरे विहार परमानन्द को पौरिपर पोखराज माला सी परी रहै॥६॥

मोतिन के चौक पुञ्ज पाँवरे पसारि पौरि पूजि पग नखन महावर धरति है। भूखन वसन पीरे कङ्कन जञ्जीरें कर मौरी माल वन्दन प्रभावर धरति है॥ लछिराम अरविन्द स्याम अञ्जली से राखि नवल किसोरी भोरी भाँवरि भरति है। थारन मैं छलकै रतन सुवरन भार भोर ही सों गौरी की निछावरि करति है॥७॥

चण्डीदत्त।

[सं० १८६८]

कवित्त-

विरह विहारी के विरह विलखात बाल बौरी सी लगति दुख अतिसै मलान की। चण्डीदत्त आहि कै धरै है पग इत उत घूमिकै गिरी है ज्यों धरी है देह आन की॥ साँस ना भरत पै सिथिल सी दिखाई देत होनी ना मिटाये मिटै विधि बलवान की। अतर लपेटी काल्हि कुञ्जन मैं भेटी आजु धूरि मैं धुरेटी लेटी बेटी बृषभान की॥ १॥

अयोध्याप्रसाद वाजपेई।

[स० १६००]

कवित्त-

वाटिका विहङ्गन पै वारि गात रङ्गन पै वायु वेग गङ्गन पै वसुधा वगार है। बाँकी वेनु तानन पै, बँगले वितानन पै वेस औध प्रानन पै, वीथिन वजार है॥ वृन्दावन वेलिन पै, वनिता नवेलिन पै, ब्रजचन्द केलिन पै, वंसीवट मार है। बारि के कनाकन पै, वद्दल के बाँकन पै, विज्जुली वलाकन पै, वरषा वहार है॥ १॥

हरषे हरोल हद्दे अमर से अनङ्ग हेत करषे कलापि चोपि, चातक चमुपिली। उमड़ी घटा हैं मानी करने छटा है छटा, फेरत पटा हैं ठटा पूरी की हटाकिली॥ घैरि कै अड़े है विन वुन्दन लड़े है औध, आनन्द बढ़े हैं देखि दादुर वड़े दिली। कादर वियोगी हारी चादर वलाक फेरी, बादर वहादुर को नादर फते मिली॥ २॥

मज्जन अथाह नीर वास है विसाल जहाँ, झाल है अढार भार विन्ध्याचल पार के। मेवा है अहार काज भले भाँति भाँतिन के, करिनी के यूथ मध्य करनो विहार के॥ वे तो सुख गये अब रहे मार अङ्कुश के, जरे हैं जँजीर लोह पाय मैं पसार के। डारत है सीस पै उठाय गजराज रज, झूरत हैं बार २ वै दिन सँभार के॥

सेवती निवार सेत हीरन की हार जूही, यूथ औ अनार मोती विद्रुम लसन्त भो। पन्ना पुखराज दल चम्पक समाज फूल,

मानिक गुलाब नील इन्दीवर गन्त भो॥ माधवी नमूनो गउमेद फल सूनो दूनो, वाटिका वजार औध पूनो विलसन्त भो। यतन जलूस जोर रतन रसाल रङ्ग, अतन अनन्द हेत जौंहरी बसंत भो॥

ललिताप्रसाद त्रिवेदी।

[सं० १९००—१९६०]

सवैया—

लखे मुख कञ्जन को भ्रम जानि चहूं दिशि ते अलि ना मड़ि जाँय।
लसे अधरा वर बिम्बन से शुक आपुस में न कहूं लड़ि जाँय॥
सुने बर बीन से बैन भले ललिते मृग ना मग में अड़ि जाँय।
लला कर कोमल पाखुरी तीखी गुलाबन की न कहूं गड़ि जाँय॥

मार लजावनहार कुमार हौ देखिबे को दृग ये ललचात हैं।
भूले सुगन्ध सों फूले सरोज से आनन पै अलि हू मँड़रात हैं॥
नेक चले मग में पग द्वै ललिते श्रम सीकर हू सरसात हैं।
तोरिहौ कैसे प्रसून लला ये प्रसून हु से अति कोमल गात हैं॥२॥

लेती उछङ्ग उमङ्ग भरी कहुं दै अँगुरीन सिखावति चालनो।
लेइ कहूं फिरि अङ्क लगाइ कै चूमै कपोल सुभाइ कै लाल नो॥
चित्र लखावै कहूं ललिते कहुं बोलि सुबोलन गाइ कै हालनो।
देखौ चलौ चलि नन्द के भौन में लाल को बाल झुलावति पालनो॥

कवित्त—

भरे भौंर भारन हजारन सु डारन पै लपकि छपकि वर द्रुम दुति छोरे देत। ललित लतान के वितान से तने हैं तैसे चहुं ओर कोकिल कलित कीर सोरे देत॥ विकसे चहूंघा वर बिटप विलोको इत निकसे कलीन अति सुखमा हिलोरे देत। घोरे देत आनन्द हिय मैं प्रेम बोरे देत पवन प्रसून भूरि भूमि पै बिथोरे देत॥ ४॥

अन्तस के काग हन्स वाहिज वनाये गात छिपि कै अवास मद मास राचिवो करैं। कोटिन कलङ्क निरसङ्क है लगाइ जाइ द्विजन निहारि हिय माँहि आँचिवो करैं॥ कैसी करैं ललित कराल कलिकाल जाल देखि गन सूदन के हियो ताचिवो करैं। लोक परलोक हू की त्रास न करत नीच बैठि वर आसन पुरान बाँचिवो करैं॥ ५॥

लाजनि गड़ी मैं जाति कैसी करौं मेरी वीर हँसत अहीर ब्रज सङ्ग ना घरो करै। आपै केस छोरै आपै बोरै लै फुलेल आछे गूंथत ललित वेनी आनँद भरो करै॥ भूषन सुधारै मग पामड़े पसारे मुख ओर ही निहारै गुन मेरोई रटो करै। सेज को सँभारै गुहि माल गरे डारै कान्ह सहल सुभाव मेरी टहल करो करै॥६॥

भुजंग-प्रयात—

उड़े जात हैं खञ्ज ये कञ्ज काँपैं, जलै मीन ते दीन है अङ्ग झाँपैं।
भले भौंर भूले भ्रमै नाग कारै, सवै पद्म के पत्र हू जात जारै॥

भले कीर बेधीर ह्वै भीर भारी, तिलौ फूल त्यागै हिये शूल धारी ।
लता चम्प की कम्प की नाध नाधे, गिरै श्रीफलौ सो महा बाँध बाँधे
पके बिम्ब ते ऊँच कै भूमि टूटैं, थके दाड़िमै के सबै गात फूटैं ।
कहा मैन को दण्ड मोपै चढ़ाये, हने बान तीखे सने सान धाये ॥
कपैं केलि कैसे जपा फूल त्यागैं, न रागैं कहूं हंस के बंश भागैं ।
कपोतौ थके से जके जोर हेरैं, चके चक्रवाकौ चितै नैन फेरैं ॥
मयूरौ महामन्द ह्वै मानि हारी, कहा कोकिला हू रही मौन धारी ।
दिन मैं चकोरी रही चाह हेरी, भई भाँति ऐसी भली बाग केरी ॥

गोपाल कायस्थ (रीवाँ) ।

[सं० १९०१]

सवैया—

तूरत फूल कलीन नवीन गिरो मुंदरी को कहूं नग मेरो ।
सङ्ग की हारीं हेराइ गोपाल गईं अलसाइ डेराइ अँधेरो ॥
साँसति सासु की जाइ सकौं न अहो छिन एक न गैयन फेरो ।
कुञ्ज विहारी तिहारी थली यह जात उज्यारी दया करि हेरो ॥१॥

हरिदास ।

[सं० १९०१]

सवैया—

सोवत जानि कै देवर सासुहि मोद भयो महिले के हियो है ।
भूषन डारे उतारि सबै गृह माँझ को दीनो बुझाई दियो है ॥

सोऊ उतारि विचारि कै मैलो-सो चीर शरीर सुधारि लियो है ।
यों अधराति अमावस-सी वनि कुञ्जन को अभिसार कियो है ॥१॥

नोने ।

[सं० १६०१]

कवित्त—

सरसिज-सेज पै विराजै सरसिज नैनी देखि छवि ऐनी मैनका सी लजि जाती हैं। लचकत लङ्क लचकीली भार वारन के मोतिन के हारन की शोभा अधिकाती हैं॥ नोने कवि कहै सारी जरद किनारीदार ढीली ढीली चाहनि लजीली मुसकाती हैं। अवला अलीगन की आती चली जाती हाल कहै लाल लाती पै न नेक मन लाती हैं॥ १ ॥

वलभद्र कायस्थ ।

[स० १६०१]

सवैया—

करनी कछु पूरव कीनी वड़ी विधु कौने सँजोग सो जीवो करै ।
हुलसै विलसै झुलनी में झुलै लखि सौतिन को सुख लीवो करै ॥
निसि-वासर पीतम-नैनन को वलभद्र वड़ो सुख दीवो करै ।
मतवारो भयो नथ को मुकुता अधरा को अमीरस पीवो करै ॥

वन्शरूप ।

[सं० १६०१]

कवित्त—

कञ्चन के पलँग बिछाये सीसमहल में वहल सुपेदी सनी सौरभ रसाला मैं। ओढ़े ऊन अम्बर सकल नखसिख तऊ नेकहू न मानै मन रहत कसाला मैं॥ कवि वन्शरूप साजे दीपगन माला स्वच्छ अधिक उमङ्ग त्यों अनङ्ग चित्रशाला मैं। महत मसाला हैं विसाला जे दुसाला आला पाला सम लागैं बाला बिन सीतकाला मैं॥ १॥

सरदार ।

[स० १६०२—१६४०]

सवैया—

वा दिन ते निकसो न बहोरि कै जा दिन आगि दै अन्दर पैठो ।
हाँकत हूंकत ताकत है मन माखत मार मरोर उमैठो॥
पीर सहौं न कहौं तुम सों सरदार विचारत चार कुठैठो ।
ना कुच कंचुकी छोरौ लला कुच कन्दर अन्दर बन्दर बैठो ॥१॥

मनि मन्दिर चन्दमुखी चितवै हित मंजुल मोद मवासिन को ।
कमनीय करोरिन काम कला करि थामि रही पिय पासिन को॥
सरदार चहूं दिसि छाय रहे सब छन्द छरा रस रासिन को ।
मन मन्द उसासन लेन लगी मुख देखि उदास खवासिन को ॥२॥

अकबर (इलाहाबादी)।

[स० १६०२]

बेपरदः नज़र आईं जो कल चन्द बीबियाँ।
अकबर ज़मीं में ग़ैरते कौमी से गड़ गया॥
पूछा जो उनसे आपका परदा कहाँ गया।
कहने लगीं कि अक़्ल पै मरदों की पड़ गया॥ १॥

सेठजी को फ़िक्र थी एक एक के दश कीजिये।
मौत आ पहुंची कि हज़रत जान वापस कीजिये॥ २॥

कर दिया करज़न ने ज़न मरदों की सूरत देखिये।
आबरू चेहरे की सब फ़ैशन बना कर पूंछ ली॥
सच ये है इन्सान को यूरुप ने हलका कर दिया।
इब्तदा डाढ़ी से की और इन्तहा में मूंछ ली॥ ३॥

इन्द्रमल।

[अनु० स० १६०३]

कवित्त—

दीखत हौ जोतसी सुजान जातै पूछौं तुमैं, लगि है लगन कबै लगन विचारौ तौ। कौन से महूरत में ऐहैं वह धूरत, हमारे गेह नेह इन्द्र सुदिन सम्हारौ तौ॥ देहौं दान दक्षिणा

ज़न=स्त्री। इब्तदा=आरम्भ। इन्तहा=अन्त।

अनेक द्रव्य मेटो दुख, ग्रह के संयोग तें वियोग बिथा टारौ तौ। मेरो मन मोहन तैं लागि चुक्यो भाँति भाँति, मो तैं मन मोहन को लगि है विचारौ तौ ॥ १ ॥

गिरिधारी।

[सं० १९०४]

कवित्त—

जमुना न्हात हरि लीन्हो हरि गोपिन के चारु रङ्ग रङ्ग वारे चीर रूपरासी है। कहै गिरिधारी एकै धानी धूरधानी एकै आसमानी कुसुमानी कासनी प्रकासी है॥ केसरिया काकरेजी कञई सुनौले एकै चम्पई बसन्ती एकै वैंजनी बिभासी है। एकै गुलेनार गुल नारङ्गी गुलावी एकै गहब अबीरी आबवासी औ गुलासी है ॥ १ ॥

न्यारी होहु नीर ते तो देहिं चीर ऐसी सुनि न्यारी भई नीरहूं ते तीर में कढ़े कढ़े। कहै गिरिधारी देत कस न बसन स्याम रसना पिरानी हाहा विनती पढ़े पढ़े॥ मीत जो मही के बीच नीच करि पावती तौ कौतुक दिखावती विनोदन बढ़े बढ़े। छीनि लेती अम्बर पितम्बर समेत अब कहौ कान्ह बातैं जू कदम्प पै चढ़े चढ़े ॥ २ ॥

गोविन्द गिल्लाभाई।

[सं० १९०५]

सवैया—

घूंघट कों तजि प्रीतम को मुख, देखन काम सिखावत है।
लाज सदा उर अन्तर में पुनि, घूंघट तानि रखावत है॥
काम कहैं पति सों बतरावन, लाज गरो भरि लावत है।
गोविन्द यों तिय लाज मनोज के बीच में काल बितावत है॥१॥

पेखन की हद पायन लौं पुनि, हासन की हद होठ लौं भात है।
बैनन की हद श्रौन सखी तक, माननन की हद मौन लौं भात है॥
जावन की हद केलि के मन्दिर, आवन की हद द्वार लौं भात है।
गोविन्द यों तिय बाल तों वेश पै, प्रीतम प्रेम की क्यों न लखात है॥

हमरे तुम्हरे तन दोय लले पर, प्रान विरञ्चि ने एक किये।
कवि गोविन्द सो परतक्ष प्रमान तें, आज हमें उर जान लिये॥
यह आपकी पास यथार्थ कहौं, सुनियो श्रुति मैं सब प्रान प्रिये।
नख घाव लगे उर आपहि के, अरु होत हैं पीर हमारे हिये॥३॥

अन तें रमि कै अब आइ हमें, नहिं बातन में बहराइये जू।
चतुराइन तें करि सोंह अती, तिय औरन को भरमाइये जू॥
कवि गोविन्द बारहिं बार तुम्हें, कहि बात कहा समुझाइये जू।
रति अङ्कित ह्वै ढिग आइ हमें, न जरे पर लोन लगाइये जू॥४॥

जाहि को जाहि सों प्रेम लगै उर, सो उन रीति पिछानति है।
और न जानत है उन मैं पुनि, नाहक बाद कों ठानति है॥
गोविन्द सोइ लखी उर मैं हम, सो कहनायति मानति है।
पीर प्रसूत की जानै प्रसूति हि, बाँझ तिया नहिं जानति हैं॥५॥

गाढ़ी गहो मति गोविन्द गात मैं, चोली तनी सब तूटि परैंगी।
सारि सबे दरकाइ लखी अति, सासु हमारी सुरोष धरैंगी॥
चूंबन के लखि अङ्क कपोलन, आलि सबे उपहास करैंगी।
छोरौ अबे तुम पाय परौं हम, कोऊ सखी इत आइ परैंगी॥६॥

मोरन के मन मेघ बसै अरु, कैरव के मन चन्द सुहाता।
रोहित के मन राग बसै अरु, हारिल के मन काष्ट विभाता॥
भृङ्गन के मन कञ्ज बसै अरु, कञ्जन के मन सूर सुहाता।
त्यों हम चित्त मैं आप बसै अरु, आपके चित्त की जानै विधाता॥

लोक की लाज तजी पहिले, अनुगामी बनी हमरे सुखरासी।
प्रेम प्रकाश कियो जग मैं वह, जानत है नर नारि बिलासी॥
गोविन्द सो सब भूलि गये अरु, जाय कै और मैं प्रीति प्रकासी।
क्यों न विचार करो उर मैं अब, होयगी रावरे हेत की हाँसी॥८॥

नेह को नातो निभावन कों सखि, नेहि करे सु कबे नहिं होती।
देखिये प्रान पतङ्ग तजै निज, प्रेमहि तैं परि दीपक ज्योती॥
सागर नीर तैं ऊपर आइ कै, स्वाति के बुन्द कों छीप लै ढोती।
त्यों मधुरे तजि दारम दाख कों, गोविन्द हंस चुगै इक मोती॥

तुम दर्शन काज तिहारि गली, नित होत हमारोइ आइबो है।
तब गोविन्द आप दिखात नहीं, अरु लोक में लाज गुमाइबो है॥
यह रावरी रीत न योग्य लसै, करि प्रीति पिछें छल छाइबो है।
दिल च्हाय तुमें अब सोइ करो, हमें नेह को नातो निभाइबो है॥
तुम रूसि रहो हम सों तौ हमें, परि पायन आप मनाइबो है।
तुम देखो न ओर हमारि तऊ, हम आपसे दृष्टि लगाइबो है॥
तुम बोलो नहीं हम सों तो हमें, हँसि आपको आइ बुलाइबो है।
कवि गोविन्द आपसे और नहीं, इक नेह को नातो निभाइबो है॥

कवित्त--

बान्धव समान सदा चित्त में सहाय अति, दोष को दुराई गुन जाहिर जनावे है। हित कों करत और अहित हरत सदा, व्यसन बुराई सबे बुद्धि ते बिलावे है॥ आपति में आइ करै सबल सहाय शुभ, शोक को नसाइ सदा आनंद उपावे है। गोविन्द कहत ऐसे मित्रन के मिलिबे तें, सुखिया संसार माहिं और को कहावे है॥ १२॥

बाहिर ते बेश प्रेम झूठे ही जनाय अति, भीर परे काम कदि आप नाहिं आवे है। साथ में सदाय निज खान पान खाय पुनि, आपके अगार एक बेर ना बतावे है॥ मुख तैं मधुर बैन बोलत बहुत पर, पाछल तैं बात बुरी आपनी जनावे है। गोविन्द कहत ऐसे मतलबी मित्रन को, सङ्ग एक छिन नाहिं ईश्वर रखावे है॥

भोगत भुजङ्ग देखो मूषक मवास आई, चीटी के सञ्चित लेत तीतर उठाई कै। पण्ढन की सुन्दरी को भोगत अवर नर, सरधा

के सर्व मधु भील लेत धाई कै॥ गूजरी अनेक विधि दूध कों दुराइ रखे, तदपि बिडाल आइ पीवत छुपाई कै। गोविन्द कहत गति कर्म की विचित्र देखो, करत है कोऊ और भोगत को आई कै॥

सिखत सकल कला कैधों अनसिखे रहै, धन्धा माहिं धाय कैधों सदन मैं सोत है। लडत रिपु से कैधों देह को दुराइ राखै, जीवत सहाय कैधों पाय अभिमोत है। कृषि को करत कैधों नौकरी नरेश करै, कैधों पयरासि पार जाय चढ़ि पोत है। गोविन्द अनेक ऐसे करत उपाय पर, हौनहार होय अनहोनी नहिं होत है॥

शूर को सिखायो किन रन ही मैं लरिबे को, भीरु को सिखायो किन डरिबे मैं देर ना। साधवी को पास सीखी पतिव्रत पारिबे को, कुलटा को पास सीखी छैलन कों हेरना॥ दानी को सिखायो किन दान देइबे को सदा, सूम को सिखायो किन बैन बेर बेर ना। गोविन्द सुकवि कहै जैसी जाकी जाति तैसो, तिन को सुभाव होत वा मैं कछु फेर ना॥ १६॥

सुनिये चतुर विधि अरज हमारी एक, आपको उमङ्ग धारी चाहत कहन कों। पूरब के पाप पुन्य जेहि जमें होय मेरे, देहु फल ताके दिल चाहे सो सहन कों॥ चाहे तो दरिद्र और कीजिये धनेश पुनि, चाहे तो बलि सों बैर बपु मैं बहन कों। गोविन्द सुकवि पर लिखियो लिलार नाहिं निरस नरन पास कविता कहन कों॥ १७॥

निज स्थान तजि जैसे मुक्त बनि माल मंजु, कामिनी के कण्ठ लागी शोभा सरसात है। निज स्थान तजि जैसे सुमन समोद

है कै, त्रिवुध के शीश चढ़ि आभा अधिकात है॥ निज स्थान तजि जैसे शिखि के शिखण्ड शुभ, कान्ह के किरीट बनि विमल विभात है। गोविन्द कहत तैसे निज स्थान तजि गुनि, विचरै विदेश तवे सौ गुना सुहात है॥ १८॥

छाजत है सर्व ठौर बदरी विसाल पर, चन्दन के छोर कोई ठौर मैं लखात है। छिति मैं सकल ठौर पाथर प्रभाय पर, हिरक की खानि कोई ठौर ठहिरात है॥ वायस के बैन कान सुनिये सदाय पर, कोकिल के नाद नीके चैत मैं सुनात है। गोविन्द कहत तैसे दुष्ट सर्व ठौर पर, सुभग सुजन कोई ठौर मैं दिखात है॥ १९॥

जाहि को सुभाव जैसो तैसो वे करत काम, वामैं नहीं फेर देखो जग मैं जनात है। बन ही मैं बाँस वेश निकट निवास करि, आपुस मैं अङ्ग घिसि आग उपजात है॥ उन तैं अनेक ठौर घरत विपिन अरु, जरत है आप पुनि और कों जरात है। गोविन्द कहत तैसे दुष्ट निज कुटुम्ब मैं, करि कै कलेश नाश सर्व को बनात है॥ २०॥

अमर को अंश लै कै विधि नें बनाय प्यारी, तामैं रूप रति, को लै देह को दृढ़ाये है। काम को धनुष लै कै भृकुटी बनाई वर, शेष ही की छाँय लै कै केश को रचाये है॥ शारदा को सार लै कै बानि को बनाई वेश, चन्द को लै बीच भाग आनन उपाये है। गोविन्द कहत तातैं चन्द्र मे व्है छिद्र सोई, कालिमा कलङ्क देखो आज लौं दिखाये है॥ २१॥

गोविन्द कविन्द केते योषिता के अङ्गन की, उपमा उचारे पर योग्य ना बिचारे है। कञ्चन समान काय कहत कितेक पर, कञ्चन कठोर काय कोमल अपारे है॥ शिखर समान कुच कहत कितेक पर, शिखर निरस और कुच रसवारे है। सिंह के समान कटि कहत कितेक पर, सिंह है सलोम ये अलोम सुकुमारे है॥ २२॥

बेनिका पै व्याल वारौं भाल ही पै भेश वारौं, कोटिक कमल वारौं लोचन रसाल पै। गाल पै गुलाब वारौं नाशिका पै कीर वारौं, गोविन्द प्रवाल वारौं ओठ अति लाल पै। कण्ठ पै कपोत वारौं कुचन पै कोक वारौं, गङ्ग के तरङ्ग वारौं मोतिन की माल पै। पेट ही पै पान वारौं जङ्घन पै रम्भ वारौं, मंजुल मतङ्ग वारौं सुन्दरी तो चाल पै॥ २३॥

चन्द को विलोकि सुधि उपजत आनन की, कम्बु को बिलोकि सुधि ग्रीव की गहात है। कोक को बिलोकि सुधि उपजत उरज की, सिंह को बिलोकि सुधि लङ्क की लखात है॥ केलि कों विलोकि सुधि उपजत उरुन की, बारन बिलोकि सुधि चाल की सुहात है। गोविन्द यों जित तित प्यारी तुम अङ्गन की, नकल निरखि हम बखत बितात है॥ २४॥

कानन में जात लखि रमनीक राधिका को, पाय भ्रम जीव केते उर मैं अघोर है। गोविन्द कहत सोइ बरने न पार आवै, तदपि कहत कछु जानिबे कों थोर है॥ दशन कों दारौं जानि शुक भो सरोद पुनि, मुख कों मयङ्क जानि चाहत चकोर है।

योषिता=स्त्री। केलि=केला।

गाल कों गुलाब जानि गुञ्जत है भौंर भीर, वार कों वनद जानि कूकि उठै मोर है ॥ २५ ॥

पङ्कज की परमा कों छीन कै चरन धरि, कदली को सार छीन जङ्घ मैं लहत है। तूंबरी को तत्व छीन निविड़ नितम्ब किये, कुम्भकाय छीन किये ऊरज महत है॥ बिम्ब को सुरङ्ग छीन अधर अरुण किये, कोकिल को कण्ठ छीन ग्रीव मैं गहत है। गोविन्द कहत ऐसे लोक सब लूटत है, तदपि तमाम ताको अबला कहत है ॥ २६ ॥

वार कों विलोकि व्याल उदर घिसत अति, भाल कों विलोकि शशि चिह्न कों धरत है। नैन कों निरखि काय कुम्हलात कञ्ज पुनि, नाक कों निरखि दीप देह मैं जरत है॥ तदपि सम्भार क्यों न सुन्दरी शरीर तेरे, वाहि कों विलोकि केते कष्ट मैं परत है। गोविन्द कहत सोइ एक ओर रहे पुनि उरज अमोल गोल घायल करत है ॥ २७ ॥

चामर चिकुर और गौन गजराज सोहै, उरज गुरज अति ओप युवराज की। भौंर भल चाप अरु कौधत कटाक्ष वान, फहरत नथ्थ नेजा दीपति दराज की॥ कंचुकी कवच साजि कर्नफूल ढाल धरि, हंसक अवाज हाक शूर के समाज की। गोविन्द कहत ऐसे बाल वपु सैन्य साजि, आवत सवारी ए मनोज महाराज की ॥ २८ ॥

लोचन चपल चारु मीन मन भाय लसे, आस्य अरविन्दन की शोभा सरसात है। वारहे सिवार काम कस्तुरी करदम,

उरज उभय अति चकवा सुहात है॥ जोबन झलक जल ओपत अधिक तामैं, नेक नाभि भौंर लखि हियरा हरात है। गोविन्द अनूप ऐसे तिय तनु तालन मैं, जेहि नर न्हात सोई धन्य ही कहात है॥ २६॥

सुन्दर सुखद हाव भाव की भरित भल, ओपत अपार अनुराग अकुपारसी। केलि मैं कमाल कल्पलतिका सी राजत है, कण्ठ मैं लगत रम्य हीरन के हार सी॥ हसत बदन बर बिलसत रात दिन, बोलत मधुर बानि गङ्गाजल धार सी। गोविन्द कहत ऐसी जग मैं न जोरु होती, कविता न होत एती कवि होत आरसी॥ ३०॥

सागर सरित कूप आदिक अनेक तजि, मन मैं मराल मानसर कों चहत है। वारिद विशाल बूंद बरसत वेश तऊ शुक्तिका सप्रेम बूंद स्वाति को गहत है॥ सेवती गुलाब गेंदा सोन सदावार तजि, पङ्कज पै प्रेम मधु मोद तैं लहत है। गोविन्द कहत तैसे योषिता अनेक पर, मो मन मुदित प्यारी तो पर रहत है॥ ३१॥

ओपत अपार विश्व बाटिका विशाल तामैं, मंजुल मनुष्य पेड़ विधि ने बनाये हैं। फूलत फलत सोइ सन्तति सुभग शाखा, वेश बिसतार पाइ भाँति भली भाये हैं॥ आइ अनचिन्त्यो तहाँ काल बिकराल माली, कितनेक काटे और कितने बचाये हैं। गोबिन्द बिलोकि सोइ चेतियो चतूर चित्त कोई बेर आइ ऐसे तो कों काट जाये हैं॥ ३२॥

जैसे मद्य-पान करि मोद कोऊ मानत पै, चढ़त है कैफ तव वावरा वनावे है। जैसे मन मिष्ट मानी माजम को खाय पर, व्यापत है कैफ तव पीर बहु पावे है॥ तैसे तुम विषय में बिविध विलास करि, मानत हो मोद पर व्याधि कों बढ़ावे है। गोविन्द कहत जैसे खाज को खसौटे सुख, मानत प्रथम पर पाछे पीर पावे है॥ ३३॥

आवत वसन्त खिले सुमन समाज देखो, शीतल सुगन्ध मन्द पौन बहे भारे से। राजत रसाले नव पल्लव विशाल पुनि विकसी पलास अति ओप अरुनारे से॥ और ही अनेक फूल फूलि के मधुर महा, मंजुल मरन्द विसतारत अपारे से। गोविन्द सुकवि ताके पान करि चित्त थकि ठौर ठौर डोलत मलिन्द मतवारे से॥३४॥

प्रीतम प्रभात आये पेखि कै प्रवीन प्यारी, करि मनुहारी महा वोली मुख सादरै। कौन पतिनी के प्रेम पागे पति नीके कहो, जाके सङ्ग जानि जाम चार ही सों विहरै॥ गोविन्द दुराये से न कबहूं दुरेंगे देखो, आपही के प्रति अङ्ग प्रेम वाको प्रसरै। अरुनता आई वाकी आँख में लसत मानो, नैनन ह्वै आज अनुराग छलक्यो परै॥ ३५॥

राधिका रसीली तेरे आनन की आभा सखि जस में दुवात चात देखो जस जात है। मुकुर मसक जात मान तजि मान ही तैं, जानत जगत सोई बात विख्यात है॥ गोविन्द सुकवि कहै तजि कै गुलाब आब कम्पत रहत काय दिन अरु रात है। चन्द

सरमाइ भयो मन मैं मलीन ताको, दाग देह माहिं देखो आज लौं दिखात है॥ ३६॥

कृष्णसिंह।

[सं० १६०६—१६६४]

कवित्त—

सर्व शक्तिमान है दयालु न्यायकारी दृढ़, एक अविनाशी अविकारी पद पाचेकों। धराधर-युक्त धरा असंख्यन सूर्यधारी, व्यापक चराचर में व्योम रीति राचेकों॥ कहैं कवि कृष्ण जो अजन्मा रू अखण्ड ईश, अमित अगोचर अरूप वेद-जाचेकों। भैरव भवानी आदि और भ्रमजाल ऐसे, काचे कों न मानौं मानौं एक वह साचेकों॥ १॥

धारी कठिनाई धीर गुरू की चराई धेनु, इष्टवर पाय पुनि पूर निधि पाई तैं॥ बिक्रमाब्द इन्दु नन्द द्वीप मान मोरी मारि, चित्रकूट राजधानी जबर जमाई तैं॥ खुरासान आदिक घमण्डी दूर देशी घाय, पाइ प्रभुताई सुख नीति सरसाई तैं। वीरवर! बापा? यों बिथारि निज बाहुबल, आसमुद्र छोनी एक आतपत्र छाई तैं॥ २॥

गुरू=हारीत ऋषि। इष्टवर=वरदान। बिक्रमाब्द=७६१ में मोरियों को मार कर। खुरासान=चित्तौड़। घाय=मार कर। आसमुद्र=समुद्र पर्यंत। छोणी=पृथ्वी। आतपत्र=छत्र।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ।

[स० १९०७—१९४१]

सवैया—

राखत नैनन मैं हिय मैं भरि दूर भये छिन होत अचेत है ।
सौतिन की कहै कौन कथा तसवीर हू सों सतराति सहेत है ॥
लाग भरी अनुराग भरी हरिचन्द सबै रस आपुहि लेत है ।
रूप सुधा इकली ही पियै पिय हू को न आरसी देखन देत है ॥१॥

सोई तिया अरसाय कै सेज पै सो छवि लाल विचारत ही रहे ।
पोंछि रुमालन सों श्रम-सीकर भौंरन कौं निरवारत ही रहे ॥
त्यों छवि देखिबे कों मुख तैं अलकैं हरिचन्द जू टारत ही रहे ।
द्वैक घरी लौं जके से खरे वृषभानु कुमारि निहारत ही रहे ॥२॥

रोक हिं जो तो अमङ्गल होय औ प्रेम नसै जो कहै पिय जाइये ।
जौ कहौं जाहु न तौ प्रभुता जौ कछु न कहैं तो सनेह नसाइये ॥
जौ हरिचन्द कहैं तुमरे बिन जीहैं न तो यह क्यों पतियाइये ।
तासों पयान समै तुमरे हम का कहैं आप हमैं समझाइये ॥३॥

ब्रज के सब नांव धरैं मिलि ज्यौं ज्यौं बढ़ाइ कै त्यों दोउ चाव करैं ।
हरिचन्द हँसै जितनो सब ही तितनो दृढ़ दोऊ निभाव करैं ॥

सतराति=नाराज होना । सहेत=प्रीति पूर्वक । सीकर=बूंद । जके से=पुतले की तरह ।

सुनि कै चरचा चहुंघा रिसि सों परतच्छ ये प्रेम प्रभाव करैं ।
इत दोऊ निसङ्क मिलैं बिहरैं उत चौगुनो लोग चवाव करैं ॥४॥

मिलि गांव के नांव धरो सबही चहुंघा लखि चौगुनो चाव करौ ।
सब भाँति हमैं बदनाम करौ कढ़ि कोटिन कोटि कुदाव करौ ॥
हरिचन्द जू जीवन को फल पाय चुकी अब लाख उपाय करौ ।
हम सोवत हैं पिय अङ्क निसङ्क चवाइनै आओ चवाव करौ ॥५॥

मेरी गलीन न आइये लालन यासों सबै तुम हीं लखि जाइ है ।
प्रेम तो सोई छिप्यो जो रहै प्रगटैं रस हू सब भाँति नसाइ है ॥
आइ हौं हौं ही उतैं हरिचन्द मनोरथ आपको कुञ्ज पुराइ है ।
अङ्क न बाट मैं लाइये जू कोउ देखि जो लैहै कलङ्क लगाइ है ॥६॥

प्रान पियारे तिहारे लिये सिखि बैठे हैं देर सों मालती के तर ।
तू रही बातैं बनाय बनाय मिलै न वृथा गहि कै कर सों कर ॥
तोहि घरी छिन बीतत है हरिचन्द उतै जुग सो पल हू भर ।
तेरी तो हाँसी उतै नहिं धीरज नौ घरी भद्रा घरी में जरै घर ॥

क्यों इन कोमल गोल कपोलन देखि गुलाब को फूल लजायो ।
त्यों हरिचन्द जू पङ्कज के दल सो सुकुमार सबै अंग भायो ॥
अमृत से जुग ओठ लसैं नव पल्लव सो कर क्यों है सुहायो ।
पाहन सो मन हो तो सबै अँग कोमल क्यों करतार बनायो ॥८॥

एक ही गाँव में बास सदा घर पास इहौ नहिं जानती हैं ।
पुनि पाँचएँ सातएँ आवत जात की आस न चित्त में आनती हैं ॥

हम कौन उपाव करैं इनको हरिचन्द महा हठ ठानती हैं।
पिय प्यारे तिहारे निहारे विना अँखियाँ दुखियाँ नहिं मानती हैं॥

सब आस तो छूटी पिया मिलिवे की न जानैं मनोरथ कौन सजैं।
हरिचन्द जू दुःख अनेक सहैं पै अड़े हैं टरैं न कहूं को भजैं॥
सब सों निरसङ्क ह्वै वैठि रहे सौ निरादर हू सों कछू न लजैं।
नहिं जानि परै कछु या तन को केहि मोह तें पापी न प्रान तजैं॥

गरजे घन दौरि रहैं लपटाइ भुजा भरि कै सुख पागी रहैं।
हरिचन्द जू भीजि रहैं हिय मैं मिलि पौन चले मद जागी रहैं॥
नभ दामिनी के दमके सतराइ छिपी पिय अङ्ग सुहागी रहैं।
वड़भागिनी वेई अहैं वरसात मैं जे पिय कण्ठ सों लागी रहैं॥११॥

ऊधो जू सूधो गहो वह मारग ज्ञान की तेरे जहाँ गुदरी है।
कोऊ नहीं सिख मानिहै ह्याँ इक श्याम की प्रीति प्रतीति खरी है॥
ये ब्रज-वाला सबै इक सी हरिचन्द जू मण्डलि ही विगरी है।
एक जौ होय तौ ज्ञान सिखाइये कूप ही में इहाँ भाँग परी है॥

सिसुताई अजौं न गई तन तें तऊ जोवन जोति वटोरै लगी।
सुनि कै चरचा हरिचन्द की कान कछूक दै भौंहै मरोरै लगी॥
वचि सासु जेठानिन सों पिय तें दुरि घूंघट में दृग जोरै लगी।
दुलही उलही सब अङ्गन ते दिन द्वै ते पियूष निचोरै लगी॥१३॥

लाज समाज निवारि सबै प्रन प्रेम को प्यारे पसारन दीजिए।
जानन दीजिये लोगन कौं कुलटा कहि मोंहि पुकारन दीजिए॥

त्यौं हरिचन्द सबै भय टारि कैं लालन घूंघट टारन दीजिए।
छोड़ि सकोचन चन्द मुखै भरि लोचन आज निहारन दीजिए॥

कवित्त-

आई गुरु लोग सङ्ग न्यौते ब्रज गाँव नई दुलही सुहाई शोभा अङ्गनि सनी रही। पूछे मनमोहन बतायो सखियन यह सोई राधा प्यारी बृषभान की जनी रही॥ हरीचन्द पास जाय प्यारो ललचायो दीठ लाज की धसी सो मनो हीरकी अनी रही। देखो अनदेखो देख्यो आधो मुख हाय तऊ आधो मुख देखिबे की हौस ही बनी रही॥ १५॥

भूली सी भ्रमी सी चौंकी जकी सी थकी सी गोपी दुखी सी रहत कछू नाहीं सुधि देह की। मोही सी लुभाई कछु मोदक सो खाये सदा बिसरी सी रहै नेक खबर न गेह की॥ रिस भरी रहै कबौं फूलिन समाति अङ्ग हँसि हँसि कहै बात अधिक उमेह की। पूछे ते खिसानी होय ऊतर न आवै तोहि जानी हम जानी है निसानी या स्नेह की॥ १६॥

जिय पै जु होइ अधिकार तौ विचार कीजै लोक लाज भलो बुरो भले निरधारिये। नैन श्रौन कर पग सबै परबस भए उत चलि जात इन्हैं कैसे कै सम्हारिये। हरिचन्द भई सब भाँति सो पराई हम इन्हैं ज्ञान कहि कहो कैसे कै निवारिये। मन मैं रहै जो ताहि दीजिये बिसारि मन आपै बसै जामैं ताहि कैसे कै बिसारिये॥ १७॥

काहु एक ललना जवाहिर खरीदवे को, आई हुती सुगम सुहाय हाट वारे की। कर मैं लिये तै भयो मुक्ता प्रवाल पुनि, गुञ्जा सों देखायो दीठ परी दृग तारे की॥ भनि हरिचन्द मोती चूर सो देखायो फेर, हास्य के परें ते मोल लोल नङ्ग भारे की। बीजक नफा की औ खरीद की विचारे कौन, खबरी भुलानी योंही जौहरी विचारे की॥ १८॥

आई केलि मन्दिर मैं प्रथम नवेली बाल, जोरा जोरी पिय मन-मानिक छुड़ाये लेति। सौ सौ वार पूछे एक उत्तर मसके देती, घूंघट के ओट जोति मुख की दुराये लेति॥ चूमन न देति हरिचन्द भरी लाज अति, सकुचि सकुचि गोरे अङ्गहिं चुराये लेति। गहत ही हाथ नैन नीचे किये आँचर मैं, छवि सों छवीली छोटी छातिन छिपाये लेति॥ १९॥

गोपाललाल।

[स० १६०७]

अब मोपै राम-कृपा कब होय।

भोजन की रुचि जोजन भाजी, नैनन नींद न जोय।
वा बिन मोहिं कछू न सुहावै, लोयन बरसे तोय॥
आगै दौरि-दौरि कर आए, जन-करुणाकर जोय।
मेरी वेर वेर क्यौं कीन्ही, यही अँदेसो मोय॥
कै अब वा बिरदहिं तजि वैठे, कै सुख सौं रहे सोय।
कै मेरे अघ देखि डराने, लीन्हौ बदन लुकोय॥

इन बातन बिसवास न आवै, समरथ साहिब सोय ।
वाके मन की कैसे जानौं, निज मन बैठो खोय ॥
करुना-सागर करुना कीजै, दीजै सब दुख धोय ।
तुम न 'गोपाललाल' की सुनिहौ, और न सुनिहै कोय ॥ १ ॥

रामद्विज ।

[सं० १९०७]

कवित्त—

देन कह्यो तोहि राज दीनो बन कौन काज, मो सी अभागिन आज कोऊ ना जहान मैं। केकई कुमन्त्र साज वशिकै अवधराज, सूबस बसत गाज-पालो है सुथान मैं॥ रामद्विज धारि ताज भरत किलेय राज, सेये जो बुध समाज मुख्य नीतिवान मैं। सहूं ना वियोग दाज छाड़ि कुल कान पाज, सङ्ग चलूं रघुराज विपिन महान मैं॥ १॥

एहो अवधेश अब दीजिये निदेश मोहिं, चन्द्र माहिं चूरिकै निचोरि सुधा लाऊँ मैं। जायके पताल ताल मारि जीति शेषजू कौं, अष्टकुली नागन कौ गनिकै नसाऊँ मैं॥ रामद्विज मण्डियश मारतण्ड मण्डम कौ, प्रबल प्रचण्ड तेज सीतल बनाऊँ मैं। खण्ड यमदण्ड कौं उदण्ड भुजदण्डन सौं, वीर बल बण्ड पौन पूत न कहाऊँ मैं॥ २॥

इन्द्र यम वरुण कुवेर रुद्र देव सवै, करैं जो सहाय तऊ मेघनाद मारिहौं। असुर समूह लेय धावै दशकन्ध अन्ध, फारि कै उदर भुज वीसहु उपारिहौं॥ रामद्विज छाय यश आज रघुराज जू कौ, दैकै विभीषण राज वैरिनकों वारिहौं। रङ्क कै मन्दोदरी निशङ्क हङ्क दे निशान, लङ्ककों उपारि पङ्क वारिधि में गारिहौं॥ ३॥

घूंघट पलक में न पलक छिपावें मुख जोवैं रुख कान्ह कानि कुलकी न धारे हैं। वर वरुनीन तैं चलात पिचकारी भारी, तलित ललाई पट अङ्ग अरुणारे हैं॥ ऊधौ यह ऊधम मच्यो है व्रज धाम धाम, राम अभिराम अश्रु रङ्ग के पनारे हैं। करि वरजोरी सरवोरी से रहत हित, नित-प्रति होरी नैन खेलत हमारे हैं॥ ४॥

ऊमरदान।

[सं० १६०८—१६६०]

छप्पय—

चोखो ओढूं चीर लाल़ माँही लुल़ जावे।
अतर लगाऊँ अङ्ग पाद आगे पुल़ जावे॥
मेंदी देऊँ मुल़क मेल सूं करदे मोल़ी।
दीवाली रे दिवस हिया में ऊठे होल़ी॥

हाथ झटक झिझिकार हँस नाथ न लेऊँ नामजी।
भव भाँड़ इसे भरतार सूं राँड भली ओ रामजी ॥१॥

मड़ियो कुड़ियो मेर सङ्ग सड़ियो न सुहावै।
पड़ियो रहै परेत दैत ज्यूं दाँत दिखावै॥
चोखो भावै चूण कमावण कूंण कमावै।
मेटूं छलबल मूंन खून बिन तलतल खावैं॥
सुखसेज दैणं ढीलो सदा अमल लैणनैं आखतो।
इण श्यामहूंत आछी हुंती राम कँवारी राखतो ॥२॥

हुवे प्रथम धन हाँण घणों तन पाँण घटावे।
कोई न राखे काँण माँण परतीत मिटावें॥
अपजस छावे आँण अवल अवसाँण न आवे।
जाणत होय अजाँण बाँण नर री विसरावे॥
तार तो नहीं सुख तेड़ में पावे दुःख अपार रो।
सार रो बाँण खटके सदा नेह पराई नार रो ॥३॥

कुल नें लागे काट खाट में जूता खावे।
अङ्ग में होय उचाट जाट जोगी बण जावे॥
घर-घर ओघट घाट टाट निस दीह कुटावे।
दिल नहिं लेवे दाट लाट गँज हाट लुटावें॥
निज थाट खोय फीटा निलज साट न बूझे सार री।
आट बाट भागे अकल चाट लगे विभचार री ॥४॥

अजीतसिंह।

[सं० १६०६]

कवित्त-

कहत नसीत आन राजों को अजीत एक, सुकृत करोगे जस लोगे सोही ताको है। कौन के हैं पुत्र त्रिया बन्धु धन कौन को है, कौन के हैं साज राज कौन को इलाको है॥ कौन के हैं सुभट गजराज हय कौन के हैं, दिष्ट देर देखो जब बीज को झपाको है। एक दिन फाको दिन एक है नफाको दिन, एक है वफाको एक सफम सफाको है॥ १॥

चैनसिंह खत्री (हरचरण)।

[सं० १६१०]

कवित्त-

ससी उर वसी सी गरे पहिरे उरवसी सी पिया उर वसी सी छवि देखे दुख सरकि जात। कंचुकी कसीसी बहु उपमा लसी सी रूप सुन्दर धसी सी परजङ्क पै थरकि जात॥ कहै हरचर्न रही चमकि वतीसी प्यारी जामें लगी मीसी हिये सौतिन दरकि जात। भुज में कसी सी सिन्धु गङ्ग ज्यों धसी सी जाके सी सी करिवे में सुधा सीसी सी ढरकि जात॥ १॥

झारखंराम।

[सं० १६१०]

सवैया—

कम्पित गात कहा उतपात न जानि न जात रहौं सचुपाई।
रोम उठै जल अङ्ग छुटै न घटै चख की छिन चञ्चलताई॥
हौं अस द्वै दिन तैं दिकरी सखिरी लखिरी उर माँहि उचाई।
दीजिये धूनी मँगाय दया करि हौं तो गई सुनिये नजराई॥१॥

मुरारिदान (जोधपुर)। ❀

[सं० १८८७]

सवैया—

रावरो दान मुरार भनै जग, वन्दित है कवि कीरति गाई।
मैं हूं अजाचक भूप जोधान को, वीनती माफी की यातैं कराई॥
सज्जन मो अपराध न लेखिये, देखिये रावरे बंश बड़ाई।
धर्म निबाहन को हिन्दवान को, रान रहै तन त्रान सदाई॥१॥

कैसी अली की भली यह बानि है देखिये पीतम ध्यान लगाय कै।
छाक गुलाब मधू सों मुरारि सु बेलि नवेलिन में बिरमाय कै॥
खेलत केतकी जाय जुहीन मैं केलत मालती वृन्द अघाय कै।
आन को जोवत खोवत दौस पै सोवत है नलिनी सँग आय कै॥२॥

❀ इनका जन्म सम्वत् देर से प्राप्त हुआ इसलिये उचित स्थान नहीं दिया जा सका। अगले संस्करण में ठीक कर दिया जायगा। —सम्पादक।

दीनानाथ।

[सं० १६११]

कवित्त—

जानत हौं जोतिस पुरान और वैद्क को जोरि जोरि अच्छर कवित्तन को उच्चरौं। वैठि जानौं सभा माँझ राजा को रिझाइ जानौं शस्त्र बाँधि खेत माँझ शत्रुन सों हौं लरौं॥ राग धरि गाऊँ औ कुदाऊँ घोरे वाग धरि कूप ताल वावरी नेवारन मैं हौं तरौं। दीनवन्धु दीनानाथ एते गुन लिये फिरौं करम न यारी देत ताको मैं कहा करौं॥ १॥

अनीस।

[सं० १६११]

कवित्त—

सुनो हो विटप हम पुहुप तिहारे अहैं राखिहौ हमैं तो शोभा रावरी वढ़ावेंगे। तजिहौ हरपि कै तो विलग न मानै कछु जहाँ जहाँ जैहैं तहाँ दूनो यश गावेंगे॥ सुरन चढ़ेंगे नर सिरनि चढ़ेंगे नित सुकवि 'अनीस' हाथ हाथन विकावेंगे। देश में रहैंगे, परदेश में रहैंगे, काहू भेस में रहैंगे तऊ रावरे कहावेंगे॥ १॥

खेत=युद्धक्षेत्र। विटप=पेड़।

बदरीनारायण चौधरी 'प्रेमघन' ।

[स० १९१२]

दोहा—

सबै विदेसी वस्तु नर , गति रति रीति लखात ।
भारतीयता कछु न अब , भारत मैं दरसात ॥ १ ॥
मनुज भारती देखि कोउ , सकत नहीं पहिचान ।
मुसल्मान, हिन्दू किधौं , कै हैं ये क्रिस्तान ॥ २ ॥
पढ़ि विद्या परदेश की , बुद्धि विदेशी पाय ।
चाल चलन परदेश की , गई इन्हैं अति भाय ॥ ३ ॥
ठटे विदेशी ठाट सब , बनयो देश विदेश ।
सपने हूं जिन मैं न कहु , भारतीयता लेश ॥ ४ ॥
बोलि सकत हिन्दी नहीं , अब मिलि हिन्दू लोग ।
अंगरेजी भाखत करत , अंगरेजी उपभोग ॥ ५ ॥
अंगरेजी बाहन, बसन , वेष रीति ओ नीति ।
अंगरेजी रुचि, गृह, सकल , वस्तु देस विपरीति ॥ ६ ॥
हिन्दुस्तानी नाम सुनि , अब ये सकुचि लजात ।
भारतीय सब बस्तु ही , सों ये हाय ! घिनात ॥ ७ ॥
देश नगर बानक बनो , सब अंगरेजी चाल ।
हाटन मैं देखहु भरो , बस अंगरेजी माल ॥ ८ ॥

पद्य—

कौन भरौसे इत अब रहिये, कुमति आय घर घाली ।
फूट्यो फूट बैर फलि फूल्यो, विधि की कठिन कुचाली ॥

जिन कर नाहिं छड़ी ते करिहै, कहा करद करवाली।
छमा कवच धारी ये विहँसत खाय लात औ गाली॥
जिनसों सम्हल सकत नहिं तन की, धोती ढीली ढाली।
देश प्रबन्ध करहिंगे वे यह कैसी खाम खयाली॥
दास वृत्ति की चाह चहुं दिसि चारहु बरन बढ़ाली।
करत खुशामद झूठ प्रशंसा मानहुं बने डफाली॥

विनायकराव।

[सं० १९१२]

सवैया-

धारिये धीरज धर्म सनातन, सत्य सदा समता न विसारिये।
सारिये भक्ति करोर कलान कै, मत्त मलीन महा मन मारिये॥
मारिये मोह मदादिक मत्सर, गाय गोविन्द गुमानहिं गारिये।
गारिये द्वैत विचार 'विनायक' नायक राम सिया 'चित धारिये॥

आतम ही रथवान प्रमान, शरीरहिं जो रथ रूप बनावै।
बुद्धि बने वर सारथी आय, सु मानस केरि लगाम लगावै॥
इन्द्रिय वाजि जुते जब जाँय, कुचाल सयत्न सुचाल चलावै।
सत्य 'विनायक' विष्णु समीप अपारहि मारग पारसु पावै॥२॥

कलिकाल विहाल किये नरनारि कहूं दुशकाल विरोध अहै।
पुनि फूट परस्पर है न विवेक अजानपने को सञ्चार रहै॥

धरि के मन धीर विचार समेत हमेश रमेश पदाब्ज गहै ।
कवि 'नायक' पार पयोनिधि को रघुनायक नाम अधार लहै ॥३॥

कवित्त—

जनक दुलारी सुकुमारी सुधि पाई पिय, चहत चलन बन इच्छा नरनाह की। उठि अकुलाय घबराय सङ्ग जान हेतु, सकुचति विनय सुनाई चित चाह की ॥ सासु समुझाई राम विविध बुझाई कहि, बन दुखदाई कठिनाई बहु राह की। पति पद प्रेम लखि 'नायक' कहत सत्य, तिया हुती पतिव्रता मानी नाहीं नाह की ॥ ४ ॥

दोहा—

कन्या सुन्दर वर चहै, मातु चहै धनवान ।
पिता कीर्त्तियुत स्वजन कुल, अपर लोग मिष्ठान ॥ ५ ॥
नहिं सराहिये स्वर्ण गिरि, जहँ तरु तरुहि रहाहिं ।
धन्य मलय गिरि जहँ सकल, तहँ चन्दन होइ जाहिं ॥ ६ ॥

प्रतापनारायण मिश्र ।

[सं० १९१३—१९५१]

सवैया—

बूड़ि मरै न समुद्र में हाय, ये नाहक हाथ निछौछे डुबावैं ।
का तजि लाज गराग किये, मुख कारो लिये इतही उत धावैं ॥
नारि दुखारिन पै बज मारे, वृथा बुंदियान के बान चलावैं ।
बीर हैं तौ बल बीरहिं जायकै, बीर बली धुरवा धमकावैं ॥१॥

आसव छाकि खुली छति पै खुलि खेलति जोवन की मतवारी।
गात ही गात अदाही अदा कढ़ै बात ही बात सुधा सुखकारी॥
रङ्ग रचै रस राग अलापि, नचै परताप गरे भुज डारी।
ता छिन छावै अजीब मजा, वजनी घुंघुरू रजनी उजियारी॥२॥

आगे रहे गनिका गजगीध सु तौ अब कोऊ दिखात नहीं है।
पाप परायन ताप भरे परताप समान न आन कहीं हैं॥
हे सुखदायक प्रेमनिधे जग यों तो भले औ बुरे सब ही हैं।
दीन दयाल औ दीन प्रभो, तुम से तुम हीं हम से हम हीं हैं॥३॥

ईश्वरीसिंह चौहान।

[सं० १६१२]

सवैया—

कबहूं नहिं साधी समाधि की रीति न ब्रह्म की जीव में जोति जगी।
कबहूं परजङ्क में अङ्क न लीनी मयङ्कमुखी रस प्रेम पगी॥
कवि ईसुर प्यारी की बातन हूं कबहूं नहिं चित्त को चाह भगी।
यह आयु गई सब हाय वृथा गर सेली लगी न नवेली लगी॥१॥

डस्यो भव व्याल कराल महा उर माँझ उठी विष ज्वाल विशाल।
रही सुधिहू न विहाल भयो न कछू उपचार बनै इहिं काल॥
महा पटु गारुरी आप सुने सुमया करि ताप हरो ततकाल।
दया न करौ दुख दारुण देखि तौ काहि कहावत दीनदयाल॥२॥

नैंक न धीर धरै जियरा कोउ लाखन हू उपचार करो किन।
ईश्वर जानिहैं वेई विथा पहिलैं कबहू यह पीर सही जिन॥
मो मन की गति जाति कही न नसौ जुग की सम बीतत है छिन।
लागत है बिष कन्द बराबर चैत की चाँदनी चन्द्रमुखी बिन॥३॥

हँसि खेलन की चित चाह नहीं परवाह न रागरु रङ्ग की है।
तिय-नेह उमङ्ग न अङ्गन मैं नहिं सञ्चय द्रव्य प्रसङ्ग की है॥
कवि ईश्वर मानहु को नहिं ध्यान पसन्द न वीरता जग की है।
कछु और न साध रही मन मैं इक चाह अबै सतसङ्ग की है॥४॥

कवित्त—

प्रीतम पियारो आय विनती करत चाय, अतिहि लजाय रह्यौ नैन निरमाय है। हाथ जोरि हाहा खाय एरी तुव पाव पत्यौ, तौऊ किहिं भाय तेरे आवत न दाय है॥ ईश्वर हियो तैं एतो कियो है कठोर कहा, हठहि विहाय हठ ठानें रस जाय है। नेह सरसाय उठि उरतैं लगाय लैरी, रिस न जनाय न तौ पाछे पछिताय है॥ ५॥

ला० सीताराम बी० ए० भूप।

[सं० १९१४]

दोषहीन जग मांहि नहिं सकै वस्तु कोउ होई।
लखैं दोष तिय वानि मँह सदा दुष्ट नर लोई॥

लौकिक सज्जन नित कहैं वचन अर्थ अनुसार।
आदि ऋषिन के वचन सँग धावत अर्थ उदार॥
नेह दया औ देह सुख कै मिथिले कुमारि।
त्यागत मोंहि कछु दुःख नहिं पुरजन प्रीति विचारि॥
रह्यो मनोरथ वीज जो दैव नसायो सोइ।
कटी लता जो आदिहीं तहाँ फूल किमि होइ॥

(उत्तर रामचरित से)

चौपाई—

कहुं ब्रजहुं सन कठिन लखाहीं। फूलहु सन कहुं मृदु दरसाहीं॥
जिनके चरित अलौकिक ऐसे। तासु चित्त समुझै कोउ कैसे॥

(नागानन्द से)

अर्जुनदास केडिया।

[सं० १९१४—१९८७]

कवित्त—

सज्जन सुजान जान्यौ सुजन समान जाहि, जान्यौ जसवन्त जस-जोधा जग-जाने को। नृपन वजीर जान्यौ वीरवर हू तें वर, वीररस वीरन कों वीरता वताने को॥ मम्मट औ केसौदास काव्य-अनुरागिन को, रागिन को तूंवुरू गुरू है गूढ़ गाने को। और सव शिष्य जानैं गुरु है गनेसपुरी, मेरे काम-तरु हैं असेष मन-माने को॥ १॥

मञ्जन किए रहैं चमंकै चपला सी चारु, चञ्चलता खञ्जन तें अधिक अपार है। भावै मुख बीरा त्यौं सुहावै नथनी हू नेह, नाह तें लगावै स्यामा सुघर सुढार है॥ नाक की निसेनी देनी भूमि-भोग लागें अङ्ग, होत स्वर-भङ्ग राग-रङ्ग रिझवार है। नैनन निहारि त्यौं बिचारि बार-बार कहे, नारि तरवारि के बिहार इकसार है॥ २॥

पाहन करेजो तिमि हाथ क्यौं न होत नाथ! काटत अनाथ-माथ बचन-बिहीनों के। ब्याधन ज्यौं छनिक सवाद लौं बिना-पराध, मुरगे मयूर अज मेष मृग मीनों के॥ गरल-गिरीस-गाथ जाने बिन बन्हि-बात, देत उदाहरन तपस्वी तनु-खीनों के। पिण्डे-बलिदान-ओट कोटिन करैं ये पाप, मोट यह माथे बँधै मानस-मलीनों के॥ ३॥

सवैया--

आज प्रसून बिछाइ बिराजत राधिका श्रीब्रजराज रसीले।
दोऊ दुहून पै रीझि रहे दुहुं ओर के दौरि कटाछ कटीले॥
हौं अब ही लखि आवति वेनु बजावत गावत गीत सुरीले।
यौं बिलसै बन माँहिं दिएँ गलबाँहिं कदम्ब की छाँहिं छबीले॥४॥

पाय दबाइ सुवाइ के सोवति साथ प्रभात हि जागि जगावै।
पथ्य पियूष से स्वादु सदा उनकी रुचि के सुचि पाक बनावै॥
बात कहै कोउ प्रीतम की तो 'कहा कह्यौ' यौं कहि फेरि कहावै।
प्रान भए परिछाँही फिरै पति दीखत ही दृग भेट चढ़ावै॥५॥

दोहा—

कै धन धनिक कि धनिक धन , तजिहैं अवसि अकूर।
तिहिं धन लौं त्यागत धरम , तिन धनिकन-सिर धूर॥ ६॥
सूम सँचि धरि जात धन , भाग्यवान के हेतु।
दाँत दलत पीसत घिसत , रस रसना ही लेतु॥ ७॥
काटत हू वितरत विमल , परिमल मलयज-मूल।
सींचत हू घृत दूध मधु , सूलहि सृजत बबूल॥ ८॥
प्रकृति न पलटत साधु खल , पाय कुसङ्ग सुसङ्ग।
पङ्क-दोष पद्म न गहत , चन्दन गुन न भुजङ्ग॥ ९॥
अनहित हू जो जगत को , दुर्जन वृश्चिक व्याल।
तजत न, तो हित क्यों तजै , सन्तत सन्त दयाल॥१०॥

अम्बिकादत्त व्यास।

[सं० १९१५—१९५७]

सवैया—

अति सादा सुभाव के साँवरे हौ थिर चञ्चलता तुम रे तन हीं।
गुन औगुन लों तुमरे है भरे कवि अम्बिकादत्त कहा गन हीं॥
कहि कौं धौं अमानत मानत हौ अन जानन जानों सुनो छन हीं।
यह कौतुक कौन पै सीखे लला मन लैहू गये पै बसो मन हीं॥१॥

कवित्त—

द्वैक ही दिना तें है अजब छबि छाई कछु कहि ना सकत कवि मनहू सकानो जात। छाती उकसौहैं त्यों कपोलहू हँसौहैं

जुगनैन तरसौंहैं लखि जीय तरसानो जात॥ रोम रोम माँहि भरमाई धौं लुनाई केती अम्बादत्त हू को हिय हाय ललचानो जात। हेरन हजार गुनी हरिनी की हेरन तें हेरत ही हेरत सु मो मन हिरानो जात॥ २॥

मेघ देस देस नट खट आसा पूरि आये कान्हर लै गूजरी हिंडोर छबि छाकी है। दीप दीप भैरव भये हैं नारि वृन्दन सों ललित सुहाई लीला सारङ्ग छटा की है। श्यामल तमाल कोस कोस लौं कुमोद कीनों अम्बादत्त सोहनी त्यों छाया बदरा की है। कोऊ सुघरई सों श्रीकृष्ण को जु पाओं तब आली या कल्यान की बहार बरसा की है॥ ३॥

चमकि चमाचम रहे हैं मनि गन चारु सोहत चहूंघा धूम धाम धन धाम की। फूल फुलवारी फलफैलि कै फबे हैं तऊ छवि छटकीली यह नाहिन आराम की॥ काया हाड़ चाम की लै राम की बिसारी सुधि जाम की को जानै बात करत हराम की। अम्बादत्त भाखैं अभिलाखें क्यों करत झूठ मूंदि गईं आँखैं तब लाखैं कौन काम की॥ ४॥

लालबिहारी मिश्र 'द्विजराज'।

[सं० १९१५—१९६२]

सवैया—

सिर मौर है मोर के पङ्खन को जिहि सों दिन नाथ छले गये हैं।
दृग लोने मृगान को मान दहै दल नीरज नीरद ले गये हैं॥

तन साँवरो अम्बर पीरो मनौ दुति दामिनी मेघ मले गये हैं।
गुन दै द्विजराज गयन्दन कौ यहि ओर ये कौन चले गये हैं ॥१॥

फरकै लगी खञ्जन सी अँखियाँ मन मौज मनोज हिलोरै लगी।
अँगराय कछू अँगिया की तनी छवि छाकी छिनौ छिन छोरै लगी ॥
चलि जैवे परै द्विजराज कहै भरि भाँवन भौंहै मरोरै लगी।
बतियान मैं आनन्द घोरत सी दिन द्वै ते पियूष निचोरै लगी ॥

सीस पै पाग पराग भरी अनुराग सों माँग छुई सुखदान की।
अम्बर पीलो औ नीलो दुकूल मिले मिलै मेघ प्रभा चपलान की ॥
प्रेम सों पोखे दोऊ द्विजराज कटाछन मैं करनी मुसकान की।
मो हिए कञ्ज कली कै भली रमौ नन्दलला औ लली वृषभान की ॥

मखतूल को झूल परो अगरो सगरो सुखमा सरसावन की।
तहाँ झूलै निसङ्क मयङ्कमुखी औ झुलावती सुन्दरे भावन की ॥
पट पीत प्रभा फहरै छवि सों उपमा समता नहिं गावन की।
अँधियारी निसा छन प्यारी छटा घनकारी घटा झरी सावन की ॥

मति मन्द गयन्दन मन्द किये मुख चन्द की चारुता को निदरै।
सुचि भूखन भूषित अङ्गन मैं छवि सङ्ग दुकूलन अङ्ग भरे ॥
द्विजराज इतै बढि देखिये तौ मद माते मलिन्दन के उगरे।
गुन रूप उजागरी नागरी यों चली आवति गागरी सीस धरे ॥५॥

नाचत केकी अनन्द भरे सुर रागत कोकिला मोद मचाये।
फूल समूहन फूलि रहे सो दुकूल तै देखत ही मन भाये ॥

पौन मनो दल पूरब के द्विजराज निछावरि हेत लुटाये।
बौर को मौर धरे सिर पै ऋतुराज यों आज बना बनि आये॥६॥

करि प्रीति अनीति करै न कहूं पुनि लालहि दीन को ताड़ै नहीं।
द्विजराज कहै करि दान महा पुनि लालच की गली माँड़ै नहीं॥
मन जाय न पाप की पद्धति मैं जुटि जुद्ध मैं विक्रम आड़ै नहीं।
नर किम्मतिवान कहावै सोई समयो परे हिम्मति छाड़ै नहीं॥७॥

विद्रुम से बिससै अधरा अधरान से विद्रुम है असनारे।
दाड़िम विज्जु से दन्त बने तिमि दन्त से दाड़िम विज्जु पियारे॥
आरसी के से कपोल बने द्वि पै द्विजराज सों आरसी तारे।
खञ्जन सी फरकैं अँखियाँ अँखियान तैं खञ्जन कौतुक वारे॥८॥

नवनीत चतुर्वेदी।

[सं० १९१५]

सवैया—

दै दिल ये दिलदारहिं को फिर, बेदिल होय मने मन भाने।
त्यों नवनीत वही उर ध्यान, वही गुन गान वही तन प्राने॥
या बिन और न कोउ हितु जिहि की चरचा कविराज बखाने।
जाने कहा जग जाहिर से पर, प्रीति की रीति रँगीलोइ जाने॥१॥

अब साधि वियोग की घोर समाधि, अनाहद शब्द अनङ्ग सो है।
नवनीत तहाँ हृद के तरु सुन्दर, मोह कुटी मृदु कङ्ग सो है॥

शुचि वल्कल पेरे जबै हित के, गम की गुदरी तन सङ्ग सो है।
जिनके तन प्रीति को रङ्ग चढ़्यो फिर जोग को रङ्ग पतङ्ग सो है॥

ब्रजजीवन-ओठन के तकिया, कर-फूलन सेज बिछावत है।
अति कोमल सुन्दर 'नीत' मनो, अलकावलि पौन डुरावत है॥
अँगुरीन तैं चाँपत पाँव जेई, तू तऊ मन मोह न लावत है।
इतने सुख तैं मतवारी अरी, बँसुरी तोहि नींद न आवत है॥३॥

कवित्त--

अजामील पापी हौ सुरापी ब्रह्म-वंश बीच, पास हू गयौ न कभू, पुन्य परिछाँही के। सदनाँ कसाई का कमाई धर्म ही की करी, तामैं गति पाई भक्त-भाजन भुराही के॥ इन्द्र अभिमानी कामी सुरपुर राज दियौ चन्द्र गुरु-द्रोही भयौ उपमाऽवगाही के। कौन २ बातन की 'नीत' विपरीत कहै जानी जदुनाथ! आप गाहक गुनाही के॥ ४॥

प्रीत पन्थ गहि कै सु लहि कै संजोग सुख, रावरे विजोग दुख पान भजिबो कहा। नवनीत एक प्रान जीवन सुजान ही सो, सुख सरसाय हाय फेरि लजिबो कहा॥ विदित जहान बदनाम की बजी तो भेरि, हेरि दृग देखत को फेरि बजिबो कहा। या तो रङ्ग काहू के न रँगिये प्रवीन प्यारे, रङ्ग तो रँगे ही रहे फेर तजिबो कहा॥ ५॥

भुराही=भोलापन।

नाथूराम 'शंकर'।

[सं० १९१६]

सवैया—

शैल विशाल महीतल फोड़ बढ़े तिन को तुम तोड़ कढ़े हौ।
लै लुड़की जलधार धड़ा धड़ ने धर गोल मटोल गढ़े हौ॥
प्राण विहीन कलेवर धार विराज रहे न लिखे न पढ़े हौ।
हे जड देव शिला सुत शङ्कर भारत पै करि कोप चढ़े हौ॥१॥

अब लौं न चले उस पद्धति पै जिस पैं व्रतशील विनीत गये।
वह आज अचानक सूझ पड़ी भ्रम के दिन बाधक बीत गये॥
प्रभु 'शङ्कर' की सुधि साथ लगी मुख मोड़ हठी विपरीत गये।
चलते चलते हम हार गये पर पाय मनोरथ जीत गये॥२॥

यौवन मान सरोवर में कुच हंस मनोहर खेलन आये।
मोतिन के गल हार निहार अहार विहार मिले मन भाये॥
कंचुकी कुञ्ज पतान की ओट दुरे लट नागिन के डर पाये।
देखि छिपे छिप के पकड़े धर 'शङ्कर' बाल मराल के जाये॥३॥

कवित्त—

ईश गिरिजा को छोड़, यीशु गिरजा में जाय, शङ्कर स्वदेशी लोग मिस्टर कहावेंगे। कोट, पतलून, बूट, हैट कम्फाटर डाट, जाकिट की पाकिट में वाच लटकावेंगे॥ घूमेंगे घमण्डी बने रण्डी का पकड़ हाथ पियेंगे बरण्डी मीट होटल में खावेंगे।

फारसी की छार सी उड़ाय, इंगरेजी पढ़, मानो देवनागरी को नाम ही मिटावेंगे ॥ ४ ॥

आनन की ओर चले आवत चकोर मोर, दौर दौर वार वार वेनी झटकत हैं। वैठ वैठ 'शङ्कर' उरोजन पै राज हंस, हारन के तार तोर तोर पटकत हैं॥ झूम झूम चखन को चूम चूम चञ्च-रीक, लटकी लटन में लिपट लटकत हैं। आज इन वैरिन सौं वन में वचावे कौन, अवला अकेली मैं अनेक अटकत हैं ॥ ५ ॥

देखत की भोरी, मन श्याम, तन गोरी, गारी देत कोरी कोरी गोरी नेक न सकाति हो। मेरी गेंद चोरी, तातैं ऐसी सीना जोरी रिस थोरी करो, 'शङ्कर' किशोरी क्यों रिसाति हो॥ खोल के गहावो, नहीं चोली दिखलावो, जो न होय घर जावो, आवो काहे सतराति हो। सारी सरकावो, अँचरा में न दुरावो, लावो, कंचुकी में कन्दुक चुराये कहाँ जाति हो ॥ ६ ॥

मङ्गल करन हारे कोमल चरण चारु, मङ्गल से मान मही गोद में धरत जात। पङ्कज की पाँखुरी से आँगुरी अंगूठन की, जाया पञ्चवाण जी की भँवरी भरत जात॥ 'शङ्कर' निरख नख नग से नखत श्रेणी, अम्बर सों छूट छूट पायन परत जात। चाँदनी में चाँदनी के फूलन की चाँदनी पै, हौले हौले हंसन की हाँसी सी करत जात ॥ ७ ॥

सास ने वुलाई घर वाहर की आई, सो लुगाइन की भीर मेरौ घूंघट उघारै लगी। एक तिन में को तृण तोरि तोरि डारै लगी, दूसरी सरैया राई नौन की उतारै लगी॥ 'शङ्कर' जेठानी

बार बार कछु वारै लगी, मोद मढ़ी ननदी अटोक टोना टारै लगी। आली पर साँपिन सी सौति फुसकारै लगी, हेरि मुख हा! कर, निशाकर निहारै लगी॥ ८॥

तेज न रहेगा तेजधारियों का नाम को भी, मङ्गल मयङ्क मन्द मन्द पड़ जायँगे। मीन बिन मारे मर जायँगे सरोवर में, डूब डूब 'शङ्कर' सरोज सड़ जायँगे॥ चौंक चौंक चारों ओर चौकड़ी भरेंगे मृग, खञ्जन खिलाड़ियों के पङ्ख झड़ जायँगे। बोलो इन अँखियों की होड़ करने को अब, कौन से अड़ीले उपमान अड़ जायँगे॥ ९॥

आँख से न आँख लड़ जाय इसी कारण से, भिन्नता की भीत करतार ने लगाई है। नाक में निवास करने को कुटी शङ्कर की, छवि ने छपाकर की छाती पै छवाई है॥ कौन मान लेगा कीर-तुण्ड की कठोरता में, कोमलता तिल के प्रसून की समाई है। सैकड़ों नकीले कवि खोज खोज हारे पर, ऐसी नासिका की और उपमा न पाई है॥ १०॥

जगन्नाथप्रसाद भानु।

[सं० १९१६]

ब्रजललना जसुदा सों कहती, अर्ज सुनो इक नंदरानी।
लाल तुम्हारे पनघट रोकैं, नहीं भरन पावत पानी॥
दान अनोखो हम सों माँगै, करैं फजीहत मनमानी।
भयो कठिन अब ब्रज को बसिबो जतन करौ कछु महरानी॥

हंडुलि सीस गिरि ठननननन मोरी, तुचक पुचक कहुं ढरकानी।
चुरियाँ खनकीं खननननन मोरी, करक करक भुइं बिखरानी॥
पायजेब बज छननननन मोरी, टूट टूट सब छहरानी।
बिछियाँ झनकें झननननन मोरी, हेरतहु नहिं दिखरानी॥
लाल न बरजो ना कछु तरजो, करौ कछू ना निगरानी।
जाइ कहेंगी नन्द बबा से, न्याव कछुक देहैं छानी॥
कहि सकुचानी दृग ललचानी, जसुदा मन की पहिचानी।
बड़ी सयानी अवसर जानी, बोली बानी नय सानी॥
भरमानी घरबर बिसरानी, फिरौ अरी क्यों इतरानी।
अबै लाल मेरो बारो भोरो, तुम मदमाती बौरानी॥
दीवानी सम पाछै डोलौ, लाज न कछु तुम उर आनी।
जाव जाव घर जेठन के ढिग, उचित न अस कहिबो बानी॥
उतते आये कुंवर कन्हाई, लखी मातु कछु घबरानी।
कह्यो मातु ये झूठी सब मुंहि, पकर लेति बालक जानी॥
माखन मुख बरजोरी मेलत, चूमि कपोलन गहि पानी।
नाच अनेकन मोंहि नचावैं, रङ्ग तरङ्गन सरसानी॥
ए मैया मूंहि दै दै गुलचा, बडी करत हैं हैरानी।
कोउ कहै मोरि गैया दुहिदे, साँझ बेर अब नियरानी॥
कोउ देवन सों बर बर माँगैं, बार बार हिय लपटानी।
जस तस कर जो भागन चाहूं, दूजी आय गहत पानी॥
भागतहू ना पाछो छाड़ैं, बड़ी हठीली गुनमानी।
मुंहिं पहिरावत लहँगा लुगरा, पहिरि चीर कोई मरदानी॥

थेइ थेइ थेइ मुंहिं नाच नचावत, नित्य नेम मन मँह ठानी ।
मन मोहन की मीठी मीठी, सुनत बात सब मुलकानी ॥
सुनि सुनि बतियाँ नन्दलाल की, प्रेम फन्द सब उरझानी ।
मन हर लीनो नटनागर प्रभु, भूलि उरहनो पछितानी ॥
मातु लियो गर लाय लाल को, तपन हिये की सियरानी ।
भानु निरखि तब बालकृष्ण छवि, गोपि गई घर हरखानी ॥

श्रीधर पाठक ।

[अनु० सं० १६१६]

सवैया—

काली घटा का घमण्ड घटा, नभ-मण्डल तारक-वृन्द खिले ।
उजियाली निशा, छबि शाली दिशा, अति सोहै धरातल फूले फले ॥
निखरे सुथरे बन पन्थ खुले, तरु पल्लव चन्द्र-कला से धुले ।
बन शारदी-चन्द्रिका-चादर ओढ़ैं, लसैं समलंकृत कैसे भले ॥१॥

मेहन की धुनि को सुनिबे कों सनेह सने हिय माँहि सुखारे ।
सोहैं सलोने-सरूप-सजे पख चित्रित चन्द्रिका चारु सँवारे ॥
प्रेम अलिङ्गन चुम्बन में रत जोबन के मद में मतवारे ।
नाचन लागे प्रिये ! मुरवा गन बागन में बन में अब प्यारे ॥२॥

सुचि सूहे कसूमी दुकूलन सों सो नितम्ब के कूल सजावती हैं ।
पट केसर-भीने सो झीने अतिन्त उरोजन ओपि उढ़ावती हैं ॥
तिन पै सुठि बेला गुलाब-गुथी लट बैनिन की बिथुरावती हैं ।
इमि काम-किलोल-भरी ललना नित नीके बनाव बनावती हैं ॥३॥

चञ्चल जो सफरी फरकैं मनु मंजुल सी कटि किंकिनि-डोरी।
सेत विहङ्गन की सुठि पङ्गति, राजति सुन्दर हार सी गोरी॥
तीर के देश विशाल नितम्ब सु मन्द प्रवाह भई गति थोरी।
सोहति या ऋतु में सरिता गज-गामिनि कामिनि सी रसबोरी॥

दोहा—

निहचै या संसार में, दुर्लभ साँचौ नेह।
नेह जहाँ साँचौ तहाँ, कहाँ प्रान कहाँ देह॥ ५॥
अनियारे आयत बड़े, कजरारे दोउ नैन।
अचक आय जिय में गड़े, काढ़ैं ढीठ कढ़ैं न॥ ६॥
सहज बङ्क-भ्रकुटी-फुरनि, बात करन की बेर।
मृदु निसङ्क बोलनि हँसनि, बसी आय जिय फेर॥ ७॥
चरन-चपल-धरनी-धरनि, फिरनि चारु-दृग-कोर।
सु गढ़ गठनि बैठनि उठनि, त्यों चितवनि चित चोर॥ ८॥
रसना को रस ना मिलै, अनत अहो रसखान।
कान सुनैं नहिं आन गुन, नैन लखैं नहिं आन॥ ९॥

दत्त।

[सं० १९१६]

सवैया—

कै रति रङ्ग रचौ हमसौं मिलि साजि भली विधि सेज समाजा।
कै मुख फेरि इतै हँसि हेरिकै टेरि भलै मृदु बैन सुनाजा॥

त्यों कवि दत्त न भावत मोहि लखे बिन तोहि कछू सुख साजा।
कै अपने उन हाथन लायकै हाय हलाहल घोरि पिलाजा ॥१॥

करिकै सब अङ्ग सिंगार भलैं निकसी रुचि रूप प्रभा धरिकै।
धरिकै पट पाट पै ऐंचि रही रसरी रस रीति हिये भरिकै॥
भरिकै गगरी डगरी हितसौं कवि दत्त गयन्द गती हरिकै।
हरिकै मन मेरौ मयङ्कमुखी गई कोरि कटाक्ष कटा करिकै ॥२॥

चन्दन के चहले मैं परी परी पङ्कज की पखुरी नरमी मैं।
धाय धसी खसखान नहाय निकुञ्जन पुञ्जन में भरमी मैं॥
त्यों कवि दत्त उपाय अनेक किये सगरी सही बेसरमी मैं।
शीतल कौन करै छतियाँ बिन पीतम ग्रीषम की गरमी मैं ॥३॥

कवित्त-

गेह तैं निकसि बैठि बेचत सुमनहार, देह द्युति देखि दीह दामिनि लजा करै। मदन उमङ्ग नव जोबन तरङ्ग उठै, वसन सुरङ्ग अङ्ग भूषण सजा करै॥ दत्त कवि कहै प्रेम पालन प्रवीनन सौं, बोलत अमोल बैन वीन सी बजा करै। गाजव गुजारती बजार मैं नचाय नैन, मंजुल मजेज भरी मालिन मजा करै ॥ ४ ॥

छीन कटि हैलता छिपावति बदन फैरि, हैरति हजारन मैं नैक न हटा करैं। मन्द मन्द हँसति लसति देह दामिनि सी, परम प्रवीन पुञ्ज प्रेम के पटा करैं॥ दत्तकवि कहै उपपति के मिलन हेतु, निपट निशङ्क पनघट पैं डटा करैं। घायल करत पाय पायल बजाय हाय, नैन बान घालिकै कलारिन कटा करैं ॥ ५ ॥

जटा जूट है न वेनी रुचित वनाइ यह, मृगमद कण्ठ ताहि गरल विचारे क्यौं। शशी है न शीश सोहै सुमन समूह स्वच्छ चन्दन को विन्दु नैन अनल निहारै क्यौं॥ दत्त कवि कहै ये तौ अलकैं छुटी हैं वक, भूषण भुजङ्ग जानि रोष उर धारै क्यौं। भसम न अङ्ग पांच विरह धवलताई, धोखे त्रिपुरारि के मनोज मोहि मारे क्यौं॥ ६॥

मूक जाती सौतें सवै दीरघ दिमाग देखि, रसिक विलोक होत विकल निहारै मैं। भरत न भारै थके गारङ्ग विचारे जरी, यन्त्र मन्त्र विविध प्रकार उपचारे मैं॥ दत्त कवि कहै मन धरत न धीर अजौं, कैसे वचैं कुटिल कटाक्ष फुसकारे मैं। विषधर भारे नागकारे नैन कामिनी के, काटि छिपि जात हाय पलक पिटारे मैं॥

सुधाकर द्विवेदी।

[सं० १९१७—१९६७]

सवैया—

कुवरी को वरी जव ते मन मोहन ऊधव जू तव तें जव देखो।
नित शोचत शोच विमोचन को यह लोचन को हरिगो पल लेखौ॥
हरि की लखि रीति यही परतीति मिटाई सो प्रीति न नीति सरेखो
तव हूं हियरा हरि गो हरि हाथ हा प्रीति मिटे हू मिटै न परेखो॥

कवित्त—

मानस मही को जासु तनय मनोज दाह्यो वञ्चक प्रपञ्च करि रञ्चक न वाकी है। उपजी तहाँ पै करि साहस सहस भाँति,

जाति नहिं जानी जाति कौनो भाँति ताकी है॥ आसा चारि फैल एक आसा कौं निहारि रही हारि करि बावरी ही जानै गति जाकी है। बाढ़ति अकेल एक मेल करि प्रेम रस खेल मत जानो यह बेल विरहा की है॥ २॥

दोहा—

बाप चलाई एक मत, बेटा सहस करोर।
भारत को गारत किये, मतवाले बर जोर॥ ३॥
गुन लखि सब कोइ आदरै, गारी धक्का खाय।
कौन पिटाई डुग डुगी, रेल चढ़हु है भाय॥ ४॥
का ब्राह्मन का डोम भर, का जैनी क्रिस्तान।
सत्य बात पर जो रहै, सोई जगत् महान॥ ५॥
जहाँ तार की गति नहीं, अञ्जन हू बेकाम।
तहाँ पियरवा रमि रहा, कौन मिलावै राम॥ ६॥
भाषा चाहै होय जो, गुन गन हैं जा माँहिं।
ताहीं सों उपकार जग, सबै सराहहिं ताहि॥ ७॥

पं० युगलकिशोर मिश्र (ब्रजराज)

[सं० १९१८]

सवैया—

वा मुख चन्द के वै हैं चकोर यऊ मुख-कञ्ज की है रहीं भौंरी।
वै सिर पाग पै मोहित त्यों मन बारत वोऊ लखै शिर मौरी॥

आनँद गेह सनेह सने दोउ भू पर प्रेम प्रतीति की जोरी।
मो मन मैं वसौ भाग भरे अनुराग सरूप किशोर किशोरी ॥१॥

जग जीतनहार मनोज निहारि डर्‌यो अब मो को कहा करनै।
उपज्यो तब ज्ञान तनै वस ह्वै यो अजोग सवै जग मैं वरनै ॥
तुरतै तजि और प्रपञ्च को जाल जञ्जाल को छोरि गह्यो चरनै।
मनौ या भय ते मन मेरो सदा ही रहै शिव शङ्कर की शरनै ॥२॥

समुहात ही मैली प्रभा को धरै नित नूतन आनि न फोसो करै।
सरसी ढिङ्ग जात मुंदेई लजात न या भय सों दृग जोसो करै ॥
व्रजराज चितै नभ ओर कहौं नहिं तू भरमैं यों निहोसो करै।
तऊ आरसी कञ्ज ससी सकुचैं इन सों कव लौं मुख मोसो करै ॥

वारि चुके तन रूप कथा सुनि त्यों मन चित्रहिं के लहिवे पर।
सापने मैं धन वारि दियो पहिराय लला छिंगुनी गहिवे पर ॥
रोंक्यो जु तैं व्रजराजहिं वा दिन दी मुख चूंवन के चहिवे पर।
ना कहिवे पर वारे हैं प्रान कहा अव वारि हैं हाँ कहिवे पर ॥४॥

वा व्रज को लखि वावरो हाल दुसाल हिये न सँभारत ही वन्यो।
आह कराह की दाहन सों चुप ह्वै रहिवो व्रत धारत ही वन्यो ॥
तेरे सन्देस कहैं को सुनै व्रजराज कछू न विचारत ही वन्यो।
जारत ही वन्यो जोग को जाल वियोग को हाल निहारत ही वन्यो ॥

गज ग्राह सों छोरि निवाह कियो मृग सङ्कट को चित लाइए तौ।
व्रज इन्द्र सों भारत मैं भरुही पै करी करुना त्यों वचाइए तौ ॥

अब सङ्ग दुकूल के जाति है लाज अहो ब्रजराज जू आइए तौ।
यहि मूढ़ दुसासन के कर सों उरझो अँचरा सुरझाइए तौ ॥६॥

अलि आजु मरू करि नींद परै पै बढ्यो तनतापन को तपनो।
ब्रजराज जू आनि गह्यो कर मेरो लयो मन मानहीं को जपनो॥
अति रोष की ज्यों परिपाटी सो खैंच्यो लग्यो कर पाटी सो त्यों अपनो
उमगी बिथा औचक जागि परी सपने को मिलाप भयो सपनो॥

मेरे वियोग मैं मेरोई रूप बनावत हैं सोइ भागन भाइगे।
जे अँगराग सदा बनितान के लावत तेई हिये सुख पाइगे॥
ठौर को दोष न दे तू अली बदले सु भली सुखमा तन छाइगे।
रैनि सिंगारन मैं बितई मम भौन मैं भामते भोरहिं आइगे ॥८॥

कवित्त-

जौन वर चौचँद बखान्यो कोविदन है चवायन को तासों ना अरथ निसरत है। ए हो ब्रजराज पद चौचँद को भाव उतै नैनन निहारौ चलि नीके निवरत है॥ आरसी महल मैं टहल रही चन्द-मुखी मुख प्रति बिम्ब चहूं दिसि मैं परत है। मानौ बाएँ दाहिने पिछौहैं सौहैं चारो चन्द चारुता न पावैं ताते चौचँद करत है ॥९॥

सीसा के सदन में सुखावति चिकुर प्यारी ठौर २ घूमि २ सुखमा समेटी है। सब आरसीन मैं परे ते दुति आनन की मेरे मन उपमा विचार भरि भेंटी है॥ एहो ब्रजराज लखौ आनि सो लखाऊँ तुम्हैं भाखत बनै न बानि रसना ससेटी है। मानौ राहु घेर बर बैर बारिबे को यक ठौर कलानिधि कोरि करत कमेटी है॥

सोने पग पैंजनी मढ़ाय चोंच सोन ही सों सोने के अवास वास तेरो अभिलाखौंगी। सोने थार भोजन पियाय पय सोने जाम सोनचिरी जोरी हेत ब्यौंत करि राखौंगी॥ जो पै व्रजराज कान आनि है न थानि तू प्रभात जानिवे की तौ न नेकु मन माखौंगी। पच्छी ह्वै कै पच्छी तू विपच्छिन विपच्छी करु एरे तामचूर सोनचूर तोहिं भाखौंगी॥ ११॥

कविन सिंगार को सरूप करि मान्यौ तुम्हैं साँवरे विचारि ताकी उपमा दिये के हौ। भादों की अन्ध्यारी में जनमि अध-राति आये नन्द के अजिर याते चोरि हू किये के हौ॥ साँवरे के साथी सदा जाहिर जगत अरु विषधर साँवरे की गोद में लिये के हौ। साँवरी करत औरै ऊपर के साँवरे हौ साँवरे सुजान तुम साँवरे हिये के हौ॥ १२॥

आज व्रजराज रङ्ग भौन में रसीली सङ्ग रीति की कलान करि जीति पञ्चसर को। कीचे विपरीति को कहत पै न लाजन ते आनन उठावै वाल दीन्हें दीठि तर को॥ लाग्यो कर आपने मैं चिवुक प्रिया को चारु मेरे मन भाव उपमा को यही अरको। ईश शीश नैन को नगीची मानि मैन मानो कौंल मैं रसाल फल देत हिमकर को॥ १३॥

फाग अनुराग भरे खेलत रसिक दोऊ नूतन सोहाग भाग गोकुल नगर को। पहिले गुलाव की चलाई पिचकारी चारु आनन तिया को तर कीन्हों दुति वर को॥ फेरि तापै उज्वल अवीर हू की मेलि मूठि भाव व्रजराज ठानि दीन्हों हर वर को।

सुखमा समूह की अवधि अधिकानो मानो पूनो चन्द ह्वै गयो पखान मर मर को ॥ १४ ॥

आगम अनागम समागम को रीतो सुख बीतो संकलप विकलप उर धारै लगी। सोचन संकोचन सों लोचन मृगी सों बिबि लोचन सों मोचन वियोग जल धारै लगी॥ राज ब्रजराज को न आज इत आवन भो जानि कै अकाज साज अङ्गन उतारै लगी। अलिन रिसाकर निसाकर मुखी सो खोलि रङ्ग भूमि सौकर निसाकर निहारै लगी ॥ १५ ॥

नारिन के कारज करि जानति न नीके तैं अनारिन के साथ सीखे कारज अनारी के। गाढ़े करि छान्यो लाख लाखिमा मिलान्यो रह्यो हाय! कैसे लेख लिखे निपट गँवारी के। रङ्गन सुरङ्ग लसै गहिरी ललाई अति सुलुप सुठारि अङ्ग सङ्गिनि हमारी के। हा! हा! हठि नाइनि निहारु तौ निहोरे लेखु जावक के भार पग उठत न प्यारी के॥ १६ ॥

खोयो मन उनको मिल्यो सो तुमरे ई हिये जब अपनायो तब उनको सिरानी गात। फेरि मन तुम हूं गँवायो सोऽब पायो हम जानी कहूं होत है न अपनो विरानो तात॥ भाल लाल जावक लै तुम ब्रजराज आये रजनी बिताय जब जान्यो कै निरानो प्रात। रूप अनुरूप मुख रावरो विलोकि अजू हेरत ही हेरत सो मो मन हिरानो जात॥ १७ ॥

नैन श्रुति माँझ मैं लगाय आँगुरीन नापि जूरे की घरी २ सँभारै रहै खिसकन। खेल गुड़ियान को सुहात न सुहात अलि

खेलति सखीजन के सङ्ग हेरि हिसकन॥ मोहन की बाँसुरी सुनत अनखाति पै सुहात कछु जी मैं तौ सुनति वाही चिसकन। अञ्चर उतारि वङ्क दीठि कै ससङ्क फेरि उरज उठौ हैं लखि २ लागी सिसकन॥ १८॥

गणेशपुरी 'पद्ममेश'। *

[सं० १८८३]

कवित्त-

दावा अरु धावा दुर्गदास को दिखावा जग, रान पास आवा साथ पावा सूर सत्ता सो। जावा अमरेस को बखानै सब देत पै न आवा बन्यौ मारि मस्रो मीर रोस रत्ता सो॥ आवा शिवराज को न जावा बन्यौ जैसी विधि, यहै म्लेच्छ मुच्छ काट लावा मोद मत्ता सो। दावा रान पत्ता सो न धावा रान पत्ता सो न जावा रान पत्ता सो न आवा रान पत्ता सो॥ १॥

जगत् में दावा करना व धावा देना दुर्गादास का प्रसिद्ध है, परन्तु बादशाह स्वयं सेना के साथ महाराणा के ही पास आया। ऐसे ही जाना अमरसिंह का विख्यात है। पर वह वहाँ ही काम आये और निज वीरता से आ न सके। इसी तरह शिवाजी का आना प्रख्यात है परन्तु उनका आना वीरता से नहीं हुआ और यह महाराणा प्रसन्नता से ही बादशाह की मूछ तक काट लाया। अतः महाराणा प्रतापसिंह के समान दावा, धावा, जाना और आना किसी का भी नहीं हुआ॥ १॥

---

* इनका समय देर से उपलब्ध हुआ अतः उचित स्थान नहीं दिया जा सका। अगले संस्करण में ठीक कर दिया जायगा। —सम्पादक।

बाढ़ी बीर हाक हर डाक भुत्र चाक चढ़ी, ताक ताक रही हूर छाक चहुं कोद मैं। बोलिकै कुबोल हय तोल बहलोल खाँ पै, बागो आन कत्ता रान पत्ता को विनोद मैं॥ टोप कटि टोटी लाल टोपा कटि पीत पट, सीस कटि अङ्ग मिली उपमा सु मोद मैं। राहू गोद मङ्गल की मङ्गल गुरू की गोद, गुरू गोद चन्द की चन्द रवि गोद मैं॥ २॥

चारों ओर शूर वीरों की हाक बढ़ी महादेव की डाक (वाद्य विशेष) वीरों का उत्साह बढ़ाने लगी, भूमि चक्र पर चढ़ी और अप्सराएँ तृप्त होकर चारों ओर देखने लगीं। ऐसे समय में अश्व को सम्हाल कर कटु वचन बोलते हुए महाराणा प्रतापसिंह ने विनोद में मुगल बहलोल खाँ पर अपना कत्ता (खड्ग) चलाया जिससे उसका टोपा कट कर नीचे की लाल टोपी टोपा पीला कपड़ा शिर और शरीर तक कट गया। उस समय आनन्द में क्रम से ऐसी उपमा प्रतीत हुई कि, मानो श्याम वर्ण राहु रक्तवर्ण मङ्गल की गोद में, मङ्गल पीत वर्ण बृहस्पति की गोद में, बृहस्पति स्वच्छ चन्द्रमा की गोद में और चन्द्रमा ओजस्वी सूर्य की गोद में हों॥ २॥

बाहन अभूत, ध्वज, सूत, धनु, पूत पुनि, छात्र सुन पाती छबि सात्यकी सुहाये की। भीष्म जय-भौन द्रढ़ द्रौनी, द्रोन, कर्न, कृप, कौन गौन कीर्ति नां बिराट जीत आये की?॥ तात सुख-व्रात कीनौं, बरम निवात बुध, बीरता विख्यात है किरीटी नाम पाये की। दान की लहर की तौ लहर दुरूह देखौ, प्रात की पहर गी ठहर रवि-जाये की॥ ३॥

अर्जुन के बाहन, केतु, सारथी, धनुष, पुत्र (अभिमन्यु) ये सब अपूर्व थे और शिष्य सातकी भी अद्भुत था। भीष्म जय का घर था। अश्वत्थामा,

द्रोण, कर्ण, कृपाचार्य, ये मजबूत थे। इन सब को विराट नगर में जीत कर आये हुए (अर्जुन) की कीर्त्ति कौन से प्रयाण में नहीं हुई, अर्थात जहाँ गया वहाँ ही हुई। इन्द्र के लिये सुखों का समूह किया वर्मनिवात नामक राक्षस को मार के। मुकुट पाने से उसका नाम किरीट हुआ। उसकी वीरता प्रसिद्ध है। इन बातों से वीरता तो अर्जुन की अधिक पाई जाती है परन्तु कठिनता से विचार में आवे ऐसी प्रातःकाल की प्रहर कर्ण की स्थित हो गई। सब लोग प्रातःकाल को राजा कर्ण का समय कहते हैं, अर्जुन का नहीं।

तोर पिता तोर तोर पुत्र तोर पौत्र मुख, निज कर धोये ताहि रुधिर धुवायौ तैं। 'चन्द सु खिलौना देहु' रोय-रोय मांग्यौ तिन्हैं, ज्यौं त्यौं तुष्ट कीने, शोक-अंसुन रुवायौ तैं॥ जिनकी अनीति जान, स्वप्न हू मैं कोध आन, पान न छुवायौ नर-बानन छुवायौ तैं। जाने हित जोर उर-सेज पै सुवायौ भूप! ताको हित तोर सर-सेज पै सुवायौ तैं॥ ४॥

तेरे पिता का, तेरा, तेरे पुत्रों के और तेरे पौत्र का मुख अपने हाथों से धोया उस भीष्म का मुख तैंने लोही से धुवाया। रो-रो कर जिन्होंने चाँद खिलौना माँगा उनको जैसे तैसे भीष्म ने प्रसन्न किया, रोने नहीं दिया। उस भीष्म को तैंने शोकाश्रुओं से रुलाया। तेरे पिता विचित्रवीर्य आदि की अनीति को समझ कर स्वप्न में भी क्रोध लाकर हाथ नहीं छुवाया उस भीष्म को तैंने अर्जुन के बाणों से छुवाया। जिसने स्नेह एकत्र करके अपनी छाती रूप शय्या पर तुझे सुलाया उस भीष्म को हित तोड़ कर तैंने तीरों की शय्या पर सुलाया॥ ४॥

दोहा-

कुण्डल जिय-रक्षा करन , कवच करन जय वार।
करन दान आहव करन , करन-करन बलिहार॥ ५॥

जी की रक्षा करने वाले कुण्डल और जय करने वाले कवच, इनका दान करने वाले और युद्ध करने वाले कर्ण के हाथों की बलिहारी है ॥ ५ ॥

शिव सम्पति।

[सं० १९२०]

सवैया—

जा तिय को अति उत्तम रूप बनायहु ता तिय को पति हीना।
जौ मनभावन छैल दई पुनि तौ तिय ही को कुरूपिनि कीना॥
जौ बहु रूप दई दुहुं को पुनि तौ कलपावत पुत्र बिहीना।
तीनहुं जाहि दयी शिवसम्पति जू विधि ताहि दरिद्रता दीना॥१॥

दोहा—

धर्म करो मन क्यों परो, कहो कुमति के धन्ध।
का करिहौ चलिहौ जबै, मूढ़! चारि के कन्ध॥ २॥
रे मन, नित रहिहै नहीं, तरुनापन अभिलाख।
चार दिना की चाँदनी, फिर अँधियारा पाख॥ ३॥
लह्यो न सुख जग ब्रह्म को, धर्यो न हिय में ध्यान।
घर को भयो न घाट को, जिमि धोबी को स्वान॥ ४॥
सुबह साँझ के फेर में, गुजरी उमर तमाम।
द्विविधा मँह खोये दऊ, माया मिली न राम॥ ५॥
विषै भोग की आस में, सब दिन दियो बिताय।
रे मन, करिहै काह अब, पीरी पहुंची आय॥ ६॥

चतुरानन की चूक सब , कहलों कहिये गाय।
सतुआ मिलै न सन्त को , गनिका लुचुई खाय॥ ७॥

रामकुमार।

[सं० १९२०]

सवैया-

कुल कानि बिसारि दई सगरी गुरु लोगन तें सकुचानों परयो।
अविवेक कहा कहिये अपनौ मनि मानक दै पछितानों परयो॥
बिरहानल तापन सौं तपि के निश द्यौस खरौ अकुलानों परयो।
तुमसौं नवनेह लगाय हमैं अँसुवान के मेह मैं न्हानों परयो॥१॥

लालदास।

[सं० १९२०—१९८२]

सवैया-

मोह मही परिपूरण जो ममता मथनी जिन खेलत फोरी।
तर्जन कालीय व्याल सो काल तथा अघ भर्जन कर्म करोरी॥
द्वन्द महा यमलार्जुन तोरन अर्जुन मित्र समान सजोरी।
सम्पति सर्जन पूरण फर्जन श्री गुरु अर्जुन वन्दन मोरी॥१॥

पञ्च विषै विष मूर्च्छित प्रानन दे सत ज्ञान सजीवन गोरी।
दास अनेक उधार दिये तरणी सुत पास अचानक तोरी॥

कामरु क्रोध अमित्र कलेश हस्यो उपदेश लगाय ठुगोरी।
सम्पति सर्जन पूरण फर्जन श्री गुरु अर्जुन वन्दन मोरी ॥२॥

चेतन ब्रह्म जु चिन्तन तें चित्त की चिर चञ्चलता चट चोरी।
या मन मत्त मतङ्गज ते शुभ काम लियो जिन कान मरोरी॥
बूड़त ही भव सागर बीच बचाय लियो शिष काँ वरजोरी॥
सम्पति सर्जन पूरण फर्जन श्री गुरु अर्जुन वन्दन मोरी ॥३॥

जो जन आन पस्यो सरनै दश जोजन दूर रहै अघ दोरी।
प्रेतन की मगदूर कहा पन अन्तक हू न करै अनखोरी॥
जो अनजान करै जम चूक लगे गुरु फूंक जरै तन होरी।
सम्पति सर्जन पूरण फर्जन श्री गुरु अर्जुन वन्दन मोरी ॥४॥

चन्द्रकला।

[सं० १९२०]

सवैया—

जो अति दुर्लभ देवन कौं तन मानुष सो निज पुण्यन पावै।
इन्द्रिन के सुख मैं लय होय जु ईश्वर ओर न नैंक लखावै॥
चन्द्रकला धिक है तिहिं जीवन नारि सुतादिक मैं मन लावै।
है मतिहीन प्रवीन बन्यौं वह काच के लालच लाल गमावै ॥१॥

सीतहि लेय महाधन देय करौ हित राम रमेश हरी है।
जो नहिं मानहुगे मति मोर तु आपति भीति अथाह भरी है॥

चन्द्रकला तुम हौ न कछू उन वालि महा वल मृत्यु करी है ।
रावण नारि कहै पियसौं सिय ह्याँ विषवेलि प्रचम्भ परी है ॥२॥

नखतैं सिखलौं सब साजि सिंगार छटा छवि की कहि जात नही ।
सँग लाय अलीन लली ललचाय चली पिय पास महा उमही ॥
कहि चन्द्रकला मग आवत ही लखि दौरि पिया तिह बाँह गही ।
नहिं बोलि सकी सरमाय लली हरषाय हियै मुसक्याय रही ॥३॥

बाजत ताल मृदङ्ग उपङ्ग उमङ्ग भरी सखियाँ रस बोरी ।
साथ लिये पिचकी कर माँहि फिरैं चहुंधा भरि केसर कोरी ॥
चन्द्रकला छिरके रङ्ग अङ्गन आपस माँहि करैं चितचोरी ।
श्रीवृषभानु महीपति मन्दिर लाल लली मिलि खेलत होरी ॥४॥

कपिनाथ महा वल वालि नशाय, कस्यो कपिराज सुकण्ड सुभाती ।
दल बानर भालन को सँग लेय गये निरखी अति लङ्क कपाती ॥
कहि चन्द्रकला हनि रावन कौं बुलवाय लई सिय ही हरषाती ।
मुसकावत बाल विनोद भरी जब ही जब राम लगावत छाती ॥

ध्यान करै तुम्हरो निसिवासर नाम तुम्हार रटै विसरै ना ।
गावत है गुन प्रेमपगी मग जोवत है छिन दीठि टरै ना ॥
चन्द्रकला वृषभानु-सुता अति छीन भई तन दीख परै ना ।
वेग चलो न विलम्ब करो अति व्याकुल है वह धीर धरै ना ॥६॥

कानन मूंदि रहो निसि वासर, आन उपाय न व्याधि टरैगी ।
कै धसि भौनन वैठि रहौ न तु, दामिनि सी उर आय अरैगी ॥

'चन्द्रकला' किल चूकि चले पर, आय व्यथा सब शीश परैगी।
नींद छुधा तिस हू नसिहैं कहुं, बाँसुरी तान जो कान परैगी ॥७॥

कवित्त—

एक बार आलिन कौं सङ्ग ले सलौनी बाल, सूरजसुता के तीर कोऊ ना जिते रहैं। करि असनान चीर पहरि सुढार अति ताको मुख देखि कौंल छबि कौं रितै रहैं॥ चन्द्रकला ताही समै आगये अचानक ही, प्यारे मनमोहन हू भरि जोहिते रहैं। इक टक होइ देखि राधिका के आनन कौं, चित्र के लिखे से घरी चार लौं चितै रहैं॥ ८॥

देखी एक बाल आज न्हावती जमुन जाकै, भाल भौंह अर्ध चन्द्र धनु निदरत हैं। नैन देखि मीन कञ्ज खञ्जन कौं दुःख होत, नासिका कपोल उर मोर बिचरत हैं॥ 'चन्द्रकला' पूरन कलाधर सो आनन हैं, चिबुक अधर दन्त मनकौं हरत हैं। कौन भाँति कबधौं मिलैगी वह मोहि जाके, उरोज अमोल गोल घायल करत हैं॥ ९॥

आइ होत प्रातही पठाइ कुल लोगन की, जैहों दधि बेचि धाम यामें मोर सारौ ना। तुम सजि होरी साज लीनी मोहि घेरि आज, ह्वै है मों अकाज लाज राखौ गाज पारौ ना॥ 'चन्द्रकला' सासु सौति ननद जिठानी सदा, रावरो ही नाम लै दबात खात टारौ ना। यातें तन लेय मुख बिनती बिशाल करौं, पाय परौं हाहा लाल मो पै रङ्ग डारौ ना॥ १०॥

रामनाथ।

[सं० १९२०]

सवैया-

सिंहन त्यागि दियो पल भोजन बालक के बल ने गज टाल्यो।
सागर जन्तु तृषातुर नाशत वात प्रवाह हराचल हाल्यो॥
बैठि रह्यो थिर होय प्रभंजन दीप-शिखा कनकाचल गाल्यो।
है यह मिथ्या बात कहैं कोऊ पूरब को रवि-स्यन्दन चाल्यो॥१॥

होत प्रभात विवेकिन कौं बुलवाय कहैं धृतराष्ट्र सुबैना।
काल्हि भलि विधि सों सुख संजुत सोवत बीति गई सब रैना॥
पै घटिका चवकै तरकै अस स्वप्न भयो कस है फल दैना।
सोंचि विचारि कहो मुनि नायक कञ्ज लखे नभ मैं चिन नैना॥२॥

कवित्त-

जमुना के तीर नीर भरन गई ही तहाँ, तुमहि निहारि लगे नैन हित चोरी के। तलफत तबहीं तें सूके जल सफरीं लौं, ज्वर मैं जरत गात बैस अति चोरी के॥ रामनाथ हाल चलि तासु हाल लाल लखौ, न तु पछितैहो चलि जैहैं प्रान भोरी के। चैन है न रैनदिन पलहू परे न कल छिन हू लगै न नैन नवल किशोरी के॥ ३॥

ऐरी वृषभानु की कुमारी सुकुमारी तेरी दीठि अनियारी नै दबायो दिल दौरि कै। हाँसी हरखाय भुलवाय वर बैनन सै, बसमें बसाय ताहि नासा नैक मोरि कै॥ रामनाथ कीनौं कछु

टोना सो भ्रमाय भौंह, लीनो मोलि मोर वारी वेसरि मैं जोरि कै। नन्द के कुमार बृन्दा विपिन विहारी पर ज़ुलुम करौ न जाल ज़ुलफन छोरि कै ॥ ४ ॥

सुनि के सघन घन घोर चहुं ओरन तैं चातक चकोर वक अमित हुलासी हैं। प्रकटे अनेक जीव शस्य परिपूर खेत केतकि कदम्ब कुन्द फूले सुखरासी हैं ॥ केकिन की बानी मन मोहै अति रामनाथ सबठाँ बरषि वारि तपन विनासी है। करत त्रिशेष दूर प्राणिन की प्यास पर वरषा वियोगिन के प्राणन की प्यासी हैं ॥ ५ ॥

महावीरप्रसाद द्विवेदी ।

[सं० १६२१]

ग्रन्थकार-लक्षण ।

एक प्रवासी ज्ञान-निधान,
तीर्थराज-वासी गुणवान ।
बुद्धि-राशि विद्या का वारिधि, पास हमारे आया है ।
नाना कथा नवीन नवीन,
कहने में वह महा प्रवीन ।
ग्रन्थकार माहात्म्य मनोहर, उसने हमैं सुनाया है ॥
सुनकर वह माहात्म्य अपार,
सोच समझ कर भले प्रकार ।
परमानन्द रूप-नद में मन बहता है लहराता है ।

इसका ही लेकर आधार,
निज वचनों पर कर विस्तार।
लक्षण-मात्र ग्रन्थकारों का यहाँ सुनाया जाता है ॥

शब्द-शास्त्र है किसका नाम ?
इस झगड़े से जिन्हें न काम।
नहीं विराम-चिह्न तक रखना जिन लोगों को आता है।
इधर उधर से जोर बटोर,
लिखते हैं जो तोड़ मरोड़।
इस प्रदेश में वे ही सज्जन ग्रन्थकार कहलाते हैं ॥

भला बुरा छपवाये सिद्ध,
धन न सही नाम ही प्रसिद्ध।
नाटक, उपन्यास लिखने में जरा न जो सकुचाते हैं।
जिनके नाच कूद का सार,
बँगला भाषा का भण्डार।
वे ही महा-महिम-विद्वज्जन ग्रन्थकार कहलाते हैं ॥

ए० बी० सी० डी० का भी ज्ञान,
जिनको अच्छी भाँति हुआ न।
अंगरेजी उद्धृत करने में किन्तु न जो सरमाते हैं।
ऐसे विद्या बुद्धि निधान,
जिनका बड़ा मान सम्मान।
निश्चय वे ही परम प्रतिष्ठित ग्रन्थकार कहलाते हैं ॥

अपनी पुस्तक की सानन्द,
स्वयं समीक्षा लिख स्वच्छन्द।
अन्य नाम से अखबारों में जो शत बार छपाते है।
निज मुख से जो गुण विस्तार,
करते सदा पुकार पुकार।
ग्रन्थकार-पद-योग्य सर्वथा वे ही समझे जाते हैं॥

बा॰ राधाकृष्णदास।

[सं० १९२२—१९६४]

सोरठा-

धन तुव हृदय प्रताप, तजे सबै जग के सुखनि।
सहस दुसह सन्ताप, पै न तजत निज धर्म हठ॥ १॥
बूड़े राज-समाज, दिल्ली यवन समुद्र मैं।
आरज गौरव लाज, इक राखी परताप तुम॥ २॥
अकबर परम प्रवीन, राजपूत दागिल किये।
इक मिवार दागी न, तुव प्रताप बल कारनै॥ ३॥
दिल्ली रूप बजार, बिकी सबै कुल कामिनी।
वीर रहे सिर डार, राणावत ही इक बची॥ ४॥
क्षत्र क्षेत्र निःछत्र, भयो होत निहचय कबै।
जौ न धरत सिर छत्र, परम हठी परताप सिंह॥ ५॥
खोये राज समाज, असन बसन खोये सबै।
खोये सब सुख साज, पै राखी जातीयता॥ ६॥

लै परताप उछङ्ग, जननी जन्म सुफल भयो।
अकबर काल भुअङ्ग, कुचले फन जिन पग तरे॥ ७॥
जदपि न राज समाज, फिरत सहत दुख वनहिं बन।
तउ न तजी कुल लाज, विमल कीर्त्ति छाई जगत॥ ८॥
सबै अचम्भौ होय, कौन सहाय प्रताप को।
साँच सहायक कोय, वीर हृदय असि वीर सम॥ ९॥
अब लौं तजी न टेक, धर्म मान स्वाधीनता।
डिगन दियो नहिं नेक, अभिमानी परताप नै॥१०॥
सुनत हाय कछु आज, प्रलय होन चाहत कहा।
राना छोड़त लाज, झुकत जु अकबर सामुहे॥११॥
दिल्ली के दरबार, झुकि है सर मेवार को।
दिल्ली रूप बजार, शोभित राणावत करै॥१२॥
जननि धरित्री हाय, क्यों न फटत तू तुरत ही।
पृथ्वीराज समाय, सुनै न फिर ये दुखद बच॥१३॥
देखु प्रताप विचारि, नासमान संसार यह।
यह जीवन दिन चारि, क्यों सुख हित कीरति तजत॥१४॥
देखौ साँचे वीर, एक आस गुन तुव गहे।
जीयत धारि जिय धीर, सो आशा जिन तोरिये॥१५॥
वह दिन द्वै सुख काज, कीरति अक्षय जिन तजहु।
क्षत्रिय लाज जहाज, यवन समुद्र न बोरिये॥१६॥
जो पवित्र तर मान, रच्छयो सहि सहि असह दुख।
सो न दीजिये जान, दिल्ली की बाजार मैं॥१७॥

सिला सिला टकराय , टूक टूक रोटी बिना ।
भूखन किन मरि जाय , सङ्ग स्वतन्त्रता अतुल धन ॥१८॥

तुव पुरखे निज छाप , जो रच्छयो जन शीश दै ।
सो बेचत परताप , क्षणिक सुखहि के कारणे ॥१९॥

नासमान करि आस , अविनासी की आस तजि ।
नासमान सुख रास , बुद्धिमान राना चहत ॥२०॥

इक दिन अकबर नाहिं , मुगल राज्य हू नहिं रहै ।
तुव कीरति रहि जाहि , जब लौं भारत नाम थिर ॥२१॥

छप्पय—

जब लौं उगे न भानु, तबहि लौं जग अँधियारो ।
जब प्रताप भयो उदय, भयो मङ्गल जग सारो ॥
जबहि धार असि हाथ, सिंह सम टूक हंकारो ।
तबहिं शत्रु धड़ शीश, आपुही ह्वै हैं न्यारो ॥
शत्रु नारि शौभाग्य तजि, विधवा लच्छन धारिहैं ।
बालक गण निज पितृ को, तब ही पिण्डा पारिहैं ॥२२॥

जिन कुल की मरजाद, लोभ बश दूर बहाई ।
जीवन भय जिन खोइ, दइ आपनी बड़ाई ॥
जिन जग सुख हित करी, जाति की जगत हँसाई ।
लखि जिनको मुख वीर, सबै सिर रहै नवाई ॥
तिनके सँग खानो कहा, मुख देखत हू पाप है ।
जाइ शीश वरु धर्म हित, यह सिसोदिया थाप है ॥२३॥

जब लौं तन में प्राण, न तब लौं मुख मोड़ौं ।
जब लौं कर मे शक्ति, न तब लौं शस्त्रहि छोड़ौं ॥
जब लौं जिह्वा सरस, दीन बच नाहिं उचारौं ।
जब लौं धड़ पर शीश, झुकावन नाहिं बिचारौं ॥
जब लौं अस्तित्व प्रताप को, क्षत्रिय नाम न बोरिहौं ।
जब लौं न आर्य ध्वज नभ उड़ै, तब लौं टेक न छोरिहौं ॥२४॥

(महाराणा प्रतापसिंह नाटक से)

बालमुकुन्द गुप्त ।

[सं० १६२२—१६६४]

सभ्य बीबी की चिट्ठी ।

दोहा—

पीतम सङ्गी होन की , तुम्हरे मन है चाह ।
हमरो तुम्हरो होय पै , कैसे मित्र ! निवाह ॥ १ ॥
हमरे अङ्ग लागी रहत , पोमेटम परफ्यूम ।
सौरभ और सुगन्ध की , पड़ी चहूं दिसि धूम ॥ २ ॥
धूल अङ्ग तुम्हरे रहत , वायू ताहि उड़ात ।
हमरो अति दुर्गन्ध सों , माथा फाट्यो जात ॥ ३ ॥
हमरे कोमल अङ्ग कहं , ढाके राखत गौन ।
तुम्हरे अङ्ग धोती फटी , नाम मात्र की तौन ॥ ४ ॥
मेरे सिर पै कैप अरु , मोर पुच्छ लहरात ।
तेरे सिर लपड़ी फटी , साफ मजूर दिखात ॥ ५ ॥

हमरी कटि पेटी लसै , कटि कहँ राखत छीन।
तुम तगड़ी लटकाय जिमि , अँतड़ी बाहर कीन ॥ ६ ॥
मम मुख 'पौडर रोज' सों , मानहु खिल्यो गुलाब।
तुम खड़ि माटी पोत कै , माथो कियो खराब ॥ ७ ॥
मेरे चरन बिलायती , चिकनो सुन्दर बूट।
नागौरा तव पाय मैं , ठाँव ठाँव रहे टूट ॥ ८ ॥
मम सुन्दर जंघान मैं , सिल्क रहत नित छाय।
सदा असभ्य शरीर तव , रहत उघारो प्राय ॥ ९ ॥
मम मुख ढङ्ग बिलायती , निकसत धीरे बात।
बबर तुम्हारी जिह्व है , गोरू सम डकरात ॥१०॥
बाबरची के हाथ हम , खायँ सदा तर माल।
चूल्हा फूंकत तुम सदा , खाओ रोटी दाल ॥११॥
हमरी बोली 'गाड' है , तुम छोड़ो हरिबोल।
यज्ञ याग जप होम अरु , मानों उत्सव दोल ॥१२॥
देखत ही तुमको सदा , होत अरुचि उत्पन्न।
छन छन आवत है बमी , हियो होत उत्सन्न ॥१३॥
भूमी अरु आकाश जिमि , हम तुम भेद अथाह।
हमरो तुम्हरो होयगो , कैसे मित्र निबाह ॥१४॥

पक्का प्रेम।

व्याज छोड़ि कै कीजिये , सदा नेह निर्वाह।
जहाँ प्रेम धौंसा बजै , कहा करैगो व्याह ॥१५॥

फीको लागत है सदा , बिन नखरा को नेह ।
जिमि हिय हुलसावत नहीं , बिन चपला को मेह ॥१६॥
तरल तरङ्ग कहात है , तरुनाई को प्रेम ।
बिन दृढ़ यौवन होत नहिं , प्रेमी दृढ यह नेम ॥१७॥

मरदानी स्त्रियाँ ।

लँहगे से छूटीं हम सारी से छूटीं ।
खाना पकाने की चौका लगाने की,
भोजन जिमाने की ख्वारी से छूटीं ॥
घोड़ा दौड़ायें चाहे टट्टू कुदायें,
डोली फिनिस की सवारी से छूटीं ॥
मरदाना कुरती औ देखो फुरती,
ओ हो हो ! चाल गँवारी से छूटीं ॥
थियेटर में जांयगे लेक्चर उड़ायेंगे,
छुट्टी हुई तावेदारी से छूटीं ॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय ।

[सं० १६२२]

वर्षा ।

सरस-सुन्दर सावन-मास था, वर्षा घन घटा नभ की घिर-घूमती।
विलसती बहुधा जिसमें रही, छवि वती उड़ती-बक-पङ्क्ती ॥१॥
घहरता गिरि-सानु समीप था, बरसता छिति छू नव वारि था ।
घन कभी रवि अन्तिम अंशु ले, वियत मे रचता बहु चित्र था ॥

नव-प्रभा परमोज्वल-लीक सी, गति-मती कुटिला फणिनी समा ।
दमकती दुरती घन अङ्क थी, बिपुल केलि-कला खनि दामिनी ॥३॥
विबुध रूप धरे नभ में कभी, बिहरता वर वारिद व्यूह था ।
बरसता बहु पावन बारि था, वह कभी सरसा करके रसा ॥४॥
सलिल पूरित थी सरसी हुई, उमड़ते पड़ते सर वृन्द थे ।
कर सु प्लावित कूल समस्त को, सरित थी स-प्रमोद प्रवाहिता ॥
अवनि के तल थी अति शोभिता, नवल कोमल श्याम तृणावली ।
नयन-रञ्जन थी करती महा, अनुपमा तरुराजि हरीतिमा ॥६॥
हिल, लगे मृदु मन्द समीर के, सलिल विन्दु गिरा सुठि अङ्क से ।
महि न थे किसका मन मोहते, जल धुले जल पादप पुञ्ज के ॥७॥
रसमयी लख वस्तु असंख्य को, सरसता लख भूतल व्यापिनी ।
समझ था पड़ता बरसात में, उदक का रस नाम यथार्थ है ॥८॥
मृतक प्राय हुई तृणराजि भी, सलिल से फिर जीवित हो गई ।
फिर सु जीवन जीवन को मिला, बुध न जीवन क्यों उसको कहें ॥

वसन्त ।

विमुग्ध कारी मधुमास मंजु था, बसुन्धरा थी कमनीयता मयी ।
विचित्रता-साथ विराजिता थी, बसंत-बासंतिकता बनान्त में ॥
नवीन-भूता बन की विभूति में, विनोदिता बेलि बिहङ्ग वृन्द में ।
अनूपता व्यापित थी वसन्त की, निकुञ्ज में कूजित कुञ्ज-पुञ्ज में ॥
प्रफुल्लिता कोमल-पल्लवान्विता, मनोज्ञता-मूर्त्ति नितान्त रञ्जिता ।
बनस्थली थी मकरंद मोदिता, अकीलिता-कोकिल काकली मयी ॥

निसर्ग ने सौरभ ने पराग ने, प्रदान की थी अति कान्त भाव से।
वसुन्धरा को पिक को मिलिन्द को, मनोज्ञता मादकता मदान्धता
वसन्त की भाव भरी विभूति सी, मनोज की मंजुल पीठिका समा
लसी कहीं थी सरसा सरोजिनी, कु-मोदिनी मानस मोदिनी कहीं
नवाङ्कुरों में कलिका अनूप में, नितान्त न्यारे फल पत्र पुञ्ज में।
निसर्ग द्वारा सु प्रसूत पुष्प में, प्रभूत पुञ्जी कृत थी प्रफुल्लिता॥
विमुग्धता की वर रङ्ग भूमि सी, प्रलुब्धता केलि वसुन्धरोपमा।
मनोहरा थीं तरु डालियाँ महा, नई कली कोमल कोपलों मयी॥
वसंत-माधुर्य्य विकाश वर्द्धिनी, क्रिया-मयी मैन महोत्सवांकिता।
सु कोंपले थीं तरु अङ्क में लसी, स अङ्गरागा अनुराग-रञ्जिता॥
अनार में औ कचनार में बसी, ललामता थी अति ही लुभावनी।
बड़े लसे लोहित-रङ्ग पुष्प में, पलाश की थी अपलाशता ढकी॥
प्रसादिका-लोचन सौरभों भरी, वसन्त वासन्तिकता विभूषिता।
विनोदिता हो बहु थी विनोदिनी, प्रिया-समा मंजु प्रियाल मञ्जरी
दिशा प्रसन्ना महि पुष्प सङ्कुला, नये दलों पूरित पादपावली।
वसंत में थी लतिका स-यौवना, अलापिका पञ्चम तान कोकिला
अनूप स्वर्गीय सुगन्ध में सना, सुधा वहाता धमनी-समूह में।
समीर आता मलया चलांक से, किसे बनाता न विनोद मग्न था॥

कर्मवीर।

देख कर जो विघ्न बाधाओं को घबराते नहीं।
भाग पर रह कर के जो पीछे हैं पछताते नहीं॥

काम कितना ही कठिन हो पर जो उकताते नहीं।
भीड़ पड़ने पर भी जो चञ्चल है दिखलाते नहीं॥
होते हैं यक आन में उनके बुरे दिन भी भले।
सब जगह सब काल में रहते हैं वे फूले फले॥२२॥
आज जो करना है कर देते हैं उसको आज ही।
सोचते कहते हैं जो कुछ कर दिखाते हैं वही॥
मानते जी की हैं सुनते हैं सदा सब की कही।
जो मदद करते हैं अपनी इस जगत में आपही॥
भूल कर वे दूसरों का मुंह कभी तकते नहीं।
कौन ऐसा काम है वे कर जिसे सकते नहीं॥२३॥
जो कभी अपने समय को यों बिताते हैं नहीं।
काम करने की जगह बातें बनाते हैं नहीं॥
आज कल करते हुये जो दिन गँवाते हैं नहीं।
यत्न करने में कभी जो जी चुराते हैं नहीं॥
बात है वह कौन जो होती नहीं उनके लिये।
वे नमूना आप बन जाते हैं औरों के लिये॥२४॥

किशोरीलाल गोस्वामी।

[सं० १९२२]

कवित्त—

नौगुन तिहारो, अहो औगुन बिना ही मोपै सौगुन लगावै
दोस हौस ना दिमानी है। पण्डिता सदा की, गुन मण्डिता अदा

की आपु 'खण्डिता' अधीरा भई धीरा जो सयानी है॥ कोटिन उपाय करि हारी मैं तिहारी सौंह, महामान वारी तै ने एक हू न मानी है। 'कलहन्तरितता' की बात नियरात प्यारी हौंहूं चलि जात इत रातहूं सिरानी है॥ १॥

सवैया—

कूकत ही हिय हूक चलावत कोपि कसाइनि क्वैलिया काली।
लोचन नीर के सङ्ग बही ब्रज-बालनि के कुल कानि की डाली॥
देखहिं कौन उपाय किएँ रस सागर नागर को दृग पाली।
जीवन-प्रान-अधार वही, वन बाँसुरी टेरत जो वनमाली॥२॥

पं० भगवानदीन मिश्र 'दीन'।

[सं० १९२३]

सवैया—

तुम गारि दै वा दिन 'दीन' गये भजि गागरि फोरि कै नन्द लला।
न कह्यो कछु रोकि रही रिस को अब छोरत हौ छगुनी को छला॥
इन बातन तैं हमैं जानि परो ब्रज त्यागि हैं गोपन की अबला।
मद सों भरे डोलत हौ अठिलात धरे शिर मोर की चन्द्रकला॥

कवित्त—

जोरि कर पांय परिबे की अरिबे की बानि नीके हम जानि लीन्हें लच्छन हरी के हैं। कौन री प्रयोजन तिहारो जो निहारै मोहिं 'दीन' वे नवीन नित सीखत तरीके हैं॥ मंजुल मुकुत माल मेलैं उनहीं के उर देहिं उनहीं को पट जटित जरी के हैं।

इत जनि आवैं न दुखावैं चित मेरो तित जावैं जित जागे राति जौन नागरी के हैं ॥ २ ॥

ऊधव हमारो धव होय कूबरी को बरी छतियाँ धरी २ ये करकि २ उठैं । 'दीन' बनि बैठी हैं वियोग ब्रजराज जू के आँसू के सँयोग आँगी गरकि २ उठैं ॥ बोलती न काहू ते न खोलती हिये के हाल अँखियाँ दरस लागि खरकि २ उठैं । पीत पट वारे पी के प्रीत पींजरे में प्राण फँसि के पखेरू सम फरकि २ उठैं ॥३॥

सी करि कराहै जहूं सखियाँ सयानी फूल पाँखुरी बिछावे परयङ्क सुकुमारी के। सोहै रूपराशि दीन नोखी प्रभा अङ्गन की ऊपरि प्रकाशै स्वच्छ सारी जरतारी के ॥ फीको परि जात इन्दु नीको न लगत नेक ज्योंही झुकि झाँकती झरोखे चित्रसारी के। कैसे लाल ह्यां लौं निबहैगी चलिबे में बाल जावक के भार पग उठत न प्यारी के ॥ ४ ॥

दोहा—

जोहत मुख मोहत मदन , सोहत भुज आजानु ।
नवल कञ्ज लोचन ललित , रघुकुल पङ्कज भानु ॥ ५ ॥

बरवै—

बिचरत निशि बन राम धरे धनु बान ।
कह्यो सुधाकर निरखि, उदित भो भानु ॥ ६ ॥

सोरठा-

बिरह बिकल ब्रजबाल , बारिज लोचन वारि भरि ।
सोचति मदन गोपाल , नाये आगम शरद को ॥ ७ ॥

लाला भगवानदीन।

[स० १९२३]

कवित्त--

सघन लतान सों लखात बरसात छटा सरद सोहात सेत फूलन की क्यारी में। हिम ऋतु काल जलजाल के फुहारन मे सिसिर लजात जात पाटल-कतारी में॥ सुरभित पौन ते बसन्त सरसात नित ग्रीपम लौं दुःख दह सोखै चटकारी में। 'दीन' कवि सोभा षट ऋतु की निहारी सदा जनक कुमारी की पियारी फुलवारी में॥ १॥

सुनि मुनि कौशिक ते साप को हवाल सब बाढ़ी चित करुना की अजब उमङ्ग है। पद-रज डारि करे पाप सब छारि करि नवल सुनारि दयो धामहू उतङ्ग है। 'दीन' भनै ताहि लखि जात पति-लोक और उपमा अभूत को सुझानो नयो ढङ्ग है। कौतुक निधान राम रज की बनाय रज्जु पद तें उड़ाई ऋषि-पतनी पतङ्ग है॥ २॥

थोरे घास पानी में अघानी रहै रैनि दिन दूध दही माखन मलाई देत खाने को। पूतन तें खेती करवाय देत अन्न वस्त्र, जाके हाड़ चाम आँत गोबर ठिकाने को॥ 'दीन' कवि मेरे जान याही बात अनुमानि मुनिन महान धर्म मान्यो गो चराने को। ऐसे उपकारी की कृतज्ञता बिसारि अब भारत-निवासी मारे फिरैं दाने दाने को॥ ३॥

जगन्नाथदास रत्नाकर बी० ए०।

[सं० १९२३]

सवैया—

न चली कछु लालची लोचन सों हठ मोचन कै चहनोई पस्यो।
रतनाकर बङ्क बिलोकन बान सहायें बिना सहनोई पस्यो॥
उतते वह गात छुवाय चले तब तौ प्रन कों ढहनोई पस्यो।
भरि आह कराहि 'सुनौ जू सुनौ' नन्दलाल सो यों कहनोई पस्यो॥

प्यार पगे पिय प्यारें सों प्यारी कहा इम कीजत मान मरोर है।
है रतनाकर पै निस वासर तौ छवि पानिप कों तरसो रहै॥
है मन मोहन मोह्यो पै तोपर है घनश्याम पै तेरो तो मोर है।
है जग नायक चेरो पै तेरो है है ब्रजचन्द पै तेरो चकोर है॥२॥

कवित्त—

हा हा खात द्वार पै दुखी ह्वै द्वार पालिनी की नाइन औ मालिन की बिनती महा करै। कहै रतनाकर कहैं तो बोलि लाऊँ जाय बहुत भई री अब सुन्दरि छमा करै। सुनि सखि बानी सतराय मुसुक्यानी बाल ताकी छवि ताकि कौन कवि कविता करै। अनख अनोखी ललचानि रस पोखी बीच प्रान परे साँकरे न हाँ करै न ना करै॥ ३॥

बारिधि बसन्त बढ़्यो चाव चढ़्यो आवत है बिलखि बियो-गिनि करेजो थाम थहरैं। कहै रतनाकर त्यों किंसुक प्रसून जाल ज्वाल बड़वानल की हेरि हियें हहरैं॥ तुम समभावति कहा हौ

समुझौ तौ यह धीरज धरा पैं अब कैसे पग ठहरैं। भौंर चहुं ओर भ्रमैं एको पल नाहिं थमैं शीतल सुगन्ध मन्द मारुत की लहरैं ॥ ४ ॥

आये हौ सिखावन को जोग मथुरा तैं जो पै ऊधो ये वियोग के वचन बतराओ ना। कहै रतनाकर दया कर दरस दीन्हों दुख दरिबे को तो पै अधिक बढ़ाओ ना ॥ टूक टूक ह्वै है मन मुकुर हमारो हाय भूलिहू कठोर बैन पाहन सुनाओ ना। एक मन मोहन ने बसिकै उजारो मोंहि हिय मैं अनेक मन मोहन बसाओ ना ॥ ५ ॥

जाय जमराज सों पुकारैं जमदूत सुनौ साहिबी तिहारी अब लाजतै रहति है। पापिन की मण्डली उमण्डि मोद मण्डित अखण्डल के मण्डल लौं राजतै रहति है॥ सापी, परतापी औ सुरापी नहिं आवै हाथ तिनहूं पै छेम छत्र छाजतै रहति है। दङ्गा करैं हम सों हमेश हठि भृङ्गीगन गङ्गा शम्भु शीश चढ़ी गाजतै रहति है ॥ ६ ॥

उड़त फुहारन को तारन प्रभाव पेखि जम हिय हारे मनौं मारे करकन के। चित्र से चकित चित्र गुप्त चपि चापि रहे वेधे जात मण्डल अखण्ड अरकन के॥ गङ्ग छींट छटकि परै न कहूं आनि इतै दूत इमि तानत वितान तरकन के। भागे जित तित ते अभागे भय भागे सबै लागे दौरि दौरि देन द्वार नरकन के ॥७॥

आतुर न होहु ऊधो आवति दिवारी अबै वैसियै पुरन्दर कृपा जो लहि जाइगी। होत नर ब्रह्म ब्रह्म-ज्ञान सौं बतावत जो कछु

इहि नीति की प्रतीत गहि जाइगी ॥ गिरिवर धारि जौ उबारि ब्रज लीन्ह्यो बलि तौ तौ काहू भाँति यह बात रहि जाइगी । नातरु हमारी भारी बिरह बलाय सङ्ग सारी ब्रह्म ज्ञानता तिहारी बहि जाइगी ॥ ८ ॥

सुण्ड गहि आतुर उबारि धरनी पै धारि बिवश बिसारि काल सुर के समाज कौ । कहै रतनाकर निहारि करुना की कोर बचन उचारि जो हरैया दुख साज कौ ॥ अम्बु पूरि दृगनि बिलम्बु आपनोई लेखि देखि देखि दीह छत दन्तनि दराज कौ । पीत पट लै लै कै अँगौछत सरीर कर कञ्जनि सौं पोंछत भुसुण्ड मृगराज कौ ॥ ९ ॥

अमल अनूप रूप पानिप तरङ्गनि मैं जग मग जोति आनि सान सों बसति है । कहै रतनाकर उभार भयो आँगन मैं रञ्चक सी कंचुकी अदेख उकसति हैं । रसिक शिरोमणि सुजान मन मोहन की लाख अभिलाख भौंर भीर हुलसति हैं । अभिनव जोबन प्रभाकर प्रभा सों बाल अरुन उदै की कञ्जकली सी लसति है ॥ १० ॥

जाकी एक बूंद को विरञ्चि विबुधेस सेस सारद महेश ज्यों पपीहा तरसत हैं । कहै रतनाकर रुचिर रुचि ही मैं जाकी मुनि मन-मोर मंजु मोद सरसत हैं । लह लही होति उर आनन्द लवङ्ग लता दुख द्वन्द जासों ज्यों जवासो झरसत हैं । दामिनि सी कामिनि समेत घनश्याम सोई सुरस समूह ब्रज बीच बरसत हैं ॥ ११ ॥

विलग न मानिये त्रिहारी वर वारी वैस कहा भयो जो पै अनखौंहीं करी दीठी है। तुम रतनाकर सुजान रसखानि वह निपट अजान वासों ठानी क्यों अनीठी है॥ सरस सुरोचक में आकृति विचार कहा कैस हूं विगारौं नहिं होनहार सीठी है। टेढ़ी तें सहस्र गुनी सूधी भौंह मीठी अरु सूधी तें सहस गुनी टेढ़ी भौंह मीठी है॥ १२॥

नागरी नवेली अरविन्द मुखी चोप चढी, कढ़ी कमला सी जल भीतर अन्हाय कै। झीनो नीर भीनो चीर लपट्यो शरीर माँहि परत न पेखि छवि पानिप समाय कै॥ लाल ललचौहैं तहाँ आय गये सौहैं तवै हेरत हँसौहैं अङ्ग अङ्गनि लुभाय कै। कर उर अरुनि दै झुकि सकुचाय फेर धाय जमुना मैं धँसी मुरि मुसकाय कै॥ १३॥

विनती बखानी अनगिनती न मानति है किन तो सिखायो मान करिवो कुंवर पैं। कहै रतनाकर रिझायें नहिं रीझति है खीजति है उलटो कपोल दियो कर पैं॥ पलटि प्रभाव पस्यो पाँच ही घरी मैं यह आवत अचम्भो जाति आँगुरी अधर पैं। ए री अवला तू गुरूमान इत धारै, उत धीरज धस्यो न जात लाल गिरिधर पैं॥ १४॥

वोध वुधि विधि के कमण्डल उठावत ही, धाक सुरधुनि की धँसी यौं घट-घट मैं। कहै रतनाकर सुरासुर ससङ्क सवै, विवस विलोकत लिखे से चित्रपट मैं॥ लोकपाल दौरन दसौं दिसि हहरि लगे, हरि लागे हेरन सुपात वर वट मैं। त्रसन

नदीस लागे, खसन गिरीस लागे, ईस लागे कसन फनीस कटि तट मैं ॥ १५ ॥

ठाकुरप्रसाद मिश्र 'प्रवीन'।

[सं० १९२४]

कवित्त—

पावस अमावस की अधिक अँधेरी राति सासु है प्रबास मेरी नँनद नदान जू। सूनौ सुखभौन है परोस को भरोस कौन पाहरू न जागत पुकार परे कान जू॥ पण्डित प्रवीन प्यारो बसत बिदेस पति कौन को अँदेस अब रसिक सुजान जू। ए हो ब्रजराज-राज सुनिकै अरज मेरी आजु बसि जैये बसि जैये तौ बिहान जू॥ १॥

राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' बी.ए. बी.एल.

[सं० १९२५]

सवैया—

करिके सुर तालन को बिसतार, सितार प्रवीण बजावती है।
परि पूरन राग हू के मन मैं, अनुराग अपार जगावती है॥
गुन आगरी भाग सोहाग भरी, नव नागरी चाव सों गावती है।
छविधाम है नाम है 'कादम्बरी', धुनि कादम्बरी की लजावती है॥

मन खैंचत तार के खैंचत ही, उमहै जब 'जोड़' बजावन मैं।
उमगैं मधुरे सुर की लहरी, गहरी 'गमकैं' दरसावन मैं॥

चपलाई हरै थिरता चित की, अँगुरी 'मिजराब' चलावन में।
मन-भावन गावन के मिस बाल, प्रवीन है चित्त चुरावन में ॥३॥

एमन सोरठ देस हमीर, बहार विहाग मलार रसीली।
शङ्करा सोहनी भैरव भैरवी, गुजरी रामकली सरसीली॥
गौर बिलावल जोगिया सारँग, पूरिया आसावरी चटकीली।
बोल समै के बजायो करै, तिय गायो करै मिलि तान सुरीली॥

दृग सौंहैं सितार के मोहैं मनै, गति ध्यान में सोहैं चढ़ी भ्रुव वेली।
सुर भेद भरे परदे तिनमें, भई जाति सी लीन प्रवीन नवेली॥
कर बाम की बाम की चञ्चल आँगुरी, देखि फबै उपमा ये अकेली।
नटराज मनोज की नाचैं मनो, इकतार पै पूतरियाँ अलबेली ॥४॥

लखि कोमल आँगुरी नागरी की, अति आगरी तार बजावन में।
अनुमान रचै मन पूरन को, उपमान की खोज लगावन में॥
दल मंजु अशोक को कम्प समेत, वृथा कवि लागे बतावन में।
सुर ताल थली यह कञ्जकली, भली नाचती राग के भावन में॥

उर प्रेम की जोति जगाय रही, मति को बिन यास घुमाय रही।
रस की बरसात लगाय रही, हिय पाहन से पिघलाय रही॥
हरियाले बनाय कै रूखे हिये, उतसाह की पैंगे झुलाय रही।
इकराग अलापि के भाव भरी, खटराग प्रभाव दिखाय रही ॥६॥

दोहा—

सारँग झरि सारङ्ग रव , सुखद स्याम सारङ्ग।
बिहरत बर सारङ्ग मिलि , सरसत बरसा रङ्ग ॥ ७ ॥

सरस २ बरसत सलिल , तरस २ रहि बाम।
झरस झरस बिरहागि सों , बरस बरस भे जाम॥ ८॥
रामावर आराम में , लखी परम अभिराम।
भो हराम आराम सब , परो राम सों काम॥ ९॥
तिय तन लखि मोहित तड़ित , गति अद्भुत लखि जात।
बार बार लखि तिय छटा , छन प्रकाश रहि जात॥१०॥
सुनि सुनि नवला रूप गुन , करि दरसन अभिलास।
सुर दारा छित जोवहीं , करि करि गगन प्रकास॥११॥
प्रिय सुकुमारि कुमारि हित , भय मय तिमिर बिचार।
प्रेम विवश देवांगना , करहिं जगत उजियार॥१२॥

कवित्त—

शरद निशा में व्योम लखि के मयङ्क बिन, पूरन हिये में इमि कारन बिचारे हैं। विरह जराई अबलान को दहत चन्द तातें आज तापै विधि कोपे दया वारे हैं॥ निशपति पातकी को तमकी चटान बीच पटकि पछारि अङ्ग निपट बिदारे हैं। तातें भयो चूर चूर उचटे अनन्त कन छिटिके सघन सो गगन मध्य तारे है॥ १३॥

माता के समान पर पतनी बिचारी नहीं, रहे सदा परधन लेनही के ध्यानन में। गुरुजन पूजा नहीं कीनी शुचि भावन सों गीधे रहे नाना बिधि विषय विधानन में॥ आयुष गँवाई सबै

रामावर=स्त्री। आराम=बाग। अभिराम=सुन्दर। आराम=चैन। प्रकाश=बिजली।

स्वारथ सँवारन में खोज्यो परमारथ न वेदन पुरानन में। जिन सों वनी न कछु करत मकानन में तिनसों वनैगी करतूत कौन कानन में ॥ १४ ॥

कुण्डलिया—

अद्भुत डोरी प्रेम की, जामे बाँधे दोय।
ज्यों ज्यों दूर सिधारिये, त्यों त्यों लाँबी होय॥
त्यों त्यों लाँबी होय, अधिकतर राखै कसि कै।
नेह न्यून है सकत नेक, नहिं दूरहु बसि कै॥
विधिना देत विछोह, कहूं तासों कर जोरी।
रखियो छेम समेत, प्रेम की अद्भुत डोरी॥ १५॥

पं० भैरवप्रसाद् वाजपेयी 'विशाल'।

[स० १९२६—१९६४]

सवैया—

जव ते अँगरेजी पढ़ी तव ते तुम पै हमरो विसवास नहीं।
तुम हौ कि नहीं यह सोचो करैं परमान मिले परकास नहीं॥
अनजाने न होत सनेह विशाल सनेह विना अभिलाप नहीं।
तेहि कारन सों शिव जू हमको तरिवे की रही कछु आस नही॥

जारि अनङ्ग कियो जव ते तव ते गिरिराज की राह वतावत।
मो ढिग आय वसन्त वनाय विशाल शरासन सों शर छावत॥
रे खल मैन! सुनै कत वैन! वृथा दुख दै मुख कालिमा लावत।
शङ्कर सों कछु नाहिं चल्यो अव वापुरे दासन काहे सतावत॥

शिर मैं जटा जूट विराजत है तन भूरि विभूति मले गये हैं।
कर बान शरासन दीह लसैं जिन सों बहु क्रूर दले गये है॥
एक नारि अनूपम सङ्ग लिये जुग श्यामल गौर भले गये हैं।
मोहिं हाल विशाल बताय दे री! यहि ओर ये कौन चले गये हैं॥

जो परतीय रम्यों न कबौं तो कहा दुख झेलत गङ्ग के भारन।
जो भव शूल नसावत हौ तौ कहो केहि हेत त्रिशूल है धारन॥
देत जु माल विशाल सदा तौ लपेटे रहौ कत व्याल हजारन।
कामहिं जास्यो जु है शिव तौ गिरिजा अरधङ्ग धस्यो केहि कारन॥

पूजन के हित लेन प्रसून को आई हुती चलि आपनि गोंहीं।
तौ लगि कारी घटा की छटा धुरवान लौं देखि परी मम सोंहीं॥
भागि चली घर को जब हीं जलधार विशाल परी तिरछोंहीं।
देखु री अङ्क तरे करि के हरि भीजत आप बचावत मोंहीं॥५॥

जे नहिं जानत छन्द प्रबन्ध प्रकाशत है अपनी मति मन्दगी।
भाव को नेकु न ख्याल जिन्हैं बकि ऊटपटाँग बढ़ावत गन्दगी॥
हे कवि दत्त द्विजेन्द्र विशाल जिन्है न रुचै पर की परसन्दगी।
ऐसे खवीस कवीसन को अब कीजिए साहब दूर ते बन्दगी॥६॥

हम पाप करैं जितने जग मैं तिन पै तुम दीठि न लाया करौ।
निसि द्यौस जो कोऊ खोट करै तौ कृपा करि कै बिसराया करौ॥
कछु और न चाहत वीर विशाल इती ही सदाशिव दाया करौ।
हमरि दिसि भूलि न हेरौ प्रभो तुम आपनी ही दिसि जाया करौ॥

मोहित ह्वै नर नारि गये जब सीय स्वयम्बर में पगु धाखो ।
त्यों मुनि कौशिक के ढिग सो कनखैयन सों छवि राम निहाखो ॥
दीठि प्रिया के लगै न 'विशाल' तबै गुनि यों उपचार विचाखो ।
पै तृण पायो न वीच सभा शिव को तब तोरि सरासन डाखो ॥

कवित्त--

कास को विकास औ निवास भो प्रकाशमान अमल अकास सरसावत दरद को । विमल मयङ्क विरहीन के सु अङ्क करि वङ्क भृकुटीन मारै काम की करद को ॥ भनत विशाल वेश उज्वल महल वीच, सेज विछवाय किन धारत फरद को । औसि करु आज तैं समागम पिया को इतै देखु अब भयो अरी आगम शरद को ॥ ९ ॥

पूंछत कहा हौ मो पै साँवरे कुंवर कान्ह काल्हि हौं गई ही वृषभानु की कुमारी के । पाय के यकन्त अति प्यार सों सनेह-मयी रावरे हवाल ज्यों सुनायो सब यारी के ॥ भनत विशाल इत आइवे को कीन्ह्यों मन तदपि चले न वर अङ्ग सुकुमारी के । कैसे करि लाऊँ तुव पास हौं पियारे लाल जावक के भार पग उठत न प्यारी के ॥ १० ॥

रात कुविजा सो रमि प्रात व्रजराज वीर मौज भरे हौज मैं अन्हात छवि वर मे । कज्जल की कालिमा कछत कर कञ्जन सों जौन चख चुम्बन में लाग्यो री अधर में ॥ भनत विशाल जाकी उपमा विचारी वहु लागी अति प्यारी तौ न भाषत अमर में ।

मानों तजि शङ्क भरि अङ्क में गुराइनि को धोवत कलङ्क है मयङ्क मानसर में ॥ ११ ॥

जारि डारी जमक पदन की मइत्री सब अतिशय उक्तिन को नाम नहिं लेते हैं। खण्डन करैंगे अब सिगरी पुरानी प्रथा कहा कवि गोत औ पुराने ग्रन्थ केते हैं॥ भनत विशाल एक नेचर ही राखि लेहैं पाछिले सु भूषन बिनाश हेत चेते हैं। सुनौ भाई सकल सुजान ध्यान दै कै इमि नई रोशनी के कवि उपदेश देते हैं ॥ १२ ॥

केशरीसिंह बारहठ (सोन्याणा)।

[सं० १९२७]

दोहा-

नहीं द्वेष इसलामि तैं, है नहिं रहे विदेस।
यवन आतताई भये, तातैं रोष विसेस ॥ १ ॥
सुघर रान सबही सुन्यो, और नृपन आचार।
पराधीन भूपन दिए, बार बार धिक्कार ॥ २ ॥
अरि गन तैं डरिहौं नहीं, करिहौं नहीं कुकर्म।
पग अकबर परिहौं नहीं, धरिहौं नहीं विधर्म ॥ ३ ॥

कवित्त—

बन्धन ते छूटिबो वही को कवि मोक्ष कहे, परिवो जही में, पारतन्त्र ही प्रमान ते। बालमीक व्यास आदि पुङ्गव महान मुनि, कृष्ण भगवान गीता शास्त्र में बखानते॥ याही हेत पण्डित

परिश्रम सों ग्रन्थ पढ़ें, याही के निमित्त ऋषि-राज राख छानते। ऊँचे हैं महातमा जे सुनिये कुमार मान!, मुक्ति औ स्वतन्त्रता में भेद नहिं मानते ॥ ४ ॥

जापै चढ़ि जाय स्याम रङ्ग रँगरेज हाथ, ठौर वहाँ कहाँ है विचारे अदरङ्ग को। कर्मनासा जैसी छुद्र सरिता को दाव कहाँ? जमिगो है हृदय प्रभाव जहाँ गङ्ग को ॥ कीजै कहा याको अब रान परताप कहे, मेरो तो स्वभाव हैं सदा तै एक रङ्ग को। प्रथम पधारते तो सुनते तुम्हारी मान! मैंने मान लीन्हों फरमान एकलिङ्ग को ॥ ५ ॥

भारत के भूपति स्वतन्त्रता चहैं न चहैं, नवरोजा जार कर्म कवहूं सहैंगे ना। सीसवद वंश होय जनानी सवारी अग्र, हूरम हजूर मह पैदल वहैंगे ना ॥ दास के समान आमखास में खरे ही खरे, रेशम की लूम रास हम तो गहैंगे ना। फलचर कहैंगे त्रनचर कहैंगे लोग, वनचर कहैंगे अनुचर कहैंगे ना ॥ ६ ॥

भूखे रहि जायँगे हमारे जन, मान! तोहू, ववरची खाने दिस कवहों तकैंगे ना। पाय हैं प्रसन्नता सों वृच्छन के पत्रन में, कञ्चन के पात्रन विहीन विलखैंगे ना ॥ जठरा वुझाइ हैं कठोर माल मकइ तें, व्यञ्जन अनेक भरे थाल निरखैंगे ना। ऊमर लौं ऊमरे भखैंगे वे-सवादी तोउ, तुर्क के प्रसादी हम जरदा चखैंगे ना ॥ ७ ॥

हमारे दिमाग़ बीच गरमी वढ़ी है पर, रावरे दिमाग़ ऐसी ठण्ढक भई है क्यों?। आपनो गँवाय के वसीठ वनि आये और,

सभ्यता को सीख एक साथ ही दई है क्यौं ?॥ नीचे की कहावत को और अनुकर्ण कर, मान यह छुद्र मति राजने लई है क्यौं ?। "मेरी तो गइ सो गइ सोच है कछू न दई, जेठजी की गाय हाय गौठ में रही है क्यौं ? ॥ ८ ॥

क्षत्रिन को मान सरवस्व मान हिन्दुन को, कूरम कुमार एक साथ ही गमाते क्यौं ?। कहत प्रताप सिर नभ में लगाते विहि, धर्म-रिपु तुर्कन के पाँव में जमाते क्यौं ? ॥ दासता की बेरिन मे आप जकराते कैसे ?, बब्बर अकब्बर के फेर मँह आते क्यौं ?। होती जो कृपान मूठ मुट्ठी में तुम्हारे, तो, तो, मुट्ठी भर तुर्कन की मुट्ठी में समाते क्यौं ? ॥ ६ ॥

प्रचुर पहारन में हजारन फौज परी, ताके ढिग कूर्म कर्न मृगया विचारी है। शत्रुन निकट असहाय फिरै शून्य हिय, माननीय कच्छप की कैसी मति मारी है ॥ गहिबे की अरज भई त्यौं गहिलोत हूतें, पातल छमा की तहाँ नजर पसारी है। मान अविचारता पै कैते अविचारी वारौं, रान की उदारता पै बली बलिहारी है ॥ १० ॥

चेतक उड़ायो बलवान महा चातुरी तैं, कुम्भस्थल करी पै जमायो पाँव आन है। शेल तोकि दीनो गजारूढ़ भए फारकी में, अटक गए तें वार निष्फल दिवान है ॥ आँवेरप स्वर्ग-लोक अरर धकेल आयो, शेष हुती आयु हरि इच्छा बलवान है। कूरम को जीव रक्खा होदा जो न होतो तोतो, पितृन मिलाय देतो पत्ता रान मान है ॥ ११ ॥

तुमुल हरिद्रीघाट भयानक जङ्ग भयो, दुहुं ओर तेगन की मची व्हाँ झरा झरी। वाही वेर कीनो मेरी जीवन जरी पै वार, करी घातकी ने हाय कैसी दुष्टता करी॥ स्वामी पहुचायो त्रय पाँव इक कोस तोहू, तुरंग हमारे पर कितनी कृपा करी। लोक में रहेंगे परलोक हू लहेंगे तोहू, पत्ता भूलिहेंगे कहा चेटक की चाकरी॥ १२॥

मैं तो भो अधीन सव भाँति सों तुम्हारे सदा, तापै कहा फेर जयमत्त ह्वै नगारो दे। करनो तू चाहे कछु और नुकसान कर, धर्मराज मेरे घर एतो मत धारो दे॥ दीन होइ बोलत हूं पीछे जियदान देहु, करुना निधान नाथ! अबके तो टारो दे। वार वार कहत प्रताप मेरे चेटक कों, एरे करतार! एक बार तो उधारो दे॥ १३॥

कही भामासाह बात सबही सुनी है हम, देश के निमित्त अब कहा द्रव्य दैहौं ना?। आप महाराज राज छोरि के पधारत हो, राजभक्ति को मैं उर कैसे स्थान दैहौं ना?॥ ऐते पर मानिहौ न अरज हमारी नाथ! कहा एकलिङ्ग नाथजू की आन दैहौं ना? तान लैहौं मैं तो अब एक की न कान दैहौं, जान दैहौं चर्नन पै तोहू जान दैहौं ना॥ १४॥

कहे भामाशाह जन्मभूमि में विपत्ति परी, तिहि को विलोकि प्रभु! कैसे लुकि जाऊँ मैं। आज मम देश और स्वामि की करन सेवा, कृपा के निधान नृप! कैसे रुकि जाऊँ मैं॥ स्वामि-काज सारन को देश-कष्ट टारन को, औसर महान ऐसो कैसे

चूकि जाऊँ मैं। बित्त अनुसार आज सेवा ही बजाऊँ कहा?, मालिक के हेत नाथ! उभो बिकि जाऊँ मैं॥ १५॥

केसोदास देश पै बिपत्ति बढ़ि आई तब, महत्ता दिखाई पुर्न जुगो जुग जीवे को। नेह धन पूर कर बुझन न दीन्हों ताहि, मेदपाट देश जैसे अस्त होत दीवे को॥ स्वामि के चरन सरवस्व धरि दीन्हों भेट, कोड़ी हू न राखी निज पास नाम लीवे को। भामाशाह राखी निज सम्पति तैं वस्तू तीनि, कीर्ति इकलोती, धोती, लोटा जल पीवे को॥ १६॥

जाहि देश बीच चुण्ड पत्ता जयमल्ल भये, ऐसो देश त्यागि अब और कहाँ दौरिहै?। जाहि देश भये वीर मान मकवान जैसे, ऐसे दिव्य देश तै न नातो अब तोरिहै॥ जाहि देश ही में भामाशाह से प्रधान मिले, कहत प्रताप तातै क्योंऽब मुख मोरिहै?। धर्म प्रान प्रजाजन वास जिहि देश करे, ऐसो कौन व्यक्ति जह ऐसो देश छोरिहै?॥ १७॥

सवैया—

स्पर्श भये हमरे तन तैं पट, ना उनको पहिनैं पहिनावें।
छुइ गए हम तै कोउ बासन, ना उनमें वह भोजन पावें॥
बैठि गए हम जो तिहि ठौर कों, खोदि सबै जल गङ्ग सनावें।
आप कहो चुनवावें चिता, अथवा कि कहो हम गोर खुदावें॥१८॥

अति शोक समुद्र भरो हिय में, पर नेकु कबौं भलकावनो ना।
अपनी अँखियान तै आपति में, पुनि आँसुन को ढलकावनो ना॥

हम मानत, मान गयो तुमरो तउ, जाहिर में बिलखावनो ना।
रखि हिम्मत कूरम! कुन्त सदा, कहा शत्रुन पै भलकावनो ना॥

इमि कायरता करिके कबहू, अभिधान प्रसिद्ध मिटावनो ना।
सहि के अपमान स्वजातिन तैं, विष घूंट कभी गिट जावनो ना॥
कछवाह अबे गुहिलोतन पै, कहा खग्ग दुधार लटावनो ना?।
करनो धरनो रहिमान करे-पर, काम परे सिट जावनो ना॥२०॥

तुम तो हमरे कहिवे ते गए, तिहि तै तुमने नुकसान लयो।
कुल रान कभी गजनी पति तैं, अगि आजलौं नेक न हाय नयो॥
तुमरे कछु-आँच लगी तन में, पर मेरो सबै जरि पूर्न गयो।
तुम मान! कछू मत सोच करो, यह तो अपमान हमारो भयो॥

हम जानि रहे मनिहौं न कभी, मननौ अब काको मनावनो है।
अब आनि बनी इम बान्धव पै मन को अब का मुकरावनो है॥
सगतेश कहै अब तो जियरा, नहिं मातु को दूध लजावनो है।
कोउ धर्म गिनो कि अधर्म गिनो, अब प्रेम कै पन्थ पै धावनो है॥

भव बीच सदा निज भ्रातन को, यह कैसो सम्बन्ध सुहावनो है।
बहु दूर रहे सुख सम्पति में, पर भीर परे मिल जावनो है॥
जब बान्धव पै अरि आन चढ़े, तब कैसे बने टल जावनो है।
कोउ धर्म गिनो कि अधर्म गिनो, अब प्रेम कै पन्थ पै धावनो है॥

हम आपस में झगरेंगे तऊ, कहा शत्रुन को दिखलावनो है।
इन चोरन जारन तेंकि कहा, भुवि मातु को चीर खिंचावनो है॥

जब लागत है कुल दाग जहाँ, तब क्यौं न तहाँ मर जावनो है।
कोउ धर्म गिनो कि अधर्म गिनो, अब प्रेम के पन्थ पै धावनो है॥

दल शत्रुन के महँ जाइ मिल्यो, प्रभु पूगि गयो पथ पाप के हूं।
नहिं मालिक को प्रिय दास भयो, बदमाश भयो निज बाप के हूं॥
नहिं लायक बन्धु प्रताप के हूं, वध योग्य कि पात्र मैं श्राप के हूं।
तुम कोप कृपा मन है सो करो, अब तो शरणागत आपके हूं॥

नहिं कोविद हौं पटुता न लहौं, प्रभू जन्म हुको बहु बावरो हूं।
ग्रह फूट बतावन शत्रुन कों, अधिनायक पूर्न उतावरो हूं॥
सब पापिन को सिरदार सदा, तरणी अघ खेवन नावरो हूं।
दुख आकर हौं झगराकर हौं पर, आखिर चाकर रावरो हूं॥

जग में हम जन्मि के कीन कहा, इहि तें वरु बाजती मातु निपूती।
निज देश तें द्रोह कियो हमने, इहि तें बढ़िया कहा होहि कपूती॥
महारान कृपानिधि आपहु की, सब भाँति सराहन जोग सपूती।
जग भूपन बृन्द तलाक दई वह, राखि लई तुमने रजपूती॥२७॥

(प्रताप-चरित्र से) *

बोली वीर भगिनी मैं तोपै बलिहारी बीर, जगावत शूर और ज़री मम जीकी है। जननी हमारी जन्मभूमि हित जावत तू,

* उक्त पुस्तक पर काशी नागरी प्रचारिणी सभा से 'रत्नाकर पुरस्कार' और बलदेवदास रौप्य पदक प्राप्त हुआ है। महाराणाजी की ऐसी सुन्दर पद्यमय जीवनी इसके पूर्व प्रकाशित नहीं हुई। काव्य-प्रेमी सज्जनों के संग्रह करने योग्य पुस्तक है। ओसवाल प्रेस में मिलती है। —सम्पादक।

कीरति अपार कहौं केती या घरी की है ॥ कै तो जीति एहु कै पयान कर देहु प्रान, सुनत अथाह चतुरङ्गिनी अरी की है । मो को शरमावै मत सासरे समाज बीच, तेरे भुज भाई ! लाज मेरी चूंदरी की है॥२८॥

चतुर्दश हायन सिवाय राज्य शासन सो, राम महाराज हू तें छोरिवो बन्यौ नहीं । केशव कहत फेर और की कितीक बात, कौन महिपाल महि लोभ में सन्यो नहीं ॥ समता मिलायवे की उपमा न आवै या तें, मेरे जान ऐसो पूत जननी जन्यौ नहीं । वंश को प्रदीप जग बीच बड़ भागी वीर, चूंडा सो महान त्यागी आज लौं सुन्यौ नहीं ॥ २९ ॥

मिश्रबन्धु ।

[सं० १९२२, १९३०, १९३५]

छप्पय—

सुख में फूलो नहीं, न दुख में बनौ दीन मन ।
रहि सब छिन गम्भीर, करौ कारज सम्पादन ॥
दृढ़ता धारन करौ, परम भूषण यहि जानी ।
दृढ़ता बिनु को पुरुष, नीच पशु सो अनुमानी ॥
अति छोटेहु करमन पै सदा, नर गनि के राखहु नजरि ।
सच्चो सुभाव गुन अटल ये, देत पुरुष को प्रगट करि ॥१॥
जो कछु करिवो होय, जौन छिन मे मन माहीं ।
ताही छिन सो करौ, निमिष अन्तर भल नाहीं ॥

गुनौ समै को मूल्य, बहुत बातन सों भारी।
करौ समै अनुसार, सकल कारज पन धारी॥
यह सोचौ सदा दिनान्त में, काल सफल कितनो भयो।
केहि कारन बस कितनो समै, आजु अकारथ ह्वै गयो॥२॥

जगन्नाथ चौबे।

[सं० १६२८]

कवित्त-

छाँड़ि सत सङ्गति की पङ्गति को दीनबन्धु, विषय आधीन होय अघ अनुरागी हौं। साधुन सों ईरषा असाधुन सों प्रीति करौं, कपटी मलीन मति गुण गण त्यागी हौं॥ कहाँ लों बखानौं अपराध मेरे मेरे नाथ, आप तें न छाने भयो नरक विभागी हौं। और न इलाज अवधेश के अधीन लाज, कलि को कुजीव हौं महान मन्द भागी हौं॥ १॥

पावस ने पूरब तृषान मेटि वृच्छन की, कैसे बुझे प्यास ओस पोस के उलीचे तैं। आयो अब ग्रीषम बचैगो नाहीं बाग तेरो, बापी कूप झारिकैं निकारि नीर नीचे तैं॥ होय होशियार के सम्हार बार बार कहौं, हरे हरे रहै रूख नित्य नीर सींचे तैं। होनी हुती सो तो सब होय चुकी बागवान अब ना सरैगो पल एक दूग मीचे तैं॥ २॥

जयदेव ।

[सं० १६२८]

सवैया-

नूनन पल्लव ओठ अनूप दिपै तन चम्पक चारु गुराई ।
विल्व उरोज सरोज विलोचन ओढ़नी वेलि वितान वनाई ॥
सेत प्रसून विकाश मनोहर हास विलासन की सरसाई ।
जोवन तन्त अनन्त वनाय वसन्त किधौं वनिता वनि आई ॥१॥

फैली सुगन्ध भरी लतिका सुइ गोरखधन्ध प्रवन्ध वनायो ।
त्यों जयदेव विभूति की भाँति वड़े अनुराग पराग लगायो ॥
नीरज नील निवोल अमोल पिकी धुनि वोल अतोल सुनायो ।
प्राण की भीख वियोगिनि पै ऋतुराज फकीर ह्वै माँगन आयो ॥

चहरि लाल प्रवालन की पिक शब्द अपूरव तूर वजायो ।
पौन की फेरी दशौं दिशि देत मलिन्द मुरीदन के मन भायो ॥
सेत सरोज के कौंडन धारि विभूति की भाँति पराग रमायो ।
प्राण की भीख वियोगिनि पै ऋतुराज फकीर ह्वै माँगन आयो ॥

फूलि हैं फूल दशो दिशि में तन चौगुनी पीर समीर करैंगे ।
गुञ्ज घनी अलि पुञ्ज सुनाय निकुञ्जन मैं चितचेत हरैंगे ॥
कोकिल कूक तैं हूक हिये उठिहैं तव कैसेकै धीर धरैंगे ।
वैरी वसन्त के आवत ही वपुरे विरही विन मौत मरैंगे ॥ ४ ॥

शोरन को करिकै चहुं ओरन मोद भरे बन मोर नचैंगे।
वारिद बिज्जु छटा जुत देखि बियौगिनि के तन ताप तचैंगे॥
त्यों जयदेव उमङ्गन सौं नर नारि अपार विहार रचैंगे।
पावस की ऋतु मैं सजनी बिन पीतम के किमि प्रान बचैंगे॥५॥

क्यों बचिहौं बरषा ऋतु वीर बलाहक बैरी धुकारन लागे।
मोर मलार मचाय घनी हियरान कौं हाय बिदारन लागे॥
मारुत मन्द दशौं दिशि तैं बिरहीन के अङ्ग पजारन लागे।
प्रान मरू करिकै रहिहैं पपिहा कहि पीव पुकारन लागे॥६॥

वह काम की कामिनि तैं कमनीय कछु मृदुबैन सुनाती रही।
बतियाँ सुनि काम कलोलन की अरगाय चितै सतराती रही॥
इत औसर पाय प्रवीन प्रिया पल आधिक तौ बतराती रही।
गुरु लोगन के डर चौंकत सी छिन छाती छुवाय कै जाती रही॥

रामचरित उपाध्याय।

[सं० १९२६]

महावीर स्वामी।

छन्द हरिगीतिका—

जय महावीर, जिनेन्द्र! जय, भगवान! जगद्रक्षा करो,
निज सेवकों के भव-जनित सन्ताप को कृपया हरो।
हैं तेज के रवि आप, हम अज्ञान-तम में लीन हैं,
हैं दयासागर आप, हम—अति दीन हैं बलहीन हैं॥१

दानी न होगा आप सा हम सा न अज्ञानी कहीं,
अवलम्ब केवल हैं हमारे आप ही दूजा नहीं।
भव सिन्धु के भ्रम-भ्रमर में हम डूबते हैं हे प्रभो,
झटपट सहारा दीजिये हम ऊबते हैं हे प्रभो ॥२॥
गिरि को अंगूठे से हिलाया आपने तो क्या किया ?
यदि इन्द्र के मद को मिटाया आपने तो क्या किया।
यदि कमल को गज ने हिलाया तो प्रशंसा क्या हुई ?
यदि सिंह ने गीदड़ भगाया तो प्रशंसा क्या हुई ? ॥३॥
अपकारियों के साथ भी उपकार करते आप थे,
मन में न प्रत्युपकार की कुछ चाह रखते आप थे।
वड़वाग्नि वारिधि के हृदय को है जलाती नित्य ही,
पर जलधि अपनाये उसे है क्रोध कुछ करता नहीं ॥४॥
शुभ स्वावलम्बन का सुपथ सबको दिखाया आपने,
दृढ़ आत्मबल का मर्म भी सबको सिखाया आपने।
समता सभी के साथ सब दिन आपकी रहती रही,
इस हेतु सेवा आपकी निश्छल मही करती रही ॥५॥
यद्यपि अहिंसा-धर्म सभी ने श्रेष्ठतम माना सही,
पर वास्तविक उसके विधानों को कभी जाना नहीं।
किस भाँति करना चाहिये जग में अहिंसा-धर्म को,
अतिशय सरल करके दिखाया आपने इस मर्म को ॥६॥
करके कृपा यदि अवतरित होते न भू पर आप तो,
मिटता नहीं संसार का त्रयकाल में त्रयताप तो।

जितकाम हो निष्काम होकर शान्ति के सुखधाम हो,
योगीश भोगों से रहित गुणहीन हो गुणग्राम हो ॥७॥
जय जय महावीर प्रभो! जग को जगा कर आपने,
संसार के हिंसा-जनित भय को भगा कर आपने।
इस लोक को सुरलोक से भी परम पावन कर दिया,
अज्ञान-आकर विश्व को प्रज्ञान का सागर किया ॥८॥

ब्रह्मानन्द।

[सं० १९२९—१९८३]

भजन-

मुझे है काम ईश्वर से, जगत रूठे तो रूठन दे।
कुटुंब, परिवार, सुत, दारा, माल, धन, लाज लोकन की।
प्रभू के भजन करने में, अगर छूटे तो छूटन दे ॥१॥
बैठ सङ्गत में सन्तों की, करूँ कल्याण मैं अपना।
लोक दुनियाँ की मौजें, भोग में लूटे तो लूटन दे ॥२॥
प्रभू के ध्यान करने की, लगी मन में लगन मेरे।
प्रीत संसार विषयों से, अगर टूटे तो टूटन दे ॥३॥
धरी सिर पाप की मटकी मेरे गुरु देव ने झटकी।
सो ब्रह्मानन्द ने पटकी, अगर फूटे तो फूटन दे ॥४॥

कहै लछमन कोमल बानी, सुन परशुराम अभिमानी।
हम बालकपण में भारे, कई धनुष तोड़ कर डारे॥
कथा शङ्कर चाप कहानी॥ सुन०॥ ५॥

कुछ क्षत्रिय जाति नसाई, तुम फूल गये मन माँई ।
कोई मिला न शूर सुजानी ॥ सुन० ॥ ६ ॥
मैं विप्र जानि शरमाऊँ, नहिं यमपुर आज पटाऊँ ।
क्या झूठी हठ तुम ठानी ॥ सुन० ॥ ७ ॥
यह रामचन्द्र भगवाना, जिन तोड़ा धनुष पुराना ।
ब्रह्मानन्द समझ मुनि ज्ञानी ॥ सुन० ॥ ८ ॥

केशरीसिंह बारहठ (कोटा) ।

[सं० १९२९]

चेतावणी का चूंगट्या ।

सोरठा-

पग पग भम्यॉं पहाड़ , धरा छाड़ राख्यो धरम ।
(ईंशूं) महाराणा र मेवाड़ , हिरदै बशिया हिन्दरै ॥ १ ॥

पाँवों पाँवों पहाड़ों में भटकते फिरे, पृथ्वी छोड़ कर धर्म बचाया । इसलिये ही 'महाराणा' और 'मेवाड़' ये दो शब्द हिन्दुस्तान के हृदय में बस गये हैं ॥ १ ॥

घण घलिया घमशाण , राण सदा रहिया निडर ।
(अब) पेखन्ता फुरमाण , हलचल किम फतमल! हुवै ॥ २ ॥

अनेक युद्ध हुए, तब भी महाराणा सदा निर्भय रहे । हे फतेहसिंह ! अब सिर्फ फरमानों को देखते ही यह हलचल कैसे मच गई ? ॥ २ ॥

गिरद गजाँ घमशाण , नहचै धर माई नहीं ।
(ऊ) मावै किम महाराण , गज दो शैरा गिरद में ॥ ३ ॥

जिसके हाथियों के युद्ध की उड़ी हुई गिरद (धूलि) निश्चय ही पृथ्वी में नहीं समाती थी, वह महाराणा स्वयं दो सौ गज के गिरद (घेरे) में कैसे समा जायगा ? ॥ ३ ॥

ओराँ ने आशाण , हाकाँ हरबल हालणो ।
किम हालै कुल राण , (जिण) हरबल शाहाँ हक्किया ॥४॥

दूसरे राजाओं के लिये आसान होगा कि वे हकाले (खदेड़े) जाने पर शाही सवारी में आगे बढ़ते रहें, चलते रहें, परन्तु जिस महाराणा-वंश ने अपने हरोल में बादशाहों को हाँक लिया था (भगा दिया था) वह शाही सवारी में कैसे चलेगा ? ॥ ४ ॥

नरियन्द शह नजराण , झुक करशी शरशी जिकाँ ।
(पण) पशरेलो किम पाण , पाण छताँ थारो फता ! ॥ ५ ॥

दूसरे सब राजा झुक झुक करके नज़राना दिखाएँगे यह उनके लिये तो सहज होगा । परन्तु हे फतेहसिंह ! तेरे हाथ में तो तलवार रहती है, उसके रहते हुए नज़राने का हाथ आगे कैसे फैलेगा ? ॥ ५ ॥

शिर झुकिया शहशाह , शिंहाशण जिण शाँम्हनैं ।
(अब) रलणो पतङ्ग-राह , फाबै किम तोनें फता ! ॥ ६ ॥

जिसके सिंहासन के सामने बादशाहों के सिर झुके हैं, फतेहसिंह ! अब पंक्ति में मिल जाना तुझे कैसे फबेगा ? ॥ ६

शकल चढ़ावै शीश , दान-धरम जिणरो दियो ।
शो खिताव बखशीश , लेवण किम ललचावशी ॥ ७ ॥

जिसके दिये हुए 'धर्म' के दान को संसार सिर पर चढ़ा रहा है, वह (हिन्दू-पति) खिताबों की बख़शीश लेने के लिये कैसे ललचाएगा ? ॥७॥

देखेला हिन्दवाण , निज शूरज दिश नेह शूं ।
पण तारा परमाण , निरख निशाशा न्हाँकशी ॥ ८ ॥

सब हिन्दू अपने सूर्य की ओर स्नेह पूर्वक ताकेंगे, परन्तु जब उनको तुम 'तारा' बने हुए (स्टार ऑफ़ इन्डिया) दिखाई दोगे तो वे अवश्य ही निश्वास डालेंगे ॥ ८ ॥

देखे अञ्जश दीह , मुलकेलो मनही मनाँ ।
दम्भी गढ़ दिल्लीह , शीश नमन्ताँ शीशवद ! ॥ ९ ॥

हे शीशोदिया ! दिल्ली का दम्भी किला तुझे सिर झुकाते हुए देख कर मन ही मन हँसेगा और इस दिन को अपने लिये अभिमान का दिन समझेगा ॥ ९ ॥

अन्त बेर आखीह , पातल जे बाताँ पहल ।
(वे) राणा शह राखीह , जिणरी शाखी शिर जटा ॥१०॥

पहले महाराणा प्रताप ने अन्तिम समय में जो प्रतिज्ञाएँ की थी, उनको आज तक सब महाराणाओं ने निभाया है और उसकी साक्षी खुद तुम्हारे सिर की जटा है ॥ १० ॥

कठिण जमानो कोल , बाँधै नर हीमत बिना ।
(यो) बीराँ हन्दो बोल , पातल शाँगे पेखियो ॥११॥

मनुष्य अपने में हिम्मत न होने पर ही यह सिद्धान्त बाँध लिया करता है कि "जमाना मुश्किल है" । इस वीर-वाणी के रहस्य को साँगा और प्रताप समझे थे ॥ ११ ॥

अब लग शाराँ आश , राण रीत कुल राखसी ।
रहो सहाय शुख-राश , एकलिङ्ग प्रभु आपरै ॥१२॥

अब तक सबको यही आशा है कि महाराणा अपने वंश की रीति को रक्खेंगे । सुख के राशि भगवान एकलिङ्ग आपकी सहायता पर रहें ॥१२॥

मान मोद शीशोद ! , राजनीत बल राखणो ।
(ईं) गवरमिण्टरी गोद , फल मीठा दीठा फता ! ॥१३॥

हे शीशोदिया ! फतेहसिंह ! अपनी प्रतिष्ठा और हर्ष को राजनीति-बल से रखना ही होगा । इस गवर्नमेन्ट की गोदी में मीठे फल देखे हैं ? ॥१३॥

(साप्ताहिक 'गुजराती' से उद्धृत) ।

निर्भीक उक्ति का समाधान ।

कवित्त-

वीर वसुधा के बींद बाहुज बिरल रहे, उनके उदार हाथ ताकूं अभिलाखूं हूं । कायर कुछत्री है कुबेर तोहू काम के न, चाम के खिलोने ओर रञ्चहू न झाँकूं हूं ॥ तजि कुल पन्थ बहैं वहैं सहैं बैनबान, यही धर्म मेरो अभिमान तें न भाखूं हूं । विरुद निबाहन में आप हो अटल रान ! (तो) चारनपने की टेक मैं हूं कछु राखूं हूं ॥ १४ ॥

बींद=पति । झाँकूं=देखता । वहैं=वही ।

मुंछमुंडों की एकादशी ।

मूंघो चुड़लो महलरो , मरदाँ मूंघी मूंछ ।
सत पोरस री साख में , ए दोनूं घण ऊँच ॥ १५ ॥
मुंछ मूंडा भूंडा मिनख , नरपण रो कर नास ।
अजब भद्दर अपसकुनिया , रमिया जाणक रास ॥१६॥
माथे माँग सँवारणा , मूंढे मूंछ मुंड़ाय ।
फिरै मुलकता फेसन्या , जनखा रूप जणाय ॥१७॥
बाई क्यूं न वणाविया , दिये विधाता दोस ।
नित उठ मूंछाँ घुरड़वै , सधै जरां सन्तोस ॥१८॥
रहै सफाचट रातदिन , बाई जिसड़ै वेस ।
वलै वूढ वालक वणैं , लाजै नह लवलेस ॥१९॥
मूंछालाँ री महफलाँ , मुंछमुंडा न सुहाय ।
जाणक मिली जमात में , अवधूताणी आय ॥२०॥
पाण मूंछ पर पटकता , ऊफणिया आपाण ।
(अब) तमख बजावे तालियाँ , की मुंछमुंडाँ काण ॥२१॥
मुकना बण ससता मिलै , जुड़ दन्तालाँ जोड़ ।
अघरघुट्या धिक अंजसै , हुवै न मूंछाँ होड़ ॥२२॥
हरखै घुटिया होटरा , मिटा मूंछरो भार ।
(तो) कुदरत हूं ताँ क्यूं नहीं , ओरतियाँ अधिकार ॥२३॥

मूंघो=मँहगा । चुड़लो=चूड़ा । महलरो=स्त्री को । सत=सतीत्व । साख=साक्षी । पोरस=पौरुष । जनखा=हिजड़ा । वले=फिर से ।

आधै नीचे उतरिया , मरद मूंछ मुंड़वाय ।
चढ़ी आध कट चोटियाँ , धियाँ समोवड़ धाय ॥२४॥
नारी चाहै नर पणो , नर नारी उणिहार ।
बणी दसा बिपरीत अब , बिकट काल बलिहार ॥२५॥

प्रेम ।

एक ओर अखण्ड रस में प्रेम की धारा बहै,
प्राण जीवन एक हो दो देह में बिलगे रहै ।
रूप-यौवन-सम्पदा पर भ्रमर हो गुञ्जारते,
वे प्रेम को बदनाम करके स्वार्थ गोता मारते ।
प्रेम और विकार छल का रङ्ग रूप मिला जुला,
निःस्वार्थ की आहुति ही से भेद सब जाता खुला ॥२६॥

सैयद अमीरअली 'मीर' ।

[सं० १९३०]

कुण्डलिया—

मैना तू बन बासिनी, परी पींजरे आन ।
जान देव गति ताहि में, रहे शांत सुख मान ॥
रहे शांत सुख मान, बान कोमल ते अपनी ।
सब पक्षिन सरदार, तोहि कवि-कोविद बरनी ॥
कहें मीर कवि नित्य, बोलती मधुरे बैना ।
तौ भी तुझको धन्य, बनी तू अजहूं मै-ना ॥ १ ॥

धियाँ=स्त्रियाँ । समोवड़=बराबरी ।

कोयल तू मन मोह के, गई कौन से देस।
नो अभाव में काग मुख, लखनो परो अदेस॥
लखनो परो अदेस, वेस तोही सो कारो।
पै बोलत हैं बोल, महा कर्कस कटु न्यारो॥
कहैं 'मीर' हे दैव, काग को दूर करो दल।
लावो फेर वसन्त, मनोहर बोलें कोयल॥ २॥

तोता तू पकड़ा गया, जब था निपट नदान।
बड़ा हुआ कुछ पढ़ लिया, तौ भी रहा अजान॥
तौ भी रहा अजान, ज्ञान का मर्म न पाया।
जीवन पर के हाथ सौंप, निज घर विसराया॥
कहैं मीर समुझाय, हाय! तू अबलौं सोता।
चेता जो नहिं आप, किया क्या पढ़ के तोता॥ ३॥

बगला बैठा ध्यान में, प्रातः जल के तीर।
मानौं तपसी तप करे, मल कर भस्म शरीर॥
मल कर भस्म शरीर, तीर जब देखी मछली।
कहैं मीर ग्रसि चोंच, समूची फौरन निगली॥
फिर भी आवें शरण, वैर जो तज के अगला।
उनके भी तू प्राण हरे, रे! छि! छि! बगला॥ ४॥

सवैया—

क्यों मन सोच करै मन मूढ़ अरे दिन ये दुख के टरिहैं कब।
त्यों दुखदायक दीनन के यह पापी कबै अघ सों मरिहैं दब॥

मानि ले तू सिगरो जग मीत है एक हु ना हमरे अरि हैं अब।
जा दिन दैव दया करि है तब ता दिन 'मीर' मया करि हैं सब॥

छितिपाल।

[सं० १९३०]

सवैया-

कोउ कहै निज बुद्धि उदैं, इन मत्त मतङ्गन की गति भानी।
कोउ कहै लखि बाल की चाल, मरालन की अवली सकुचानी॥
यौंहिं अनेक कुतर्क करै, छितिपाल यहैं मन में अनुमानी।
मन्द चले किन चन्द-मुखी, पग लाखन की अखियाँ अरुझानी॥

रामतीर्थ।

[सं० १९३०—१९६३]

लावनी-

शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म हूं अजर अमर अज अविनासी।
जास ज्ञान से मोक्ष हो जावे कट जावे यम की फाँसी॥
अनादि ब्रह्म अद्वैत द्वैत का जामें नामो निशान् नहीं।
अखण्ड सदा सुख जा का कोई आदिमध्य अवसान नहीं॥
यही ब्रह्म हूं मनन निरन्तर करें मोक्ष हित सन्यासी।
शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म हूं अजर अमर अज अविनाशी॥ १॥
सर्व देशी हूं ब्रह्म हमारा एक जगह अवस्थान नहीं।
रमा हूं सबमें मुझसे कोई भिन्न वस्तु इन्सान नहीं॥

देख विचारो, सिवाय ब्रह्म के हुआ कभी कुछ आन नहीं।
कभी न छूटे पीड़ दुःख से जिसे ब्रह्म का ज्ञान नही॥
ब्रह्म ज्ञान हो जिसे उसे नहीं पड़े भोगनी चोरासी।
शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म हूं अजर अमर अज अविनासी॥ २॥
अदृष्ट, अगोचर, सदादृष्ट में जा का कोई आकार नहीं।
नेति, नेति कह निगम ऋषीश्वर पाते जिसका पार नहीं॥
अलख ब्रह्म लियो जान, जगत नहीं, कार नहीं कोई यार नही।
आँख खोल दिल की टुक प्यारे कौन तरफ गुलजार नहीं॥
सत्य स्वरूप आनन्द राशी हूं कहैं जिस घट घट वासी।
शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म हूं अजर अमर अज अविनाशी॥ ३॥

जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी।

[स० १९३२]

नया काम कुछ करना बाबा, नया काम कुछ करना।
दूध दही घृत मक्खन छोड़ो, चरवी पर चित धरना॥ बाबा०॥
गो-सेवा को दूर भगाओ, पालो घोड़े कुत्ते।
भगतिनियों की पूजा करके पितरों को दो वुत्ते॥ २॥
वेद शास्त्र का पढ़ना छोड़ो, छोड़ो सन्ध्या वन्दन।
बाम्हनपन की धाक जमाओ, खूब लगाकर चन्दन॥ ३॥
दो सच्चों को झूठा करना, खाना नमक हलाली।
"कृषि गोरक्ष वाणिज्यं" को छोड़ो, करो दलाली॥ ४॥

कन्या को वर बूढ़ा ढूंढ़ो, युवती को वर छोटा।
विधवाओं का व्याह कराओ, मार मार कर सोटा॥ ५॥

जो न बनै कुछ तुमसे भाई, पीटो पकड़ लुगाई।
अथवा नाचो ताक धिनाधिन, सिर पर उसे बिठाई॥ ६॥

लिखमीदान।

[सं० १९३२—१९७४]

कवित्त-

आयो मास भाद्व भ वीज भल भावन सो मेह बरसावन अछेह ऋतु भावनी। बद्दल उमण्ड वो प्रचण्ड घन मण्ड घोर लगे चहुं ओर साधु मण्ड मन चावनी॥ पथिक चले हैं घर देश कों विदेश त्यागि लागी अनुरागी वागी घटा गहरावनी। भनै लिखमेश कवि सार सनगार नार साजन निहार तीज भाद्व सुहावनी॥ १॥

पं० कामताप्रसाद गुरु।

[सं० १९३२]

हे तरुवर जब सूर्य चलाता, है धरणी पर विषम त्रिशूल।
तब पन्थी को तेरा छाता, हो जाता है जीवन मूल॥
पवन महा विकराल रूप धर, विचलाती है जब संसार।
तब तेरी दृढ पिण्ड भेंट कर, होते हैं जन दुख से पार॥१॥

पाला मेंह और सब साथी, जब जब नाश दिखाते हैं।
तब तब अणु-गिरि चींटी-हाथी, तुझसे रक्षा पाते हैं॥
फिर तू ही देता है भोजन, तू ही देता है आवास।
तू ही देता सुखद आवरण, तुझसे है प्रत्येक सुपास॥२॥

पक्षी तुझ पर बना बसेरा, गाते हैं तेरे गुण गीत।
किलक किलक करते हैं फेरा, वानर पा विश्राम अभीत॥
कीट-पतङ्ग आदि भी आश्रय, तुझसे पाते रहते हैं।
सदय अङ्ग सब तेरे निर्भय, पर-हित में दुख सहते हैं॥३॥

जिस माता ने तुझे चढ़ाया, उसको तू ने दी छाया।
मर कर उसके बीच समाया, फिर पलटी जग की काया॥
दिया नहीं क्या किसको तू ने, दानी तुझसा होगा कौन?।
कर सन्तोष प्राप्त दिन दूने, इच्छाओं ने धारा मौन॥४॥

जल, थल, अन्तरिक्ष में सत्ता, तेरी पाई जाती है।
तेरे ही बल पर विद्वत्ता, बलियों को नचवाती है॥
भाव अनेक मानवी तुझमें, विद्वानों ने पाये हैं।
पर थोड़े ही वैसे मुझमें ईश्वर ने उपजाये हैं॥५॥

पीकर तू जल, मिट्टी, चूना सुधा-मधुर फल देता है।
ऋषि-जीवन का विषद नमूना, जग तुझमें लख लेता है॥
हैं तेरे शुभ कृत्य बहुत से, सदा और सर्वत्र समान।
उऋण नही हैं तेरे ऋण से, विजयी राजा, दीन किसान॥६॥

तू अनादि है, तू अनन्त है, और जगत का है आधार।
ईशतुल्य तू पूर्ण सन्त है, सदा साधता पर-उपकार॥
पालक है तू बालकपन में, यौवन और जरा में साथ।
है सर्वत्र सदा जीवन में, अन्तिम गति है तेरे हाथ॥७॥

महाराजा चतुरसिंह।

[सं० १९३६]

दोहा-

मेरो मेरो करत है, तेरो कहा विचार।
तन हू लेरो ना करै, होत छिनक में छार॥ १॥
मेरो तन मेरी तिया, मेरो विभव विशाल।
सो सब मेरो अवसि है, जो नहिं मेरो काल॥ २॥
कहा पूत तब काम के, जब जकरै जमदूत।
सो विभूति का करहि जो, आपहिं होत विभूत॥ ३॥
अपने कीन्हें जानिकैं, तजौं न हौं निज पाप।
त्यों अपनो अनुमानि कैं, मुहि न विसारो आप॥ ४॥
मो हू सों चाहौ अधिक, अधम उधारण आन।
तो तुम हू के लोभ के, थोभ नहीं भगवान॥ ५॥

बेनाँ आँपाँ ओछी नी हाँ।

ओछी मतरे कणी कियो के नीच जाति नारी हाँ।
नारी हाँ तो कई वियो में नाराँ री नारी हाँ॥ ६॥

बेनाँ=बहिनें। ओछी=तुच्छ।

शुख में शदा पछाड़ी री हाँ दुख में आगे वी हाँ ।
माथो काट हाथ शूं मेल्यो पीतम पेली गी हाँ ॥ ७ ॥
हाताँ पेट फाड़ पाप्याँ शूं म्हें ललकार लड़ी हाँ ।
हँशती धशी धधकती में म्हें अब पण वीरी वी हाँ ॥ ८ ॥
शुवरणपुरी शीश दश ऊपर म्हें थूंकण वाली हाँ ।
शत्यवान रो प्राण बँचायो जम सूं पण जीती हाँ ॥ ९ ॥
शिद्धराज रो शाप न लागो कियो कई वुगली हाँ ।
कोड़्यो खोडयो पति उचाय ने वेश्यारे लेगी हाँ ॥१०॥
शूराँ रे जनमी हाँ आँपाँ शूराँ रे परणी हाँ ।
शूराँ री जननी हाँ आँपाँ पोते ही शूरी हाँ ॥११॥
शगलो जगत शुधारण कारण म्हें जग में जनमी हाँ ।
चातुर कहै शक्ति हाँ आँपाँ आँपाँ शही शती हाँ ॥१२॥

हरिकृष्ण जौहर ।

[सं० १९३७]

दवा के दुम—

दवा के दुम, नियम की साधना, मन्दिर से खिसकी है ।
गुरुजी के रँगीले मन को चाहत एक मिसकी है ॥
सुधा गोरस के बदले शरबती रङ्गत की ह्रिस्की है ।
छुरी काँटे पै वह कटलेट उड़ा, अब शर्म किसकी है ?

नाम तो नेता, मगर नीयत निहायत झोल है ।
हर अदा में स्वार्थ, हर चितवन के अन्दर पोल है ॥

मन में नीची कामना, तो मुंह पै ऊँचा बोल है ।
हैं वहीं, पहले जहाँ थे, क्योंकि दुनिया गोल है ॥

पहनता सूट है, बँगले के अन्दर बन के रहता है ।
किसी से कुछ जो कहता है, तो अंगरेजी में कहता है ॥
गधे ! अपनों की सङ्गत छोड़ के क्यों क्लेश सहता है ?
बता ! तेरी नसों में खून भी यूरोप का बहता है ?

मोहन ।

[सं० १९३८—१९९०]

सोरठा—

सुपना सम संसार, हरि सुमरण इक सत्य है ।
पत्नी सुत परिवार, चार दिनाँ रा चकरिया ॥ १ ॥
रैन दिना मत रोय, अपणो दुख औराँ कनै ।
कष्ट बतायाँ कोय, चिणा न देवै चकरिया ॥ २ ॥
मूंडो अपणो भाग, सब चोखा संसार में ।
रोस न किणसूं राग, चूक करम में चकरिया ॥ ३ ॥
माँगी मिलै न मौत, माल मिलै किम माँगियाँ ।
निज करमाँ री नौत, चूक न किणरी चकरिया ॥ ४ ॥
दुख में दोसत दोय, धीरज के जगरो धणी ।
सुख साथी सब कोय, चट हुय जावै चकरिया ॥ ५ ॥
सब रूठै संसार, रूठै ना जो रामजी ।
बाल न हुवे बिगार, चित में लिख लै चकरिया ॥ ६ ॥

चिन्ता खोटी मार, रह रह बालै रात दिन।
बाले एक ही बार, चिता बिचारी चकरिया ॥ ७ ॥
आज हि नहीं, अवार, करणो है, सो कर परो।
रावण वाताँ, चार, चित में लेग्यो चकरिया ॥ ८ ॥
वखत जावसी बीत, जासी बात न जगत सूं।
गासी दुनिया गीत, चोखा भूंडा चकरिया ॥ ९ ॥
पढ़िया लिख्या पचास, मन चाह्या मिल जावसी।
खाती, दास, खवास, चाह्या मिलै न चकरिया ॥१०॥
मरता जद माईत, मूछ मुंडाता मानवी।
रोज मुंडावण रीत, चाली अद्भुत चकरिया ॥११॥
केई करै न काँण, मात, तात, गुरु, मित्र रीं।
हित होवै या हाण, चित री करसी चकरिया ॥१२॥
रोजीना री राड़, आपस री आछी नहीं।
वणै जठा तक बाड़, चट पट करणी चकरिया ॥१३॥
गुण बिन करै गरूर, बल बिन बोले आकरो।
बिना आय व्यय पूर, चलै किता दिन चकरिया ॥१४॥
भली बुरी जो बात, होणी थी सो हो गई।
रोज वही दिन रात, चरचा खोटी चकरिया ॥१५॥
सब पापिन सिर मौर, नमकहरामी कृतघनी।
अघ बाकी रा ओर, चेला चाँटी चकरिया ॥१६॥
सठ सूं प्रथम सलाम, पुनि करणो सज्जन प्रति।
धोवत गुदा तमाम, चहरा पहली चकरिया ॥१७॥

राखी मूछाँ राण, अकबर सूं आछो अड्यो।
बैरी कियो बखाण, चीतोड़ा रो चकरिया॥१८॥
दाब्यो दक्खण देश, कर शेवै करवाल ले।
भूल्यो औरंग भेष, चतुर वीर ढिग चकरिया॥१९॥
सीधा ह्वै सरदार, बाजै जग में बापड़ा।
लम्पट, चोर, लबार, चलता पुरजा चकरिया॥२०॥
पर री करै पसन्द, घर री ह्वै चह गुणवती।
कुटक लगै गुलकन्द, चीणी खारी चकरिया॥२१॥
करै न सेवा काम, मा बापाँ री मूरखा।
गणिका तणा गुलाम, चोटी कट जिम चकरिया॥२२॥
डोरी सूं डर जाय, नाँतर डरै न्हार सूं।
अबला है कि बलाय, चतुर हि जाणै चकरिया॥२३॥
सुख दुख में रह सङ्ग, अङ्ग न मोड़ै आपरो।
वाँ पुरुषा नै रङ्ग, चित सूं देणो चकरिया॥२४॥
देणा जैसो दुक्ख, दुनिया में नहिं दूसरो।
सुपनै मिलै न सुक्ख, चिन्ता रहवै चकरिया॥२५॥
पइसो जग में प्रान, पइसो ही जग में प्रभू।
पइसा रो सनमान, चहुं दिश में ह्वै चकरिया॥२६॥
कलजुग में कलदार, करामात करतार री।
झट ऊठाँ झणकार, चित हरषावै चकरिया॥२७॥
पइसा सूं ह्वै पूछ, पइसो गयाँ न पूछ ह्वै।
वहि मूंडो वही मूछ, चितवै कोइ न चकरिया॥२८॥

कर में है कलदार, मन चाह्या लूटो मजा।
दुनिया में दिलदार, चहराशाही चकरिया ॥२९॥
लछमी नेह लगाय, छेत्रट में छिटकाय दे।
वैरण बुरी वलाय, नित भ्रम करदे चकरिया ॥३०॥
दुर्लभ दर्शन दोय, कर्त्ता कै कलदार रा।
कठिन न दूजो कोय, चारू दिश में चकरिया ॥३१॥
वेटी रे घर बाप, जल, अन गहै न जाहिरा।
थेली वाली थाप, चुपके मारै चकरिया ॥३२॥
मिटै नींद रै माँह, जिकर फिकर सब जगत रा।
नींद बराबर नाँह, चित-सुखदाई चकरिया ॥३३॥
स्वाधीनी सम सुख, सुण्यो न दूजो स्वप्न में।
दास पणा में दुःख, चारूँ कान्ही चकरिया ॥३४॥

दोहा—

प्रभु अति सुघर सराफ है, लेवे खूब तपाय।
जो सोनो है सोलमो, तुरत लेत अपनाय ॥३५॥
प्रान रु जोबन आबरू, वखत बोल अरु दाव।
एता गया न आ सकै, 'मोहन' कोटि उपाव ॥३६॥
धन सुत नारी धाम को, जदपि विरह है जाय।
सो सब तो सहनो परै, कटु बच सह्यो न जाय ॥३७॥
टोटा खोटा होत है, बिगर जात सब स्यान।
छूट जात मन माँह सों, ज्ञान ध्यान अरु मान ॥३८॥

चहराशाही=रुपया। आबरू=इज्जत। टोटा=घाटा, नुकसान।

प्रमदा मदिरा इन्दिरा , त्रिविधा सुरा समान।
देखत पीवत संग्रहत , करत प्रमत्त महान ॥३९॥
भोजन धन तिय तीन में , भल सन्तोष प्रतच्छ।
दान तपस्या पढ़न मे , असन्तोष नित अच्छ ॥४०॥
फबै न भूषण वसन बिन , घृत बिन भोजन कीन।
कुच विहीन कामनि जथा , जीवन विद्या हीन ॥४१॥
भली भाँति अनुभव कियो , जिय में लीनो जोय।
दुख में हित लघुजन करै , बड़े करत नहिं कोय ॥४२॥
चसकारो तूं करत है , मशक डसे ही मिंत।
प्राण पराये हरण में , कछु तो कर रे चिंत ॥४३॥
मृग सूखे तृण चरत ते , बानन मारे जात।
उनकी का गति होयगी , जे मृग-आमिष खात ॥४४॥
दश मुख कीचक इन्द्र विधु , केते भये खवार।
सदा शीश पै जार के , परै अवश पैजार ॥४५॥
पातर बड़ी पतिव्रता , भलो निबाहै नेम।
दूजी दिस देखै नहीं , पैसा ही सों प्रेम ॥४६॥
प्रकृति वहै करनि वहै , वहै बुद्धि, वहै ठौर।
पै मानव इक धन बिना , होत और को और ॥४७॥
मोहन पास गरीब के , को आवत को जात।
एक बिचारो श्वास है , आत जात दिन रात ॥४८॥
रे पामर तोहि अन्त में , सबही देंगे छोड़।
ताते तू इन सबन तें , पहले हो मुख मोड़ ॥४९॥

सवैया—

तुमको हम तो हरि भूलि गये, तुम भूलहु तो किहि भाँति वनै।
हम तौ अति दीन, न लायक हैं, प्रभु! आप तजे नहिं एक गनै॥
सुखसागर दीन दयालु विना, हमरी विपती फिर कौन हनै।
भव-पार उतार कृपा करके, मन मोहन 'मोहन' तो सरनै॥५०॥

वाहर घाव न दीख परै, पर भासत भीतर रोग हमारे।
औषध को उपचार न लागत और उपाय सवै करि हारे॥
भीर परे कोउ काम न आवत सीर करैं सुख में मिलि सारे।
मोहन खेद मिटै तवहीं जव वैद वने दशरत्थ दुलारे॥५१॥

भवसागर के मँझधार परी, अटकी विन केवट जीरन नैया।
भटकावत भौंर भयावन में, नहिं पावत हूं कहुं धीर धरैया॥
हिय 'मोहन' हार गयो अव तो, नहिं दीखत है कोउ पार करैया।
निज ओर निहार न वार करो, मोहि पार करो व्रजराज कन्हैया॥

पग में पनही न हुती जिनके, शिविका सुखपाल परे तिहिं द्वारे।
तिल तैल हुतो न वघारन कों तिहि धाम फुलेल के दीपक जारे॥
न हुती जो छदाम सुदाम समीप तहाँ मनिदाम ते धाम सँवारे।
अनके कनके न हुते जिनके तिनके कर कञ्चन कङ्कन डारे॥५३॥

कवित्त—

मिलते कहूंक आन दाने जे जवार हू के जानते जवाहिर सें खायो धान धाप को। व्रत में विताते दिन वीति गई वैस सव पूरन निहारो फल पूरव के पाप को॥ मूठी दोय चावर के

बाबत निहाल कियो लाजै लोकपाल हेरि वैभव अमाप को। बनत कुबेर कछु बेर ही न लागी देखो प्रकट प्रताप एतो माधव मिलाप को॥ ५४॥

तीरथ त्रिवेनी सात सिन्धु ते निरास रहै खास स्वाति बूंद बिन प्यास तो बुझावे को? याचबे की बेर फेर शीश नहिं नीचो करै चढ़ि के आकाश ऊँचो तोहि पय पावै को?॥ नीच गति वारो नीर तेरे मन भावै नाहिं प्यासो मरि जावे तोहू मोहन मनावै को?। माँगने न जावे अन्य-आँगने पपीहा मानी वारिद बिना तो तेरो दारिद गमावै को?॥ ५५॥

पं० गिरिधर शर्मा 'नवरत्न'।

[सं० १९३८]

कवित्त--

मोतिन की गूंथ माँग मोतिन सो साज अङ्ग, मोतिन को हार धार सुन्दर सुचेरे मैं। जर की किनारी वारी धार सारी गुणवारी कंचुकी सुगन्ध वारो धारी तिन घेरे मैं॥ फूलन के गजरा जु बाजुबन्द धार कर, चन्दन लगाय भाल चमकाय चेरे मैं। 'गिरिधर' कवि चन्द चाँदनी के माँहि चली चाँदनी सी बन कर चन्द के उजेरे मैं॥ १॥

मेरा देश देश का मैं, देश मेरा जीव प्रान, मेरा सनमान मेरे देश की बड़ाई मैं। जियूंगा स्वदेश हित, मरूँगा स्वदेश काज, देश

के लिये न कभी करूँगा बुराई मैं ॥ भीषण भयङ्कर प्रसङ्ग में भी भूल के भी, भूलूंगा न देश हित राम की दुहाई मैं। जबलौं रहेगी साँस सर्वस भी लुटा दूंगा, ईश को भी झुका लूंगा देश की भलाई मैं ॥ २ ॥

उदय न होगा भानु पूर्व छोड़ पश्चिम में, आकर्षण शक्ति कहीं धरा की न जावेगी। हिलेगा न हिमालय चाहे जैसी हवा चले, मणिमय दिये की न ज्योति बुझ जावेगी ॥ बहेगी न उलटी गङ्गा झुकेंगे न वीर शिर, प्रकृति स्वधर्म से न कभी चूक जावेगी। टरेंगे न ब्रह्मवाक्य भोगेंगे स्वराज्य हम, सम्पदा यहाँ की यहीं पाछी लौट आवेगी ॥ ३ ॥

अंगरेज़ी जरमन फ्रेंच ग्रीक लैटिन त्यों, रशियन जपानी चीनी प्राकृत प्रमानी हो। तामिल तैलंगी तूल् द्राविड़ी मराठी ब्राह्मी, उड़िया बंगाली पाली गुजराती, छानी हो ॥ जितनी अनार्य आर्य भाषा जग जाहिर हैं, फ़ारसी ऐरावी तुर्की सब मन आनी हो। जनम वृथा है तोभी मेरे जान मानव को, हिन्द में जनम पाके हिन्दी जो न जानी हो ॥ ४ ॥

मेहरावण ।

[सं० १९२८]

सवैया—

प्रेम से दारा भयो दरवेस हि पैक सिकन्दर प्रेम लपट्टा।
प्रेम से फूल फकीर भये पुनि प्रेम से साहपने परिहट्टा ॥

किङ्कर प्रेम भयो गज नब्बिय प्रेम चिते बहराम उलट्टा।
प्रेम प्रवीन नवीन कला यह प्रेम करी मजनू सिर जट्टा ॥१॥

मोर की ध्यान लगी घनघोर से डोर से ध्यान लगी नट की।
दीपक ध्यान पतङ्ग लगी पनिहारि की ध्यान लगी घट की॥
चन्द्र की ध्यान चकोर लगी चकवान की ध्यान दिनेस टकी।
मीन मनो जल ध्यान सु सागर पन्थ प्रवीन रहे अटकी ॥२॥

श्रोन कछू न सुने बतियाँ जब तैं बतियाँ रस प्रेम पिवायो।
या रसना कछु और न जंपत नाम प्रवीन प्रवीन पढ़ायो॥
या मन और न चाहत हैं जब तैं मन आप हि के से मिलायो
नैन कछू न निहारत है जब तैं मुख चन्द समान दिखायो ॥३॥

अम्बर तैं अति उंचि बहे अरु ऊंडि रसातल हूं ते अपारी।
तोहिन के गिर तैं अति शीतल पावक तैं अति जारनहारी॥
मारहु तैं कटु मीठि सुधाहु तैं झीनि अणू तैं सुमेर तैं भारी।
जानत जान अजान न जानत सागर बात सनेह की न्यारी ॥४॥

भृङ्ग पतङ्ग कुरङ्ग भुजङ्गम कञ्ज शिखा सुर पुंगिन लैहैं।
मोर पपीह चकोर सु पङ्कज घोर वृषा शशि सूर चहै हैं॥
हारन मीन मराल जुराफ हि काष्ट जलं सर जोरि जुरै हैं।
देह को छेह दहें इतने परि नेह कों छेह प्रवीन न दै है ॥५॥

पानि के जन्तु कहा पहिचानत ग्रीषम के तप ते गरदी की।
केसर की करही कहा किम्मत है न परीख जहाँ हरदी की॥

कायर कों कल नाहिं परे कछु शूरन को सुधि है मरदी की।
बेदरदी न प्रबीन लहै कछु जानत है दरदी दरदी की॥६॥

विप्र जो वेद पढ़े तो कहा जब जानि परी नहिं वेद की बानी।
गायक गान कियो तो कहा उन राग कला सुर तान न आनी॥
जोगि विभूति चढ़ाइ कहा जब जोग कला न हिये अनुमानी।
सागर प्रीति करी तो कहा जबलौं जिय प्रीति की रीति न जानी॥

ध्यान प्रबीन हु को उर धारत गान प्रबीन हु के गुन गावै।
कान प्रबीन विना न सुने कछु तान प्रबीन हु से जु मिलावै॥
खान प्रबीन विना नहिं भावत पान प्रबीन विना नहिं खावै।
स्थान प्रबीनहु को सुमिरे उर भान प्रबीन विना भुल जावै॥८॥

खान रु पान विधान निधान निमग्न सदा सुख की तरनी मैं।
जोबन जोर भयो तरु कन्त मिल्यो नहिं चूक परी करनी मैं॥
रूप की राशि प्रकाशित देह नहीं तिय ता सम निर्जरनी मैं।
नौं पुनि धीरज धर्म तजी नहिं धन्य प्रबीन सती धरनी मैं॥६॥

खान रु पान विमान से यान सुजान महान श्रीमान कुमारी।
जोबन मैं छन मैं छन मैं तन मैं मन मैं अति मैन प्रजारी॥
अन्त प्रयन्त न कन्त मिल्यो पर-कन्त हु पै नहिं दृष्टि पसारी।
ऐसी पतिव्रत अन्य नहीं वहु धन्य प्रबीन पतिव्रत धारी॥१०॥

जाय कहो चित चाहि चकोरि कों काहि को चन्द्र पै चित्त लगावै।
और कहो सब कञ्जन को तम गञ्जन बीन क्युही कुमलावै॥

नीरज कों तुंहि धीरज देहु क्यों नीर बिना नहिं धीर धरावै।
देहु सिखामन सो सबकों सखि तेरो सिखामन मो को न भावै॥

सागर मिंत पुकार सुनो अब मैं पुनि आप की सङ्ग हि आऊं।
जो तुम अङ्ग भभूत लगाइ तो मैं पुनि अङ्ग भभूत लगाऊँ॥
जो तुम भीख को भोजन पाइहो मैं पुनि भीख को भोजन पाऊँ।
जो तुम नाथ अलेक जगाइहो मैं तुम साथ अलेक जगाऊँ॥१२॥

सीत हरी दिन एक निशाचर, लङ्क लई दिन ऐसो हि आयो।
एक दिनाँ दमयंति तजी नल, एक दिना फिर ही सुख पायो॥
एक दिनाँ बन पाण्डव गे अरु, एक दिनाँ छिति छत्र धरायो।
सोच प्रवीण कछू न करो, करतार यहै विधि खेल बनायो॥१३॥

भस्म लगाइ बनाइ जटा छबि सागर लीनि है शम्भु प्रभा की।
जोगि बनी करि मोकों बिजोगिनि भोगिनि भइ रहि भोग बिना की
शंभु चिता की बिभूति धरे इतनी कमि काहि को राखि कहा की॥
एरी सखी! उन टेरि कहै धरि जाय बिभूति सु मेरि चिता की॥

राज तज्यो सुख साज तज्यो, गज बाज तज्यो गति पाउ से कीनी।
मात रु तात तज्यो कुल जात, श्रिपात भये तजि भ्रात भगीनी॥
देह रु गेह से नेह तज्यो के, विदेह दशा दिल में धरि दीनी।
मेरे लिये सुख सागर कों तजि, सागर सद्य बिदागिरि लीनी॥१५॥

———

नीरज=कमल।

नाथूराम 'प्रेमी'।

[स० १९३८]

महावीर-स्तुति।

पद्य-

धन्य तुम महावीर भगवान।

लिया पुण्य अवतार, जगत का करने को कल्याण ॥ धन्य० ॥१॥

बिलबिलाट करते पशुकुल को, देख दयामय प्राण।

परम अहिंसामय सुधर्म की, डाली नींव महान ॥ धन्य० ॥२॥

ऊँच-नीच के भेद-भाव का, बढ़ा देख परिमाण।

सिखलाया सबको स्वाभाविक, समता तत्त्व प्रधान ॥ धन्य० ॥३॥

मिला समवसृत में सुर-नर-पशु, सबको सम सम्मान।

समता औ उदारता का यह, कैसा सुभग विधान ॥ धन्य० ॥४॥

अन्धी श्रद्धा का ही जग में देख राज्य बलवान।

कहा—'न मानो बिना युक्ति के कोई वचन प्रमाण' ॥ धन्य० ॥५॥

जीव समर्थ स्वयं, करता है स्वतः भाग्यनिर्माण।

यों कह, स्वावलम्ब स्वाश्रयका दिया सुफलप्रद ज्ञान ॥ धन्य० ॥६॥

इन ही आदर्शों के सम्मुख रहने से सुखखान।

भारतवासी एक समय थे, भाग्यवान गुणवान ॥ धन्य० ॥७॥

कहाँ वह जैनधर्म भगवान!

जाने जग को सत्य सुझायो, टालि अटल अज्ञान।

वस्तु-तत्त्वपै कियो प्रतिष्ठित, अनुपम निज विज्ञान ॥ कहाँ० ॥१॥

साम्यवाद्को प्रकृत प्रचारक, परम अहिंसावान ।
नीच-ऊँच निर्धनी-धनी पै जाकी दृष्टि समान ॥ कहाँ० ॥२॥
देवतुल्य चाण्डाल बतायो, जो है समकितवान ।
शूद्र, म्लेच्छ, पशुहू ने पायो, समवसरण में स्थान ॥ कहाँ० ॥३॥
सती-दाह, गिरिपात, जीवबलि, मांसाशन मद्-पान ।
देवमूढ़ता आदि मेटि सब, कियो जगत कल्याण ॥ कहाँ० ॥४॥
कट्टर बैरीहूपै जाकी—क्षमा, दयामय बान ।
हठ तजि, कियो अनेक मतन को—सामंजस्य-विधान ॥ कहाँ० ॥५॥
अब तो रूप भयो कछु औरहि, सकहिं न हम पहिचान ।
समता-सत्य-प्रेम ने इक सँग, यातें कियो पयान ॥ कहाँ० ॥६॥

नरसिंहदास ।

[सं० १६४०]

सवैया—

एक समै हरि कौतुक हेत, सुमोहिनि रूप अनूप बनायो ।
त्यों कल गायन नाच मनोहर, कों करिके हरि हिय लुभायो ॥
काम विकार विहीन दिगम्बर, के मन काम विमोह बढ़ायो ।
दास नृसिंह कहे यह मानहु, मेंडक जाय भुजङ्ग दबायो ॥१॥

कवित्त—

पढ़ि पढ़ि पण्डित प्रवीणहु भयो तो कहा, विनय विवेकयुत जोपैं ज्ञान आयो ना । सहस धनद सम धनिक भयो तो कहा, दान करी जोपैं निज हाथ यश छायो ना ॥ गरजि गरजि घन-

घोरनि किये तौ कहा, कहे नरसिंह नीर चातक मुख नायो ना। अमल को पाय अमलदार भयो तो कहा, अमल के अमल में रङ्क अपनायो ना ॥ २ ॥

गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही'।

[सं० १९४०]

सवैया—

वह वेपरवाह बने तो बने हमको इसकी परवाह का है।
वह प्रीति का तोड़ना जानते हैं ढंग जाना हमारा निवाह का है॥
कुछ नाज़ ज़फा पर है उनको तो भरोसा हमें बड़ा आह का है।
उन्हें मान है चन्द से आनन पै अभिमान हमें भी तो चाह का है॥

दाह रही दिल में दिन द्वैक बुझी फिर आपै कराह नहीं अब।
जानि कै रावरे रूरे चरित्र गुन्यो हिय में कि निवाह नहीं अब॥
चाहक चारु मिले तुमको चित माहिं हमारे भी चाह नहीं अब।
जो तुम में न सनेह रहा इनको भी नहीं परवाह रही अब ॥२॥

कवित्त—

रावन से बावन बिलाने हैं बचे न एक चाल नहिं काल से किसी की चल पाई है। कौरव कुटिल कुल कुल के कठोर भये कृष्ण जी सो कंस की न दाल गल पाई है॥ हाय की हवा सों जल गये हैं जवन जूथ हासिल हुकुम पै न लागे पल पाई है। या ते बल पाय फल पाय लेहु जीवन को दीन कलपाय कहो कौने कल पाई है॥ ३ ॥

सत्यनारायण कविरत्न।

[सं० १९४१]

प्रेम-कली।

मंजु मनोरम मधुर सरस सुठि रस-कुसुमाकर।
प्रेम सबद अति अद्भुत अमल अलौकिक आखर॥
करत रुचिर रचना विरञ्चि जिनकी सुखकारी।
भये होयँगे अवसि परम कृत कृत्य सुखारी॥ १॥
अगम अगाध अपार सबद्मय पारा-वारा।
मनु मथि जग हित सुधाकलस विधि सदय निकारा॥
बसी करन मुद भरन ओघ अघ दरन सदा के।
अकथित अमित प्रभाव पूर्ण मनु मन्तर बाँके॥ २॥

भ्रमर दूत।

अति उदास, बिन आस, सबै-तन-सुरति भुलानी।
पूत प्रेम सों भरी परम दरसन ललचानी॥
बिलपति कलपति, अति जबै, लखि जननी निज श्याम।
भगत भगत आये तबै, भाये मन अभिराम॥
भ्रमर के रूप में॥३॥

ठिठक्यो, अटक्यो भ्रमर देखि जसुमति महरानी।
निजदुख-सों अति दुखी ताहि मन में अनुमानी॥
तिहि दिसि चितवत चकित चित सजल जुगुल भरि नैन।
हरि-वियोग कातर अमित, आरत गद-गद बैन॥
कहन तासों लगी॥४॥

तेरो तन घनश्याम श्याम घनश्याम उतै सुनि।
तेरी गुञ्जनि सुरलि मधुप, उत मधुर मुरलिधुनि॥
पीत रेख तव कटि वसत, उत पीताम्बर चारु।
विपिन-विहारी दोउ लसत एक रूप सिंगारु॥
जुगल रस के चखा ॥५॥

सवैया—

मृदु मंजु रसाल मनोहर मंजरी, मोर पखा सिर पै लहरैं।
अच वेलि नवेलिन वेलिन में नव जीवन जोति छटा छहरैं॥
पिकभृङ्ग सुगुञ्ज सोई मुरली सरसों शुभ पीत पटा फहरैं।
रसवन्त विनोद अनन्त भरे, व्रजराज वसन्त हिये विहरैं॥६॥

रूपनारायण पाण्डेय।

[सं० १९४१]

कवित्त—

गारी दै अगारी आज न्यारी निज मण्डल ते, नारी सुरनारी सी विहारी को छलै गई। घूंघरि मैं धाय धँसि धरि लीन्हों फेरि फिरि, अङ्गन मैं रङ्ग की तरङ्गन भिजै गई॥ वीर वलवीर पै अवीर वीर पारि इत, अञ्जन लै आँगुरीन अँखियान दै गई। होरी मैं ठगोरी डारि गोरी चित चोरी करि, झोरी लै गुलाव की सु लालै लाल कै गई॥ १॥

कंचुकी कसी सी कसी उरज उतङ्गन पै चूनर सुरङ्ग की वहार अङ्ग गोरे मैं। मेहँदी ललाई की ललित छवि छाई सव

तन की निकाई ना कहत बनै थोरे मैं ॥ सावन सुहावन मैं पाय मन भावन को, हँसि हँसि हेरि हेरि नेह के निहोरे मैं। मैन मदमाती मन मोहनी मुदित मन, झुकि झुकि झूमि झूमि झूलत हिंडोरे मैं ॥ २ ॥

आनन स्वकीया को निहार्यो सपने हू नहीं, परि परकीया में कमायो है अजस क्यों ? गनिका के भेद पै अपार खेद पायो सदा, जानत सिंगार-रचना को सरबस क्यों ? ॥ हावभाव भूलो नहीं तब तो अजान अब, कठिन समस्या हेरि होत है अलस क्यों ? । देश की भलाई भला आई न जो तोहिं मन, नाहक बिताई कविताई में बयस क्यों ? ॥ ३ ॥

रामचन्द्र शुक्ल ।

[सं० १९४१]

प्रेम ।

नृपद्वार कुमारि चलीं पुर की अँगराग सुगन्ध उड़ै गहरी ।
सजि भूषण अम्बर रङ्ग विरङ्ग उमङ्गन सों मन माहिं भरी ॥
कवरीन में मंजु प्रसून गुछे दृगकोरन काजर-लीक परी ।
सित भाल पै रोचनविंदु लसै पग जावक-रेख रची उछरी ॥

चलि कुंवर आसन पास सों मृदु मन्द गति सों नागरी ।
है कढ़ति कारे दीर्घ नयन नवाय भोरी छवि भरी ॥
बढ़ि राजतेजहु सों कछू तहँ हेरि ते हहरैं हिये ।
जहँ लसत कुंवर विराग को मृदु भाव आनन पै लिये ॥

जो निकसै अति रूपवती सब लोग सराहत जाहि दिखाय।
सो चकि कै हरिनी सी खड़ी चट होय कुमार के सम्मुख आय-
दिव्य स्वरूप, महामुनि सो सब भाँति अलौकिक जो दरसाय-
लै अपनो उपहार मिलै पुनि कम्पित-गात सखीन में जाय॥

पुर की कुमारी एक पै चलि एक यों पलटीं जबै।
टूट्यो छटा को तार औ उपहार हू बँटिगो सबै॥
ठाढ़ी भई तब आय कुंवर समीप दिव्य यशोधरा।
अति चकित हेरत रहि गयो सो स्वर्ग की सी अप्सरा॥

मृदु आनन पै लखि इन्दुप्रभा अरविन्द सबै सकुचाय परें।
शर हेरि प्रसून के नैनन में हरिनीन के नैनहु ना ठहरें॥
पुनि जोरि कुमार सों दीठि चितै मुसकान कछू अधरान धरे।
'कछु पाय सकैं हमहूं' यह पूछति भौंहन में कछु भाव भरे॥

सुनि कहत राजकुमार 'अब उपहार तो सब बँटि गयो'।
पै देत हौं जो नाहिं अब लौं और काहू को दयो॥
चट काढ़ि मरकत माल वाके कण्ठ में नाई हरी।
तहं नयन दोउन के मिले जिय प्रीति जासों जगि परी॥

मन्नन द्विवेदी (गजपुरी) बी० ए०।

[सं० १९४२—१९७८]

आगे बढ़े बरेली होते नैनीताल सिधारे हैं।
कैसो बसी हुई है नगरी रङ्ग ढङ्ग सब न्यारे हैं॥

इन्द्र पुरी को लेकर किसने पृथ्वी पर फैलाया है।
अपने कर कमलों से विधि ने इसको यहाँ बसाया है॥
नन्दन के आनन्द कुञ्ज का चित्र विचित्र बनाया है।
जग-बन्दन लन्दन को अथवा सिन्धु पार से लाया है॥
पर्वतराज हिमालय अपनी भुजा दूर तक फैलाता।
देखो यह किससे मिलने ऊपर है उठता जाता॥
नहीं यहाँ भी मिली हमारी प्राणों की प्यारी प्यारी।
नहीं दिखाया दृश्य हमारे नैनों को वह सुखकारी॥
नहीं सुनाई पड़ा हमें बीना स्वर उसका मुद दाई।
नहीं कहीं काली नागिन सी बेनी अपनी बिखराई॥
चन्द्र बदन का पता नहीं हा! व्याकुल बिरह चकोर हुआ।
कमल-कुसुम में बन्दी मधुकर अभी न उसका भोर हुआ।
बहुत सताते गये बिरह में प्यारी अब तो आ जाना।
का बरखा जब कृषी सुखाने, सुधा सलिल बरषा जाना॥
अगर नहीं सन्तोष आप ही आकर मुझे सता जाना।
मन्द प्रेम परिणाम कान में प्यारी मुझे जता जाना॥
क्यों रोती है उषा प्यारी इतना अभी न घबराओ।
अभी सामने करने कितने धीरज साहस दिखलाओ॥
मरना ही परिणाम जगत का साथ हमारे मर जाना।
सखी विरह में मरी सहेली अटल नाम यह कर जाना॥
तुझ सा निर्मल प्रेम विश्व में नहीं किसी ने दिखलाया।
परमारथ का पाठ किसी ने कहीं न तुझ सा सिखलाया॥

आँखे कितनी भोली भाली कैसी प्यारी प्यारी हैं ।
धोखे में मत पड़ना प्यारे विष की बुझी कटारी है ॥
इन्हीं निगोड़ी आँखों ने ही लेकर मुझे फँसाया था ।
गई धर्म करने मुझसे कैसा दुष्कर्म कराया था ॥
फिर भी इनके नखरे देखो आँसू बैठ बहाती है ।
पहले आग लगा देतीं फिर उसे बुझाने जाती हैं ॥
सभी खेल दिखला कर नटवर अन्तकाल में मरते हैं ।
दुनिया का है नियम यही जो फल फलते है झरते हैं ॥
तन धारण कर हमें एक दिन जब अवश्य ही मरना है ।
डटकै करना काम सदा ही फिर क्यों किससे डरना है ॥

बदरीनाथ भट्ट ।

[सं० १६४२]

नौकरी ।

प्रश्न-

सुन्दर हार कहाँ से पाया,
इसकी उजली चमक दमक ने सब का हृदय लुभाया ।
बड़े मनोहर रत्न जड़े हैं—धन के दुर्ग खड़े हैं,
जिनके प्रभा पूर्ण विशिखों ने ऋण दारिद्र्य मिटाया ।
सुन्दर हार कहाँ से पाया ॥

उत्तर-

झूठा हार गले लटकाया,
इसकी कोरी तड़क भड़क ने दुनिया को बहकाया ।

सभी काम इसका है नकली इसने हमें फँसाया॥
भीतर कुछ बाहर कुछ—कुछ का कुछ है हमें बनाया।
झूठा हार गले लटकाया॥

माखनलाल चतुर्वेदी।

[सं० १६४२]

अपने सपूत से-

महलों पर कुटियों को वारो, पकवानों पर दूध-दही।
राज-पथों पर कुंजे वारो, मञ्चो पर गोलोक मही॥
सरदारों पर ग्वाल और नागरियों पर व्रज बालायें।
हीर-हार पर वार लाड़ले बनमाली! बन-मालायें॥
छीनूंगी निधि नहीं किसी सौभागिनि पुण्य-प्रमोदा की।
लाल! वारना नहीं किसी पर, गोद ग़रीब यशोदा की॥

शालिग्राम।

[सं० १६४३—१६८५]

सवैया—

रावन नाशन राम को शासन, पाय हुतासन में सिय झूली।
देह की दूनी लगी दुति दीपन, 'शालिग' देखि सबै मति भूली॥
ताहि समै नभ मण्डल में थित देव विरञ्चि शचीपति शूली।
दैन लगे उपमा इमि मंजुल, पावक पुञ्ज पै कञ्ज-सी फूली॥१॥

अङ्ग भभूत अनङ्ग अरी, सिर गङ्ग तरङ्ग भुजङ्गम कारे।
भाल में बाल मयङ्क लसै, गल मुण्डन माल विशाल सँवारे॥
'शालिग' देखत इन्दु गणेश, कर्यौं अलका मधि शंभु पधारे।
बाँझ को पूत बजार के बीच, अमावस रैन को चन्द निहारे॥२॥

जे कुटली कपटी कलही, खल हैं अति अज्ञ अलाम उचंगे।
'शालिग' या कलिकाल मे ऐसो, चहूं दिशि चाभत माल कों चंगे॥
सज्जन के गन ते अनहीन रु, वस्त्र विहीन फिरैं तन नंगे।
को अपराध तैं विज्ञ किये हमैं, क्यों न किये प्रभु लुच्चे लफंगे॥३॥

पालन धर्म धर्‌यो धरनी, पशु मारन कर्म सनातन बैठो।
'शालिग' छत्रिन को सब भाँति, पवित्रपनो तो पताल में पैंठो॥
खाल उखारत फारत माँस, मरे-पशु पें जनु अन्त्यज बैठो।
है धिरकार विचार विहीन, शिकार में खावत श्वान को ऐंठो॥४॥

क्यों व्यभिचार करो इतनो इक वेर ही मैथुन को व्रत पारो।
हावत अङ्कुश को कछु काम न मत्त गजेन्द्र पें हत्थल मारो॥
केवल माँस अपक्व भखो किन चावर प्याज अनाहक डारो।
है मृगराज रु लाज न आवत खाय फजूल अनाज विगारो॥५॥

चेत अचेत वृथा श्रम लेत, न क्यो अपनी घरनी पें निहारो।
हेत समेत कहै जन शालिग, क्यों तन हीर अमोलक हारो॥
ठौर कुठौर कुं जोय जरा, मत वोय अनाहक वीज विगारो।
है पर खेत फलै तो कहा फल, क्यों निज रेत कों रेत में डारो॥६॥

कवित्त—

पूरे बेवकूफ कूरे विषयी बुरे हैं तऊ, पैसा जोपै पास तो परेसता खुदा के हैं। पैसे बिन विज्ञ ही विख्यात बेशहूर जैसे, 'शालिग' सवारथी न वैसे पास आके हैं॥ पतनी पती की नाहिं पति नाहिं पतिनी को, पिता नाहिं पूतन के पूत न पिता के हैं। सफम सफाके फिरैं घरमाँ झफाकें परैं, पैसा नहिं जाके ऐसे काके फिर का के हैं॥ ७॥

आखू पै बिड़ाल तैसे ताकत तमाखू पर, चाखत ना चोखे माल विष मै विलम के। सूखि जात साफी जब माफी माँग जाँचै जल, आग हित लागै जाय पाय बे-इलम के॥ ठठा ठोल रौल मैं अँगार गिरि जात जबै, जातैं जरि जात गद्दी गद्दा गिलम के। चारि वर्ण हू को थूक चाटन को चेताचूक, ह्वै गये उलूक केते चाकर चिलम के॥ ८॥

नासका नहीं है घर-नास का निसान यही, कहै इमि ताकों गाली बोलत बटाक दै। करै मनवार कोउ और प्रति डब्बी खोल, पोल देखि आप चिचैं झाँपत झटाक दै॥ नाक ह्वै निकाम जा को देखत उलाक होत, नाक सुख खोय गिरै नरक गटाक दै। चिमटी चटाक भरि सूंघत सटाक दे र, बेर बेर ढेर मुख छींकत छटाक दै॥ ९॥

वेल-कम बोलन तें वेल कम होन लागी, बोय दीने गुड-बॉय हिम्मत घटाई है। ऊँची मूंछ रहे कैसे करजन सफाई करी, फ्रेंच-

परेसता—फरिस्ता=देवदूत। रोल=मजाक। उलाक=वमन। नाक=स्वर्ग।

कट फैसन में मूंछ भी कटाई है ॥ बने खुद नाई हंजे मुण्डन हमेश करै, होकी खेल हुरें हुरें तालियें पिटाई हैं । ऊभे ऊभे करत छँटाई मेक-वाटर की, नेकता हटाई अब धारी नेकटाई है ॥ १० ॥

सप्त दून पूरे स्वर खंचकर पञ्च राखे, प्रिन्सिपल पण्डित भे नजर विलाई सी । टारि के तवर्ग टूथ पारे हैं टवर्ग राखि, पोयटरी भाखे टूटी टङ्क को हिलाई सी ॥ बावन थी वर्णमाला टूवेण्टी सिक्स वर्ड सोई, डर्टी अशलील कहे ए. बी. सी. डी. आई. सी. । संस्कृत काव्य विद्या वेल कम होन लागी, वेल-कम बोले कहा बात है बधाई सी ॥ ११ ॥

बाईशिक्ल हू पें बैठे बाई की-सी शक्ल कर, कर्जन कटाई मूंछ आई खूबसूरती । अन्न देव जू के गले देत छुरी काँटे और विप्र सूद छाँटे बुटलेर ढेड़ सूरती ॥ पास में बरएडी रण्डी होटर में मोटर में, उडत पिछाड़ी धूर भूंके खर चूरती । लाल लाल कीने गाल हैट टोप घाल लीने, मुड्डे पैन चीने परे मर्कट सी मूरती ॥

पाले पोपे पहिरे लगावत है आठूं पौर, ऐसी प्यारी देह तैसी और की पिछानी नाँ । क्षौरकार बार नख लेवे तव वार वार, नाँखे ससकार यातें तो से पीर छानी नाँ ॥ शालिग अलीन आँत ताँतन तें आवृत जो, मेद मल मज्जा अस्थि आकृति अजानी नाँ । जावे शमसान तो सचैल तूं सनान करे, थाली में मसान ताकी आवत गलानी नाँ ॥ १२ ॥

मानी मद भीने यदुवंशी सीख मानि नाहिं, बारुणी ते प्रीति ठानी आये खफखानी में । छोड़ी रजधानी पुरी द्वारिका डुबानी

तब, आपस में प्रान खो मिलाने धूर–धानी में ॥ बानी तुतरात बानी डारत जुबानी पर, पागल लगावे दाग नीकी जिन्दगानी में। जानी नहिं जात होनहार गति शालिग जु, डूब गये केते दानी मदिरा के पानी में ॥ १४ ॥

काँपत है काया दन्त बीच जीभ चाँपत है, हाँपत ही अश्रुनैन आवत गलानी है। स्मरण कियें तें शाल शालत सदाहि रहै, हालत है हूक मुख मूक होत प्रानी है ॥ जहर जुबान तें अपार हित हानी होत, शालिग कुमोत तें न एती नुकशानी है। प्रान अवशेष रहै जरत सदैव जीव, बान तें विशेष यों कठोर कटु बानी है ॥ १५ ॥

आमिष आहार ही तें आवत अपार बल, वाकबी न पूरी ऐसी कूरी गप्प मार दी। राम फलाहारी इकवीस वार फरसा तें, छत्रिन को मार जात जर तें उखार दी ॥ बलीमुख बाली दशमुख को दबाय काँख, शालिग विशाल मगरूरी को उतार दी। राकस अनेकन को राखे रण खेत देखो, पान फूल खाय श्यान बाँदराँ बिगार दी ॥ १६ ॥

बिगरी दशा है दुरजोधन दुशासन की, द्रोपदी में दीनी दृष्टि खोटी द्यूत दावा में। रासधारी राधिका को साँग साज हाँसी करै, होत ब्रजराज व्याज निन्दा गीत गावा में ॥ तारापति शालिग करी जो पर-दारा प्रीत, मारा गया बाली सुगरीव के सिखावा में। सीता हरि लावा बदनीत फल पावा देखो, होत दशकण्ठ की फजीती दशरावा में ॥ १७ ॥

दान यजमान ही तें लेत अनुष्ठान हेत, देव कों न देत द्विज स्तेयता प्रचार की। धाड़ मार लूटि खावै चौगुनो लगावै कर, दस्युता दिखावै ऐसी क्षत्री परिवार की॥ ताकरो में तोल कम तस्करता वैश्य करै, चाकरी के चौर शूद्र तनखा डकार की। शालिग विचार विना चारों वर्ण गुप्त चौर, चावी करी चौरी हम चार ही प्रकार की॥ १८॥

लैन हरि नाम को ललाम मुख दीनो जाहि, ताहि मुख मध्य में तमाखू भरी ताजी है। साफी की सफाई में सफाइ करी शुभ्रता की, पुण्य युग्म पानी अपवित्र किये पाजी है॥ गङ्गामृत पान को विहाय धूम्र पान करै, कीने अघ काम राम रहै कैसे राजी है। चक्र रूप शालिग्राम जाहि में विराजते थे, ताही बटवे में आज चिलम विराजी है॥ १६॥

मैथिलीशरण गुप्त।

[सं० १९४३]

छन्द हरिगीतिका—

जो पूर्व में हमको अशिक्षित या असभ्य बता रहे—
वे लोग या तो अज्ञ हैं या पक्षपात जता रहे।
यदि हम अशिक्षित थे कहें तो सभ्य वे कैसे हुए?
वे आप ऐसे भी नहीं थे आज हम जैसे हुए॥१॥

कल जो हमारी सभ्यता पर थे हँसे अज्ञान से—
वे आज लज्जित हो रहे हैं अधिक अनुसन्धान से।

जो आज प्रेमी हैं हमारे भक्त कल होंगे वही,
जो आज व्यर्थ विरक्त हैं अनुरक्त कल होंगे वही ॥२॥

होगी यहाँ तक कर्कशा क्या लेखनी! तू पर बशा—
गृहदेवियों की जो हमारी लिख सके तू दुर्दशा?
किस भाँति देखोगे यहाँ, दर्शक! दृगों को मीच लो,
यह दृश्य है क्या देखने का, दृष्टि अपनी खींच लो ॥३॥

रखतीं यहीं गुण वे कि गन्दे गीत गाना जानतीं,
कुल, शील, लज्जा उस समय कुछ भी नहीं वे मानतीं।
हँसते हुए हम भी अहो! वे गीत सुनते सब कहीं,
रोदन करो हे भाइयो! यह बात हँसने की नहीं ॥४॥

है ध्यान पति से भी अधिक आभूषणों का अब उन्हें,
तब तुष्ट हों तो हों कि मढ़ दो मण्डनों से जब उन्हें।
है यह उचित ही, क्योंकि जब अज्ञान से हैं दूषिता—
क्या फिर भला आभूषणों से भी न हों वे भूषिता ॥५॥

(भारत भारती से)

करते हैं हम पतित जनों में बहुधा पशुता का आरोप,
करता है पशुवर्ग किन्तु क्या निज निसर्ग नियमों का लोप?
मैं मनुष्यता को सुरत्व की जननी भी कह सकता हूं।
किन्तु पतित को पशु कहना भी कभी नहीं सह सकता हूं ॥६॥
आ आकर विचित्र पशु-पक्षी यहाँ बिताते दोपहरी,
भाभी भोजन देतीं उनको पञ्चवटी छाया-गहरी।

चारु चपल बालक ज्यों मिल कर माँ को घेर खिझाते हैं,
खेल-खिझाकर भी आर्य्यों को वे सब यहाँ रिझाते हैं ॥७॥

गोदावरी नदी का तट वह ताल दे रहा है अब भी,
चञ्चल जल कल कल कर मानों तान दे रहा है अब भी !
नाच रहे हैं अब भी पत्ते, मन-से सुमन महकते हैं,
चन्द्र और नक्षत्र ललक कर लालच भरे लहकते हैं ॥८॥
(पञ्चवटी से)

लोचनप्रसाद पाण्डेय ।

[स० १९४३]

सवैया-

रावण ने कर वन्धु विरोध लखो निज सम्पति जान गँवाई ।
वालि ने व्यर्थ सुकण्ठ को कष्ट दे खोई स्वजीवन, राज बड़ाई ॥
भूल से भी न कभी करिये निज भाइयों से इस हेतु लड़ाई ।
काम हैं आते विपत्ति के काल में गाँठ का कञ्चन पीठ का भाई ॥

लक्ष्मीधर वाजपेयी ।

[स० १९४४]

दिन कर कमलों को स्वच्छ देता सुहास ।
शशि कुमुद-गणों को रम्य देता विकास ॥
जलद बरसते हैं भूमि में अम्बु धारा ।
सुजन विन कहे ही साधते कार्य सारा ॥ १ ॥

बिकल अति क्षुधा से देख के पुत्र प्यारा ।
जननि हृदय से है छूटती दुग्ध-धारा ॥
लख कर कुदशा त्यों दीन दुःखी जनों की ।
सहज प्रकट होती है दया सज्जनों की ॥ २ ॥
लहर-रहित होता है पयोधि प्रशान्त ।
सुहृदय रहते हैं धीर गम्भीर शान्त ॥
सुख, दुख, भय, चिन्ता आदि से हो अलिप्त ।
स्थिर मति रहते हैं साधु ही आत्मतृप्त ॥ ३ ॥
सब नद-नदियों का नीर धारा-प्रवाही ।
बह कर मिलता है सिन्धु में सर्वदा ही ॥
तदपि न तजता है आत्म-मर्याद सिन्धु ।
सुविपुल सुख में भी गर्व लाते न साधु ॥ ४ ॥
यदि सब सरिताएँ ग्रीष्म में शुष्क हों भी ।
वह उदधि रहेगा पूर्ण ही मित्र तो भी ॥
धन, सुख, प्रभुता का सर्वथा हो अभाव ।
पर सम रहता है सज्जनों का स्वभाव ॥ ५ ॥

नन्दलाल माथुर ।

[सं० १९४४]

दोहा—

लखि गाहक गिरिजेस सो , लई मया-मनि-माल ।
बेचि दियौ मन-माल निज , बिन दलाल 'नँदलाल' ॥ १ ॥

जा जन में भव-भजन को, 'नन्द' नहीं लवलेश।
जननी ताको जनम दे, कोरो सह्यो कलेश ॥ २ ॥
'नन्द' कहा वह कल्पतरु, सिव-सेवन सों दूर।
ईश आप हित सों गहैं, धन-धन तुही धतूर ॥ ३ ॥
'नन्द' नाथ-दरबार में, लूट होति दिन-रात।
जैसी जाकी बन्दगी, तैसो आवत हात ॥ ४ ॥
जिन पहिले पातक किए, फिर सेयो भगवन्त।
'नन्द' खुले वा नरक के, ताला लगे तुरन्त ॥ ५ ॥
सिख-सोना सोनार-गुरु, सुमति-मूस रुचि-आग।
अमल करत है 'नन्द' यों, शङ्कर-नेह-सुहाग ॥ ६ ॥
'नन्द' बहुत नीकी बनी, प्रकृति मिली उर-अन्त।
हौं भोरो सेवक भयो, यह भोरो भगवन्त ॥ ७ ॥
'नन्द' पाइ नर-देह कों, तू हर के गुन गाइ।
जीवन बीतो जाइ यह, जनि रीतो रहि जाइ ॥ ८ ॥

रामनरेश त्रिपाठी।

[स० १९४५]

तू और मैं—

मैं ढूंढ़ता तुझे था जब कुञ्ज और बन में।
तू खोजता मुझे था असमर्थ के सदन में ॥
तू 'आह' बन किसी की मुझको पुकारता था।
मैं था तुझे बुलाता सङ्गीत में भजन में ॥

मेरे लिये खड़ा था दुखियों के द्वार पर तू।
मैं बाट जोहता था तेरी किसी चमन में॥
बन कर किसी के आँसू मेरे लिये बहा तू।
मैं था तुझे निरखता माशूक़ के बदन में॥
दुख में रुला रुला कर तू ने मुझे चेताया।
मैं मस्त हो रहा था तब हाय अंजुमन में॥
बाजे बजा बजा कर मैं था तुझे रिझाता।
तब तू लगा हुआ था पतितों के सङ्गठन में॥
मैं था विरक्त तुझसे जग की अनित्यता पर।
उत्थान भर रहा था तब तू किसी पतन में॥
बेबस गिरे हुओं के तू बीच में खड़ा था।
मैं स्वर्ग देखता था झुकता कहाँ चरन में॥
तू ने दिये अनेकों अवसर न मिल सका मैं।
तू कर्म में मगन था मैं व्यस्त था कथन में॥
हरिश्चन्द्र और ध्रुव ने कुछ और ही बताया।
मैं तो समझ रहा था तेरा प्रताप धन में॥
मैं सोचता तुझे था रावण की लालसा में।
पर था दधीच के तू परमार्थ रूप तन में॥
तेरा पता सिकन्दर को मैं समझ रहा था।
पर तू बसा हुआ था फरहाद की हकन में॥
क्रीसस की 'हाय' में था करता विनोद तू ही।
तू अन्त में हँसा था महमूद के सदन में॥

प्रह्लाद जानता था तेरा सही ठिकाना ।
तू ही मचल रहा था मन्सूर की रटन में ॥
आखिर चमक पड़ा तू गाँधी की हड्डियों में ।
मैं था तुझे समझता सुहराव पीले तन में ॥
कैसे तुझे मिलूंगा जब भेद इस क़दर है ।
हैरान हो के भगवन् आया हूं मैं शरन में ॥
तू आब है रतन में सौन्दर्य है सुमन में ।
तू ज्ञान है किरन में विस्तार है मगन में ॥
तू ज्ञान हिन्दुओं में ईमान मुस्लिमों में ।
विश्वास क्रिश्चियन में तू सत्य है सुजन में ॥
हे दीनबन्धु ऐसी प्रतिभा प्रदान कर तू ।
देखूं तुझे दृगों में मन में तथा वचन में ॥
कठिनाइयों दुखों का इतिहास ही सुयश है ।
मुझको समर्थ कर तू बस कष्ट के सहन में ॥
दुख में न हार मानूं सुख में तुझे न भूलूं ।
ऐसा प्रभाव भर दे मेरे अधीर मन में ॥

बा० जयशंकर प्रसाद ।

[सं० १९४६]

प्रत्याशा—

मन्द पवन बह रहा, अन्धेरी रात है,
आज अकेले निर्जन गृह में क्लान्त हो ।

बैठे हैं प्रत्याशा में हम प्राण धन!
शिथिल विपञ्ची मिली विरह सङ्गीत से॥
बजने लगी उदास पहाड़ी रागिनी,
बँधा नहीं स्वर किन्तु हृदय में शुद्ध हो।
कहते हो 'उकराठा तेरी तेरी कपट है',
नहीं नहीं उस धुंधले तारे को अभी॥
जीवन धन मैं देख रहा हूं सत्य ही,
आधी खुली हुई खिरकी की राह से।
दृग्गोचर होता है जो तम व्योम में,
हिचको मत निस्सङ्क न देखे मुझे अभी॥
तुमको आते देख स्वयं हट जांयगे,
वे सब आओ मत सँकोच करो यहाँ।

नित्यानन्द।

[सं० १६४६]

श्री अयोध्या मुक्ति नगरी भव्य भारतवर्ष की—
मुख्य थी तब राजधानी कोटि थी उत्कर्ष की।
नित्य जिसके पाद सरयू क्या पखार पखार के—
पा चुकी है लाभ इच्छित-दान मय अधिकार के?॥ १॥

मानवेश्वर मान्य मनु ने चाव से जिसको रचा,
पूर्ण रचना के अनन्तर दिव्य साधन जो बचा।

क्या उसी से विश्वपति ने सुरपुरी निर्माण की?
मुक्ति-दायक कर इसे यह बात भी सप्रमाण की ॥ २ ॥

व्योमचुम्बी रत्नराजित स्वर्ण मय प्रासाद थे,
विश्वकर्मा-दत्त क्या आकारवान प्रसाद थे।
देव वैमानिक जिन्हें वासार्थ कुछ सज्जित हुए,
किन्तु जान सुमेरु से भी अत्यधिक लज्जित हुए ॥ ३ ॥

शिवकुमार केडिया 'कुमार'।

[सं० १९४७]

कवित्त-

पूरन सुधा के घट, घट में अनेक जाके, लोयनि में लाज के तड़ाग सरसाने हैं। मुख में विनोद के पयोद उमड़े ही रहे, राम-रस-हाद रोम-रोम लहराने हैं ॥ कहत 'कुमार' भाँति-भाँति के पुराने नये, ग्रन्थ कितनेक परे कण्ठ में न जाने हैं। सत्य औ अहिंसा आदि अद्भुत हथ्यारन के, गाँधी के कपार में अपार कारखाने हैं ॥ १ ॥

मज्जा में मुसाहिबी रटौरन की ठौर-ठौर, माँस में मराठन के ठाट विलसतु हैं। रक्त में भराने राने, चाम में चुहान-चम्, हाडन में हाडन के झुण्ड हरसतु हैं ॥ कहत 'कुमार' ताके तीछन कटा-छन में, लाखन लड़ाके कटि-तट कों कसतु हैं। वीरवर केते बात-बात में बिराजि रहे, बादसाह केते बार-बार में बसतु हैं ॥२॥

वाकी नस-नस मैं सनेह की नदी के दौर, दिल में दया के दरियाव लहराने हैं। लाखों परी खोपरी मैं झोंपरी गरीबन की, मन की दरी मैं दुरी हीरन की खाने हैं॥ कहत 'कुमार' त्यौं कपार पै पहार भारी, भारत के भार के उठाए जग जाने हैं। बन्धुता की वाटिका बिराजै बोटी-बोटी-बीच, छोटी सी लँगोटी बीच खादी के खजाने हैं॥ ३॥

पावन बनाइ मन मीत! तू अभीत बन, बासना-बिकार तें बिहीन जन तारे जात। कहत 'कुमार' धौल धार पय-पारावार, पेखिकै प्रभू के पाद्-पद्म पसारे जात॥ पावत मलीन तम-लीन मनवारे मूढ़, जातना जघन्य जवै जीव जम द्वारे जात। कारे पट मैलवारे मोगरीन मारे जात, जारे जात ज्वाल पै पखान पै पछारे जात॥ ४॥

कण्टक गनै न पङ्क ऊँच-नीच अन्तक हू, भ्रमत कहूं को कहूं सन्तत मदान्ध बन। कहत 'कुमार' त्यौं कुमारग की ओर दुष्ट, दौरि-दौरि दोषी बनै घोर और तावै तन॥ डारत सुपन्थ जुगती में जदि कोऊ मिलै पुन्य-पुञ्ज-पूरब तें प्रबल सुपन्थी जन। नातरु पथिक! परिनाम मैं पतन, हाय! बाजी बेलगाम सम पाजी है हमारो मन॥ ५॥

अटल अहिंसा की अलौकिक लराई लरैं, निठुर हठीले सठ हिंसक हरैवे कों। कहत 'कुमार' सबैं मादक बिनासैं वस्तु, सासन-स्वराज्य मैं मदोनमत्त ह्वैवे कों॥ चाव तें चबात रूखी रोटिन सनेह सून्य, सरिता स्वदेश के सनेह की बहैवे कों। जेल

जात हिन्द-बासी हिन्द कों छुड़ैवै हेत, खेल जात जिन्दगी पै जिन्दगी बनैवे कों ॥ ६ ॥

टोपी कों चढ़ावैं सीस टोपी को लजैवे हेत, पदवी तुरन्त त्यागैं पदवी बढ़ैवै कों। कहत 'कुमार' काति सूत की लगावै झरी, उदर दरी की ज्वाल भीषन बुझैवे कों ॥ सम्पति सिरावैं सबै सम्पति समेटिवे कों, विपति बटोरत विपत्ति विनसैवे कों। पुन्य-पुञ्ज प्यारे पूत-आतमा सपूतन की, देश बलि देत हैं सपूत उपजैवे कों ॥ ७ ॥

यौं तो देखिवे मैं तुम न्याय की निसानी, किन्तु, ढोल बीच पोल पारखीन जानि पाई है। कुसल कसौटी पै तनिक सी कसी 'कुमार', निकसी अन्यायकारी विकसी बुराई है ॥ साधन तिहारे पास केवल कठोर दण्ड, ताकी पुनि सन्तत गुनीन पै चढ़ाई है। तुच्छन कों देती तू तुरन्त तुला ! उच्चताई, गुरुन गिराई देती कैती नीचताई है ॥ ८ ॥

वीर बल-सालिन तें कबहू भिरै न जाइ, राजन के धामन को नाम नहिं लीनो है। रोगिन वियोगिन त्यौं निबल गरीबन पै रात ही मैं वार करै कायर कमीनो है ॥ रूई-हरुआई मैं भरी हैं गरुआई सीत !, मित्र हू कों कीन्हो तैं प्रताप तें विहीनो है। पौनमय प्रान जौन पौन तें परै 'कुमार' पानी सो पदारथ पखान करि दीन्हो है ॥९॥

गुनीन=डोरियें। हरुआई=हलकी।

वीभत्स रस में ईश्वर-स्तुति।

भुजंग-प्रयात—

कितै मच्छ औ कच्छ की तुच्छ देही, कितै केहरी कोल है रक्त-नेही।
कितै अस्व अस्वच्छ ह्वै भू पधारे, पसू पुच्छवारे भले रूप धारे!॥
मिली रच्छसी नर्क की अच्छरा सी, मनौ मैल की मूरती कीच-रासी
घिनावैं घनी माखियाँ भिन्भिनावैं, अहो दूध वाको पियौ व्यास गावैं
भखे वेर जूंठे चखे भिल्लनी के, घिनैले घनेरे लगे नीच नीके।
सुता भालु की अर्द्धअङ्गी बनाली, किती सीस पै थूकती है फनाली
धरै हाथ मैं हाड त्यौं पङ्क जायौ, गदा चक्र कौं रक्त को रङ्ग भायौ
कितै होंठ पै हाड को सङ्ख राखैं, धरे सीस पै पङ्क ही पङ्क राखैं॥
कितै भाल पै काल से व्याल राखैं, कितै साथ मैं भूत वेताल राखैं।
करी केहरी व्याघ्र की खाल राखैं, गरे सैकड़ों मुंड की माल राखैं॥
चिताएँ जहँ दग्ध दुर्गन्ध देतीं, सदाई रहै चण्डिका चण्ड चेती।
पड़ी खोपड़ी खण्ड कंकाल केते, तहँ मोज मैं आप आनन्द लेते॥
सबै रक्त मैं रक्त औतार तेरे, गनै कौन वीभत्स व्यापार तेरे।
वहै रक्त कोसों जहँ ख्याल तेरो, वनै क्यौंन चेरो महाकाल तेरो॥
कहानी तिहारी घिनैली वनी है, मती ध्यान के ध्यान ही ने हनी है।
सबैं गात धूजैं धुजा तुल्य मेरे, कहौ नाथ! कैसे धरौं ध्यान तेरे॥
तुम्हीं ध्यान के गीत गीता में गाए, तुम्हीं आपुने रूप ऐसे बनाए।
विना ध्यान-नौका तरौं सिंधु कैसे, तुम्हीं तो बताओ मिलै मुक्ति जैसे

गोपालशरण सिंह।

[स० १६४८]

कवित्त—

वार वार मुख धनियों का नहीं देखता तू, झूठी चाटुकारी नहीं उनको सुनाता है। सुनता नहीं तू कटु-वाक्य अभिमान सने, पीछे भी कदापि उनके तू नहीं धाता है॥ खाता है नवीन तृण तो भी तू समय में ही, सोता सुख से ही जब निद्रा काल आता है। कौन ऐसा उग्र तप तू ने था किया कुरङ्ग, जिससे स्वतन्त्रता समान सुख पाता है॥ १॥

जिसने उसे हैं एक वार भी निहार लिया, उसे फिर और कोई दृश्य नहीं भाता है। उसके अपार शोभा-सिन्धु में समाता वह, और वार वार वहीं गोता वह खाता है॥ उसके समीप कोई जाय या न जाय कभी, किन्तु मन गये विना चैन नहिं पाता है। ज्यों ज्यों खींचता है चित्त उसका विचित्र चित्र, त्यों त्यों वह अनायास आप खिंच जाता है॥ २॥

वह तो कदापि कहीं आता और जाता नहीं, किन्तु चुपके से चित्त सवका चुराता है। ज्यों रवि निशा में त्योंही रहता छिपा है सदा, तो भी निज ज्योति सव कहीं दिखलाता है॥ उसका अनूप रूप दृग देख पाते नहीं, पर वह लोचनों में आप ही समाता है। उसका विचित्र चित्र कोई खींच पाता नहीं, किन्तु वह उर में स्वयं ही खिंच जाता है॥ ३॥

———

अमृतलाल माथुर ।

[सं० १९५१]

छन्द द्रुतविलम्बित-

हर विरञ्चि हु पावत पार ना,
जननि ताहि झुलावत पारना ।
सुख किए तुम हौ पलनान में,
लखत नैनन पै पल ना नमें ॥ १ ॥

छवि कही कछु बैनन जात ना,
हरत हेरत ही मन-जातना ।
जिन लिये हित सों गहि वारना,
तुम उधारत की तिहि वार ना ॥ २ ॥

सवन के चित के तुम चोर हौ,
नगर मैं यह सोर मचो रहौ ।
तुमहि ते अरुझैं जब नैन है,
जगत की कछु लाज बनै न है ॥ ३ ॥

अवध तो विरहा अनखावनो,
तज दियो परजा अन खावनो ।
सरन में विकसै न सरोज है,
सकल सेवक सैन स-रोज है ॥ ४ ॥

अहह आप वहे जिस राह ते,
मगन सन्तत शम्भु सराहते ।

धन सुथान महा तप धारनो,
धन धरा तव होत पधारनो ॥ ५ ॥

मुदमये सुख वास-वसे सबै,
विभव नायक वासव-से सबै।

सुख भरी सब विस्व बसाहिबी,
जय तिसो जग में तव साहिबी ॥ ६ ॥

तव पुरान परै नर-कान में,
कबहुं सो न परै नरकान में।

भजत तो कँह जा तन नास है,
जगत की वह जातन ना सहै ॥ ७ ॥

कवित्त--

एक दिन जाके जाएँ सारो देस फूलि उठ्यौ, फूले राज-वंसी थाह फूल को लहै नहीं। एक दिन फूल धारे फूलन की सेज सोए, फूल सम गात भार फूल को सहै नहीं॥ एक दिन मीठी मुसकान तें झरत फूल, फूलन के झूलन घरीक निबहै नहीं। जाके नेक ताकें मुरझाए फूल फूलि जाते, एक दिन वाके अहो! फूल हू रहै नहीं ॥ ८ ॥

दोहा--

मतवारो मत वारियो , हित मतवारो लेत।
गत मतवारे लाल पै , गत मत वारे देत ॥ ९ ॥
लाज न, अजस न, डाह, डर , सोग, बिजोग न छेह।
पावन, जसकर, परम हित , साँचो राम सनेह ॥१०॥

सजन सनेही बहु मिले , मिले सुजन समुदाय ।
सो प्यारा कोउ ना मिला , देता राम मिलाय ॥११॥
जोग करन तिथि वार में , है कितहुं अस लेख ।
जा दिन दरसन राम के , सो दिन पाँड़े! देख ॥१२॥
बेदराज! बेकाज सब , अञ्जन करौ अनेक ।
झरन, झार इन दृगन की , हरनहार हरि एक ॥१३॥
तपैं विरह की धूनियाँ , राम-नाम सुख दैन ।
अँसुआ कन माला लिये , जपैं जोगिया नैन ॥१४॥
अवस एक दिन जायँगे , जैसे जग सब जाय ।
राम दरस देते हमें , लेते तरस मिटाय ॥१५॥
एरे मन! मेरे सखे , तरप नहीं लौ लाय ।
हरि दरसन हाँसी नहीं , इतो मती उकताय ॥१६॥
जा तरुवर सरवर गहन , गिरिधर राम विहार ।
ता धर की ता धूर की , बार बार बलिहार ॥१७॥
जिन आनन कानन नयन , रोचत राम-चरित्र ।
साँचे नर विधि वे रचे , और खचे सब चित्र ॥१८॥

जुगलसिंह ।

[सं० १९५२]

सोरठा-

ऊमर कै अनुसार , 'जुगल' टिकट जग रेल रा ।
कै बेगा कै बार , ठेसण ठेसण उतरसी ॥ १ ॥

नाटक सो संसार, 'जुगल' पार्ट सब कर रया ।
एक एक रे लार, मझ्झ छोड़ सब चालसी ॥ २ ॥
हा ! कम, हा ! कम, हाय, लगन लगी हाकम हिये ।
'जुगल' दुखी रो न्याय, कुण करसी इण राज में ॥ ३ ॥
'जुगल' कहै कर जोड़, फुरसत फुरसत मत करो ।
नर लेसी मुख मोड़, फुरसत पायाँ हाकमाँ ॥ ४ ॥

"म्हांरो देस"

(राग—माढ़)

मरुधर म्हांरो देस, म्हांनै प्यारो लागैजी ।
मङ्गल जङ्गल देस, म्हानै वालो लागैजी ॥ टेर ॥
धोला धोला धोरा म्हांरा, उजली निर्मल रेत ।
चमचम चमकै चाँदनी मे, ज्यूं चाँदीरा खेत ॥ म्हांनै० ॥५॥
खोखा म्हांने चोखा लागै, खेजड़ला ज्यूं खजूर ।
नींबोली आंबोली सिरखी, रस देवै भरपूर ॥ म्हांनै० ॥६॥
काकड़िया साँगरियाँ सिट्टा, फोफलिया फलियाँ ।
काचर बोर मतीरा मीठा, मिसरी री डलियाँ ॥ म्हांनै० ॥७॥
फोग कैरिया सूवा पालक, मैथी मोगरियाँ ।
चॅवलोई चन्दलिया वेचै, मोहनि मालनियाँ ॥ म्हांनै० ॥८॥
ऊन्हाले में तपै तावड़ा, लूवाँ रा लपका ।
रातड़ली इमरत बरसावै, नींदा रा गुटका ॥ म्हांनै० ॥९॥
सावण रिमझिम मेवला बरसै, भरै तलाई डैर ।
खेतड़ला में भोला भाई, गावै तेजा टेर ॥ म्हांनै० ॥१०॥

थल थल जनमें बीर सूरवाँ, धन विद्या भण्डार ।
जोड़ 'जुगल' कर कराँ बीनती प्रभु सूं बारम्बार ॥ म्हांनै० ॥११॥

वियोगी हरि।

[सं० १९५३]

पद्य-

अनुराग-बाटिका।

मति देख उत रङ्ग-रँगीली ।
जावैगी परि अँखियन मादक विष की धार रसीली ॥
वा मतवारी रस-धारा तें भई न कौनि दिवानी ?
कोरनि में भरि वाहि कौनि नहिं हेरत हीय हिरानी ?
तू तौ भोरी अति सुभाव की, पुनि-पुनि उतही देखै ।
जाति खिंची वा चुम्बक पै तू, हानि-लाभ नहिं लेखै ॥ १ ॥

प्रेम कौ न करु बनिज ब्यापारी ।
बिन देखे ही हानि-लाभ निज कैसी करत गँवारी ॥
या मग में बटपार लगत हैं, झुकी रैनि अँधियारी ।
मति खोलै मन-मानिक इत तू, सुनि लै सीख हमारी ॥
यहाँ कहाँ वै दरद-जौहरी जिनकी परख नियारी ।
लगन-रतन-अनमोल, मोल क्यों सकिहै आँकि अनारी ॥
मति बिसाहि लै रूप-रँगीली यह कोरै मतवारी ।
पछितैहै पुनि पथिक पियारे ! गथ गँवाय इत सारी ॥ २ ॥

दोहा—

एक छत्र वन कौ अधिप , पञ्चानन ही एक ।
गज-शोणित सों आप ही , कियौ राज अभिषेक ॥ ३ ॥
चाटत प्रभु-पद स्वान लों , फिरत हलावत पूंछ ।
वनत कहा अव मरद तू , यों मरोरि कै मूंछ ॥ ४ ॥
लखि जिनके मजवूत भुज , काँपत हे जमदूत ।
भारत-भू तें उठि गये , वै वाँके रजपूत ॥ ५ ॥
पावस ही में धनुष अव , नदी तीर ही तीर ।
रोदन ही में लाल दृग , नौ रस ही में वीर ॥ ६ ॥
जोरि नाम सँग 'सिंह' पद , करत सिंह वदनाम ।
ह्वै हो कैसे सिंह तुम , करि सृगाल के काम ॥ ७ ॥
या तेरी तरवार में , नहिं कायर अव आव ।
दिल हू तेरो वुझि गयो , वामें नैक न ताव ॥ ८ ॥

उत्साहराम ।

[स० १९५४]

कवित्त—

विश्व वाटिका में कई खिलि कुम्हिलाने फूल, मूल हू सूखाने आज परै ना ठिकाने हैं। चारि-मुख चातुरी की सीमा के सजीव चित्र, वात ये विचित्र जल वीचि ज्यों विलाने है ॥ मान ममता की छाया शोभित सुरङ्ग एह, मिट्टी के खिलोने अन्त काल के

निसाने हैं। ओस-कन ज्योंहि जोस जोबन को जान एरी!, चार दिन चाँदिनी में चूकै वे दिवाने हैं॥ १॥

मीर मीन केतु की अमोघ शक्ति मोहिनी में, धूर में मिला दूं ध्यान नेक चिते ध्यानी को। गौर कर देखूं तो ढहा दूं दृढ़ ज्ञान गढ़, चलैं मन जीत देख चाल अलसानी को॥ नाग नर देव मेरे नैन के इसारे नाचें, गार दियो गर्व केई योग के गुमानी को। है न वो जहान निज भान कों सम्हाल सकै, कञ्ज कोश जैसो जोश देख मो जवानी को॥ २॥

पाप के पहार पर बज्र के प्रहार सो जो, भ्रान्ति अन्धकार में हजार भानु जैसो है। चार वेद मन्थन तें तारके निकास्यो सार, मोख को द्वार योहि यामें ना अन्देशो है॥ कठिन कलेश तरु काटिबे कुठार जान, पञ्च बान पीर पें पिनाक पान वैसो है। भूरि भव व्याधि को भगाइबे सँजीवनी सो एरी! राम मन्त्र को प्रभाव देख कैसो है॥ ३॥

सूखे पान खाते पञ्च अगनी तपाते गात काहू ना सताते राते ज्ञान गरुआई में। पाके हो विवेकी तात मात को सनेह त्याग, चाखे जिन प्याले चिदानन्द चतुराई में॥ मौन व्रत भारी ऐसे जोगी जटाधारी केक, ब्रह्मचारी बाँके एक देखे गिरिराई में। जात भव पार लात मार्यो जिन लोभ तेहु, खात देखे गोते च्यार अंगुल की खाई में॥ ४॥

रात दिन आन जान जिसके द्वार दोइ, कर्म कृत पन्थ पें ये अजब उजाला है। कर ले विचार ज्ञान नैन तें निहार जरा, ऊँच

नीच जीव जोनी कमरा निराला है॥ वैभव विशाल इते शाह पर शाह आये, रहे पल दोइ राह अपनी सम्हाला है। भये महमान केक रङ्क अरु राव आन, विश्व या पुरानी टूटी फूटी धर्मशाला है॥ ५॥

दिव्य मम रूप देख नेक ना सम्हालि सकै, माने वड़ ज्ञानी निज भान वे भुलाये हैं। बोलते न मूक वनि खोलते न नैंन पल, डोलते न काहू विधि जिनको डुलाये हैं॥ नूर पेख दूर हू ते शूर चकचूर भए, विश्व जीत वीरन कों सेन में सुलाये हैं। का हो तुम चीज वीज आगे जिम अल्पतरु, मेरे दृग-कौंन नहीं कौन अकुलाये हैं॥ ६॥

सवैया—

ब्रह्म विचंतक सन्तन पन्थ मे, सन्तत ही हम राचि रहे हैं।
भञ्जन दुख निरञ्जन के जपि, जाप को पाप कलाप दहे हैं॥
न्यून विषं विषयों तें नहीं, यह निश्चय को हम नीक लहे हैं।
एरि ज्यो रक्षक राम अहै, तव काम कहा हमको जू कहे हैं॥१॥

कन्दुक रम्य कुचा सकुचावन, लावत प्रीतम जो गलवाँही।
नैन कवान नचावत मान, हरै वड मानिन कों छिन माँही॥
वैन में ऐन अमी वरसै पुनि चैन में मैंन कला दरशाँही।
रैन में जे न रमें उनके सँग, है न कछू तिन जीवन माँही॥८॥

मोह करी मदिरा यह मानिनी, क्रूर कलेश रु काम करण्डी।
डाकिनी सुकृत पुञ्ज डकारन औ दुख दारिद की वह हण्डी॥

पामर ते पकरै अस कुत्रिय पाक पयान तनी पग डण्डी।
जो चह आतम रूप लखो नर, तो फिर दूर रखो बस रण्डी ॥९॥

आस्य ते पङ्कज कुन्द द्विजान तें हास्य तै दूज विधु छबि हारी।
केशर पत्र रचे कुच कुम्भ लसे मणि माल तिते छबिधारी॥
काम कलोल रु बोल अमोलन हाव हिलोरन तें बसकारी।
ज्ञान रु ध्यान वृथा तिनके यदि ना घर में अस सोहत नारी ॥१०॥

माँस के पिण्ड पयोधर हे पुनि लाल को जाल बनो मुख बाला।
नैन में मैल जु फैल रह्यो, तिन घ्रान में जानिये गन्ध बिहाला॥
ग्लानि को गेह जु मेहन मानहु, जानहु देह जु दोजगशाला।
आशिक होत इसी पर तो, फिर जानिय जीवन व्यर्थ निकाला॥

वेद पुरान विधान तहाँ लगि चारु विचार लसें मन मांहीं।
ज्ञान प्रदीप विवेकिन के हिय माहीं जगे तबलौं सुखदाई॥
त्याग विराग रहै तबलौं भल भामिनी केरे भरे विष भाई।
नैन कबान के तिच्छन बान लगे हिय आन जहाँ लग नांहीं ॥१२॥

माधोसिंह।

[सं० १९५५]

सवैया-

आनन चन्द समान लसै कटि केहरि की कटि-सी छबि छाई।
नाक सुवा सम खञ्जन से दृग भौंह कमान समान सुहाई॥

माधवसिंह लसैं कुच कुम्भ सुचाल गयन्दन देत दबाई।
मो मन मांहि बसो निसि वासर रूप उजागरि कीरति जाई ॥१॥

लाय यहाँ मिथिलापति की दुहिता कहँ नाथ कहा करिहौ।
है यह श्रीरघुनायक की वनिता इहिंतैं दुखसैं भरिहौ॥
माधव वे करता हरता हरि हैं तिनसैं कस ना डरिहौ।
जानि परी मुहि बात यहै बचिहौ न सही निहचै मरिहौ ॥२॥

द्रोप बन्यौं सिय हारन को सुचितै करि कै अपने शिर लीजे।
त्यौं अब भूमि सुताहि अगै करि चालि वहाँ पद मैं शिर दीजे॥
माधव है हरि दीनदयाल तिन्हैं लखि रूप सुधारस पीजे।
मो मत मानि दशानन माफ कराय कसूर गरूर न कीजे ॥३॥

कवित्त—

लोभ में लिपनि मतिहीन नर भूलि रहे, जानैं नाहीं कोऊ ठाम जानेकी, न जानेकी। हरि गुन त्यागि लोग जग के जञ्जार गावैं, यौं न लखैं याहै बात गानेकी, न गानेकी॥ माधव भण्डार भरैं लाय बहु भाँति भूति, मन मैं विचारैं नाहिं लानेकी, न लानेकी। खात मनमानी वस्तु वश रसना के होय, यौं न जानैं याहै चीज खानेकी, न खानेकी ॥ ४ ॥

बागन में विमल बनाय कोट च्यारौं ओर, रौंस रचवाय कै सुधारैं ढङ्ग तिनके। तिनमैं अपार तरु वेलि जमवाय चारु, नाना भाँति चारी चित चोरैं नाहिं किनके॥ माधव मदान्ध सुत मित्रादिक सङ्ग लेय, देखै फल फूल रङ्ग रङ्गन के तिनके। मोह

बश होय लोय तजि घनश्याम सेव, राति दिन देखैं ये तमासे च्यार दिनके ॥ ५ ॥

होय के कराल इन्द्र ब्रजहि बहान लाग्यो, गिरिनखधारि गोप गोपिन उबारे हैं। हाथी गह्यो ग्राह नैं तबै हू खगराज त्यागि, भागि कै पयादे बेग ताके दुख टारे हैं॥ माधव दुसासन सैं द्रोपदी बचाय लीनी, उदर अघासुर सैं बालक निकारे हैं। पालक चराचर के नन्द मनभावन नैं, होय कै कृपाल काम कौन के न सारे हैं॥ ६ ॥

तेरै कहें आली आज पी के पास चालिहौं मैं, तेरे पास बैठिहौं मैं तेरे सङ्ग आऊँगी। रहिहौं चिनीसी बार पीतम के थान मांहि, तब ही गिनोसी बात हँसि बतराऊँगी॥ माधव सुकवि मन मोहन के मीठे बैन, सुनि सुनि नेहसने नाहिं ललचाऊँगी। लाख मनुहार करैं तेरे हू सिखायें पर, काहू भाँति अङ्गन सैं अङ्ग न लगाऊँगी॥ ७ ॥

साँझ ही सिधारे कालिह बनक बनाय अङ्ग, रसबस होय कहाँ रतियाँ बितानी है। जावक लिलार मैं लगायो पीक नैनन मैं, ओठन मैं अञ्जन की दुति दरसानी है॥ माधव कपोलन मैं दन्तन के घाव लागे, छाती नख जातन की तति सरसानी है। प्रात नित आवो तऊँ नैंक सरमावो नाहिं, हँसि बतरावो यह कौन रीति ठानी है॥ ८ ॥

सूर्य्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'।

[सं० १९५५]

तुम और मैं—

तुम तुङ्ग हिमालय शृङ्ग
और मैं चञ्चल-गति सुर-सरिता,
तुम विमल हृदय-उच्छ्वास
और मैं कान्त-कामिनी कविता।
तुम प्रेम और मैं शान्ति,
तुम सुरा-पान-घन-अन्धकार
मैं हूं मतवाली भ्रान्ति।
तुम दिनकर के खर किरण-जाल
मैं सरसिज की मुसकान,
तुम वर्षों के वीते वियोग
मैं हूं पिछली पहचान।
तुम योग और मैं सिद्धि,
तुम हो रागानुग निश्छल तप
मैं शुचिता सरल समृद्धि॥ १॥

तुम मृदु मानस के भाव
और मैं मनोरञ्जिनी भाषा,
तुम नन्दन-वन-घन-विटप
और मैं सुख-शीतल-तल शाखा।

तुम प्राण और मैं काया,
तुम शुद्ध सच्चिदानन्द ब्रह्म
मैं मनोमोहिनी माया।

तुम प्रेमी के कण्ठहार
मैं बेणी काल-नागिनी,
तुम कर पल्लव-झंकृत-सितार
मैं व्याकुल विरह-रागिनी।

तुम पथ हो मैं हूं रेणु,
तुम हो राधा के मनमोहन
मैं उन अधरों की वेणु॥ २॥

तुम पथिक दूर के श्रान्त
और मैं बाट जोहती आशा,
तुम भव-सागर दुस्तार
पार जाने की मैं अभिलाषा।

तुम नभ हो मैं नीलिमा,
तुम शरत् काल के पूर्ण इन्दु
मैं हूं निशीथ-मधुरिमा।

तुम गन्ध कुसुम-कोमल पराग
मैं मृदुगति मलय-समीर,
तुम स्वेच्छाचारी मुक्त पुरूष
मैं प्रकृति प्रेम जञ्जीर।

तुम शिव हो मैं हूं शक्ति,
तुम रघुकुल गौरव रामचन्द्र
मैं सीता अचला भक्ति ॥ ३ ॥

तुम आशा के मधुमास
और मैं पिक-कल-कूजन-तान,
तुम मदन पञ्च-शर-हस्त
और मैं हूं मुग्धा अनजान ।
तुम अम्बर मैं दिग्वसना,
तुम चित्रकार घन-पटल श्याम
मैं तड़ित् तूलिका-रचना ।
तुम रण-ताण्डव-उन्माद-नृत्य
मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि,
तुम नाद-वेद ओंकार सार
मैं कवि-शृङ्गार-शिरोमणि ।
तुम यश हो मैं हूं प्राप्ति,
तुम कुन्द इन्दु-अरविन्द शुभ्र
तो मैं हूं निर्मल व्याप्ति ॥ ४ ॥

छगन शर्म्मा ।

[सं० १९५६]

कवित्त—

पक्षिन का शोर सुन, नाह से छुड़ाये कुच, पृथक् कपोल किये पिय अधरन से । बार २ अङ्ग मोर उठी हरि नाम जप, मुख

पै मेचक केश झूमे अलिगन-से ॥ मुकुर निहार लगी बालनि सँभारिबे को, गाल के ताम्बूल धब्बे पूंछत बसन से। 'छगन' कहत मन दारुन विरह दाह, ग्रीष्म का दोष भाखै, जाके ननदन से ॥ १ ॥

होते ही उदय रवि धारत प्रचण्ड रूप, बढ़त पिपासा कण्ठ ओष्ठ सूखे जात हैं। ज्यों ज्यों चढ़ै दिनकर, त्यों त्यों हो प्रबल घाम, आग-सी धरनी जरै चलै उष्ण बात है॥ देख देख गहरे तरु दौरे नाना पशु-पक्षी, 'छगन' कहत करै काहु की न घात है। अस्त हो दिनेश शीघ्र, दूर हो सन्ताप सब, ईश का धरत ध्यान ऐसे होत ज्ञात है ॥ २ ॥

सवैया—

जानत मैंनन मैं न प्रभाव, प्रवाहित जीभ करी पल में।
ग्राहक मैं मधुरामल की, अति लोलुप-होय फँसी छल में॥
चाहत मो चित तो कवि 'छग्न', लगात न आय कभी गल में।
योवन योंही गमाय दियो, जिमि हीरक-हार गुंजा फल में ॥३॥

लाज मिटै, शुभ काज हटै, अरु द्रव्य घटै, कञ्जनि मन लाये।
धर्म नशै, चित पाप बसै, पुनि शौच भगै मुख ओष्ठ लगाये॥
खोवत वीर्य अमूल्य महा शठ, दोष न दृष्टि अभी तक आये।
रोग हुए जब वैद्य मनावत, 'छग्न' कहै फिरते शरमाये ॥४॥

पर-नारिन पै जब होत उतारु, तजै कमला उसके घर को।
तब लाज कहै तव पास रहूं नहिं, मान बिहाय चले नर को॥

भटके खर श्वान समान सदा, अरु काम करै नित किङ्कर को ।
यश तेज सुबुद्धि पलावत है, इक 'छन्न' बसै मन में घरको ॥५॥

भौमराज चूड़ीवाल ।

[स० १९५७]

सवैया-

याद किये मन शान्ति हरै, अवलोकन से उन्माद वढ़ाती ।
स्पर्श किये मन मोहत है, तन सङ्गम से वल वीर्य्य नशाती ॥
लाज हरै शुभ काज हरै, शिव साज हरै भौ भौ भटकाती ।
'भौम' विचित्र त्रिया ठगि है, सरवस्व हरे हू प्रिया कहिलाती ॥१॥

पीव वसी होय शील रखे, न वसी होय सुन्दर सन्तति जाये ।
पीव वसी होय सेव करे, न वसी होय कोमल अङ्ग दिखाये ॥
पीव वसी होय मान रखे, न वसी होय फूलनि सेज रमाये ।
पीव वसी वच नम्र कहे, न वसी सुर ताल से गीत सुनाये ॥२॥

कोट किला न सहाय करै, न सहाय करै तन-रक्षन-वारे ।
ढाल कमान सहाय करै न, सहाय करै कुल के जन सारे ॥
कोटि दिनार सहाय करै न, महौषध मन्त्र पियूष अपारे ।
कौन सहाय करै तब आकर, काल वली जव आय वकारे ॥३॥

कवित्त--

विपति में धीर धरै पीड़ितों की पीर हरै क्षमता धरै पै तोहू क्षमा दरसाते हैं। रोग सहै शोक सहै शीत औ आताप सहै सहै भूख प्यास पै न दीनता दिखाते हैं॥ कह करि नटै नाहिं नाहिं

भीरुता के भाव स्वप्न हू में लाते हैं। धर्म हेत जाति हेत देश हेत प्राण देत 'भौम' ऐसे नर-रत्न वीर कहलाते हैं॥ ४॥

दोहा-

काम क्रोध मद नयन से , अन्धे चार प्रकार।
नयन अन्ध सब में भला , करे न पर अपकार॥ ५॥
चारों चपला एकसी , चारों एक स्वरूप।
वेश्या लक्ष्मी बीजली , कुलटा चञ्चल रूप॥ ६॥
मानव गुण प्रगटै नहीं , बिना बिपति के आप।
कञ्चन गुण प्रगटै नहीं , जिम विन अगनी ताप॥ ७॥

कन्हैयालाल जैन।

[सं० १९५७]

अहिंसा।

'अहिंसा' मानो मन्त्र महान।

पीड़ित जन का करुणा क्रन्दन, मूक रुदन का हृदय-स्पन्दन।
छल २ जलमय विकल विलोचन, शत सहस्र का वारि विमोचन॥
गाता नीरव गान॥ अहिंसा०॥ १॥

यज्ञ-कुण्ड की रुधिर-धारका, पशुओं पर निर्दय प्रहार का।
कटु कटार तलवार-वार का, रण-प्राङ्गण की काट मार का॥
है इसमें अवसान॥ अहिंसा०॥ २॥

अनाचार की निश्चित क्षय है, सत्य, शान्ति दृढ़ क्षमता मय है।
अस्त्र शस्त्र का इसे न भय है, अबलों की सबलों पर जय है॥
नत होता बलवान॥ अहिंसा०॥ ३॥

अवनत होकर पाप-भार में, विश्व डूबता अश्रुधार में।
हृत्तन्त्री सकरुण पुकार में, रोती तव निज तार तार में॥
ले ले कर यह तान॥ अहिंसा०॥ ४॥

इसके सम्मुख अभिमानी जन, बह जाते पानी पानी बन।
विनय सीखता अज्ञानी मन, अर्पण कर देता तन, मन, धन॥
हो जाता बलिदान॥ अहिंसा०॥ ५॥

गुलाब।

[सं० १९५८]

चिता।

मैं मायाविनी महाकाली, मेरा क्या जाने, कौन ढङ्ग?
द्रुत आँधी, प्रबल झकोरों में, लपटों में दिखलाती उमङ्ग।
फिरते निषाद यम आस पास;
भय औ' विराग इन सन्तरियों का, छीन न सकते यह विलास।
रोते हैं हाहाकार विषम, है व्यर्थ विनय, है व्यर्थ शोर;
सुनकर भी किसी की न सुनती, पाखान-हृदय इतना कठोर।
मैं हो उत्साह-प्रमोद-लीन;
हू हू कर चिटक-चिटक जलती, लेती सबके सुख छीन छीन।
उज्ज्वल भविष्य, मानस-दीपक, अन्धी का एक किशोर लाल;
उस ओर पड़ा, चिन्तित अनिष्ट, है लाया उसको खींच काल।
संसार दीखता है इकटक—
मम हँसती लाल-लाल लपटें, हँसता शरीर, हँसता नाटक।

विश्राम न लेती मैं पल-भर, बीते कितने ही युग समान;
मैं धरा-गोद में हँसती हूं, करती हूं सूखा रक्त पान।
निशि में निर्जनता में महान;
सोती हूं मैं न कभी सुख से, गाया करती नित प्रलय गान।
कैसी कराल हूं मैं सबला, क्या है विरागमय यह विवेक;
हे मूढ़, पूछ जीवित मन से, कैसा अखण्ड-अभिषेक नेक?
करता मुझसे प्रिय ग्रीष्म प्रेम;
हिम फेंक, शिशिर खा-घोर हार, पूछता मित्र बन कुशल-क्षेम।
मैं नहीं जानती किस बन का, करके मधुमय ऐश्वर्य अन्त;
आता है मदन तुल्य सुन्दर, इस दुनिया में नूतन बसन्त।
मेरा सुन कर सन्देश-त्रास;
देता प्रिय पीत निमन्त्रण लिपि, 'जग सावधान! है मृत्यु पास'।
मम रोष देख आकाश नील, काँपता नित्य थर-थर शमीर;
है दीर्घ साँस कितनी भीषण, लहराता सप्त समुद्र-नीर।
तू सुने तृप्त, मेरा गायन;
चिरदिन जलती, दशकन्धर-से लङ्कापति लील गई डायन।
फिर भी मैं हूं कितनी पवित्र, क्या इसे सुनेगा तू अजान;
मेरे शासन में धनी, रङ्क, चाण्डाल, विप्र, दुर्बल समान।
हर लेती सबके शोक ताप;
बन भयङ्करी-सी कब देती, मैं पाप-पुण्य को प्रबल शाप।
क्या मेरी गोदी में शिशु की, मुसकानों के झड़ते प्रसून;
क्या प्रबल सूरमा-शव में अब, हैं कहीं उबलते गर्म खून।

कितनी विचित्रता है महान ;
जो नित्य जलाते थे जग को, वे आज जल रहे हैं प्रधान ।
खाती जाती न अघाती हूं, छूंछा ही रहता उदर-कुण्ड ;
हैं श्मशान में पड़े शिथिल, अब भी कितने ही मृतक-झुण्ड ।
उड़ता है मेरा जय-निशान ;
लड़ते हैं काक-श्वान शव पर, खिलखिला रहा है वह श्मशान ।
तट के वट-तरु के छिन्न-भिन्न बच कर डाली में यत्र-तत्र ;
कर अवनत निज मस्तक कुमार, अपराधी-से हो रहे पत्र ।
मेरी विभीषिका देख प्रबल ;
साहस, सम्मान, घमण्ड, भोग, हैं बहा रहे आँसू छल-छल ।
है ज्वालामुखी दीप-लौ-सी, मुझ जग विदाहिनी के सम्मुख ;
मैं आग जहन्नुम की प्रचण्ड, मत मुझे सुना खल, सौख्य दुःख ।

———

सुमित्रानन्दन पन्त ।

[सं० १९५९]

स्तब्ध ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान;
न जाने, नक्षत्रों से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन ! ॥ १ ॥

सघन मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार;
दीर्घ भरता समीर निश्वास,
प्रखर झरती जब पावस-धार;
न जाने, तपक तड़ित में कौन
मुझे इङ्गित करता तब मौन! ॥ २ ॥

देख वसुधा का यौवन-भार
गूंज उठता है जब मधु मास,
विधुर उर के-से मृदु उद्गार
कुसुम जब खुल पड़ते सोच्छ्वास;
न जाने, सौरभ के मिस कौन
सँदेसा मुझे भेजता मौन! ॥ ३ ॥

सिन्धु में मथ कर फेनाकार
क्षुब्ध जल-शिखरों को जब वात,
बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना, बिथुरा देती अज्ञात;
उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने, मुझे बुलाता मौन! ॥ ४ ॥

स्वर्ण, सुख, श्री सौरभ में भोर
विश्व को है देती जब बोर,
विहग-कुल की कल-कण्ठ-हिलोर
मिला देती भू-नभ के छोर;

न जाने, अलस पलक-दल कौन
खिला देता तब मेरे मौन! ॥ ५ ॥

तुमुल तम में जब एकाकार
ऊँघता एक साथ संसार,
भीरु झींगुर कुल की झंकार
कँपा देती तन्द्रा के तार;

न जाने, खद्योतों से कौन
मुझे तब पथ दिखलाता मौन! ॥ ६ ॥

कनक-छाया में, जब कि सकाल
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि-पीड़ित मधुपों के बाल
पिघल बन जाते हैं गुञ्जार;

न जाने ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन! ॥ ७ ॥

बिछा कार्यों का गुरुतर भार
दिवस को दे सुवर्ण अवसान,
शून्य शय्या में, श्रमित अपार
जुड़ाता जब मैं आकुल प्राण;

न जाने, मुझे स्वप्न में कौन
फिराता छाया-जग में मौन! ॥ ८ ॥

न जाने कौन, अये द्युतिमान!
जान मुझको अबोध, अज्ञान,

सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूंक देते छिद्रों में गान;
अहे सुख दुख के सहचर मौन,
नहीं कह सकता तुम हो कौन!॥ ६ ॥

विश्वनाथप्रसाद मिश्र 'मुकुन्द'।

[सं० १९६३]

तलवार।

छप्पय-

कुशल करों की कला, कीर्ति कलिता लालों की।
वीरों की बल्लभा, प्रभा प्रतापवालों की॥
कुल दीपों की दीप्ति, महीपों की महिमा है।
धन धारी की ध्वजा, गरीबों की गरिमा है॥
सत्य स्वर्ग-सोपान या, मृत्यु-लता की डार है।
दृढ़ता की दीवार है, कौन कहे तलवार है?॥१॥

भीति भंजिनी भुजा, शक्ति दलिता आहों की।
उमड़े उर की आग, दवा दारुण दाहों की॥
शौर्य धैर्य की धरा, सपूती की शुचि शाला।
भाग्य चक्र की धुरी, विजय की मंजुल माला॥
रण चण्डी की सङ्गिनी, विभीषिका की धार है।
काली का अवतार है, नहीं, नहीं, तलवार है॥२॥

वाँकी है इसलिये, नहीं सीधों को सजती ।
तीखी है इस हेतु, तुरत तुच्छों को तजती ॥
लोहे से है बनी, इसी से लोहा लेती ।
तप करके है बढ़ी, न पग पीछे को देती ॥
चोट सही है इसलिये, करती चोट अपार है ।
पल में वारापार है, ऐसी तू तलवार है ॥३॥

धारा है पर सदा, रक्त की प्यासी रहती ।
दही जा चुकी किन्तु, दूसरों को है दहती ॥
पानी से है पूर्ण, परों का पानी हरती ।
मुट्ठी में आ जगत्, तुरत मुट्ठी में करती ॥
कर न सके कोई कभी, तेरा वाँका बार है ।
करती वाँका वार है, ऐसी तू तलवार है ॥४॥

सवैया–

रसना में महा मधु घोल कहीं तृण से लघु को भी सराहते हैं ।
रच नाटक भावुकता का कहीं हम प्रीति की रीति निबाहते हैं ॥
जिसमें कुछ भी न गभीरता है उसको गुण से अवगाहते हैं ।
जग को ठग के अब भोला ! सुनो तुमको ठगना हम चाहते हैं ॥

धन-धाम तजे सब काम तजे गुण-ग्राम शुभे ! तव गा रहे हैं ।
निज भक्ति का दो वरदान हमें रस-सिन्धु में आज नहा रहे हैं ॥
तुम शारदे ! वाहन वृद्ध तजो हम हंस नया लिये आ रहे हैं ।
कविता का खिला कर चारा इसे कबसे उड़ना सिखला रहे हैं ॥

शरणागत शत्रु सहोदर को लखना इनकी ; नृप-नीति नहीं।
निज दास के द्रोही को मारने में इनको अपगीति की भीति नहीं॥
शबरी के चखे बदरी फल की सब जान करी अप्रतीति नहीं।
कर प्रीति जिसे अपनाया उसे तजना यह राम की रीति नहीं॥७॥

सब खोकर भी नित देता रहे चित चौगुने चाव से दानी वही।
दिन रात जिसे सुलझाया करे सुलझे न कभी ज़िंदगानी वही॥
बलके रहते भी हिले न कभी दृढ़ बात में बज्र सा मानी वही।
बिन छाने नशा चढ़ा हो जिसमें कहते सब लोग जवानी वही॥

तपना जब मित्र के ताप से है खर बात के वेग से क्यों टरना।
लखना भव की जो विभूति को है तो मनोभव मूर्ति न क्यों बरना॥
चखना जब मानस का रस है मृग वारि के फेर में क्यों मरना।
जब प्रेम के पन्थ में पैर पड़े तब बैर के शूल से क्यों डरना॥६॥

मन-मन्दिर की न मिटाते मलीनता फूल की फूलने देते न क्यारी।
तन चन्दन सा घिसते ही नहीं जल ढालती आँख न ये रतनारी॥
विधि जानते हो न निछावर की कभी आरती भाव भरी न उतारी।
जब शीश चढ़ाना सिखा ही नहीं तब प्रेम के कैसे बनोगे पुजारी॥

इसमें भी बँधा कभी छूटता है इसमें पड़ना भी पवित्र ही है।
खिँचने पर और है होता कड़ा यह तो भव मुक्ति का मित्र ही है॥
रहता है अलक्ष्य अनन्त भी है बढ़ना इसका तो चरित्र ही है।
इसमें पड़ती कभी गाँठ नहीं यह प्रेम का पाश विचित्र ही है॥११॥

जिसमें कल कोयल कूकती थी उसमें अब चातक का स्वर है।
जिसमें खुल खञ्जन खेलते थे उसमें कुररी ने किया घर है॥
नचते थे मयूर जहाँ खल काक भी क्यों फटके न वहाँ पर है?।
उड़ मानस से अब हंस रहे उनको भी किसी खग का डर है॥१२॥

छन का भी वियोग असह्य रहा दिन रात उसे सहता अब हूं।
रुचता हिय हार का बीच न था कई कोस पै आ रहता अब हूं॥
चुकतीं न सनेह की बातें रहीं कुछ भी न कभी कहता अब हूं।
रस धार में नित्य नहाता रहा दृग नीर में हा! बहता अब हूं॥१३॥

कल ही वे यहाँ से गये हैं अभी युग-सा लगने है लगा मुझको।
मन जो कल मेरा सहायक था वह है लगा देने दगा मुझको॥
अब और की बात कहें कुछ क्या जब सालता है यों सगा मुझको।
वह जाकर क्यों न उन्हें ठगता जिस प्रेम ने ऐसा ठगा मुझको॥

नारायण।

[सं० १९६८]

यहाँ सौन्दर्य द्वेषी कौन है? संसार सुन्दर हो।
वसन, भोजन, शयन, दर्शन तथा घर बार सुन्दर हो॥
हमें गङ्गा शतद्रू सिन्धु यमुना की नहीं श्रद्धा।
रमेंगे कर्मनाशा में तनिक हाँ धार सुन्दर हो॥
मनन हो सुन्दरों का कल्पना सुविचार सुन्दर हो।
मेरा प्रेमित स्वयं हो कंस सा भुविभार सुन्दर हो॥

उसे लूं स्वर्ग वा वैकुण्ठ को तजदूँ शपथ से मैं।
नरक का भी हमारी दृष्टि में यदि द्वार सुन्दर हो॥
चिता में कूद जाऊँ सिंह के मुख में समा जाऊँ।
अगर देखूं कि उनका तेज वा आधार सुन्दर हो॥
पतिव्रत धर्म जैसे धर्म को भी छोड़ दे नारी।
नमेंगे हम उसे उसका कहीं यदि जार सुन्दर हो॥
तनिक सौन्दर्य के भी शब्द की मीमांसा सुन लो।
न हो सौन्दर्य जड़ में किन्तु चेतनतार सुन्दर हो॥

गोविन्ददत्त चतुर्वेदी।

[सं० १९६९]

सवैया-

मोर-पखौवन तें गज हाँकिबो पावक बारि में बारिबो है।
सीढ़ी खमण्डल लौं रचिबे कों उपाय हिये उपचारिबो है॥
नाचिबो है सुई नोकन पै कन पै कनकाचल धारिबो है।
मूरख को समुझाइबो त्यौं बिधिना के बिधान को टारिबो है॥
सुख सूहे सनेह के मारग में, न बियोग-बँबूरी बिछावनी है।
अपलोक अँगोट चुकी पट-ओट जिहैं बिन मोल बिकावनी है॥
कवि 'गोबिंद' रङ्ग रँगी जिहिंके तिहिंतें सब भाँति निभावनी है।
नँद-नन्द की देहरी पै घिसिकै हमैं कर्म की रेख मिटावनी है॥२॥

खमण्डल=आकाश। सूहे=सुहावने। अपलोक=अयश। अँगोट=स्वीकार। पट-ओट=पल्ले में ले लेना।

अज्ञात काल।

कुछ उत्कृष्ट कवियों का समय खोजने पर भी नहीं मिला, पर उनकी रचनाएं उपलब्ध हैं। वे यहां दी जाती हैं:—

अनाथदास।

छप्पय—

चतुरानन सम बुद्धि विदित, जो होहिं कोटि धर।
एक-एक धर प्रतिन सीस, जो होहिं कोटि वर॥
सीस-सीस प्रति बदन, कोटि करतार बनावहिं।
एक-एक मुख माहिं, रसन फिर कोटि लगावहिं॥
रसन-रसन प्रति सारदा, कोटि बैठि बानी बकहिं।
नहिं जन 'अनाथ' के नाथ की, महिमा तबहू कहि सकहिं॥

ईसरदास बारहठ।

दोहा—

ढोल सुणन्ताँ मङ्गली, मूंछाँ भौंह चढ़न्त।
चॅवरी ही पहचाणियो, कॅवरी मरणो कन्त॥ १॥
लै ठाकुर! चित आपणो, देतो रजपूताँह।
धड़ धरती पग पागड़ै, अन्त्रावलि गिरजाँह॥ २॥
ग्रहै अन्त्रावली उड़ि चली गीधणी।
तिहू भमणा रही बात सुहड़ाँ तणी॥

ताइयाँ खाँत तरवारियाँ भड़तलै।
लड़ण-कज समपतौ सुपहु ! सो बित्त लै ॥३॥

ऋषिनाथ।

सवैया—

ल्याइ सखी नवला को भुराइ धरै डग दारन लौके रटी ज्यों।
देखत ही मनमोहन को भई पानिप में गई बूडि घटी ज्यों॥
प्यारे भरी अँकवारि पसारि बिहारि को ज्यों ऋषिनाथ ठटी ज्यों।
यों निकसी कर कुण्डल ते नर कुण्डली ते कढ़ि जात नटी ज्यों॥

ऋषिराम मिश्र।

सवैया-

कान्ह की बाँसुरी ऐसी बजी मन मेरो हरो सुधि ना रही प्रान की।
प्रान की कौन गुमान करै अनुमान बिचारि कियो सुर तान की॥
तान की तेग लगी जिय में हिय में अति सोच करै वृषभान की।
भान की भौन को भूली फिरै जब तें परी कान में बाँसुरी कान की॥

करनेश।

कवित्त—

खात हैं हराम दाम करत हराम काम धाम धाम तिनहीं के अपजस छावेंगे। दोजख में जैहैं तब काटि काटि कीड़े खैहैं खोपरी को गूद काग टोटनि उड़ावेंगे॥ कहै 'करनेस' अबै घूसि खात लाजै नहिं रोजा औ निमाज अन्त काम नहिं आवेंगे।

कविन के मामले में करैं जौन खामी तौन नमकहरामी मरे कफ़न न पावेंगे ॥ १ ॥

करसनदास।

कुण्डलिया—

साचो जहर अफीम है, खरच रुपैयो खाय।
सूंघे सूं कडुओ लगै, खाधे अङ्ग सुखाय॥
खाधे अङ्ग सुखाय, मित्र से बाँधे दावो।
घर मे सम्पत घटै, माँगतो फिरे जु मावो॥
कहते करसनदास, अफीम में कबू न राचो।
अवगुन करै अपार, जहर अफीम है साचो॥ १ ॥

कविराम।

सवैया—

यह ऐसो अदाँव भयो या घरी घरहाइन के परी पुञ्जन में।
मिल कोऊ न आय चढ़े चित पै इनकी बतियान की गुञ्जन मे॥
कविराम कहे भई ऐसी दसा गिरि लङ्घन की जिमि लुञ्जन मे।
किमि हौं अब जाय सकौं हे दई बजी बैरिनि बाँसुरी कुञ्जन में॥

कालिका।

सवैया—

सोवत नींद में मोहि मिल्यो छवि कोरी अनङ्ग की सूरति सोहै।
अङ्क लई भरि कै सजनी रस रङ्ग तरङ्गन सों करि छोहै॥

जागि परी इतने में तऊ कवि कालिका आँखिन आगे खरो है।
पूछन भेद न पायो कछू रजनी गई बीति को जानियै को है ॥१॥

यह प्रीति की बेलि लगाइ जुहैं तेहि सींचि भले सरसाइये जू।
नित साँझ सकारे कृपा करि कै पग धारि सुधा बरसाइये जू॥
कवि कालिका यों कर जोरि कहैं मति देखिबे कों तरसाइये जू।
इन आँखैं हमारी कुमोदिनी कों मुख इन्दु लला दरसाइये जू ॥२॥

किशनिया।

सोरठा-

सुधरी में सौ बार, मदत करै मन मोडिया।
बिगड़ी में इक बार, कोई न देवै किसनिया॥ १॥
हियो हुवै जो हाथ, कूसङ्गी केता मिलो।
चँदन भुजङ्गा साथ, कालो न लागै किसनिया॥ २॥
आवै वस्तु अनेव, हद नाणो गाँठि हुवै।
अकल न आवै एक, कोड़ रुपैये किसनिया॥ ३॥
हाथी हींडत देख, खल कूकर लवलव मरै।
बड़पण तणो विवेक, क्रोध न आणै किसनिया॥ ४॥
हिकमत करौ हजार, गढ़पतियाँ जाचो घणा।
धीरज मिलसी धार, कर्म प्रमाणे किसनिया॥ ५॥
सोनो घड़ै सुनार, कंदोई खाजा करै।
भोगै भोगणहार, कर्म प्रमाणे किसनिया॥ ६॥

गजेन्द्रशाहि ।

सवैया—

राधिका सङ्ग सखीन को लै, वहु फाग रची व्रज में करि धूमहि ।
दै चिटकी करतालहि नाचहि, गावती ग्रीव कपोत से दूमहि ॥
शाहिगजेन्द्र तहाँ नँदलाल को, वाल नचावति ताल दै झूमहि ।
गाल गुलाल लगाय भले मुख, गोपवधू व्रजलाल के चूमहि ॥१॥

गद्द ।

छप्पय—

तरुनि काज रघुवीर, विकट वनि वन वन रोए ।
तरुनि काज लंकेश, सीस दश अपने खोए ॥
तरुनि काज कैकच्च, निकन्दन कुल को कीनो ।
तरुनि काज सुरराज, शाप सिर अपने लीनो ॥
चतुरानन भये तरुनि तैं, मदन काण्ड शङ्कर दई ।
कवि गद्द कहै रे तरुनि तैं, कौन हि की पत ना गई ॥१॥
चन्द न कियो निकलङ्क, काया तें अमर न कीनी ।
लक्ष्मी लई दातार, कृपन कर मैं दई दीनी ॥
सोन न कियो सुगन्ध, करी कस्तूरी कारी ।
निष्फल नागर वेल, वहुत फल लागा ताड़ी ॥
चकवा रैन विछवो कियो, सागर जल खारो कियो ।
कवि गद्द कहै रे ठाकुरा, तू ठौर ठौर भूली गयो ॥२॥

गिरिधर (तृतीय)।

छप्पय—

भ्रकुटि नैन को बान, काम को कटक चढ़ावन।
घूंघट पट की ढाल, चाल गज गती सुहावन॥
कंचुकि कवच पिनाय, किये कुच पैदल आगे।
बिछुवा बजत निसान, सुनत रतिपति सुर जागे॥
हुंकार करत नूपुर नकल, रण खेत कुसुम शय्या भली।
गिरिधर कहै एहि साज सज, पिया पास जूझन चली॥१॥

गुलामराम।

कवित्त—

सोम जो कहौं तौ कलानिधि को कलङ्की सुन्यो कञ्ज सम कहौं कैसे पङ्क को नदन है। काममुख सरिस बखानिये जु राममुख सोऊ न बनत देह रहित मदन है॥ अमल अनूप आधि-व्याधि ते विहीन सदा बानी के बिलास कोटि कलुष कदन है। बदत गुलामराम एक रस आठौ जाम सोभा को सदन रामचन्द्र को बदन है॥ १॥

गोपाल।

कवित्त—

होत जो न कृष्ण पक्ष मास के दुपक्ष में तौ, आवति सुधि न शुक्ल पक्ष अवसान की। होते जो न दूषण पदारथ प्रपञ्चके में,

होती तो न मान्य छवि भूषण विधान की॥ होते कवि गोप जो न सूम सरदार तोपैं, होत जग कीरति न दानी नृप दान की। होतो न हलाहल जो प्रगट समुद्र तें जु होती तो न महिमा सुधा के अवसान की॥ १॥

एहो कवि गोप मित्र दोष गुनवारी यह, रचना यथारथ है विधि के विधान की। रहत विशेष वन्यो जस के कुजस एक, होत आई नेकी वदी समय प्रमान की॥ जान्यो दुरगन्ध औ सुगन्ध को विभेद तो वै, रीझ रीझ कीनो कहा मान अपमान की। देखो या जहान वीच होते जो न कपटी तौ, कैसे पहचान होती सज्जन सुजान की॥ २॥

गोपीनाथ।

सवैया—

कृष्ण रिझावन एक समै, सजि साज चली वृषभानु दुलारी।
श्यामल रङ्ग रँग्यो सब अङ्ग, गह्यो कटिपीत सुवस्त्र सुधारी॥
पङ्ख मयूर को ताज कियो, अरु वंसि की टेर सुटेरत प्यारी।
राधिका कृष्ण को रूप धस्यो, तव श्याम भई छवि श्याम निहारी॥

चतुर्भुज।

सवैया—

कवहूं सुचि दीपकली सी लगै कवहूं वर चम्पकमाल नवीनी।
भौंहन में सब सौंह करै पुनि नैनन खञ्जन की छवि छीनी॥

ओंठ निछावर बिद्रुम है री चतुर्भुज या उपमा लखि लीनी।
केसर की रुचि कञ्चन रङ्ग सिंगार के रूप की मंजरी कीनी ॥१॥

चिमनेश।

सवैया—

मजबूतिपनौ रखनो मन मैं, दुख दीनपनौ दरसावनो ना।
बहनो कुल रीति सुमारग मैं, हरि तैं हियैं हेत हटावनो ना॥
'चिमनेश' हँसी खुशी बोलन मैं बिन स्वारथ बैर बसावनो ना।
जग जेती भलाई बनै सो करो मरजावनो है फिर आवनो ना॥

तुम मुष्टिका बाँध कै आये इहाँ, कर खोले बिना फिर जावनो ना।
'चिमनेश' दया कर दीनन पै, दिल काहु को देव दुखावनो ना॥
उपकार भलाई बनै सो करो, बदनामी को ढोल बजावनो ना।
दिन च्यार को यार तू पावनो है मरजावनो है फिर आवनो ना॥

छेमकरण।

सवैया—

ज्ञानी उपासक ध्यानी बड़े नित नेह निबाहि सुदान दये है।
जानै सुनै गुन ज्ञानै गुनै गुनगाहक साधक सिद्ध भये हैं॥
जोग बिचार बिराग हैं छेम सु केतिक तीरथ पन्थ गये है।
सन्त पुरातन हैं तो भले पर जौलौं नये नहिं तौलौं नये है॥१॥

अम्बुज कञ्ज से सोहत हैं अरु कञ्चन कुम्भ थपे से थये है।
गोरे खरे गदकारे महा बटपारे लसे अरु मैंन छये हैं॥

ऊँचे उजागर नागर हैं अरु पीय के चित्त के मित्त भये हैं।
हैं तो नये कुच पै सजनी पर जौलौं नये नहिं तौलौं नये हैं ॥२॥

जीवाभक्त।

सवैया--

धीरज तात छमा तम मात रु, शान्ति सुलोचनि वाम प्रमानौ।
सत्य सुपुत्र दया भगिनी अरु, भ्रात भले मन संयम मानौ॥
ज्ञान को भोजन वस्त्र दसौ दिसि, भूमि पलङ्ग सदा सुखदानौ।
'जीवन' ऐसे सगे जग में सब, कष्ट कहा अब योगि को जानौ॥

जन्म लिया जब तें जग में, तब तें शुक ने सब आश को त्यागी।
पुत्र कलत्र धरा धन धाम, जनक्क भयो तिन में अनुरागी॥
क्रोधि महा दुरवासा भयो, जड़ भर्त रह्यो नित शान्ति में पागी।
'जीवन' कर्म जुदे सबके पर, पाय हैं मुक्ति वे चारौं सुभागी ॥२॥

कवित्त--

जङ्गल में जाये कहा पान फल खाये कहा, बार को बढ़ाये कहा अङ्ग रहे नङ्गा है। भोग को बहाये कहा जोग को जगाये कहा, तन को तपाये कहा वस्त्र गेरू रङ्गा है॥ द्वारका को धाये कहा छाप को लगाये कहा, मूंड मुंडवाये कहा छार लाये अङ्गा है। 'जीवा' जग माँहि ऐसे भेष धरे होत कहा, होत मन शुद्ध तब गेह माहिं गङ्गा है॥ ३॥

नये=नवीन, झुके।

ज्येष्ठलाल।

सवैया—

पिङ्गल कोक पुरान पढ़े, शुभ अच्छर काव्य को दाखनो है।
गुनवान घनो बिन दान खुसी, उर मान नहीं सत भाखनो है॥
निज गाँठ को खाय के गाय रिझावत, ईस की बात को आखनो है।
कोउ ऐसो कवीश्वर आन मिलै तो जरूर हमैं वह राखनो है॥१॥

कवित्त—

सूम ने रुपैयो लीनो कर में पसीनो देख, जेष्ठ कवि दीन्हो उपदेश यौं रुपैया तें। काहे अकुलात आँसुपात कर जारे गात, है तू प्रिय मो कों मात तात व्हेन भैया तें॥ दाता घर जातो तो कुटातो ना बिराम पातो, आतो परो मेरे हाथ हार मत हैया तें। जीत रहौं जौलौं तौलौं दाटों ना बटाऊँ तोय, मैं जो मरजैहौं तो सिखाय जैहौं छैया तें॥ २॥

सुनो हो सुजान श्रुति देखे हम सत्य कहें, हारी है जरूर जेही हमसे बिगारी है। नाहिंन हमारे पास ढाल करवाल छुरी बरछी दुनाल तें बचन मार भारी है॥ नामर्द निलज सूम कायर पै जौर नहिं, सूर मर्म-ज्ञानिन पै हिम्मत हमारी है। कहै कवि जेष्ठ जिय चाहे जापै जीन धरो, कवि के तबेले में तुरङ्ग खर त्यारी है॥ ३॥

कान की कलम सान देत कारबारिन को, मान कहो मेरो तो नफो है बहुतेरो सो। आये यह लोक परलोक न सध्यो

काज, कहे सब लोक तो तो कोक जग फेरो-सो ॥ चालोगे कुचाल तौ पड़ोगे जम-जाल माहिं, कहै जेष्ठलाल ख्याल बाजीगर केरो-सो। पायो अधिकार ना करोगे उपकार और, कहौं अन्त बार बार ह्वै है मुख मेरो-सो ॥ ४ ॥

एरे बागवान! मेरे बैन कान दै के सुनो, तोरे फल पात आन नेक हू निहारो ना। कर के विवेक नेक टेक न नमे कों देत, भये एक एक के अनेक को उखारो ना ॥ कहै जेष्ठलाल श्रेष्ठ तरु की सँभाल राख, श्रेष्ठ श्रेष्ठ वृछ आल-बाल तें उखारो ना। निंद्र के मारे लेट रहे कहा मन्दिर में, पैठे बाग अन्दर में बन्द्र निकारो ना ॥ ५ ॥

गोरे गोरे भुजदण्ड दीरघ बने हैं नैन, शोभा के सदन सब ही के मन माने हैं। अजब जलेब सो जलेबदार जेब देन, द्वारे गज बाज हेम पूरन खज़ाने हैं ॥ ऐसे सुने नरनाह सुजश की बाढ़ी चाह, या तें कवि आस पास आन मँडराने हैं। हम मरदाने जाने बिरद बखाने पर द्वार दरबान कहै साहेब जनाने हैं ॥ ७ ॥

तुलसी।

सवैया—

पहिले सुख-दैन करी बतियाँ बहकाय वृथा मन मेरो ठगा।
कर-जोरि कहौं नहीं जोर कछू चित चोरि कै प्यारे न दीजे दगा ॥
तुलसी निज बोल की याद करो सुनु लाल मनोज की दाह भगा।
अपनो करिकै कर छोरिये ना जनि तोरिये नेह को काँचो तगा ॥

पठवाय सँदेस हमेस हमैं सु लियो अपनो रँग में उमगा।
बिसवास दै कीजे निरास कहा चरचा यह आई सगा असगा॥
कुलटा कुल लोग लगे कहिबे नहीं अङ्क लगी औ कलङ्क लगा।
तुलसी तुमहीं चित चेत करो जनि तोरिये नेह को काँचो तगा॥

गुन रूप कहा हम माँहि रह्यो जिहि के बश ह्वै हठि प्रीति पगा।
अब नून कहा सु कहो सकुया किमि चित्त कों लीन्ही उदासी लगा॥
तुलसी जो प्रबीन कहावत हौ मम प्यारे तो ज्वाब की राखो जगा।
मनभावने भावती चाल चलो जनि तोरिये नेह को काँचो तगा॥

तोषनिधि।

कवित्त-

देखे अरुनाई करुनाई लगै खञ्जन को मृगन गुमान तजि लाज गहिबे परी। तोषनिधि कहै अलि छौनन हूं दीनताई मीनन अधीन ह्वै कै हारि सहिबे परी॥ चरचा चकोरन की कोरि डारि कोरन सों कविन कवीसता गरीबी गहिबे परी। आई बीर चञ्चलाई राधिका के नैनन में खासे खञ्जरीटन खराबी सहिबे परी॥ १॥

गङ्गा राज रानी को सुभट अभिमानी भट, भारत के बंश मैं न भीषम कहाऊँ मैं। जो पै शर चोटन चपेटि रथ पारथ को लोकालोक पर्वत के पार न बहाऊँ मैं॥ 'मिश्र जू सुकवि' महि-मण्डल में घूमि घूमि खाँडौ दाहि दाहि दिगमण्डल दहाऊँ मैं।

कहत पुकारि ललकारि महाभारत मैं देखो जो न शस्त्र आज हरि को गहाऊँ मैं ॥ २ ॥

जुद्ध मैं अपार भार रथी महारथी वीर मारि कै गिराऊँ कपिधुजहिं हराऊँ मैं। जो पै सुत शन्तनु को तौ न रन पीठि देहु इतनो न करौं गङ्गा जननी लजाऊँ मैं ॥ तोषनिधि शिरन झुकाऊँ सब सेनै आजु पाण्डवन पुहुमी न मुख दिखराऊँ मैं। धनुष धहाऊँ छत्री कुल न कहाऊँ जो पै हरि को न संजुग मैं शस्त्र पकराऊँ मैं ॥ ३ ॥

शक्र जो न माँगि लेतो कुण्डल कवच पुनि चक्र जो न लीलती धरनि रथ धारतो। कुन्ती जो न शरन समेटि लेती द्विजराज शाप जो न हो तो शल्य सारथी निवाहतो ॥ तोषनिधि जो पै प्रभु पीत पट वारो बनि सारथी पने को कछु कारज न सारतो। तौ तौ वीर करन प्रतापी रविनन्दन सु पाण्डु सुत सेना को चबैना करि डारतो ॥ ४ ॥

दुर्गादत्त।

कवित्त—

औषध मँगावे कोऊ वैद घर जावे कोऊ, कोऊ लै जडीन को सु पीस पीस छाने हैं। बाइ को कहत पियराइ को कहत कोई, मेरे या शरीर माँहि कोई जर जाने हैं ॥ प्यारी तो वियोग की बिमारी पहिचानै नाहिं, लोग उपचारी ये दिवावे ग्रह दाने

हैं। गाँव को बखाने कोऊ गेह को बखाने, दोष पौन को बखाने कोऊ पानी को बखाने हैं॥ १॥

प्रान की पिया कों कब दौरि के उठाय अङ्क, चूमिहौं मयङ्क मुख छाती तें लगाय के। बिरह बिथा की लखि थाकी देह ताकी कब, हाथन कों फेरि फेरि पैहौं सुख जाय के॥ ज्यौं ज्यौं सुसुकैहै त्यौंहि राखिहौं लगाय कण्ठ, कौन दिन हियरे के ताप कों मिटाय के। आँसुन की धार पोंछि पोंछि बहलैहौं चित, देश परदेश की बातन सुनाय के॥ २॥

मोतिन की बेंदी बर कनक जराव जरी, पाटी बिच माँग मेरे मन को मह्यो करे। भारे कजरारे वै निहारे अनियारे नैन, रैन दिन मेरे हियरेउ को गह्यो करे॥ मीठे वै सु अधर कपोल मुसक्यान लीने, मन्द मन्द मोहिं कछु बात सी कह्यो करे। जिते जिते लखौं तिते तिते सुनि इन्दुमुखी, आनन तिहारो आँखि आगेहि रह्यो करे॥ ३॥

सवैया-

रति कोबिद श्याम सुजान प्रिया, परिरम्भन लै भुज वीचन कीन्हो।
चुम्बन कै सु कपोलन को, अधरामृत को दृढ़ कै पुनि पीन्हो॥
हीय नखच्छत कै अतिसें, जु कछू मन भावन सो करि लीन्हो।
नूपुर किंकिनि की धुनि कै, सुखदेन गुपाल घनो सुख दीन्हो॥

केलि-कथा महँ लाज को नाम, सुनै हँसिकै मुख आँचर दैबो।
मेहँदी में बड़े हाथ रु पाय में, छेड़त मो लखि बीनती सैबो॥

खात समै छप्यो पास खड़ो लखि, भूल्यो न जात है नैन नचैवो।
न्हात समै मुहि देखत देखि, कैवाड़ पकै उठि धोवती लैवो ॥५॥

देवदत्त।

कवित्त-

सङ्ग न सहेलो केली करति अकेली एक, कोमल नवेली वर वेली जैसी हेम की। लालच भरे-से लखि लाल चलि आये सोचि, लोचन चलाय रही रासि कुल नेम की॥ देव मुरझाय उरमाल उरझाय कह्यो, दीजो सुरझाइ वात पूछी छलछेम की। भायक सुभाय भोरें श्याम के समीप आय, गाँठि छुटकाइ गाँठि पारि गई प्रेम की॥ १॥

देखि न परत देव देखि देखि परी वानि, देखि देखि दूनी दिख साध्र उपजति है। शरद उदित इन्दु विन्दु सो लगत लखे, मुदित मुखारविन्द इन्दिरा लजति है॥ अदभुत ऊखसी पियूखसी मधुर वानी, सुनि सुनि श्रवननि भूख सी भजति है। मार कियो मन्त्री सुकुमार परतन्त्री वैन, विना तार तन्त्री जीभ जन्त्री सी वजति है॥ २॥

द्विजनन्द।

कवित्त--

गौन की नवेली तू भवन ते न वाहिर हो कुच तेरे कञ्चन मनोज दुति हरिहै। फूल ऐसी माल औ दुकूल ऐसी चपला-सी

ललितन देखे चिलकन-सी नजरि है॥ कहै द्विजनन्द प्यारी पूतरी छपाये चलौ अब तौ ये तेरे नैन री पखान फरि है। ऐसी कसबाती तू तौ नेक ना डराती काहू छाती ना दिखाउ कोऊ छाती फारि मरि है॥ १॥

द्विजराम।

कवित्त—

कञ्चन में यही दोष बासना न धरी जामें, कस्तूरी में यही दोष रङ्ग हू न पाइयो। राम ही में याही दोष मृग को शिकार कीनो, रावण में यही दोष सीता हरि लाइयो। इन्द्र में यही दोष गौतम घर गौन कीनो, अहिल्या में यही दोष चन्द्रमा बुलाइयो। कहत कवि द्विजराम बिना दोष कोहू नाहिं, एक एक दोष प्रभु सबमें लगाइयो॥ १॥

धर्मधुरन्धर।

सवैया-

खाने को भङ्ग नहाने को गङ्ग, चढ़ै को तुरङ्ग ओढ़ै को दुशाला।
धर्मधुरन्धर औ महिषी पति द्वार झुलै गजयूथक हाला॥
पान पुरान सोहागिनि सुन्दरि, गोद बिराजत सुन्दर बाला।
दो महँ एक तो देहु कृपानिधि दो मृगनैनी कि दो मृगछाला॥१॥

धर्मसि।

सवैया-

अपने गुन दूध दिये जल को, तिनकी जल ने पुनि प्रीति फैलाई।
दूध के दाह को दूरि कराइ, तहाँ जल आपकी देह जलाई॥
नीर विछोह भी खीर सहै नहीं, उफणि आवत है अकुलाई।
सैन मिले पुनि चैन लह्यो तिन, ऐसी धरम्मसि प्रीति भलाई॥

ध्रुवदास।

कवित्त-

बड़े बड़े ऊजल सुरङ्ग अनियारे नैना, अञ्जन की रेख हेरैं हियरो सिरात है। चपलाई खञ्जन की अरुनाई कञ्जन की, उजराई मोतिन की पानि पल जात है॥ सरस सलज नचे रहत है प्रेम रचे, चञ्चलन अञ्चल में कैसेहुं समात है। हित ध्रुव चितवनि छटा जेहिं कोद परै तेही पार बरषासी रूपकी ह्वै जात है॥१॥

सुरँग कसुंभी सारी पहरै रँगीली प्यारी, आली अलबेली घने रङ्ग माहिं ठाढ़ी है। केसरी सुरङ्ग भीनी सोंधे सगवगी कीनी सोहे उर अँगिया कसनि अति गाढ़ी है॥ फैली रही अरुनाई तैसी ध्रुव तरुनाई, मानो अनुराग रूप में भकोरि काढ़ी है। वदन डलक पर परी है अलक आय, देखैं पिय नैननि ललाक अति बाढ़ी है॥ २॥

अलवेली सुकुमारी नैनन के आगे रहे, तब लग प्रीतम के प्रान रहे तन में। यह जानी जिय प्यारी रंचको न होत न्यारी,

तिनेहीं के प्रेमरंग रंग रही मन में ॥ परम प्रवीन गोरी हावभाव में किसोरी, नये नये छबी के तरङ्ग उठे छन में। हित ध्रुव प्रीतम के नैन मीन रस लीन, खेलिबो करत दिनप्रति रूप बन में ॥ ३ ॥

नवीन।

सवैया—

भेटत ही सपने में भटू चख चञ्चल चारु अरेके अरे रहे।
त्यों हँसिकै अधरानहु पै अधरान धरे ते धरेके धरे रहे॥
चौंकी नवीन चकी उचकी मुख स्वेद के बुन्द ढरेके ढरे रहे।
हाय खुलीं पलकैं पल में दिल के अभिलाष भरेके भरे रहे॥१॥

नीलकण्ठ। ❀

कवित्त-

कीन्हे बस लोक तीन रावन प्रतापी ऐसे, भयो नाश ताको जब कीन्हों हर्न सीया को। अग्निमुख परे सब कीचक पञ्चालिन सों, रह्यो नहिं रञ्च रस जस उप-पीया को॥ इन्द्र चन्द्र भये मन्दभागी अहिल्या से मानो, हर्ष ज्यों गँवायो पछिताइ निज हीया को। कहै नीलकण्ठ जाको ऐसो फल पाइबे को, सोई रस जानि सङ्ग करै परकीया को॥ १॥

❀ महाकवि मतिराम के भाई नीलकण्ठजी से ये भिन्न हैं।

नवनिधि।

सवैया—

तन तें मन तें रमि कै अनतै हमैं बातन ही बहराइए जू।
तरसैं अँखियाँ दरसे बिन ए इन्हैं रूप सुधारस प्याइए जू॥
कवि नौनिधि कीबे जो ऐसिही तौ कहा लोन जरे पै लगाइए जू।
कबहूं तो हमारे गरे लगि कै यह ताप हिये की बुझाइये जू॥१॥

प्रधान।

कवित्त—

सासु के बिलोके सिंहिनी सी जमुहाइ लेइ, ससुर के देखे बाघिनी-सी मुंह बावती। ननॅद के देखे नागिनी-सी फुफुकारे बैठि, देवर के देखे डाँकिनी-सी डरपावती॥ भनत प्रधान मोछ ज़ारती परोसिन की, खसम के देखे खाँउ खाँउ करि धावती। करकसा कसाइन कुबुद्धिनी कुलच्छनी ये करम के फूटे घर ऐसी नारि आवती॥ १॥

सवैया—

पेट पिराय तो पीठ हि टोवत पीठ पिराय तौ पाय निहारैं।
दै पुरिया पहले विष की पुनि पीछे मरे पर रोग विचारैं॥
बीस रुपैया करें कर फीस न देत जवाब न त्यागत द्वारैं।
भाखैं प्रधान ये वैद्य कसाई है दैव न मारैं तो आप ही मारैं॥२॥

प्रेम।

सवैया-

वह मानदसा चित चातुरी चाह हरे हरे नाहिं कहै हँस कै।
झिझकारनि पानि निवारनि वा मुसकानि रही हिय मैं बसकै॥
मुख-चुम्बन हेत दुरावन की भनै प्रेम हिये लगिबो मसकै।
रति के रस के कुच के मसके जे लई लिसके ते अजौं कसकै॥१॥

प्रेमसुख मोजक।

कवित्त—

स्याणो होय सूम जब मन में बिचार करै, दान पुन्य देनो बड़ाँ बावलाँ चलायो क्यों। पईसा समान नहीं जमीन के पड़दे पर, या कों दूनी दूनी खर्च बायदे गमायो क्यों॥ कौड़ी की खातर अपनी जान को गमाय देत, हा हा विश्वनाथ! यह दान ही बनायो क्यों। प्रेम कहै इसे परिवार बिन सासो होत, मेटन मर्याद ओ कपूत पूत जायो क्यों॥ १॥

नव मास गर्भ माहिं पाल पाल रक्षा करी, जायो जद कष्टी देवी देवता मनायो क्यों। तातो शीलो अन्न खाय कदे भूखी धायी रही, असली निरोगो दूध दुष्ट ने चुंगायो क्यों॥ आप तो सूती रही आला ही बिछावना में, एके तल सूको बस्त्र पूंछ के बिछायो क्यों। प्रेम कहै इसे परिवार बिन सासो होत, मेटन मर्याद ओ कपूत पूत जायो क्यों॥ २॥

कामनी कहत कन्ता आज क्यूं उदास चहरो, पूछ मत प्यारी कुछ कहने में न आवै है। एक नाली चाल्याँ थानै चौगुनो कराय देस्यूं, थारो गहणो देय इज्जत माँगता गमावै है॥ कड़ी एक छोड़ पग और लेवै सब माल, माँगता को देवै नहीं सोदे में लगावै है। 'प्रेम' कहै ऐसा नर हारजावै सारा घर, रात फाड़ भागै टिकट जैपुर की कटावै है॥ ३॥

फकीरुद्दीन।

कवित्त—

सूरत को सार गयो लोक व्यवहार गयो, रोजगार डूब गयो दशा ऐसी आई है। टूट गये साहूकार, उठ गई धीर धार, कोई न किसी को यार वैरी सगा भाई है॥ खाने को जहर नही, रहने को घर नहीं, बात कहा कहूं यार सभी दुखदाई है। कहते फकीरुद्दीन, सुनो हो चतुर जन, टूट गये तो भी पक्के सूरती सिपाई है॥ १॥

वजरंग।

सवैया—

वारहौ भूषन को सजिकै अरु सोरहो भाँति सिंगार वनावै।
वैठी तिया मनि-मन्दिर में मुख-चन्द की चाँदनी को दरसावै॥
सो वजरङ्ग विचारि कहै कवि खोजि फिरे उपमा नहिं पावै।
नाइनि ठाढ़ि हहा करती ठकुराइनि भाल न इंगुर छावै॥१॥

बलराम।

कवित्त-

केलिघर सुघर सिधारी अभिसार करि, बार धूपि अगर अपार नेह पी को है। कहै बलराम जाकी छबि ना छपाये छपै, छपा में छबीली छबि वारो अङ्ग ती को है॥ बार भार झुकत चलत मचकत बाल, जावक के भार पग गौन करिनी को है। जानत छपाकर चकोर जातरूप चोर, भृङ्ग जानि गुञ्जत सुमन मालती को है॥ १॥

वंशगोपाल।

सवैया-

खाय कै पान बिदोरत ओंठ है, बैठि सभा में बने अलबेला।
धोती किनारी की सारी-सी ओढ़त, पेट बढ़ाय कियो जस थैला॥
'वंशगोपाल' बखानत है, सुनो भूप कहाय बने फिर छैला।
सान करैं बड़ी साहिबी की, पर दान में देत न एक अधेला॥१॥

वंशीधर।

कवित्त-

दुवन दुसासन दुकूल गह्यो दीनबन्धु दीन ह्वैकै द्रुपद-दुलारी यों पुकारी है। छाँड़े पुरुषारथ को ठाढ़े पिय पारथ-से भीम महाभीम ग्रीव नीचे को निहारी है॥ अंबर तो अंबर अमर कियो

वंशीधर भीषम करन द्रोन शोभा यों निहारी है। सारी बीच नारी है कि नारी बीच सारी है कि सारिही की नारी है कि सारी है कि नारी है॥ १॥

ब्रह्मानन्द।

सवैया–

राज भयो कहा काज सस्यो, महाराज भयो कहा लाज बढ़ाई।
शाह भयो कहा बात बड़ी, पतशाह भयो कहा आन फिराई॥
देव भयो तो कहा तू भयो, अहमेव बढ्यो तिसना अधिकाई।
ब्रह्म मुनी सतसङ्ग विना, सब और भयो तो कहा भयो भाई॥१॥

भगवत रसिक।

कुण्डलिया–

सुचिता शील सनेह गति, चितवनि बोलनि हास।
कच गूंथनि सीमन्त सुभ, भाल तिलक सुखरास॥
भाल तिलक सुखरास, दृगन अञ्जन अति सोहै।
बीरी वदन सुदेस, चिवुक रसिकन मन मोहै॥
जावक मिहँदी रङ्ग, राग भगवत नित उचिता।
ये सोरह सिंगार, मुख्य ता मैं वर सुचिता॥ १॥

नूपुर विछिया किंकिनी, नीवी–बन्धन सोइ।
कर मुन्दरी कङ्कन वलय, बाजूबंद भुज दोइ॥

बाजूबँद भुज दोइ, कण्ठस्री दुलरी राजै।
नासा बेसरि सुभग, स्रवन ताटङ्क बिराजै॥
भगवत बेंदा भाल, माँग मोती गो ऊपर।
द्वादश भूषन अङ्ग, नित्य प्यारी पग ऊपर॥ २॥

मधुप।

कुसुम।

डाली भर कर फूल आज क्यों तोड़े हैं इतने सजनी!
कभी पहनती है तारों की माला मेघावृत रजनी?
हाय करेंगी क्या अब लेकर सुमन रत्न व्रजबालाएँ?
अब क्या फिर वे पहन सकेंगी फूलों की मृदु मालाएँ?
वन-शोभिनी लता का भूषण हरण किया किस लिये अहो!
है उसका प्रिय मधुप, किन्तु मुझ राधा का है कौन अहो?
डालूंगी किसके सुकण्ठ में माला गूंथ हाय! आली,
अब क्या फिर तमाल के नीचे नाचेंगे श्रीवनमाली!
तोड़ प्रेम-पिञ्जर विहङ्गवर है उड़ गया स्ववास विहाय,
अब क्या सघन कुञ्ज-कानन में बजती है वह मुरली हाय!
व्रज-नभ में व्रज-चन्द्र कभी अब करते हैं क्या उज्ज्वल हास?
व्रज-कुमुदिनी रुदन करती है व्रज-गृह में अत्यन्त उदास।
हा! यमुने डूबा न तुम्हारे जल में क्यों अक्रूर सपत्न,
छोड़ दिया क्यों तुमने उसको जब कि हरा उसने व्रज-रत्न?

व्रज-वैरी व्रज-वन को दल कर हर ले गया मधुर मकरन्द,
मधु कहता है, हे व्रजाङ्गने! पाओगी प्रिय को सानन्द॥

मनोहर।

सवैया-

सोचत सोचत साँझ करै शठ साँझ ते सोचत होत विहाना।
जो षट खण्ड की सम्पति आवत तो न कहूं कछु आज अघाना॥
लोभ लग्यो फुन वृच्छ उपाडण भाग विना न लहै इक दाना।
चेत अचेत सुधारस पीय कै जीव चिड़ी जमराज सिँचाना॥१॥

मात पिता सुत आदि कुटुम्ब सो दीसत है सव लोक विराना।
तू नित एक सदा तिहुंकाल में कर्म वली तिन हाथ विकाना॥
काहि कों पाप करै धर्म छोर कै क्यों न मनोहर होत सयाना।
चेत अचेत सुधारस पीय कै जीव चिड़ी जमराज सिँचाना॥२॥

एह कुटुम्ब जैसे खग वृच्छ के रात वसै परभात उड़ाना।
इन्द्रिय पञ्च तनै वश होय के तू विषया ठग पास ठगाना॥
मोह महा मद पीय कै मूरख आतम ज्ञान सदी विसराना।
चेत अचेत सुधारस पीय कै जीव चिडी जमराज सिँचाना॥३॥

महाराजा मानसिंह।

दोहा-

शूरा सोहि पिछाणिये, लड़ै धरम के हेत।
पुरजा पुरजा कट पड़ै, कबहुं न छोड़ै खेत॥१॥

सब जग रिपु हौं एक हौं , कृश हौं अरु असहाय ।
ऐसी शङ्का सिंह कै , सपने हूं नहिं भाय ॥ २ ॥

जिण मारग केहर बुवो , रज लागी तिरणाँह ।
वै खड़ ऊभी सूखसी , नह चरसी हिरणाँह ॥ ३ ॥

कलो परग्घै आपरी , सीख दियै साराँह ।
बधै न ऊमर कायराँ , घटै न जूझाराँह ॥ ४ ॥

कटकाँ तबल खुड़किया , होय मरद्दाँ हल्ल ।
लाज कहै मर जीवड़ा , वैस कहै घर चल्ल ॥ ५ ॥

मन विश्वासी जीवड़ा , कायर किम दौड़ेह ।
मरसी कोठै लोह कै , ऊबरसी चौड़ैह ॥ ६ ॥

बेटा जायाँ केवण गुण , अवगुण कवण धियेण ।
जो ऊभा घर आपणी , गंजीजै अवरेण ॥ ७ ॥

ढोल बजन्ता हे सखी ! , पति आयो मुहि लैण ।
बागाँ ढोलाँ हूं चली , पति को बदलो दैण ॥ ८ ॥

मीरन ।

सवैया—

पौढ़ी हुती पलका पर हौं निशि ज्ञान औ ध्यान पिया मन लाये ।
लागि गईं पलकैं पल सों पल लागत ही पल में पिय आये ॥
ज्योंही उठी उनके मिलिबे हौं सु जागि परी पिय पास न आये ।
'मीरन' और तौ सोइ कै खोवत हौं सखी प्रीतम जागि गँवाये ॥

नैन रँगे सब रैन जगे तैं लखे तें लखे मन को ललचावन।
मेरि यों रीस किधौं पिय प्यारे को रूप खरो लगै रीझ रिझावन॥
'मीरन' आज की आवन ऊपर पाँवत छ्वै करिये करि पावन।
आये कहूं अन तें रमि कै मनभावन लागे तऊ मन भावन॥२॥

कवित्त-

सुमन में वास जैसे सुमन मैं आवै कैसे ना कह्यो चहत सो तो हाँ कह्यो चहत है। सुरसरि सूरतनया में सुरसति जैसे बेद के बचन बाँचे साँचे निवहत है॥ परवा के इन्दु की कला ज्यों रहै अम्बर मैं पर वाको अच्छ परतच्छ ना लहत है। बुद्धि अनुमान के प्रमान पर ब्रह्म जैसे ऐसे कटि छीन कवि 'मीरन' कहत है॥ ३॥

दोहा-

मीरन बिछुरत ही पिया, उलटि गयो संसार।
चन्दन चन्दा चाँदनी, भये जरावनहार॥ ४॥
जब लगि हिय में धर सकी, तब लग धरी जु धीर।
'मीरन' अब कैसी बनी, अधिक पिरानी पीर॥ ५॥
बिरह दही पनघट गई, तपन न तऊ सिराय।
भरै धरै सिर गागरी, रीती ह्वै ह्वै जाय॥ ६॥
'मीरन' प्यारे इमि कह्यो, सपने देखौ मोहिं।
तुम बिन नींद न आवई, कैसे देखौं तोहिं॥ ७॥

सुरसरि=गङ्गा। सूरतनया=जमुना।

मोहजी।

कवित्त-

कबहूं ना नैनन सों नैन कों लगाइ करि, सैन की सजावट में काम ना जगायो है। कबहूं ना रतिया में रति या बिनोद करि, छतियाँ लगाइ नाहिं अङ्ग लपटायो है॥ कबहूं ना मर्दन के श्रम तें श्रमित बनि, आनन्द की नींद भर दिन ना उगायो है। हाय मिल्यो पोशनी पति सों अपशोषती हौं, मानो तन पाय बृथा जनम गमायो है॥ १॥

होती जो मैं बिधवा तो सांख्य के सिद्धान्त ही तें, ध्यान धरि ईश्वर में मन को लगावती। होती जो मैं सधवा तो रस के उद्दीपन तें, प्रेम लपटाइ अति नाथ कों रिझावती॥ होती जो कुमारिका तो पेखती न अन्य नर, योग तें अनूप महा मोक्ष कों मिलावती। हाय नाहिं बिधवा न सधवा कुमारिका न, अमली पति से नाहिं एको गति पावती॥ २॥

रघुनन्दन।

सवैया-

सिंहन के बन में बसियै, जल में घुसिये कर में बिछु लीजै।
कान खजूरें को कान में डारि कै, साँपन के मुख आँगुरि दीजै॥
भूत पिशाचन में रहिये अरु, जाहिर घोरि हलाहल पीजै।
जो जग चाहे जियो रघुनन्दन, मूरख मित्र कबौं नहिं कीजै॥१॥

कवित्त--

नख चिन कटा देखे, शीश भारी जटा देखे, जोगी कनफटा देखे, छार लाये तन में। मौनी अनबोला देखे, केते सद्गुनी देखे, माया भरपूर देखे फूलि रहे धन में॥ आदि अन्त सुखी देखे, जनम के दुखी देखे, करत किलोल देखे बनखण्डी बन में। शूर और वीर देखे, अमित अमीर देखे, ऐसे नहिं देखे जिन्है कामना न मन में॥ २॥

बातन सों देवी और देवता प्रसन्न होत, बातन सों सिद्ध और साधु पतिआत है। बातन सों खान सुलतान औ नरेश माने, बातन सों मूढ़ लोग लाखन कमात है॥ बातन सों भूत और दूत सब तावे होत, बातन सों पुन्य और पाप होय जात है। बातन सों यश अपयश सब बातन सों, मानव के आनन मे बात करामात है॥ ३॥

ऊपर के लेख अति सुन्दर बनावत हैं, भीतर तो सीसलौं शृङ्गार रस भरै हैं। जप तप ध्यान पूजा करत दिखाइबे को चाहत बड़ाई ऐसे अब गुन ना धरै हैं॥ आपको न बोध सब जगत प्रबोधत हैं, भाखैं परमारथ को स्वारथ में परै हैं। इससे जो मिलै सो तो गयो सत् मारग में, दूर से प्रनाम कवि रघुराय करै हैं॥ ४॥

पतिआत=विश्वास करना।

रघुनाथ।

सवैया—

लावत मैं न सुगन्ध लखी सब सौरभ को तन देत दसी है।
अञ्जन रञ्जन हू बिन श्याम बड़े बड़े नैनन रेख लसी है॥
ऐसी दशा रघुनाथ लखे यहि आचरजै मति मेरी फँसी है।
लाली नवेली के ओंठन में बिन पान कहाँ धौं आन बसी है॥१॥

रणछोड़।

सवैया-

राम रहे न रहे घनश्याम न, काम की लोक कहानि कहे री।
सुम्भ निसुम्भ गये जग सों, बलिराज को लाज न कोऊ लहे री॥
रावन लङ्क तजी सत भावन, गावन को अब गाथ महे री।
दाम रहे नहिं धाम रहे नहिं, नाम सदा रनछोर रहे री॥१॥

रविराज।

कवित्त—

सुन्दर शरीर होय महा रणधीर होय वीर होय भीम सो लरैया आठो याम को। गिरवा गुमान होय बड़ो सावधान होय सान होय साहेबी प्रतापी पुञ्ज धाम को॥ पढ़न अमान जो पै मघवा महीप होय दीप होय वंश को जनैया सुख श्याम को। सब गुन ज्ञाता होय यदपि विधाता होय दाता जो न होय तो हमारे कहा काम को॥ १॥

रविराम।

कवित्त-

निज घर बाहिर जो पाय की धरनि मनु, धरें फनी सीस पै ज्यों परत ससङ्क है। कृपन के धन सोइ दुर्लभ बचन ताको, तैसी यै मयङ्कमुखी सुलप सुलङ्क है॥ नितप्रति प्रेम पागी लाज की जञ्जीर लागी, सीलरूप जैसी तैसी भौंहन की बङ्क है। आदित कहत जाहि आन पुर्ष ऐसो लगे, भादो सुदी चौथ चन्द जा लखि कलङ्क है॥ १॥

रससिन्धु।

सवैया-

लङ्क नो भैंस की लूट लई गति तो गदही के गुमान को गारै।
आनि झुके कटि लौं कुच झूलि कै नेक घरी अँचरा न सँवारै॥
थम्भ सी जङ्घ नितम्ब नगारे से पाँव चुड़ैल ज्यों टेढ़े ही डारै।
भूती-सी भौन में ठाढ़ि रहै परमेश्वर ऐसि सों पानौं न पारै॥१॥

भात को माँड़ करै नहिं राँड़ रु सौगुनि साँभर साग में डारै।
भूल के खाँड़ लै डारत दाल में हींग फुलाय कै खाँड़ बघारै॥
चाक ते मोटि हूं रोटि करै अरु काचिहिं राखै कै जारहिं डारै।
भूती-सी भौन में ठाढ़ि रहै परमेश्वर ऐसि सों पानौं न पारै॥२॥

रसिकेस।

सवैया—

आननचन्द बिलोकि इतैं उत पङ्कज नैनि रहैं सकुचाई।
बाढ़त नैन नितम्ब उरोज प्रकास बिकास भरी तरुनाई॥
कौतुक है रसिकेस अनूप तिया तन जोबन की अधिकाई।
बोझन सों तिनके हिय में अति आवत रूँधी उसास सदाई॥१॥

बाढ़त है नित ही नित नूतन अङ्गन ओप भरै तरुनाई।
उन्नत पीन उरोज भये मुख कञ्ज बिकास महा छबि छाई॥
लेत थकी-सी रुकी तिय स्वास यही रसिकेस सु भेद लखाई।
बोझन जोबन सो तिनके हिय आवत रूँधी उसास सदाई॥२॥

पीर हिये की हिये मैं पिराय लखाय न रञ्चहु जानै न कोऊ।
हाय बिहाय सुहाय न और उपाय करोर तें जाय न सोऊ॥
हौं तौ कहौं रसिकेस अली यह काहुहिं भूलि व्यथा जनि होऊ।
लोचन बाननि को बिष ऐसो लगै इक घायल होत हैं दोऊ॥३॥

-कौं गुरु ऐसो प्रबीन मिलो जिन तोहि दई सिगरी निपुनाई।
बीर बिना धनु तीर अधीर करै इहि बैस इती बरिआई॥
बेधति है चल चित्त न चूकति बङ्क बिलोकनि बान चलाई।
साँची कहे रसिकेस तिया यह तू कमनैती कहा पढ़ि आई॥४॥

———

रसिया ।

सवैया-

रमि कै रसरीति की गैलन माहिं अनीति को पन्थ न गाहिये जू ।
अब तौ छलछन्द की बानि तजौ हँसि बोलि कै चित्त उमाहिये जू ॥
रसिया कर जोरि करौं बिनती कछु और हमैं नहिं चाहिये जू ।
यह प्रेम की आँखैं लगीं सो लगीं पै कुलीन ज्यों और निबाहिये जू ॥

राज ।

सवैया-

शिव को अरधङ्ग शरीर कियो सकलङ्क सरूप सुधाकर को ।
अवतार धरे हर जू दस ही जल खारो कियो जू जलागर को ॥
रतिनाथ अनङ्ग कियो जिनही फुन पंगु भमे पति बासर को ।
कवि राज कहै बलवन्त महा परताप करम्म बहादर को ॥१॥

राधावल्लभ ।

कवित्त-

मन्द मन्द मारुत बहेरी चहुं ओरन तें, मोरन के सोरन अपार छवि छायेंगे। बरखा बिलोकि वीर बरसे बधूटी वृन्द, बोलत पपीहा पीव पीव मन भायेंगे॥ चारों ओर चपला चमंकै चित चोरें लेत, दादुर दरेरो देत आनँद बढ़ायेंगे। बल्लभ बिचारि हिये सुन री सयानी सखी, ऐसे समय नाथ परदेश तें न आयेंगे ? ॥१॥

रामगोपाल।

सवैया-

बाल झरोखा उघारि निहारि गुलाल लै लालन ऊपर डारैं।
एक उरोज लख्यो उघस्यो पिय तामैं दई पिचकारी की धारैं॥
रीझ थकी सबरी सजनी उपमा कवि रामगुपाल बिचारैं।
मानहुं मैन उछार दियो निबुवा थिरकै अनुराग फुहारैं॥१॥

लाल।

कवित्त-

सिन्धु के सपूत सिन्धु तनया के बन्धु अरे बिरही जरै हैं रे अमन्द तेरे ताप तें। तू तो दोषी दोष हू तें कालिमा कलङ्क भयो धारे उर छाप रिषी गौतम के साप तें॥ 'लाल' कहे हाल तेरो जाहिर जहान बीच बारुनि को बासी त्रासी राहु के प्रताप तें। बाँधो गयो मथो गयो पीयो गयो खारो भयो बापुरो समुद्र तोसे पूत ही के पाप तें॥ १॥

विश्वम्भर।

सवैया-

केलि-कलोल में कम्पित हौं जनु बेलि सी खेलि सकौं न करेरे।
जानौं न हाँसी मिलौं हिय खोलि न बोल न आवै बिलासी के टेरे॥
जद्यपि ऊँचे उरोज नहीं सु बिसम्भर हौं सकुचौं मुख हेरे।
तद्यपि मानि महा सुख काहे धौं सन्तत कन्त बसै ढिग मेरे॥१॥

शम्भुप्रसाद।

सवैया--

दम्पति नेह सों रङ्ग भरे लसैं, कुञ्जन में लिये कोई सखी न है।
सुन्दरता इनमे छल सों मुरली लइ कान्ह के हाथ सों छीन है॥
शम्भुप्रसाद कहै लखि कै धरे पीन पयोधर पै सो प्रवीन है।
माँग्यो जबै मुसक्याइ कह्यो सुनो बाँसुरी है कि ये बीन प्रवीन है॥

शशिनाथ।

सवैया-

गाइहौं मङ्गलचार घने सखि आवत हो तन ताप बुझाइहौं।
झाइहौं पाँइ गुलावन सों कमखाव के पाँवड़े पुञ्ज बिछाइहौं॥
छाइहौं मन्दिर बादले सों शशिनाथ जू फूलन की झरि लाइहौं।
लाइहौं सौतिन के उर साल जबै हँसि लाल को कण्ठ लगाइहौं॥

शिरोमणि।

सवैया--

दादुर चातक मोर करो किन सोर सुहावन कै भरु है।
नाह तेही सोई पायो सखी मोहिं भाग सुहागहु को वरु है॥
जानि शिरोमनि साहिजहाँ ढिग बैठो महा विरहा हरु है।
चपला चमको गरजो बरसो घन पास पिया तो कहा डरु है॥१॥

शिवलाल ।

सवैया-

जाट जोलाहा जुरे दरजी मरजी में रहै चिक चोर चमारो ।
दीनन की सुधि दीनी बिसारि सु ता दिन ते नहीं कीन गोहारो ॥
को शिवलाल की बातें सुनै इन ही को रहै दिन रात अखारो ।
एते बड़े करुनाकर को इन पाजिन ने दरबार बिगारो ॥१॥

शीतल ।

सवैया--

प्याज कपूरहु के रस भीतर, बार पचासक धोइ मँगाई ।
केसर की पुट दै कवि शीतल, चन्दन वृक्ष की छाँह सुखाई ॥
मोगरे माँहि लपेटि धरी, पर ताहि की बास कुबास हि आई ।
ऐसेहि नीच कों नीच की सङ्गत, कोटि उपाय कुटेव न जाई ॥१॥

सूरायचजी टांपरिया ।

सोरठा-

माई एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप ।
अकबर सूतो ओधकै, जाण सिराणै साँप ॥ १ ॥

हे माता ! ऐसा पुत्र उत्पन्न कर, जैसा राणा प्रताप है। जिसको सिरहाने का साँप जान कर, अकब्बर सोता हुआ चौंक उठता है ॥ १ ॥

माथै मैंगल षाग, तैं बाही परतापसी ।
बाँट किया बे भाग, गोटी सावू ताँत गत ॥ २ ॥

हे महाराणा प्रतापसिंह ! तुमने हाथी के ऊपर खड्ग चलाया, सो तांत से साबुन की गोली कट कर दो टुकड़े हो जाती है इस तरह हाथी के दो टुकडे कर दिये ॥ २ ॥

साँग जो सोवरणाह , तैं वाही परतापसी ।
जो बादल करणांह , परैं प्रगट्टी कूंजरा ॥ ३ ॥

हे महाराणा प्रतापसिंह ! तुमने स्वर्ण के रूप वाली बरछी चलाई सो बहल को फोड़ कर सूर्य की किरणे निकलती हैं इस प्रकार हाथी के पार निकल गई ॥ ३ ॥

चोकी चीतोड़ाह , पातल पड़ चेसां तणी ।
रहचेवा राणांह , आयो पण आयो नहीं ॥ ४ ॥

महाराणा प्रतापसिंह यवनों के टुकड़े करने को तो आया, परन्तु यवनों की चोकी देने को कभी नहीं आया ॥ ४ ॥

सुजान

सवैया—

सुखाइ शरीर अधीन करै दृग नीर की बूंद सों माल फिरावैं ।
नेह की सेली वियोग जटा लिये आह की सींगी सॅपूर बजावैं ॥
प्रेम की आँच में ठाढ़ी जरैं सुधि आरो ले आपनी देह चिरावैं ।
सुजान कहै कला कोटि करौ पै वियोगी के भेद को जोगी न पावैं ॥

सुमेरसिंह साहबजादा।

सवैया-

बातैं बनावती क्यों इतनी हमहू सो छप्यो नहीं आज रहा है ।
मोहन की बनमाल को दाग दिखाय रह्यो उर तेरे अहा है ॥

तू डरपै करै सौहैं सुमेर अरी सुनु साँच को आँच कहा है।
अङ्क लगी तो कलङ्क लग्यो जु न अङ्क लगी तो कलङ्क कहा है॥

हमीर।

कवित्त-

गुनी गुन गैयो देश देश को फिरैयो हौं मैं, अच्छर को लैयो स्वच्छ करता बिचारी हौं। तीर को चलैयो तरवैयो नीरहूं को तीव्र, बाजी फिरवैयो शूर शस्त्रन को धारी हौं॥ कहत हमीर सत्य बानी परमानी उर, ताल स्वर ख्याल ताको सरोता अपारी हौं। कोउ सरदार धार करहिं उदार मोपैं, ताकों ततकाल मैं रिझायबे को त्यारी हौं॥ १॥

हरिकेश।

कवित्त--

लटकी लरक पर भौंह की फरक पर नैन की ढरक पर भरि भरि डारिये। 'हरिकेस' अमल कपोल बिहँसन पर छाती उकसन पर निसंक पसारिये॥ गहरौही गति पर गहरौही नाभि पर हौं न हटकति प्यारे नैकुक निहारिये। एक प्रानप्यारी जू की कटि लंचकीली पर ढीली ढीली नजर सँभारे लाल डारिये॥१॥

हरिदत्त।

कवित्त—

भिक्षुक तिहारो कहाँ ? वलि मखशाला जहाँ, सर्पन को सङ्गी कहू ? ह्वै है क्षीरसागर में। एरी बहुरङ्गी बेलवालो कहाँ नाचत है ? किन्हे तिरभङ्गी कहीं ह्वै है ग्वाल गन में॥ चावर चवैया कहू ? होय है सुदामा पास, विष को अहारी कहाँ ? पूतना के घर में। सिन्धुसुता आन मिली, तर्क सों वितर्क करी, गिरिजा मुस्कात जात भारी लिये कर में॥ १॥

हरिदास।

कुण्डलिया—

पर निन्दा पर नारि अरु, पर द्रव्यन की आश।
छोड़ो तीनों वात कों, भजो एक अविनाश॥
भजो एक अविनाश, तवै जगनाथ निवाजैं।
जन्म मरण जञ्जाल, प्रभू कै पल पल भाजैं॥
हरि गुरु विन हरिदास, सिन्धु यह तरनो भारी।
तजो तीन को सङ्ग, द्रव्य निन्दा पर नारी॥ १॥

नारी दीपक देखि कै, परतहिं पुरुष पतङ्ग।
अति आतुर वस होइ कै, आप जलावत अङ्ग॥
आप जलावत अङ्ग, कछू ना हासिल होवे।
हो ही शुद्ध अशुद्ध, सुधर्म कमाई खोवे॥

देख हृदय हरिदास, अनूभव आप बिचारी।
परतहि पुरुष पतङ्ग, देख कै दीपक नारी॥ २॥

सवैया—

कै दिन जात हैं पुत्र खेलावत, कै दिन जात हैं बात बनाये।
कै दिन जात हैं खावत सोवत, कै दिन जात हैं क्रोध चढ़ाये॥
कै दिन जात हैं नारि को सोचत, कै दिन जात हैं पेट उपाये।
यों हरिदास महा नर मूरख, रत्न मिलो तन देत गमाये॥३॥

प्रभु पक्ष में द्रव्य जो भाँति लगै, धन है धन है तिनके धन कों।
हरि नाम बिसारि कै नाच नचै, जब प्रेम कथा न रुचे उनकों॥
मृदङ्ग कहै धिक है धिक है, तब ताल कहै किन को किन कों।
तब हाथ पसारि कहै गणिका, इन को इन को इन को इनकों॥४॥

हाफिज।

सवैया—

चातक मोर करै अति शोर, उठी घनघोर है श्याम घटा।
चमकै बिजुरी अति जोर भरी, अरु लागि झरी लिये ठाट ठटा॥
शोक भरी पछताय खड़ी बिरहागि जरी शिर खोले लटा।
कराहि कै हाथ करै पछताय बैं, हाफिज देखि कै सूनी अटा॥१॥

कवित्त—

फूल बिन बाग जैसे, बानी बिन राग जैसे, पानी बिन सर जैसे, रूप बिन रङ्ग है। धन बिन साज जैसे, सोचे बिन काज

जैसे, राजा विन राज ज्यों, नदी विन तरङ्ग है॥ एक अङ्गी प्रीत जैसे, वेश्या विन रीति जैसे, प्रेम विप्र मीत जैसे, शोभा विन रङ्ग है। प्यारी विन रैनि जैसे, हाफिज विचारि देखो, शील विन नैन अरु साधु विन सङ्ग है॥ २॥

हेम।

कवित्त—

दाम ही सों आठो याम बुद्धि को प्रकाश होत, दाम ही सों जग वीच होत बड़ो नाम है। दाम ही सों भैया बन्धु आय सब रजु होत, दाम ही सों बनहु में होत सब काम है॥ दाम सों सभान माहिं आदर मिलत अरु दाम ही सों घर माहिं होत बिस-राम है। कहै कवि हेम यह नीके कै विचारि देखो, मेरे भाय वीस विश्वा दाम ही में राम है॥ १॥

जामें दो अधेली चार पावली रही हैं पैठ, आठक दुअन्नी आना सोलै को दिखात है। बत्तिस अधन्नी जामें चौसठ पवन्नी होत एक सौ अठाइस अधेला ही को गात है॥ दोय सत छप्पन छदाम जाके देखियत, दमरी सु पाँच सत बारह लखात है। चन्द कैसो भयो मन-भावन हरैया ऐसो रूपे को रुपैया भैया कापै दियो जात है॥ २॥

करि के सिंगार अली चली पिय पास तेरे रूप को दिमाग काम कैसे धार धरिहै। एरी मृगनैनी चाल चलत मरालन की

तेरी छबि देखे ते पिया न ध्यान टरिहै॥ ताते तू बैठि रूप आगरी सुमन्दिर में, तेरे रूप देखे ते अरक-रथ अरिहै। कहै कवि हेम हियो ढाँपि लेहु अञ्चल ते पेट ना दिखाउ कोऊ पेट भार मरिहै॥ ३॥

क्षेम।

कवित्त-

ऊँचो कर करै ताहि ऊँचो करतार करै ऊनी मन आनै दूनी होती हरकति है। ज्यों ज्यों धन धरैं संचे त्यों त्यों बिधि खरो खैंचे लाख भाँति धरै कोटि भाँति सरकति है॥ दौलत दुनी में थिर काहू के न रही 'क्षेम' पाछे नेकनामी बदनामी खरकति है। राजा होइ राउ होइ साह उमराव होइ जैसी होति नेति तैसी होति बरकति है॥ १॥
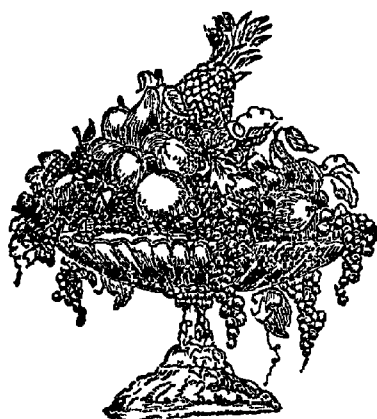
साहित्य-कुञ्ज।

कवित्त—

ॐकार सार है उदार अविकार मन्त्र, सन्तत स्वतन्त्र तन्त्र यन्त्र ते महावली। राग दोष तिन्न के विनासवे प्रचण्ड भान, जाहिर जिहान जाकी गुंजत गुणावली॥ दाता अपवर्ग स्वर्ग सुख को विशिष्ट इष्ट, ज्येष्ठ भव सागर की मेटत चलाचली। सोहन अनन्त गुनवन्त उपशन्त सन्त सकल सिद्धान्त जा की कहैं विरुदावली॥ १॥

सीता को हरन भयो लङ्का को जरन भयो, रावन मरन भयो सती के सराप तें। पांडव वरन भयो द्रुपद-सुता को सत्यभामा को डरन भयो नारद मिलाप तें॥ राम वनवास भयो सीता अग्निसास भयो, द्वारिका विनास भयो योगी के दुराप ते। बड़े बड़े राना केते संकट सहाना नेक सोहन बखाना एक कर्म के प्रताप तें॥ २॥

ईश गिरिजा के वश विकल विशेष भयो, सीता वश रावन गयो है परलोक में। कृष्ण राधिका के वश नाच भांति भांति नच्यो, ब्रह्मा निज पुत्री ते भयो है रस कोक में॥ द्रुपद-सुता के काज कीचक नरक गयो, भयो रहनेम राजमती वश जोख में। सोहन कहत नामी बदनाम भये, एसो कामदेव को अफसाद तीन लोक में॥ ३॥

देवता को सुर औ असुर कहैं दानव को दाई को सुधाय दार पैतियै लहत है। दर्पन को आरसी त्यों दाख को मन्नका कहैं दास को खवास आमखास विचरत हैं॥ देवी को भवानी और देहरा को मठ सदा याही बिधि घासीराम रीति आचरत है। दाना को चवेना दीपमाला को चिराग-जाल देवे के डरन कवौं दद्दो ना कहत है॥ ४॥

पाग देन कही सो माँगत हो आज ही पै आवेगो आषाढ़ तब बनहु बुहावेंगे । लोढ पींज कात कर त्यार करिहेंगे फिर धोबी काहु चतुर तापै ऊजरी धुवावेंगे ॥ बुगचे में बाँधकर राखेंगे कितेक दिन आवेगो कसुमो तब गुलाबी रङ्गावेंगे । हम बाँध पूत बांध पोते परपोते बांध ताही पीछै वाही पाग तुम को दिलावेगे ॥ ५ ॥

दाता घर होती तौ कदर तेरी जानी जाती आई है भले घर बधाई बजवाव री । खाने तहखानन में आनि के बसेरो लेहू होहु ना उदास चित चौगुनो बढ़ाव री ॥ खैहौं ना खवैहौं मरिजैहौं तौ सिखाय जैहौं यहि पूत नातिन को आपनो सुभाव री । दमरी न दैहौं कबौं जाने में भिखारिन को सूम कहै सम्पति सों बैठी गीत गाव री ॥ ६ ॥

सूम समुझावे निज सुत को सिखावै सीख इतिहास लावै कहै मन को चला नहीं । पुन्य के किये तें पुत्र प्रिया हरिचन्द वेचि डोम घर रह्यो जासों सीस अचला नहीं ॥ भनत गुलाल देख नृग कृकलास भये पुन्य को बिलास आस बलि को छला नहीं । भिच्छुक को देवे लाल लरिबो सला है पुनि मरिबो सला है पुन्य करिबो सला नहीं ॥ ७ ॥

आजु जो कहैं तो आठ मास में न लागे ठीक काल्हि जो कहैं तो मास सोरह चलावहीं । पाँच दिन कहे पाँच बरस बिताय देहिं पाँच बर्ष कहैं तो पचास पहुंचावहीं ॥ भाषत 'प्रधान' जो वै ताहू पै न त्यागैं द्वार आपन लजात फेर बाहू को लजावहीं । ऐसे सत्यभाषी सरदार हैं देवैया जहाँ काहे को पवैया तहाँ जीवत लौं पावहीं ॥ ८ ॥

हावभाव बिबिध दिखावे भली भाँतिन सों मिलत न रति दान जागे सङ्ग जामिनी । सुबरण भूषन सँवारे ते बिफल होत जाहिर किये ते हँसे नर गजगामिनी ॥ रहे मन मारे लाज लागत उघारे बात मन पछतात न कहत कहूँ भामिनी । बेनी कवि कहै बड़े पापन ते होत दोऊ सूम को सुकवि औ नपुंसक को कामिनी ॥ ९ ॥

आध पाव तेल में तयारी भई रोशनी की आध पाव रुई में पोशाक भई वर की। आध पाव छाले को गिनौरां दियो भाइन को माँगे माँगि लायो है पराई चीज घर की ॥ आधी आधी जोरि वेनी कवि की बिदाई कीनी ब्याहि आयो जब ते न बोले बात थिर की। देखि देखि कागद तबी-अत सु मादी भई सादी काह भई बरबादी भई घर की ॥ १० ॥

अन लाउ धन लाउ भूषन वसन लाउ आग लाउ साग लाउ लाउये बढ़ी रहै। लरिका खेलाय लाउ अँगिया सिलाय लाउ लाउ लाउ करवे तें चुप न घड़ी रहै ॥ बाजीगर बन्दर को जा बिधि नचावत है लिये लकड़ी को निसबासर खड़ी रहै। मरद लुगाई पर चढ़त घड़ी एक पर मरद के सीस भर-जनम चढ़ी रहै ॥ ११ ॥

चातुर कन्हैया जू पै बाला जुर आई आठ कहो जु कन्हैया आज हमकों दिराइये। गोद लेहो फूल देहो नाकन पिरावो मोती पातल की पातरी हुतास प्यास लाइये ॥ ऊँचे से झरोखे बीच मोहन बैसारो मोहिं रतिपति की सूरत चलो सेज जाइये। 'बारी ना' उत्तर एक दयो भेद सबै लह्यो ऐसी जगलाल तेरी युक्ति कों सराइये ॥ १२ ॥

बिदेस को होवै त्यार हाथ जोड़ बोलै नार आप स्यूं अधिक प्यार पाछा जल्दी आवज्यो। सट्टा की कमाई सार ल्यावज्यो मोत्यां को हार कन्दोरो नै टोटीकड़ा सोना रा घड़ावज्यो ॥ बिछुया बाजूबन्ध झेलां बङ्गडी घड़ाज्यो पैलां नाकबाली दांत चूप रतन जड़ावज्यो। चन्द सूर बीन्दी बोर पूंची पती ठूसी और पतड़ीवाला-तिमण्या नै हीरा स्यूं मँढ़ावज्यो ॥ १३ ॥

काच टीकी सुरमो सार आड कू ले आज्यो लार हींगुल की पूड़ी च्यार लार लेता आवज्यो। फूल नै कनारी कोर जरो बूटा तारा और ओढ़ने के काज चीर रेसमी ये लावज्यो ॥ गाघरा की चोखी छींट सोना केरी लाज्यो ईंट और कोई नवी चीज भूल मति आवज्यो। ज्ञान सेती जाण सही धूर्त नार बोली नहीं दिल्ली केरो पेचो एक आपके भी लावज्यो ॥ १४ ॥

राजा राव राजे बादशाह जे जहान जाने हुकुम न माने हुकुमन तर आने हैं। सूर बीर सज्जन में सुघर प्रसज्जन में रीति रस रञ्जन में अति ही बखाने हैं॥ स्यामलाल सुकवि जहान में न तो-से भूप खोज हारे पात पात आज के जमाने हैं। हम मरदाने जानि बिरद बखाने पर द्वारे चोबदार कहै साहब जनाने हैं॥ १५॥

सीख सेर मारिबे को सभा में सुनावै सदा स्यार हू न मारयो जाय भारी की भरीन को। हाथ में न जाके जोर सेर के उठायबे को जिह्वा तें उठायो करै पुंज सिखरीन को॥ ग्वाल कवि कहै श्रीयुधिष्ठिर सो सांचो बनै देत सब ही को दम जाम ओ घरीन को। बाजे बाजे भूप ऐसे बेशरम होय जात राखलेत हाथी चारो डारत चिरीन को॥ १६॥

बीसवीं पुस्ति हम बांटे हैं गेंदौरे सुनि बड़े बडे बैरिन की छाती फटि जायगी। नाइनि सुबारिनि परोसिनि पुरोहितानी छोटे पाय खोटी खरी मोसों कहि जायगी। सुनु हलवाई चलि आई है हमारे यही डेढ़ टाँक खाँड चाहै औरौं लगि जायगी। फिरकी से छोटे और दीमक से जोटे जरा कागद से मोटे बनै बात रहि जायगी॥ १७॥

का को यह घोरा? कह्यो जाही को मैं चाकर हौं, कौन को तू चाकर है? जा को यह घोरा है। नाम क्यों न लेत! कह्यो तू ही क्यों न पूछे जाय, लिख दे! लिखत टूटै लेखनी को ठोरा है॥ एक दिना नाम लियो अन्न आधीरात मिल्यो, सो भी गिरयो स्वान खायो निपट निहोरा है। नाम तो दिवान जू के लिये कई बर्ष भए, सुने नाम कानन में परयो जात खोरा है॥

गुनी वे कहाते जो न गुन तें गरूर करैं मुनी वे कहाते जो न बात बीच चटकैं। ज्ञाता वे कहाते जो न पापिन को संग करैं दाता वे कहाते जो न दान देत भटकैं॥ कौन ब्रह्मचारी? जो न नारिन तें यारी करैं बरती कहाते जो न मद्य मांस गटकैं। छत्री कहाते जो न रन पाय मुख मोरैं चातुर कहाते जो न पातुर सों अटकैं॥ १९॥

सुन रे सयाने ह्वै के काहू को न दीजे सीख पहिले बिवेक आप आपनी बिचारिये। जाको है सुभाव जैसो ताहि को रहत तैसो पाथर न भीजे पानी कब लौं पखारिये॥ जहाँ बकवाद तहाँ अन्त न सवाद कहूं आपै जो न सुधरै तो कौन को सुधारिये। जो है अति जोर तौ बताऊं एक ठौर तोहिं जीतिये जगत जोपै एक मन मारिये॥ २०॥

उज्जल ते उज्जल ही देखत सकल विधि जाहिर न कछु दूध छांछ को परतु है। आनि कै लबार एक बात को अपार कहै ता को सब सांचो मानि मन में धरतु है॥ और कोऊ आनि कै सयानप की बात कहै भ्रम उपजाय सब एक ही करतु है। हानि वृद्धि आपनी न आपही ते जाने सु तो पीसति है आंधी मुख कूकर भरतु है॥ २१॥

एक तो सुनत बात बुद्धिके सयानप सो स्वाती जल सीप जैसे अन्तर धरतु है। ताही तन त्याग कै तकत मर जीवो तोऊ पावत न पार जो पै सिन्धु में परतु है। एक के सुनत कान कगठ में रहति आन नाहिन करतु जौ लौं अन्तर जरतु है। एक सुनि अंस ठौर ठौर लै प्रकाश करै मानो दीपमालिका को दीप ज्यों बरतु है॥ २२॥

दम्भी दगाबाजन की गाढ़ो है अधिक थाप ज्ञानी गुरु लोग के बचन बेप्रमाना है। पूछत न कोऊ कवि कोबिद प्रवीनन को नकली हरामिन को हाजिर खजाना है। ठाकुर कहत कलि काल को प्रभाव देखो झूठी बातें कहि २ जनम सिराना है। बड़े २ सूवा तेऊ जात पाप डूबा यह देख जिय ऊबा को अजूबा कारखाना है॥ २३॥

कौन को सुनाइये कवित्त वित्त दाता कौन गनिका के गरज गरूरता सम्बै रहे। साहजादे शाहजादे सूबा सरदारजादे कायथ सिपाहजादे शाह २ ह्वै रहे॥ सिवराम कहत अमीरजादे मीरजादे पीर औ वजीरजादे छल-छन्द छ्वै रहे। मुगल पाठानजादे राव उमरावजादे सबै जादे जगके हरामजादे ह्वै रहे॥ २४॥

जहाँ जैसी रीझ तहाँ तैसोई बिचार देत गाँव गज घोड़ा सिरोपाव सब पावै है। त्याग तरवार में कमान जाकी एक ठौर देख व्यवहार सुख पावत जो आवै है॥ कीरति कहत जात देश देश कहै बात जैसी अनुमान जाको तैसो गुन गावै है। बहते प्रवाह कर नाहिन पखार लेत औसर के बीते फिरि पाछै पछतावै है॥ २५॥

हाथी के दाँत के खिलौना बनैं भाँति भाँति बाघन की खाल तपी शिव मन भाई है। मृगन की खालन को ओढ़त हैं योगी यती छेरी की खाल थोरा पानी भरि लाई है॥ साबर की खालन को बाँधत सिपाही लोग गैंडा की खाल राजा रायन सुहाई है। कहै कवि 'दयाराम' राम के भजन बिन मानुष की खाल कछु काम नहिं आई है॥ २६॥

कारीगर कोऊ करामात कै बनाय लायो लीनी दाम थोरो जानि नई सुघरई है। रायजू को रायजू रजाई दीनी राजी ह्वै के सहर में ठौर ठौर सोहरत भई है॥ बेनी कवि पाय के अघाय रहे घरी द्वैक कहत न बने कछु ऐसी मति ठई है। साँस लेत उड़िगो ऊपल्ला और भितल्ला सबै दिन द्वैक बाती हेतु रुई रह गई है॥ २७॥

भूत-सी भयावनी भुजङ्ग-सी पयावनी औ चूल्हे की-सी लावनी ज्यों नील में रँगाई है। हाथी के-सी खाल बूढ़े भालू के-से बाल मनो बिधि ते बिधाता आबनूस-सी बनाई है॥ चौदस अमावस-सी अधिक लसति श्याम कहै कवि गोबिंद ज्यों हब्सी की जाई है। तवा तिमरावली मसी ते महा कालिमा तू ऐसो रूप सुन्दर कहाँ ते लूटि लाई है॥ २८॥

करि की चुराई चाल सिंह को चुरायो लङ्क शशि को चुरायो मुख नासा चोरी कीर की। पिक को चुरायो बैन मृग को चुरायो नैन दसन अनार हाँसी बीजरी गम्भीर की॥ कहै कवि बेनी बेनी ब्याल की चुराई लीनी रती रती शोभा सब रति के शरीर की। अब तो कन्हैया जू को चित्त हू चुराइ लीन्हों छोरटी है गोरटी या चोरटी अहीर की॥ २९॥

केते भये यादव सगर सुत केते भये जातहू न जाने ज्यों तरैया परभात की। वलि वेनु अम्बरीप मानधाता प्रहलाद कहाँ लौं गनाओं कथा रावन ययात की॥ तऊ न बचन पाये काल कौतुकी के हाथ भाँति भाँति सेना रची घने दुख घात की। चार चार दिना को चवाउ चाहै करै कोऊ अन्त लुटि जैहै जैसे पूतरी वरात की॥ ३०॥

अकब्बर जैसे भये जब्बर धरा में धींग, पाड़े भरि रींग सुनी डींग जस नाम की। विक्रम से बङ्का, जा का वाजत सुजश डङ्का लङ्कापतिहु की माया भई विन स्वाम की॥ केते रावराना खान खाना मरदाना एह, धरा में धराना भई खाक दाम चाम की। सोहन कहत यातें अन्त में विचार यार, काया और माया भई काहु के न काम की॥ ३१॥

अरब खरब महा दरब भयो तो कहा, गरब न कीजै खेल सरब सुपन को। ठारको सो तेह नेह छिन में दिखावै छेह, रह ज्यों सरद मेह नेह परिजन को॥ जोबन झमक चपला की-सी चमक वलि, विषै सुख किसन धनुप कैधों घन को। जैसे काच भाजन को भाजन को जोखो तैसे, तनक खरोसो न भरोसो इन तन को॥ ३२॥

चीता पछतात मृग अङ्क ते निकसि जात वाज पछतात जात तीतर रखत में। चोर पछतात जात दारिद्री सदन माँझ रङ्क पछतात बार-वनिता सदन में॥ मोहर मृगेन्द्र पछतात सूर कूरे पाय जोगी पछतात सङ्ग भोगी के रखत में। कवि पछतात सूमे कविता सुनाय अरु कामी पछतात रति अन्त के वखत में॥ ३३॥

ओपत सुरूप इन्द्रपुरी सो अनूप तामें, सत्य शील कूप अति शीतल स्वभाव है। प्रेमवती पति साथ और की न करै वात, विनय विनेकहु में राखै चित चाव है॥ ऊठ प्रभात नित्य-नेम घर काज साझ, पति को जिमात नित्य करी हाव भाव है। ऐसी पुन्यवती सती मिलै जग वीच जाकू सोहन कहत ताके पुन्य को प्रभाव है॥ ३४॥

भोर उठ स्नान कियो पक्को सेर दूध पियो, सैंकड़ों सिघाडे खाये चित्त तो छुवादी है। दोपहरी में भांग छानी पाव चीनी सेर पानी, सोला सकरकन्द खाये खोंघोड़ी नवादी है॥ पाव सेर बर्फी खाई पाव पक्का पेड़ा खाया, बीसों अमरूद खाये आई नहिं बादी है। कहै ब्रह्मदत्त ऐसो ब्रत नित्य होय यारों करी थी एकादशी पै द्वादशी की दादी है॥ ३५॥

तोड़ें तर माल लोट मारें हम गद्दों पर, दोस्तों में बैठकर शतरञ्ज तास खेलेंगे। देह का दुश्वार भार लाद कर चलेंगे कहां? गद्दे‌दार मोटर में बैठ मजा लेलेंगे॥ हम हैं अमीरजादे नाजुक मिज़ाज़ भला! कंचन की काया से कैसे कष्ट झेलेंगे? नौकर कमीन काम करेंगे, हमारे राम—इमली के पत्ते पर बैठे दण्ड पेलेंगे॥ ३६॥

बाघन पै गयो देखि बनन में रहे छिपि, सांपन पै गयो तो पताल ठौर पाई है। गजन पै गयो धूलि डारत है शीश पर, बैदन पै गयो काहु दारू न बताई है॥ जब हहराय हम हरी के निकट गये, हरि मोसों कह्यो तेरी मति भूल छाई है। कोउ न उपाय भटकत जिन डोले सुनै, खाट के नगर खटमल की दुहाई है॥ ३७॥

आली ऐंडदार बैठी ज्वानी की तखत पर, नैन फोजदार खडे लखै चहूं ओरा है। द्वादस हू भूषन के द्वादस बजीर खड़े, सोलह सिंगार भूप लखै दृग कोरा है॥ रूप को गुमान सीस मुकुट है छत्र चौंर, जेवर की नौबत बजति साँझ भोरा है। कहै कवि केसोदास आली बरनी न जाति, जोबन की जोरा मानो बादशाही तोरा है॥ ३८॥

मांस की गरेथी कुच कञ्चन-कलस कहै, मुख चन्द्रमा जो असलेषमा को घर है। दोऊ कर कमल मृणाल नाभि कूप कहै, हाड़ही को जंघा ताहि कहै रम्भा तर है। हाड़ को दसन ताहि हीरा मुगा मोती कहै, चाम को अधर ताहि कहै बिम्बा फर है। एती झूठी जुगती बनावे औ कहावैं कवि, तापर कहत हमें शारदा को बर है॥ ३९॥

राजपौरिया को रूप राधे को वनाय लाँई गोपी मथुरा ते मधुवन की लतानि में। टेरि कह्यो कान्ह सों चलौ हो कंस चाहे तुम्हे काके कहे लूटत सुने हौ दधि दान में॥ सङ्ग के न जाने गए डगरि डराने देव स्याम ससवाने से पकरि करे पानि में। छूटि गयो छल छैल वाल की विलोकनि में ढीली भई भौहैं वा लजीली मुसकानि में॥ ४०॥

कङ्कन खनक पग नूपुर ठनक करि किंकिनो झनक घनी घूम घहरात है। अङ्क की तचक परजङ्क की मचक लघु लङ्क की लचक हिये हार हहरात है॥ भनै कवि मान विपरीत की झलक डुलै बेसरि अलक छवि छूटि छहरात है। सुन्दरि के कानन में पान यों तरफरात मानो पञ्चबान को निसान फहरात है॥ ४१॥

सुने हूजै वेसुख सुने विन रह्यो न जाय, याही ते विकल-सी विहाती दिन राती है। भूखन सुकवि देखि वावरो विचार काज, भूलिबे के मिस सास नन्द अनखाती है॥ सोई गति जानै जाके मिदी होय कानै सखि जेति कढ़ैं ताने लेती छेदि २ जाती है। हूक पाँसुरी मे क्यों भरौं न आँसुरी में थोरे छेद बांसुरी में बने छेद किए छाती है॥ ४२॥

गीरी और छुवारे खाय, किसमिस और वदाम चाय सांठे और सिघाड़े से होत दिल स्वादी है। गून्द गीरी कलाकन्द अरवी और सकरकन्द कुन्दन के पेड़े खाय लोटे वड़ी गादी है॥ खरबूज तरबूजे और आंब जांब लींबू जार सिघाड़े के सीरे से भूख को भगा दी है। कहत है नराण करते हैं दूनो हाण कहने की एकादसी पिण दुवादसी की दादी है॥ ४३॥

भैरो सुर गाये कोल्हू आपु सो चलत मालकौंस के अलापे होत पाहन दरारैं री। सवद सुने ते सूखे रूख हू हरेरे होत जल को कनूकै झरै मेघ की मलारै री॥ चढ़ि के हिडोरे जब गावत हिडोल राग फिरकी-सी डोलै पाय मारुत के रारै री। दीपक उचारै दिया हाथ सों न वारै मन और करि डारै ये कदम्बन की डारै री॥ ४४॥

अक्कल उड़ावनी छुड़ावनी सुबंश रीति, नित्य उपजावनी अनीति दुखकारी की। द्रव्य की दहावनी मिलावनी कुमार्ग की, नरक दिलावनी निसानी कष्ट भारी की॥ मोह को बढ़ावनी पढ़ावनी कुटिलता की, द्रोह की जगावनी सुमोक्ष सुखहारी की। सोहन कहत नीति रीति की मिटावनी है, कीरति गमावनी या प्रीति पर नारी की॥ ४५॥

इज्जत गमात जूत लात दिन रात खात, निपट लजात बंश उत्तम उदार को। मानव धिक्कार देत हेत ना लहत कछु, रेत में मिलात जश कीरति अपार को॥ पाप तें भरत पिण्ड भूपति करत दण्ड, मार खण्ड खण्ड करै देह सुकुमार को। ऐसे दुःख लहै मूढ़ सङ्कट अनेक सहै, सोहन कहत जेह ग्रहै धन पार को॥ ४६॥

आजु आली माथे ते सुबेंदी गिरै बार-बार मुख पर मोतिन की लरी लरकति है। धरत ही पग कील चूरे की निकसि जात जब तब गाँठि जूरे हू की सरकति है॥ जानि ना परत 'प्रह्लाद' परदेस प्रिय उससि उरोजन सों आँगी दरकति है। तनी तरकति कर चूरी चरकति अङ्ग सारी सरकति आँख बाँइ फरकति है॥ ४७॥

चन्द्रमा पै दावा जिमि करत चकोरगन घनन पै दावा कै मयूर हरषात हैं। भानु पर दावा कर बिकसत कन्ज-पुन्ज स्वाति बुन्द दावा कर चातक चचात हैं॥ सुकवि 'निहाल' जैसे करी के कपोलन पै अलिन अवलि करि नित मड़रात हैं। ऐसे महाराजन पै दावा कबिराजन को धूतन के द्वारे कहूँ मूतन न जात हैं॥ ४८॥

कैधौं हग सागर के आसपास स्यामताई ताही के ये अङ्कुर उलहि दुति बाढ़े हैं। कैधौं प्रेमक्यारी जुग ताके ये चहूंघा रची नीलमनि सरनि की बारि दुख डाढ़े हैं॥ 'मूरति' सुकवि तरुनी की बरुनी न होवै मेरे मन आवै ये बिचार चित गाढ़े हैं। जेई जे निहारे मन तिनके पकरिबे को देखो इन नैनन हजार हाथ काढ़े हैं॥ ४९॥

कोकिल, मयूर, कीर आदिक विहङ्गन कों, डर ना मधुरगान जो पै ये उचारिहैं । फूले फूले कुञ्जन में भृङ्गन की गुंज अरु, त्रिविध समीर मेरो कछू ना बिगारिहैं ॥ पापी या मयङ्क की ना रञ्चक चलेगी अब, 'मोहन' सकल कला जो पै यह धारिहैं । तुमहू अनङ्ग अब मोद सों उमङ्ग भरो, आज सुखकन्द नँदनन्दन पधारिहैं ॥ ५० ॥

कूरम कमल, कमधुज है कदम फूल, गौर है गुलाब, राना केतकी विराज है । पाँडरि पँवार, जुही सोहत है चन्द्रावल, सरस बुँदेला सो चमेली साज बाज है ॥ भूषन भनत मुचकुन्द बड़ गूजर हैं, बघेले बसन्त सब कुसुम-समाज है । लेइ रस एतेन को बैठि न सकत अहै, अलि नवरङ्गजेब चम्पा सिवराज है ॥ ५१ ॥

राना भो चमेली और बेला सब राजा भये ठौर-ठौर रस लेत नित यह काज है । सिगरे अमीर आनि कुन्द होत घर-घर भ्रमत-भ्रमर जैसे फूलन की साज है ॥ भूषन भनत सिवराज वीर तैंहीं देस-देसन में राखी सब दच्छिन की लाज है । त्यागे सदा पटपद-पद अनुमानि यह अलि नवरङ्गजेब चम्पा सिवराज है ॥ ५२ ॥

कटि की कसरि सो तो आई है उरोज मानों, उदर की पीनता नितम्ब जाय बसी है । चरण की चञ्चलता नैन में निकेत कीन्हों, बैनन की फूट तासों लाज ही में कसी है ॥ हास्यहू की मोहनता जाय मिली मान मानों, बाल केलि आतुरता लाल केलि कसी है । जोबन के आए राधे वस्त अस्त व्यस्त भई, तुहूँ प्रभु दया नैन ही ते हिए धसी है ॥ ५३ ॥

थोरी थोरी करके करोरी माया जोरी तोपै, लोभ की लगन तो भई है दिन दूनीसी । जो पै सब देश को मिले है अधिकार तोपै करत बिचार एहू सम्पति है ऊनीसी ॥ और करतूत धरूँ कञ्चन भण्डार भरूँ, करूँ छिन माहिं राजधानी यह जूनीसी । सोहन कहत चाल आयो इतने में काल, कायागढ़ भूपरी भई है तब सूनीसी ॥५४॥

महावीर देव को दिये हैं कष्ट सङ्गम ने, बन में बिनास पाये कृष्ण बिन बारी है। राजा हरचन्द गेह भङ्गी के भरयो है नीर, आदिनाथ बर्ष एक भूख ही निकारी है॥ चौथे चक्रवर्त्त के शरीर में भये हैं रोग, सहे हैं वियोग रामचन्द्र बिन नारी है। सोहन कहत ऐसे ऐसे ही लहे हैं दुःख, ताते नर मूढ़ तेरी कौन-सी चिकारी है॥ ५५॥

गांठ में न दाम ताते सूनो लगे निज धाम साठों घड़ी आठों जाम चिन्ता चित्त को दहै। जाकै पास जाय कहूँ दुख को बखान करौं एक दुख कहो तो अनेक अपनो कहै॥ कहै पदमाकर हितू हैं सब भैया बन्धु बिपद परे पै कोउ नेक ना भुजा गहै। झूठ मूठ सब कहै खातिर जमा को राख गांठ में जमा रहै तो खातिर जमा रहै॥ ५६॥

आजु हौं गई ती शम्भु न्योते नन्दगाँव तहां सांसति परी है रूपवती बनितान की। घेरि लियो तियनि तमासो करि मोहि लखै गहि-गहि गुलुफ लुनाई तरवान की॥ एकै कल बोलि-बोलि औरन देखावै रीझि-रीझि कोसलाई औ ललाई मेरे पान की। घूंघुट उघारि एकै मुख देखि-देखि रहैं एकै लगी नापन बड़ाई अँखियान की॥ ५७॥

जैसी तेरी कटि है तू तैसी मान करि प्यारी जैसी गति तैसी मति हिय तें बिसारिये। जैसी तेरी भौंह तैसे पन्थ पै न दीजै पांव जैसे नैन तैसिये बड़ाई उर धारिये॥ जैसे तेरे ओंठ तैसे नैन कीजिये न जैसे कुच तैसे बैन नाहि मुख ते उचारिये। एरी पिक बैनी सुन, प्यारे मनमोहन सों जैसी तेरी बेनी तैसी प्रीति बिसतारिये॥ ५८॥

लिखी लेख रेख निज कर्म की मिटै न मूढ़, चाहै चित्त आवै सो उपाव लाख करले। भाग्य बिन कोड़ी एक मिलै ना उधार यार, याही तें धरम को मरम हियै धरले॥ देख देख औरन की साहिबी करै क्यों दुःख, पूरब कर्म को बिचार अनुसरले। सोहन कहत भरे सागर असंख्य तोपै, तूं तो तेरे बासन समान पानी भरले॥ ५९॥

सवैया।

अन्ध को पेठ देखाई है आरसी, वहिरे कों बैठ के राग सुनायो।
हीरा गँवार के हाथ दियो जैसे, स्वान के अङ्ग सुगन्ध लगायो॥
मर्कट हाथ कपूर की बीड़ी औ गद्धे की पीठ वनात उढ़ायो।
मूरख आगै कवित्त पढ़यो जैसे, भैस के आगे मृदङ्ग बजायो॥ १॥

रूम तें शाह निकाल दियो अरु दिल्ली तें औरङ्गजेब पठायो।
मारू तें काढ़ दियो जशवन्त उदयपुर वास न राण थपायो॥
बुन्दी के हाडे ने नाक हन्यो तब रहने कू ठोड़ कढ़े नहि पायो।
तिम्मर खाय पछार परयो तब ढूढ़ के झूठ ढूंढाड में आयो॥ २॥

जा दिन ब्रह्मा ने सृष्टि रची कहै ता दिन यूज कियो बटवारो।
पूरब विद्या को वर्ण कियो अरु पश्चिम लोक कियो सचवारो॥
दक्षिण द्रव्य निवास कियो अरु उत्तर देवन को अवतारो।
जैपुर झूठ स्यूं पूर दियो अरु वाकी बच्यो सो वस्यो झुठवारो॥ ३॥

एक समै वृषभान विसम्भर मोहन रूप धरयो ललिता।
दृष्टि पड़ी शिव शङ्कर की छूटे जरु बुन्द लगे खलिता॥
मेरे दाहन कान में फूरु दई तिन तें हमुमन्त बड़े बलिता।
अब कैसे में लाज करूँ री सखी मेरे कन्त को कन्त पिता को पिता॥ ४॥

जिनसे उपनी जिन माहि वसी जिनकी जु सुता तिनकी वनिता।
एक नक्षत्र में जन्म भयो सब गर्भवती मिल के युवता॥
जब सत्य की बात असत्य भई तब एक थई टुक प्रेम कथा।
अब कैसे में लाज करूँ री सखी मेरे कन्त को कन्त पिता को पिता॥ ५॥

टहल दूर करो घर की अरु आवन जान करो इक नाले।
चावल दाल कदे मति राँध तू साक सदा हित राँध उबाले॥
सूम को पूत कहै सुन कामिनी सोय रहूँ घर में अँधियारे।
जो जग जीवनो चाहै कितोक तो दहे के नाम दीयो मति वाले॥ ६॥

जल पीवै तो पीवै न खावै कछू जिहि चित्त नहीं अभिलाषिवे हैं।
बर बित्त की बातें कछू ना करै मनहूँ तें कछू नहीं भाखिबे हैं॥
नित नित्त कबित्त करै उसकी जेहि प्रेम सुधारस चाखिबे हैं।
कहूँ कोऊ जो ऐसो मिलै कबि एक सु तो हमहूँ कहँ राखिबे हैं॥ ७॥

आइये बैठिये आँखिन पै कुलकानि हमारी यहै सुन लीजै।
रीति हमारे बड़ों की यही कोऊ केतो रिझावै छदाम न दीजै॥
दोहा कवित्त औ छन्द पढ़ो गुन की गरमी कबहूँ ना पसीजै।
और सो है सो तिहारोई है पै इनाम को नाम यहाँ मत लीजै॥ ८॥

लाये हो मोहिं दया करि कै तो हरी हरी घास खरी भुसि खैहौं।
ब्याने पचासक ब्याय चुकी अब भूल नहीं सपनेहुं बिवैहौं॥
हौं महिषासुर तैं बड़ी वैस में तो घर जात कलङ्क लगैहौं।
दूध को नाम न लेहु कवीश्वर मूतन तैं नदीनार बहैहौं॥ ९॥

आपु को बाहन बैल बली बनिता हू को बाहन सिंहहि पेखि कै।
मूसे को बाहन है सुत एक सु दूजो मयूर के पच्छ बिसेखि कै॥
भूषन है कवि 'चैन' फनिन्द के बैर परे सब ते सब लेखि कै।
तीनहुं लोक के ईश गिरीश सु योगी भये घर की गति देखि कै॥१०॥

काबुल जाय कै मेवा रचे ब्रज-मण्डल आय करील लगाये।
मेवा तजे दुरजोधन के घर सेवरी के घर जूठन खाये॥
कुब्री को पटरानी कियो तजि राधिका को चट द्वारिका धाये।
ठाकुर को मत कोऊ कहो सदा ठाकुर चूकत ही चले आये॥११॥

अति सूधो सनेह को मारग है जहाँ नेको सयानप बाँक नहीं।
तहाँ साँचे चलै तजि आपनपौ झिझकैं कपटी जो निसाँक नहीं॥
घन आनन्द प्यारे सुजान सुनौ, इत एक तै दूसरो आँक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हो लला मन लेहु पै देहु छटाँक नहीं॥१२॥

होत ही प्रात जो घात करै नित पारै परोसिन सों कल गाढ़ी ।
हाथ नचावति मुण्ड खुजावति पौंरि खड़ी रिसि कोटिक बाढ़ी ॥
ऐसी वनी नख तें सिख लौं 'ब्रजचन्द' ज्यों क्रोध समुद्र तें काढ़ी ।
ईंट लिये बतराति भतार सों भामिनी भौन में भूत-सी ठाढ़ी ॥१३॥

लोहे की जेहरि लोहे की तेहरि लोहे की पांव पयेजनि गाढ़ी ।
नाक में कौड़ी औ कान में कौड़ी त्यों कौड़िन को गजरा गति बाढ़ी ॥
रूप में वाको कहां लौं कहौं मनो नील के माठ में बोरि कै काढ़ी ।
ईंट लिये बतराति भतार सों भामिनी भौन में भूत-सी ठाढ़ी ॥१४॥

द्वार पै दीरघ दांत निरोरे विराजत हैं बनि भैरों के वाहन ।
भीतर जाय सभा में लखे तो सरासर सोहत सम्भु के वाहन ॥
पास सलाह करैया लगे रहैं कान हमेस गनेश के वाहन ।
देवी के वाहन जानि कें आये पै गादी पै देख्यो तो सीतला वाहन ॥१५॥

कानो तजे अपने कुल की तुरफैन सों लीबे को सान चलावैं ।
एक ही देत दिलासा प्रसन्न ह्वै एक सां मोटरी लै घर आवैं ॥
है परमेश्वर पञ्चन में दया नेक नहीं तिनको उर लावैं ।
नर्क परै तिनके पुरखा परपञ्च करै अरु पञ्च कहावै ॥१६॥

आंधरै को प्रतिबिम्ब कहा बहिरै को कहा सुर राग की तानै ।
आदी को स्वाद कहा कपि को पर नीच कहा उपकार ही माने ॥
भेड़ कहा लै करै बुकवा हरवाह जवाहिर का पहिचानै ।
जाने कहा हिजरा रति की गति आखर की गति का खर जानै ॥१७॥

जिनके मन में चुगली उचरी सु तो पाप को बीज वयो न वयो ।
जिनके मन में इक लोभ बस्यो तिन औगुन और लयो न लयो ॥
जिह की अपकीरति छाय रही जन सो जमलोक गयो न गयो ।
मधुसूदन में चित लीन भयो तिन तीरथ नीर पयो न पयो ॥१८॥

गढ़-लङ्क बिभीषण को जो दयो तो निसङ्क ह्वै भेद बताइबे को ।
गनिका जो तरी कर टेकि रही हरिनाम सुवा के पढ़ाइबे को ॥
अरि बिप्र सुदामा को दीने महाधन दास प्रतिज्ञा बढ़ाइबे को ।
बिन काज के दीन पै दाया करै तब जानिये दानी कहाइबे को ॥१६॥

धूत के सङ्ग कपूत की सम्पति दान बिहीन के नाम निसानी ।
दूत की जीत अनीति को आदर ज्यों सत सङ्ग बिना रजधानी ॥
झूठ के बैन लबारी के साथ कहै कवि गोकुल ज्ञान मसानी ।
एते बिलात बिलम्ब नहीं बिन आड़ को दीपक बाढ़ को पानी ॥२०॥

बन्धु बिरोध करो सगरो झगरो नित होत सुधारस चाटत ।
मित्र करै करनी रिपु की धरनीधर होय न न्याय निपाटत ॥
राम कहै बिष होत सुधाधर नारी सती पति सों चित फाटत ।
भा बिधिना प्रतिकूल जबै तब ऊँट चढ़े पर कूकर काटत ॥२१॥

देव दिखावति कञ्चन सो तनु, औरनि को मनु तावै अगोनी ।
सुन्दरि साँचे में दै भरि काढ़ी-सी, आपने हाथ गढ़ी बिधि सोनी ॥
सोहति चूनरि स्याम किसोरी कि, गोरी गुमान भरी गज गोनी ।
कुन्दन-लीक कसौटी में लेखि-सी, देखी सो नारि सुनारि सलोनी ॥२२॥

एँड़िन ऊपर घूमत घाँघरो, तैसियै सोहति सालू की सारी ।
हाथ हरी-हरी राजै छरी, अरु जूति चढ़ी पग फूंद-फूंदारी ॥
ओछे उरोज हरा घुघुचीन के, हाँकति हाँ कहि बैल निहारी ।
गातन ही दिखराय बटोहिन, बातन ही बनिजै बनिजारी ॥२३॥

तीनहू लोक नचावति ऊक मैं, मन्त्र के सूत अभूत गती है ।
आपु महा गुनवन्त गोसाइनि, पाँइन पूजत प्रानपती है ॥
पैनी चितौनी चलावति चेटक, को न कियो बस जोगि-जती है ।
कामरू-कामिनि काम-कला, जगमोहनि भामिनि भानमती है ॥२४॥

गूजरी ऊजरे जोबन को कछु, मोल कहौ दधि को तब देहौं ।
'देव' अहो इतराहु न होइ, नहीं मृदु बोलन मोल बिकेहौं ॥
मोल कहा अनमोल बिकाहुगी, गेंचि जबै अधरा-रस लैहौं ।
कैसी कही, फिरि तो कहौ कान्ह, अभै कछू हौंहु कका कि सौं कैहौं ॥२५॥

रीति रची बिपरीत रची रति प्रीतम सङ्ग अनङ्ग भरी मैं ।
त्यों पद्माकर टूटे हरा ते सरासर सेज परे सिगरी मैं ॥
त्यों करि केलि बिमोहित ह्वै रही आनन्द की सुघरी उघरी मैं ।
नीबि औ बार सम्हारिबे की सु भई सुधि नारि कों चारि घरी मैं ॥२६॥

जब लौं घर को धनो आवैं घरें तब लौं तौ कहूँ चित देबो करौ ।
पद्माकर ये बछरा अपने बछरान के सग चरैबो करौ ॥
अरु औरन के घर ते हम सों तुम दूनी दुहावनी लैबो करौ ।
नित सांझ सबेरे हमारी हहा हरि गैया भला दुहि जैबो करौ ॥२७॥

भाल गुही गुन लाट लटैं लटकी लर मोतिन की सुख देनी ।
ताहि बिलोकति आरसी लै कर आरस सों यक सारस-नैनी ॥
'केसव' स्याम दुरै दरसी परसी उपमा मुख की अति पैनी ।
सूरज-मण्डल मैं ससि-मण्डल मद्धि धसी मनो धार त्रिबेनी ॥२८॥

ब्याकुल काम सतावत मोहिं पिया बिन नीक न लागत कोई ।
प्रीतम से सपने भई भेट भली विधि सों लपटाय के सोई ॥
नैन उघारि पसारि कै देखौं तो चौंकी परी कतहूँ नहिं कोई ।
एरी सखी ! दुख कासों कहौं मुसकाय हँसी हँसि कै फिरि रोई ॥२९॥

बङ्क बिलोकन दीठि चलायरी, नेह लगाय कै पीठि न दीजे ।
बौरी न हूजिये मान कह्यो अब, प्रीतम को अपनाय के लीजे ॥
मोहिनी रूप की वैसहि पाय कै, को नहिं जोवन के मद भीजे ।
ऊजरी जो पै करी करतार तो, गूजरी एतो गरूर न कीजै ॥३०॥

लम्पट चौर लबार महा शठ, नारि-दलालन की मति साजी।
दुष्ट लुचे बहु बगड निलज्ज वै स्वारथ काज बने रहैं पाजी॥
आन परैं जिनमें इतने गुण, रोजी लगै तिनकी अति ताजी।
ये गुण एक नहीं हमपै, अब का बिधि कीजिये ठाकुर राजी॥३१॥

लौन कपूर गिनै इक भाय, गुनी अगुनी की परै नहिं जाहर।
साह रु चोर सबै इक-से, कुलहीन कुलीन अजा अरु नाहर॥
साँच रु झूंठ बरब्बर है, जँह ज्ञान विज्ञान को ठीक न ठाहर।
कौन पै जाय पुकार करैं, हमरे दरबार न बम्ब न बाहर॥३२॥

सुन्दर रूप त्रिया मन जानकी लोक औ वेद की मेड़ न मेटी।
औधपुरी सुख सम्पति सो रजधानी सदा लछना सौं लपेटी॥
सूर किसोर बनाय बिरञ्चि सनेह की बात न जात है मेटी।
कोटिक जो सुख है ससुरारि तौ बाप को भौन न भूलत बेटी॥३३॥

चींटि न चाटत मूसे न सूंघत बास ते माछी न आवत नेरे।
आनि धरे जब ते घर में तब ते रहै हैजा परोसिन घेरे॥
माटिहू में कछु स्वाद मिलै इन्हें खाय सो ढूंढ़त हर्रे बहेरे।
चौंकि पर्यो पितुलोक में बाप सो पूत के देखि सराध के पेरे॥३४॥

शीश कहै परि पाय रहौं भुज यों कहै अङ्क तें जान न दीजै।
जीह कहै बतियाई कियौ करौं श्रोन कहै उनही की सुनीजै॥
नैन कहै छबि सिन्धु सुधारस को निशिवासर पान करीजै।
पायहुं प्रीतम चित्त न चैन यों भावतो एक कहा कहा कीजै॥३५॥

गङ्ग नहीं मुकता भरी माँग है चन्द्र नहीं यह उद्यत भाल है।
नील नहीं मखतूल को पुन्ज है शेष नहीं शिर बेनी बिशाल है॥
भूति नहीं मलयागिरि है विजया है नहीं बिरहा से बेहाल है।
एरे मनोज! सँभारि कै मारियो ईश नहीं यह कोमल बाल है॥३६॥

हरी कञ्ज प्रभा पद पङ्कज ते गति देखि कै तेरी लजानो करी।
करी चन्दहू को गति मन्द अली मुखचन्द उघारति ताही घरी॥
वरी है विधना बड़े भागिनि तू नित मौतिन के उर साल भरी।
अरी जा पर वारत प्रान सबै मो बिकानो तो सूरत देखि हरी॥३७॥

प्रीतम मांग्यो बिदेस निदेस सुने तिय के बिरहागिनी जागी।
नैननि में अँसुवा झलके तिय के हिय तें सिगरी सुधि भागी॥
सुन्दरि सीस नवाय रही सुभई मति है अति ही दुख पागी।
यों निरख्यो मनो जीव सों पीय के सङ्ग सिधारिबो बूझन लागी॥३८॥

सूखे अजौं न ते औधि के औसगने जे परे अँगुरीन में छाले।
नैन के चानन ते अति गाढ़े बने घने घाव अजौं उर आले॥
आए सुने की सुन्यो चलिबो सु हिये लगि दूर किये ना कसाले।
आँखें लजीली कै यों कहि राधिका राखति गोकुल चन्द के चाले॥३९॥

रावरे जान की कान परी धुनि ता छिन तें छबि यों उपमानो।
छूटि परे कर ते कसे कङ्कन मूंदरी छीन लई थिर थानो॥
भूषन भोजन भावत मौज न भूलि फिरै भभरी पहिचानो।
नाथ जू जात बिदेश भले तुम प्रान पियारी के साथ ही जानो॥४०॥

बाल सों लाल बिदेस के हेत हरै हँसि कै बतियाँ कछु कीनी।
सो सुनि बाल गिरी मुरझाय धरी हरि धाय गरे गहि लीनी॥
मोहन प्रेम पयोधि भयो जुरि दीठि दुहूँ की गई रस भीनी।
माँगै बिदा को बिदा को करै मिलि दोऊ बिदा को बिदा कर दीनी॥४१॥

सीत समै परदेस पिया जु पयान सुनो बहरावन लागी।
या रितु में हरि केहू रहै वर देवता पूजि मनावन लागी॥
और उपाय न कीन कछू तब साज कै बीन बजावन लागी।
प्यारी प्रवीन भरी सुर मेघमलार अलापन गावन लागी॥४२॥

न्हातई न्हात तिहारई श्याम, कलिन्दियों श्याम भई बहुतै है।
धोखे हू धोयहौं यामें कहूँ, तो यहै रङ्ग सारिन में सरसै है॥
साँवरे अंग को रङ्ग कहूँ यह, मेरे सु अंगन में लगि जैहै।
छैल छबीले छुओगे जो मोहिं, तो गातन मेरे गुराई न रैहै॥४३॥

लाल लखी पहिले ही समागम प्रेमकला में प्रवीण है प्यारी।
प्रीतम को भ्रम-सो उपज्यो तब भींत पै प्यारी लिखी चित्रसारी॥
गर्भ तैं छूटत ही शिशु सिंह गयन्द के कुम्भ पै हत्थल मारी।
हेतु कहा कवि वृन्द चिते प्रिय होय प्रसन्न रच्यो रस भारी॥४४॥

कहौं यक बात बुरो जनि मानहु कान्हहि देखि कहा मुसकानी।
मैं धौं कबौं चितयों इहि ओर पै दाऊ की सौं तुम ओर गुमानी॥
आपन सो जिय जानती और को तातें अनन्त यहै जिय जानी।
कहौ जु कहौ अलि जो कह्यो चाहती दूध को दूध सो पानी को पानी॥४५॥

औधि बदी हरि आवन की मनभावन की उपजी जक चाकैं।
काम की पीर बढ़ो अभिमन्यु धरैं नहीं धीर यहै बक वाकैं॥
दे बिधि पाँख मिलौं उड़ि जाय अघाय बुझाय हिये लगि वाकैं।
जो परि पांखनि पीउ मिलै सखी पांख जु है चकई चकवाकैं॥४६॥

भूषन सेत महा छवि सुन्दर सानि सुवास रची सब सोनै।
गोरे-से अङ्ग गरूर भरी कवि खेम कहै जो गई तहँ गोनै॥
चन्दमुखी कटि खीन खरी दृग मीनहू ते अति चञ्चल दोनै।
ऐसी जो आई के अङ्क लगै तो कलङ्क लगे अरु होउ सो होनै॥४७॥

बाँहैं धरै मुख नाहीं करै उठि आंसु ढरै अँग में अँग चोरै।
हाहा करै उठि भागै धरै तुतराति लरै तकि भौंह मरोरै॥
लाल करै हित बाल अरै हठि साल लरै गहि धातु सों तोरै।
साँस भरै अति रोसै करै परिपाटी धरै फुंफुदी जब छोरै॥४८॥

चारिहुं ओर उदै मुखचन्द की चाँदनी चारु निहारि ले री।
यह प्राणहि प्यारो अधीन भयो मन माँह विचार विचारि ले री॥
कवि ईश्वर भूलि गयो जुग पारिबो या बिगरी को सुधारि ले री।
यह तो समयो बहुरयो न मिलै बहती नदी पाँय पखार ले री॥४६॥

नव कुञ्जन बैठ पिया नँदलाल जू जानत है सब कोक-कला।
दिन में तहाँ दूती भौराय के ल्याई महा छबि धाम नई अबला॥
जब धाय गही हरिचन्द पिया तब बोली अजू तुम मोहिं छला।
हमैं लाज लगे बलि पाँय परौं दिन हीं हहा ऐसी न कीजे लला॥५०॥

आनन चन्द सो खञ्जन से दृग हैं हर के रिपु के रस छाते।
प्रेम अमी अनुराग रँगे पै भगे रससिन्धु में कानो चुवाते॥
अञ्जन रञ्जन हैं मन के ब्रजचन्द भनै बने झूम-झकाते।
मानौ कलानिधि पै बिबि कञ्ज द्विरेभ लसैं तिन पै मद माते॥५१॥

उघार किवार बुहारनहारी नाथ हूँ? आपके आसन जावो।
हूँ नटनागर? वंस चढ़ो, केशव हूं? इह ठौर न माचो॥
लाल हूं? रोस भये किन ऊपर, श्याम हूं? तो बिधि को दुःख गावो।
पीव हूं? तो जल गोरस नाहिं, ग्वाल हूं? तो बन माँय सिधावो॥५२॥

भ्रम के बश में फँसि कूकर ज्यों, रस के हित अस्थि चबावत है।
निज श्रोणित चाखत मोद भरो, पर नेकु विवेक न लावत है॥
नर हू वनिता तन सेवन तें, तनिकौ न कभू सुख पावत है।
निज-देह-परिश्रम के मिस तें, सुख की शठ भावना भावत है॥५३॥

निसि बासर वस्तु विचार सदा मुख साँच हिये करुणा धन है।
अपनी गृह संग्रह धर्म कथान परिग्रह साधुन को गन है॥
कहै केशव भीतर ज्योति जगै अरु बाहर भोगन को तन है।
मन हाथ सदा जिनके तिनके बन ही घर है घर ही बन है॥५४॥

संग रह्यो सुख संग लह्यो कबहूँ न भयो कछुकै पल न्यारो।
छोड़ि के ताहि चल्यो पिय चाहत कैसे बनै बलि कोऊ बिचारो॥
पीतम को अरु प्रानन को हठ देखिबे है अब होत सकारो।
कैधौं चलैगो अगार सखी यह देह ते प्रान की गेह ते प्यारो॥५५॥

तीखन बानन सों मन बेधत काम भले नित देह दहै री।
भावत ना घर आँगन नेक सोहाय नहीं बन बाग उतै री॥
सुन्दरि गुञ्जत भौंरन को लखि देखत चन्दहिं को डरपै री।
काहू सों जो कहिबे को करै कछु आवत कण्ठहिं लौं सकुचै री॥५६॥

कोऊ न आयो उहाँ तें सखी री जहाँ मुरलीधर प्रान पियारे।
याही अंदेसे में बैठी हुती उहि देस के धावन पौरि पुकारे॥
पाती दई धरि छाती लई दरकी अँगिया उर आनँद भारे।
पूछन कों पिय की कुसलात मनो हिय द्वार किवार उघारे॥५७॥

लहि सूनो सकेत अलिंगन कै मदनागिनी की ब्यथा खोती रही।
मुसकानि भरी बलि बोलनि ते श्रुति माहिं पियूष निचोती रही॥
द्विज प्रान प्रिया यों सनेह सनीं छतियाँ ते लगी सदा सोती रही।
तजि ताहि बिदेस बसे तिय जो कबहूं पट ओट न होती रही॥५८॥

लाल प्रबाल से ओठ रसाल अमी रस पान को ताप बुझैहैं।
श्रीफल से बर जोर कठोर उरोज की कोरन काम जगैहैं॥
कुन्दन कान्ति से लोल कपोल अमोलन चूमि कै काम बढ़ैहैं।
फूलन की परजङ्क पै पौढ़ि मयङ्कमुखी कब अङ्क लगैहैं॥५९॥

मोहन आये यहाँ सपने मुसुकात औ खात बिनोद सों बीरो।
बैठी हुती परजङ्क पै हौं हू उठी मिलिबे कहँ के मन धीरो॥
ऐसे में दास बिसासिनी दासो जगाई डुलाय किवार जँजीरो।
झूठो भयो मिलिबो ब्रजराज को एरी गयो गिरि हाथ को हीरो॥६०॥

नारि पराई ते बोलिबो को कहै क्योंहूं न काहूं को भूलहूं हेरे।
मेरो लखे मन वेई औ मैं हूं लियो उनको लिखि चित्र हियेरे॥
बाँधि सके उनको मन को बँध्यो रैन दिना रहे मेरेई नेरे।
लेस नहो उनमें अपराध को मान की हौंसे रही मन मेरे॥६१॥

सिव ठौर कुठौर कछू न गिनो जितहीं तितहीं हसि बोलत हौ।
हम घात परे मिलिजैबो कहूं यह प्रेम दुरो कत खोलत हौ॥
चरचोई करै चहुं ओरन ते न चवाँइन के चित तौलत हौ।
हरि नाहीं भली यह बात करो परछाहीं भए सँग डोलत हौ॥६२॥

चौचँदहाई लगी चहूँ ओर लख्यो करैं नैननि ओर तुम्हारे।
ऐसे सुभायन सों निरखो कि उन्है लगो रूखे हमै रसवारे॥
कीजियैं कैसीं दई निदई न दई है दई कर मौत हमारे।
देखे विना हूँ रह्यो नहीं जात कह्यो नहीं जात न आइये प्यारे॥६३॥

चुनि चीर सुगन्धित कै कै नये अपने कर तें पहिरावतु हैं।
नित, मेरे लिये पिय सोनन के गहने हूँ नवीन गढ़ावतु हैं॥
पिक केकीन कोकिल बैन दिवाकर नेकु नहीं जिय ल्यावतु हैं।
जिनके चख चारु चकोर सखी मुख मेरो मयङ्क हि भावतु हैं॥६४॥

सोधी विलोकनि सोधिये चाल कहा लखि लाल भयो बस लोनो।
लोग कहैं यह आए अपूरब पुरुष को पढ़ि आगम कोनो॥
काहे लजात नहीं तुम तो मोहि लाये रहौ हिय सूम ज्यों सोनो।
हौं पिय लाजनि जाति गड़ी सिगरो ब्रज मोहि लगावत टोनो॥६५॥

है तनहीं में लखाति नहीं वर बूझिये जाय तौ हैं सब साखी।
मानि लई सबही अनुमानि कै पेखी न काहू पसारि कै आँखी॥
जानत साँची के यातें जहान जो आगे तें वेद पुराननि भाखी।
ब्रह्म लौं सूच्छम है कटि राधे कि देखी न काहू सबै सुन राखी॥६६॥

मात को मोह न द्रोह दुमात को ना कछु तात के गात दहे को।
प्रान को छोह न बन्धु बिछोह न राज को मोह न औधि गये को॥
नैक न 'केशव' आवत जीव मैं ना कछु सीत वियोग सहे को।
ता रनभूमि में राम कह्यो मोहिं सोच बिभीषन भूप कहे को॥६७॥

ऋषि बिश्वामित्र परासर से जिन तो तप कै अति काय कसी।
तरु पान भखे गिरि नीर चखे रसना अनस्वाद कहूं न रसी॥
मनमत्थ मथ्यो मन को मन ही मन 'राज' सभोग की बात बसी।
अति श्रेष्ठ भखै तिय सङ्ग रखै मुख योग भखै कपटी तपसी॥६८॥

'राज' महा बलवन्त मृगाधिप कुञ्जर सूकर मंस अहारी।
सो तो सम्बत्सर में इक बेर ही मैथुत तैं तृप्ति करै नारी॥
कङ्कर चून चुगे अति चंचू सो तो अति काम को होत भिखारी।
होत मनोभव भोजन तें न मनोभव को मन ही अधिकारी॥६९॥

देखहु जोर जरा भटकौ, जमराज महीपति को अगवानी।
उज्जल केस निसान धरैं, बहु रोगन की सँग फौज पलानी॥
कायपुरी तजि भाजि चल्यौ जिहि, आवत जोबन-भूप गुमानी।
लूट लई नगरी सगरी, दिन दोय में खोय है नाम निसानी॥७०॥

चूरन तें किये चूर अनेक, जुलाब के जोर तें लाखन मारे।
द्वार तें देखत बीथिन में मुरे आवत हैं सब लोग पुकारे॥
बाल जुवा जुवती जन भागत, रोवत हैं परे बृद्ध बिचारे।
बैद भये जब तें हरिजू तब तें जमराज रहैं बिन कारे॥७१॥

साँप सुशील दयायुत नाहर, काक पवित्र औ साँचो जुवारी।
पावक शीतल, पाहन कोमल, रैन अमावस की उजियारी॥
कायर धीर, सती गनिका, मतवारो कहा मतवारो अनारी।
'मोतियराम' बिचारि कहैं नहिं देखी सुनी नरनाह की यारी॥७२॥

गेह के लोग गए कढ़ि बाहेर सूने सकेत के भाँवती पाई ।
बेनी पिछोंहे ह्वै आनि गह्यो तिरछोंहे चितै रद आँगुरी नाई ॥
हाहा तजो कोउ आनि परैगो जू छोड़ि दई करि कै मनभाई ।
चञ्चल अञ्चल सों मुख पोंछि अँगोछति अङ्गन आँगन आई ॥७३॥

कचुकी माँह कसे उकसे परैं कामिनी ऊँचे उरोज तिहारे ।
दत्त कहै जनु विश्व बिजै करि मैन धरे उलटे कै नगारे ॥
जोवन जोर कढ़ै हिय फोर कै औरही तें एक ठोर निहारे ।
गेंद के गुंमज के गिरि कै गज कुम्भ के गर्व गिरावन हारे ॥७४॥

प्रात समै वह गोप लली चली आवति ही जमुना जल न्हाये ।
नीर सों चीर लग्यो सब देह में दूनी दिपै छवि ओप चढ़ायें ॥
दरियाई कि कंचुकी मैं कुच की छवि यों छलकै कवि देत बतायें ।
बाज के त्रास मनो चकवा जलजात के पात में गात छिपाये ॥७५॥

खेलिये फाग निसङ्क ह्वै आज मयङ्कमुखी कहै भाग हमारो ।
लेहु गुलाल दुहूँ कर में पिचकारिन रङ्ग हिये मह्रँ मारो ॥
भावै तुमै सो करो मोहि लाल पै पाँय परों जिन घूघट टारो ।
बीर की सौं हम देखिहैं कैसे अबीर तौ आँखे बचाय कै डारो ॥७६॥

फागुन मास बड़ो उतपात रहै निसबासर नींद न आवै ।
आपस माँझ सबै नर नारि निरन्तर चौगुन फाग रचावैं ॥
जो कुल नारि कहूँ सरमाय दुरैं तबहूं गुरुनारि बतावैं ।
या ब्रज मैं यह रीति बुरी घर में धसि लोग लुगाइन लावैं ॥७७॥

छाय रह्यो तम कारी घटान यों आपनो हाथ पसारि लखै को ।
अंग रचे मृग के मद सों मनि मर्कत भूषन साजि अकै को ॥
नील निचोलन को छवि छाजति त्यौं भ्रमरावली सों मग छेको ।
सावन की निसि साहस कै निकसी मनभावन के मिलिबे को ॥७८॥

बचिहो नहिं कानन जाय छिपे बचिहो नहिं शीश बढ़ाये जटा ।
बचिहो नहिं अङ्ग बिभूति मले बचिहो नहिं ऊँच उठाये अटा ॥
दास गरीब तू लाख करो बचिहो नहिं अङ्ग बनाये छटा ।
एक राम की नाम की आस करो निसिवासर शीश पै काल घटा ॥७९॥

पहिले दधि लै गई गोकुल में, चख चारि भये नटनागर पै ।
'रसखानि' करी उन चातुरता, कहैं दान दै दान, खरे अरपै ॥
नख तैं सिख लौं पट नील लपेटे, लली सब भाँति कँपै डरपै ।
जनु दामिनी सावन के घन तैं, निकसै नहीं भीतर ही तरपै ॥८०॥

दीनदयाल सुनी जब तें तब ते हिय में कछु ऐसी बसी है ।
तेरो कहाय के जाउँ कहाँ मैं तेरे हित की पट खैंच कसी है ॥
तेरोइ एक भरोस मलूक को तेरे समान न दूजो जसी है ।
एहो मुरारि पुकारि कहौं अब मेरी हँसी नहिं तेरी हँसी है ॥८१॥

जो यह मेरी दसा लिखिबे को गनेस मिलैं उनहूँ सों लिखाऊँ ।
व्यास से सिस्य कहा मिलैं मोहिं कथा अपनी सब काहि सुनाऊँ ॥
राम मिलैं तौ प्रणाम करौं निधितोष बियोग-बिथा सब गाऊँ ।
तो बिन साँवरे सुन्दर मीत मैं काहि करेजो निसारि दिखाऊँ ॥८२॥

कूल कलिन्दी के कुञ्जकदम्बन क्यों मुरवा बिन पावस कूके ।
क्योंरू उठे पिय पीय पुकार ऊहीं समूह पपीहनि हूँके ॥
वा धुनि को सुनि के मनमोह बढ़्यो गृह काज सबै चित चूके ।
हाँथन में ठहरात न भाजन ढीले भये अंग गोप बधू के ॥८३॥

गुन-साबुन सों छल-मैल घनो तदबीर के नीर धोवावहिंगे ।
सुखराय कै संजम-आतप मैं कछु आगिलो काम चलावहिंगे ॥
मतज्ञान को है रँगरेज खरो अनुराग के रङ्ग बोरावहिंगे ।
अति चोखो चढ़ै यही भावै हमैं हिय चीर भले रंगवावहिंगे ॥८४॥

'भूप' कहै सुनियो सिगरं मिलि भिच्छुक बीच परौ जनि कोई।
कोई परौ तो निकोई करौ न निकोई करौ तौ रहौ चुप सोई॥
जानत हौ बलि ब्राह्मन की गति भूलि कुपन्थ भलो नहि होई।
लेइ कोऊ अरु देइ कोऊ पर शुक्र ने आँखि अकारथ खोई॥८५॥

बोड़ गिरचो घर बाहर हो महाराज कछू उठवावन पाऊँ।
एड़ो परो बिच पैडोई माँझ चलै पग एक ना कैसे चलाऊँ॥
होय कहारन को जुपै आयसु डोली चढ़ाय यहाँ तक लाऊँ।
जीन धरौं कि धरौं तुलसो मुख देउँ लगाम कि राम कहाऊँ॥८६॥

घाँघरी झीन सो सारी महीन सों पीन नितम्बन भार उठै लचि।
दास सुबास सिगार सिगारन बोझन ऊपर बोझ उठे मचि॥
स्वेद चलै मुख ते चवै जबै पग द्वैक धरै गहि फूलन सों पचि।
जात है पङ्कज पात बयारि सों वा सुकुमारि को लङ्क लला लचि॥८७॥

यों झनकार चुरी झनकी छचि, ये सुनि कान अचानक जागे।
उनई यों घटा-सी लटै चहुं ओर, जो मोर लखे हुलसे रस पागे॥
लखी मुख मण्डन यों नहियां, जु पढ़े सब, सीखि सुआ बड़ भागे।
यों कछु कामिनी बोलन लागी, जु ऊतर देन कबुतर लागे॥८८॥

रूप की रीझनि प्रेम परयो किधौं रूप की रीझनि प्रेम सों पागी।
मण्डन मैन जग्यो मनसा बस, कै मनसा बस मैन के जागी॥
लाजहि लै कुलकानि भगी, कीधौं लाज लिये कुलकानिहि भागी।
नैन लगे वह मूरति माँहि, कीधौं वह मूरति नैनन लागी॥८९॥

का कहि कै घर जैयतु है अरु, कौन सुने अति बीती भई।
कवि मण्डन मोहन ठीक ठगी सु तौ ऐसी लिलार लिखी ती गई॥
और भई सो भले ही भई पर, एक ही बात बितीती नई।
रति हू ते गई मति हू ते गई, पति हू ते गई पति हू ते गई॥९०॥

खात में ग्यान औ ध्यान सधै जप गान में तान सुनी अति आछी।
चित्त में चाव बढ़ै अति चौगुनो जाते बने कवितावली बाँछी॥
भाषै 'सुवंस' अनेकन हैं गुन मानै न मूढ़ तो शङ्कर साछी।
भङ्ग बिहाइ कै सागु बवाइ कै बारी उजारत बावरो काछी॥६१॥

पाँइ परौं मनुहारि करौं सखी साँवरे के घर वास बसै दे।
ननँदी ननदा ससरौ अरु सासु दिरानि जिठानि रिसै तु रिसै दे॥
ब्रज की बनिता जु चबाउ करैं, मुख मोरि कै खीजि खिसैं तु खिसैं दे।
योवन माधव रङ्ग रच्यो अब लोग हँसैं तो हँसै तो हसैं दे॥६२॥

चहुं ओर उठीं घनघोर घटा बन मोर करैं सखि सोर खरे।
ब्रज ओर निहारि निहारि तिया कहि बैन इतै दोऊ नैन भरे॥
आवत नाहिन लाज तुम्हें फटि जाहु न पापि हो प्रान अरे।
जिन बीच न हार परे कबहूँ तिन बीचन आज पहार परे॥६३॥

आयो असाढ़ सबै सुख साजन मो जिय में बिरहा दुख बोई।
सावन में सब केलि करैं मैं अकेली परी संग साथ न कोई॥
कैसे जियौं अब ए सजनी! रितु पावस में घनश्याम बिगोई।
कौन-सी चूक परी बिधना बरसात गई बर साथ न सोई॥६४॥

रैनि में प्रीति की रीतिन के रत ह्वै कै निचीत भपे यह कोये।
नैन सों नैन मिलाय लिये मुख सों मुख छ्वाय महा रस छोये॥
मेलि हिया सों हिया भुज बाहु दुहूँ कटि में पग में पग पोये।
सीत की भीत तें दोऊ दयानिधि खोय मनोज बिथान कों सोये॥६५॥

जेहि गर्भ ते तोहि उधार कियो तेहि छाड़ि के मूरख और को धावे।
ख्याल करो कछु वा दिन की यमराज के हाथ सों शासन पावे॥
जेहि हेत सों पाप अनेक कियो सोइ अन्त समै कछु काम न आवे।
राम को नाम जपो निसिबासर दास गरीब यहै मन भावे॥६६॥

दोहा।

सारंग ने सारंग गह्यो , सारंग बोल्यो आय।
जो सारंग सारंग कहै , सारंग मुख ते जाय॥ १॥
पान पुराना घी नया , औ कुलवन्ती नारि।
चौथी पीठ तुरङ्ग की , सरग निसानी चारि॥ २॥
सब की समै विनास में , उपजति मति विपरीत।
रघुपति मारयो लङ्कपति , जौ हरि लैग्यो सीत॥ ३॥
जाहि मिले सुख होत है , ता बिछुरे दुख होय।
सूर उदै फूले कमल , ता बिन सकुचै सोय॥ ४॥
इङ्गित ते आकार तैं , जान जात जो भेट।
तासों बात दुरै नहीं , ज्यौं दाई सौं पेट॥ ५॥
कहिबौ कछु करिबौ कछू , है जग की विधि दोय।
देखन के अरु खान के , और दुरद रद होय॥ ६॥
कहियै जासों जो हितू , भली बुरी ह्वै जात।
चोर करै चोरी तऊ , साँच कहै घर आय॥ ७॥
बिछुरे गये विदेशहू , सज्जन बिछुरै नाहिं।
दूर भये ज्यौं कुरज की , सुरति सुतन के माहिं॥ ८॥
अजगर करै न चाकरी , पंछी करै न काम।
दास मलूका यों कहै , सबके दाता राम॥ ९॥
गर्व भुलाने देह के , रचि रचि बाँधे पाग।
सो देही नित देखि के , चोंच सँवारे काग॥ १०॥
मलुका सोई वीर है , जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई , सो काफिर बेपीर॥ ११॥
प्रभुता ही को सब मरै , प्रभु को मरै न कोय।
जो कोई प्रभु को मरै , तो प्रभुता दासी होय॥ १२॥

सारंग=सर्प, मयूर और मेघ।

दया धर्म हिरदे बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊँचे जानिये, जिनके नीचे नैन॥ १३॥
खान पान पीछू करति, सोवति पिछिले छोर।
प्रानपियारे ते प्रथम, जागति भावति भोर॥ १४॥
जो जिय में सो जीभ में, रमन रावरे ठौर।
आज कालिह के नरन के, जीभ कछू जिय और॥ १५॥
चढ़त घाट बिचल्यो सु पग, भरी आन इन अंक।
ताहि कहा तुम तक रहीं, या में कौन कलंक॥ १६॥
या जग में धनि धन्य तू, सहज सलोने गात।
धरनीधर जो बस कियो, कहा और की बात॥ १७॥
सही साँझ तें सुमुखि तू, सजि सब साज समाज।
को अस बड़भागी जु है, चली मनावन काज॥ १८॥
कारी निशि कारी घटा, कचरति कारे नाग।
कारे कान्हर पै चली, अजब लगनि की लाग॥ १९॥
असन चले आँसू चले, चले मैन के बान।
रमन गमन सुनि सुख चले, चलत चलैंगे प्रान॥ २०॥
बिजन बाग सकरी गली, भयो अंधेरो आइ।
कोऊ तोहि गहै जु इत, तौ फिर कहा बसाइ॥ २१॥
पल पल पर पलटन लगे, जाके अंग अनूप।
ऐसी इक ब्रजबाल को, को कहि सकत सरूप॥ २२॥
यह अनुमान प्रमानियतु, तिय तन जोबन जोति।
ज्यों मेहँदी के पात में, अलख ललाई होति॥ २३॥
पतिबरता को सुख घना, जाके पति है एक।
मन मैली बिभिचारनी, ताके खसम अनेक॥ २४॥
पाँचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग।
सो मन्दिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग॥ २५॥

क्या मुख लै विनती करौं , लाज लगत है मोहिं।
तुम देखत औगुन करौं , कैसे भावौं तोहि॥ २६॥
कोटि करम लागे रहे , एक क्रोध की लार।
किया कराया सब गया , जब आया हङ्कार॥ २७॥
निन्दक नियरे राखिये , आँगन कुटी छवाय।
विन पानी साबुन विना , निर्मल करै सुभाय॥ २८॥
धरती करते एक पग , समुदर करते फाल।
हाथन परवत तौलते , तिनहूँ खाया काल॥ २९॥
जहँ आपा तहँ आपदा , जहँ संसय तहँ सोग।
कह कबीर कैसे मिटैं , चारों दीरघ रोग॥ ३०॥
साधु भया तो क्या भया , बोलै नाहिं विचारि।
हतै पराई आतमा , जीभ बाँधि तरवार॥ ३१॥
हस्ती चढ़िये ज्ञान की , सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है , भूसन दे झख मारि॥ ३२॥
सगति भई तो क्या भया , हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढ़े , तऊ न भीजे कोर॥ ३३॥
सहज मिलै सो दूध सम , माँगा मिले सो पानि।
कह कबीर वह रक्त सम , जामें ऐंचातानि॥ ३४॥
'व्यास' वड़ाई जगत की , कूकर की पहिचान।
प्यार करे मुख चाटई , वैर करे तन हानि॥ ३५॥
'व्यास' कनक औ कामिनी , ये हैं करुई वेलि।
वैरी मारै दाँव दै , ये मारैं हँसि खेलि॥ ३६॥
तन कञ्चन को महल है , तामें राजा प्रान।
नयन झरोखा पलक चिक , देखै सकल जहान॥ ३७॥
डीठि डोरि सों मन कलस , काम कुआँ मैं डारि।
ये नयना तुव नागरी , भरत प्रेम-रस वारि॥ ३८॥

ना हँस कर के कर गहे , ना रिस कर के केस ।
जैसे कन्ता घर रहे , वैसे रहे बिदेस ॥ ३९ ॥
निकट रहै आदर घटै , दूरि रहै दुख होय ।
'सम्मन' या ससार में , प्रीति करौ जनि कोय ॥ ४० ॥
'सम्मन' चहु सुख देह को , तौ छोड़ो ये चारि ।
चोरी चुगली जामिनी , और पराई नारि ॥ ४१ ॥
मांस अहारी जियरा , सो पुनि कथै गियान ।
नाँगी ह्वै घूंघट करै , 'धरनी' देखि लजान ॥ ४२ ॥
दुष्ट मित्र सब एक हैं , ज्यों कञ्चन त्यों काँच ।
'पलटू' ऐसे दास को , सपने लगै न आँच ॥ ४३ ॥
काम क्रोध जिनके नहीं , लगै न भूख पियास ।
'पलटू' तिनके दरस सों , होत पाप को नास ॥ ४४ ॥
सज्जन तजत न सजनता , कीनेहू अपकार ।
ज्यौं चन्दन छेदै तऊ , सुरभित करत कुठार ॥ ४५ ॥
ऊँचे बैठे ना लहै , गुन बिन बड़पन कोइ ।
बैठो देवल सिखर पर , बायस गरुड़ न होइ ॥ ४६ ॥
कारज धीरे होत है , काहे होत अधीर ।
समय पाय तरवर फरै , केतक सींचो नीर ॥ ४७ ॥
कहियै बात प्रमान की , जासों सुधरै काज ।
फीकौ थोरे लौन ते , अधिकै खारो नाज ॥ ४८ ॥
डरै न कबहूँ दुष्ट सों , जाहि प्रेम की बान ।
भौंर न छाड़े केतकी , तीखे कराटक जान ॥ ४९ ॥
भेष बनावै सूर को , कायर सूर न होय ।
खाल उढ़ाये सिंह की , स्यार सिंह नहिं होय ॥ ५० ॥
काम परै ही जानियै , जो नर जैसो होय ।
बिन ताये खोटौ खरौ , गहनौ लहै न कोय ॥ ५१ ॥

यथाजोग की ठौर विन , नर छवि पावै नाहिं।
जैसे रत्न कथीर में , काच कनक के माहिं ॥ ५२ ॥
सन्त कष्ट सह आपुही , सुखि राखे जु समीप।
आप जरै तउ और कों , करै उजेरो दीप ॥ ५३ ॥
अपनी अपनी ठौर पर , सबको लागै दाव।
जल में गाड़ी नाव पर , थल गाड़ी पर नाव ॥ ५४ ॥
अपनी कीरति कान सुनि , होत न कौन खुस्याल।
नाग-मन्त्र के सुनत ही , विप छोड़त हैं व्याल ॥ ५५ ॥
प्रीतम प्रीति लगाइ के , दूर देस मत जाव।
बसो हमारी नागरी , हम माँगैं तुम खाव ॥ ५६ ॥
प्रीतम तुव गुन बेलरी , पसरी मो उर माहिं।
नेह नीर सों नित बढ़ै , क्योंहूँ सूखत नाहिं ॥ ५७ ॥
कागद भीजत नयन जल , कर काँपत मसि लेत।
पापी विरहा मन बसत , बिथा लिखन नहिं देत ॥ ५८ ॥
अलकावलि में देखिये , गोरे मुख की लोय।
ज्यों रूखनि में चाँदनी , झिलमिल झिलमिल होय ॥ ५९ ॥
आजु सखी हम इमि सुन्यो , पहु फाटत पिय गौन।
पहु अरु हियरे हाड़ है , पहले फाटै कौन ॥ ६० ॥
सम्पत्त सों आपत भली , जो दिन थोड़ा होय।
मीत, महेली, बाँधवा , ठीक पड़ै सब कोय ॥ ६१ ॥
'जसवँत' शीशी काच की , जैसे नर की देह।
जतन करन्ता जावसी , हर भजि लाहा लेह ॥ ६२ ॥
जसवँत वास सराय का , क्या सोवै भरि नैन।
श्वास नगारे कूंच के , बाजत है दिन रैन ॥ ६३ ॥
दस दुवार को पींजरो , तामैं पछी पौन।
रहन अचम्भो है 'जसा' , जात अचम्भो कौन ॥ ६४ ॥

कहा लङ्कपति लै गयो , कहा करन गयो खोय ।
जस जीवन अपजस मरन , कर देखो सब कोय ॥ ६५ ॥
सीख शरीराँ ऊपजै , सुणी न लागै सीख ।
अण माँग्या मोती मिलै , माँगी मिलै न भीख ॥ ६६ ॥
ऊजड़ खेड़ा फिर बसै , निरधनियाँ धन होय ।
बीता दिन नह बाहुड़ै , मुवा न जीवै कोय ॥ ६७ ॥
सीखे कहाँ नवाब जू ! , ऐसी दैनी दैन ।
ज्यौं ज्यौं कर ऊँचे करो , त्यौं त्यौं नीचे नैन ॥ ६८ ॥
देनहार कोउ और है , भेजत सो दिन रैन ।
लोग भरम हम पै धरैं , या तैं नीचे नैन ॥ ६९ ॥
बाही राण प्रतापसी , बरछी लचपचांह ।
जाणक नागण नीसरी , मुंह भरियो बच्चांह ॥ ७० ॥

महाराणा प्रताप ने जो लचकती हुई बरछी चलाई सो शत्रु की पीठ फोड़ कर परली तरफ निकल गई सो ऐसी शोभा देने लगी मानो सर्पिणी अपने बच्चों को मुख में लेकर निकली ।

बाही राण प्रतापसी , बगतर में बरछीह ।
जाणक भींगर जाल में , मुंह काढ़यो मच्छीह ॥ ७१ ॥

महाराणा की चलाई हुई बरछी शत्रु के कवच को फोड़ कर परली तरफ निकल कर ऐसी शोभा देने लगी मानो भींगर मच्छी ने जाल में मुंह निकाला है ।

पातल धड़ पतशाह री , एम बिधूंसी आण ।
जाण चढ़ीं कर बन्दराँ , पोथी बेद पुराण ॥ ७२ ॥

महाराणा प्रताप ने शाही फौज को ऐसे बिध्वंस कर डाला जैसे बेद पुराण को बन्दर नष्ट कर देता है ।

सोरठा।

उद्यम अर्थ अपार, हर कोई जाचन करो।
सुख दुःख भोगे सार, कर्मा लारे किशनिया ॥ १ ॥
पृथ्वी रहा पैमाल, पल माही कर दे परी।
सिंघ हुआ है स्याल, कामण आगे केलिया ॥ २ ॥
जोड़े ज्यूं ही जोड़, विणजारे के बैल ज्यूं।
तनक जोड़ मत तोड़, नातो तातो नागजी ॥ ३ ॥
सपना-सो संसार, जाणे पण भूले जगत्।
आणे गरब अपार, छिन भर में नर छोटिया ॥ ४ ॥
बतलावे जद बाम, बतलायाँ बोलो नहीं।
कदेक पड़सी काम, न्होरा करस्यो नागजी ॥ ५ ॥
ऊँचो घणो अवास, अलगे सूं दीसे अजब।
घरनी बिन घरवास, फीको लागे फूसिया ॥ ६ ॥
कीधेला उपकार, नर कृतघन जाणे नहीं।
त्यां लगन्यांरी लार, रजी उड़ावो राजिया ॥ ७ ॥
शुक पिक लगे सवाद, भल थोड़ो ही भाखणों।
वृथा करे बकवाद, भेक लवे ज्यों भैरिया ॥ ८ ॥
आसी सावण मास, बरषा ऋतु आसी वले।
सांईनारो साथ, वले न आसी बीझरा ॥ ९ ॥
पड़वे पोढ़न्तांह, करड़ावण हर कोई करे।
धारां में धसतांह, आंसू आवे ईलिया ॥ १० ॥
विचरो देश विदेश, करो काम नहि करणरा।
लागे हाथ न लेश, चेत्यां बिन दिन चकरिया ॥ ११ ॥
जाके सिर अस भार, सो कस झोंकत भार अस।
रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार में ॥ १२ ॥ *

* इसका प्रथम चरण रीवाँ नरेश और द्वितीय चरण रहीम का है।

खल बहलोल खपार , पेल दल लाखाँ प्रसण ।
अस चेटक उलटार , पहुंतो उदयाचल पतो ॥ १३ ॥

लाखों शत्रुओं के दल अर्थात् सेना को छिन्न भिन्न कर और दुष्ट बहलोलखाँ को मार कर विजयी वीर महाराणा प्रतापसिंह अपने चेटक घोड़े को वापिस लौटा कर उदयपुर पहुंचे ।

छप्पय ।

कबहुं द्वार प्रतिहार, कबहुं दर दर फिरन्त नर ।
कबहुं देत धन कोटि, कबहुं कर तर करन्त कर ॥
कबहुं नृपति मुख चहत, कहत करि रहत बचन बस ।
कबहुं दास लघु वास, करत उपहास जिम्य रस ॥
कछु जानि न सम्पति गर्बिये, बिपति न यह उर आनिये ।
हिय हारि न मानत सतपुरुष, 'नरहरि' हरिहिं सँभारिये ॥ १ ॥

नरपति मण्डन नीति, पुरुष मण्डन मन धीरज ।
पण्डित मण्डन बिनय, तालरस मण्डन नीरज ॥
कुलतिय मण्डन लाज, बचन मण्डन प्रसन्न मुख ।
मति मण्डन कवि कर्म, साधु मण्डन समाधि सुख ॥
बर भुज समर्थ मण्डन क्षमा, गृहपति मण्डन विपुल धन ।
मण्डन सिधांत रुचि सान्त कहि, काया मण्डन नवल तन ॥ २ ॥

बामन को लै नाम, जगत में डोलत ऐंड़े ।
श्रुति मारग को त्यागि, चलत जारन के पैंड़े ॥
परपतिनी आधार, सार ससार बखाने ।
आप सरिस नहिं और, जगत में पण्डित माने ॥
पल असन पान मदिरा करै, कलुखी हरिहर नाथ को ।
एते चरित्र पूरित तऊ, रहत उठाये माथ को ॥ ३ ॥

कुण्डलिया।

ए रे मन मेरे पथिक, तू न जाहि इहि ओर।
तरुनी तन बन सघन में, कुच पर्वत वर जोर॥
कुच पर्वत वर जोर, चोर इक तहां बसत है।
कर में लिये कमान, बान पांचो बरसत है॥
लूटि लेत सब सौंज, पकरि कर राखत चेरे।
श्रवन नयन को मूंदि, किते को भूल्यो ए रे॥ १॥

विधि स्यों कवि सब विधि बड़े, यामें संसय नाहि।
षट रस विधि की सृष्टि में, नव रस कविता माहिं॥
नव रस कविता माहिं, एक से एक सुलच्छन।
गिरधर दास विचारि, लेहु मन माहिं विचच्छन॥
काल कर्म अनुसारि, रचत विधि क्रम गहि हित सों।
कवि इच्छा अनुसार, 'सृष्टि विचरत बर विधि सों॥ २॥

चुगुल न चूके कबहुं को, अरु चूकें सब कोय।
बरकन्दाज कमानियां, चूक उनहूं ते होय॥
चूक उनहूँ ते होय, जो बांधे बरछी गुल्ला।
चूक उनहूँ ते होय, पढ़े पण्डित अरु मुल्ला॥
कह गिरिधर कविराय, कला हू तें नट चूकें।
चुगुल चौकसोदार, सार कबहूँ नहिं चूकें॥ ३॥

या बन में करि केहरी, कूप गंभीर अपार।
द्वै पहार के बीच में, बसत एक बटपार॥
बसत एक बटपार, उभय धनु सर सन्धाने।
ता पीछे इक ग्याह, नागिनी चाहत खाने॥
बरने दीनदयाल, इन्है लखि डरिये मन में।
पथिक सुपन्थ विहाय, भूलिये नहि या बन में॥ ४॥

बरखै कहा पयोद इत, मानि मोद मन माहिं।
यह तो ऊसर भूमि है, अङ्कुर जमिहै नाहिं॥
अङ्कुर जमिहै नाहिं, बरष शत जो जल दैहै।
गरजै तरजै कहा, वृथा तेरो श्रम जैहै॥
बरनै दीनदयाल, न ठौर कुठौरहि परखै।
नाहक गाहक बिना, बलाहक ह्याँ तू बरखै॥ ५॥

कहै दास सग्राम, ऊँट मत कर अरडाटा।
पाछिल भव रे मांह, लाटतो करड़ा लाटा॥
करड़ा लाटा लाटतो, कह्यो मानतो नांह।
पड्यो पड्यो पछतावसी, जनम जनम के मांह॥
जनम जनम के मांह, कर्म कीधा है माठा।
कहै दास सग्राम, ऊँट मत कर अरडाटा॥ ६॥

कोई सङ्गी नहिं उतै, है इतही को सङ्ग।
पथी लेहु मिलि ताहि ते, सब सों सहित उमङ्ग॥
सबसों सहित उमङ्ग, बैठि तरनी के माहीं।
नदिया नाव सँयोग, फेरि यह मिलिहै नाहीं॥
बरनै दीनदयाल, पार पुनि भेंट न होई।
अपनी अपनी गैल, पथी जैहैं सब कोई॥ ७॥

कहै दास सग्राम, काम माछर को करड़ो।
न्हानो कियो निराट, नहींतर करतो परलो॥
पृथ्वी को परलो करै, ऐसो दिसै घाट।
किरपा कीधी रामजी, न्हानो कियो निराट॥
न्हानो कियो निराट, बजावै तोही बरड़ो।
कहै दास सग्राम, काम माछर को करड़ो॥ ८॥

पद।

नातो नाम को जी, म्हांस्यूं तनक न तोड़्यो जाय।
पाना ज्यूं पीली पडी रे, लोग कहे पिण्ड रोग।
छाने लांघण मैं किया रे, राम मिलण के जोग॥
बावल वैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाइ म्हारी बाँह।
मूरख वैद मरम नहि जाणे, कसक कलेजे माँह॥
जाओ वैद घर आपणे रे, म्हारो नाम न लेय।
मैं तो दाझी विरह की रे, काहेकू औपध देय॥
मांस गल गल छीजियो रे, करक रह्या गल माँह।
आँगलियां री मूदड़ी म्हारे, आवण लागी बाँह॥
रह रह पापी पपिहरा रे, पिव को नाम न लेय।
जे कोई विरहण सांभले तो, पिव कारण जीव देय॥
छिन मन्दिर छिन आंगणे रे, छिन छिन ठाढ़ी होय।
घायल-सी भूमू खड़ी म्हारी, व्यथा न बूझै कोय॥
काढ़ कलेजो मैं धरूँ रे, कौआ तू ले जाय।
ज्यां देशां म्हारो हरि वसै रे, वां देखत तूं खाय॥
म्हारे नातो नाम को रे, और न नातो कोय।
मीराँ व्याकुल विरहणी रे, (हरि) दर्शन दीज्यो मोय॥

जसोदा कहा कहौं हौं बात।
तुम्हरे सुत के करतब मोपै कहत, कहे नहिं जात॥
भाजन फोरि ढोरि सब गोरस लै माखन दधि खात।
जौ बरजौं तौ आंखि देखावै रञ्चहु नाहि सकात॥
और अटपटी कहँ लौं बरनौं छुवत पानि सों गात।
'दास चतुर्भुज' गिरिधर गुन हौं कहत-कहत सकुचात॥

छाने=छिप कर। लांघण=उपवास। बावल=पिता। दाझी=जली हुई। करक=हाड़। मूदड़ी=अंगूठी। भूमू=भूलती।

खुसरो की कविता।

बूज पहेलियाँ।

एक नार वह दाँत दँतीली । दुबली पतली छैल छबीली ॥
जब वा तिरियहिं लागै भूख । सूखे हरे चबावे रूख ॥
जो बताय वाही बलिहारी । खुसरो कहे बरे को आरी ॥

आरी।

इधर को आवे उधर को जावे । हर हर फेर काट वह खावे ॥
ठहर रहे जिस दम वह नारी । खुसरो कहे बरे को आरी ॥

आरी।

श्याम बरन औ दाँत अनेक । लचकत जैसी नारी ॥
दोनों हाथ से खुसरो खींचे । और कहे तू आरी ॥ ३ ॥

आरी।

पौन चलत वह देह बढ़ावे । जल पीवत वह जीव गँवावे ॥
है वह प्यारी सुन्दर नार । नार नहीं पर है वह नार ॥ ४ ॥

आग।

फारसी बोली आईना । तुर्की ढूढ़ी पाई ना ॥
हिन्दी बोली आरसी आए । खुसरो कहे कोई न बताए ॥ ५ ॥

आरसी।

टूटी टूट के धूप में पड़ी । जों जों सूखी हुई बड़ी ॥ ६ ॥

बड़ी।

एक नार जब बन कर आवे । मालिक अपने उपर बुलावे ॥
है वह नारी सबके गौं की । खुसरो नाम लिये तो चौंकी ॥ ७ ॥

चौकी।

अन्दर है और बाहर बहे । जो देखे सो मोरी कहे ॥ ८ ॥

मोरी।

खड़ा भी लोटा पड़ा भी लोटा । है बैठा और कहे है लोटा ॥
खुसरो कहें समझ का टोटा ॥ १० ॥

लोटा ।

सावन भादों बहुत चलत है । माघ पूस में थोरी ॥
अमीर खुसरो यों कहे तू बूझ पहेली मोरी ॥ ११ ॥

मोरी ।

एक नार तरवर से उतरी सर पर वाके पाँव ।
ऐसी नार कुनार को मैं ना देखन जाँव ॥ १२ ॥

मैना ।

हाड़ की देही उज्जल रङ्ग । लिपटा रहे नारि के सङ्ग ॥
चोरी की ना खून किया । वाका सिर क्यों काट लिया ॥१३॥

नाखून ।

बीसों का सिर काट लिया । ना मारा ना खून किया ॥ १४ ॥

नाखून ।

एक नार तरवर से उतरी मा सों जनम ना पायो ।
बाप को नांव जो वासे पूछ्यो आधो नांव बतायो ॥
आधो नांव बतायो खुसरू कौन देस की बोली ।
वाको नांव जो पूछ्यो मैंने अपने नांव न बोली ॥ १५ ॥

निंबोली ।

बिन बूझ पहेलियाँ ।

आदि कटे से सबको पारे । मध्य कटे से सबको मारे ॥
अन्त कटे से सबको मीठा । खुसरू वाको आंखों दीठा ॥ १ ॥

काजल ।

बाला था जब सबको भाया । बढ़ा हुआ कछु काम न आया ॥
खुसरो कह दिया उसका नाँव । अर्थ करो नहि छोड़ो गाँव ॥२॥

दिया ।

एक नार पिया को भानी । तन वाको सगरा जों पानी ॥
आब रखे पर पानी नांह । पिया को राखे हिर्दय मांह ॥
जब पी को वह मुख दिखलावे। आपहि सगरी पी हो जावे ॥ ३ ॥

दर्पण।

देख सखी पी की चतुराई । हाथ लगावत चोरी आई ॥ ४ ॥

ओला।

गोरी सुन्दर पातली । केसर काले रंग ॥
ग्यारह देवर छोड़ के । चली जेठ के संग ॥ ५ ॥

अरहर।

एक नार जाके मुह सात । सो हम देखी बेंडी जात ॥
आधा मानुष निगले रहे । आंखों देखी खुसरू कहे ॥ ६ ॥

पैजामा।

है वह नारी सुन्दर नार । नार नहीं पर है वह नार ॥
दूर से सभी को छबि दिखलावे। हाथ किसी के कभू न आवे ॥ ७ ॥

बिजली।

सर पर जटा गले में झोली किसी गुरू का चेला है।
भर भर झोली घर को धावें उसका नाम पहेला है ॥ ८ ॥

भुट्टा।

एक गुनी ने यह गुन कीना । हरियल पिंजरे में दे दीना ॥
देखो जादूगर का हाल । डाले हरा निकाले लाल ॥ ९ ॥

पान।

धूपों से वह पैदा होवे छांय देख मुर्झाये ।
एरी सखी मैं तुझसे पूछूँ हवा लगे मरजावे ॥ १० ॥

पसीना।

एक नार कूएँ में रहे । वाको नीर खेत में बहे ॥
जो कोई वाके नीर को चाखे । फिर जीवन की आश न राखे ॥ ११ ॥

तलवार।

दो सखुना हिन्दी।

प्रश्न	उत्तर
रोटी जली क्यों, घोड़ा अड़ा क्यों, पान सड़ा क्यों ?	फेरा न था।
अनार क्यों न चक्खा, वज़ीर क्यों न रक्खा ?	दाना न था।
गोश्त क्यों न खाया, डोम क्यों न गाया ?	गला न था।
राजा प्यासा क्यों, गदहा उदासा क्यों ?	लोटा न था।
खिचड़ी क्यों न पकाई, कबूतरी क्यों न उड़ाई ?	लकड़ी न थी।
पोस्ती क्यों रोया, चौकीदार क्यों सोया ?	अमल न था।

कह मुकरियाँ।

बरसा बरस वह देस में आवे, मुह से मुह लगा रस प्यावे।
वा खातिर में खरचे दाम, क्यों सखि साजन ? ना सखि आम॥
पड़ी थी मैं अचान चढ़ आयो, जब उतरयो तो पसीनो आयो।
सहम गई नहि सकी पुकार, क्यों सखि साजन ? ना सखि बुखार॥
मद भर जोर हमे दिखलावे, मुफत मेरे छाती चढ़ आवे।
छूट गया सब पूजा जप, क्यों सखि साजन ? ना सखि तप॥
खुल गइ गाँठ खुले नहि खोले, जहाँ तहाँ मेरे सँग डोले।
हिये विराजत होय न भार, क्यों सखि साजन ना सखि हार॥
धमक चढ़े सुधबुध बिसरावे, दाबत जांघ बहुत सुख पावे।
अति बलवत दीनन को थोड़ा, क्यों सखि साजन ? ना सखि घोड़ा॥
अति सरग है रग रँगीलो, है गुणवन्त बहुत चटकीलो।
रामभजन बिन कभी न सोता, क्यों सखि साजन ? ना सखि तोता॥
रात समय मेरे घर आवे, भोर भये वह उठ कर जावे।
यह अचरज है सबसे न्यारा, क्यों सखि साजन ? ना सखि तारा॥
रसना को अति रस उपजावे, छिन में तन के ताप बुझावे।
देखत ही सब ही सुधि बिसरी, क्यों सखि साजन ? ना सखि मिसरी॥

उठा दोनों टांगन बिच डाला, नाप तौल में देखा भाला।
मोल तौल में है वह मँहगा, क्यों सखि साजन? ना सखि लहँगा॥
अर्ध निशा वह आयो भौन, सुन्दरता बरने कहि कौन।
निरखत ही मन भयो अनन्द, क्यों सखि साजन? ना सखि चन्द॥
दासी तें मैं मोल मँगायो, अङ्ग अङ्ग सब खोल दिखायो।
वासों मेरो भयो जु मेल, क्यों सखि साजन? ना सखि तेल॥
शोभा सदा बढ़ावनहारा, आंखिन तें छिन होत न न्यारा।
आठ पहर मेरो मन रञ्जन, क्यों सखि साजन? ना सखि अञ्जन॥
सिगरि रैन वह मो सँग जाग्यो, भोर भयो तो बिछुरन लाग्यो।
वाके बिछुरत फाटे हिया, क्यों सखि साजन? ना सखि दिया॥
छठे छ मासे मम घर आवे, आप हिले अरु मोहिं हिलावे।
नाम लेत मोहिं आवे शङ्का, क्यों सखि साजन? ना सखि पंखा॥
निशदिन मेरे ऊपर रहे, दोऊ कुच लै गाढ़े गहे।
उतरत चढ़त करत झकझोली, क्यों सखि साजन? ना सखि चोली॥
समधन को हाथी को भावे, छोटो मोटो नाहिं सुहावे।
ढूढ ढांढ के लाई पूरा, क्यों सखि साजन? ना सखि चूरा॥
सिगरी रैन छाती पै राखा, उसका रसकस मैंने चाखा।
भोर भयो तब दियो उतार, क्यों सखि साजन? ना सखि हार॥
जब मोरे मन्दिर में आवे, सोते मुझको आन जगावे।
पढ़त फिरत वह बिरह के अच्छर, क्यों सखि साजन? ना सखि मच्छर॥
जाय छात पें पलँग बिछायो, वो निगोड़ो मो ढिग आयो।
मेरो वाको पड़ गयो फन्दा, क्यों सखि साजन? ना सखि चन्दा॥
जीवन सब जग जासों कहै, वा बिनु नेक न धीरज रहै।
हरे छिनक में हिय की पीर, क्यों सखि साजन? ना सखि नीर॥
बिनु आये सबही सुख भूले, आये ते अँग अँग सब फूले।
सीरी भई लगावत छाती, क्यों सखि साजन? ना सखि पाती॥

अनमेलियाँ या ढकोशला।

भादों पकी पीपली, झड़ झड़ पड़े कपास।
त्री मेहतरानी दाल पकाओगी या नंगा सो रहूँ ॥ १ ॥
कोठी भरी कुल्हाड़ियाँ, तू हरीरा करके पी।
वहुत ताउल है तो छप्पर से मुह पोंछ ॥ २ ॥
पीपल पकी पपोलियाँ, झड़ झड़ पड़े हैं वैर।
सर में लगा खटाक से, वाह रे तेरी मिठास ॥ ३ ॥
भैंस चढ़ी बबूल पर, और लप लप गूलर खाय।
दुम उठा कर देखा तो पूरनमासी के तीन दिन ॥ ४ ॥
खीर पकाई जतन से, और चरखा दिया जलाय।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजाय ॥ ला पानी पिला ॥ ५ ॥
औरों की चौपहरी बाजे, चम्भू की अठपहरी।
बाहर का कोई आए नाहीं, आए सारे सहरी ॥
साफ़ सूफ कर आगे राखे, जामें नाहीं तूसल।
औरों के जहाँ सींक समाए, चम्भू के वाँ मूसल ॥ ६ ॥
डूगर से गोलो गुड्यो, मैं जाएयो वड़ वोर।
हाथ लगा कर देखू तो, वाह रे म्हारा ताता खीच ॥ ७ ॥
गेले गेले में चलू, पड़ी पाटड़ा गोह।
पूछ उठा कर देखू तो, तीज आडा तीन दिन ॥ ८ ॥
गुवाड़ विचाले पीपली, मैं जाएयो वड़ वोर।
बाह्यो लाँप को घेसलो, आय पड़ी छाछ की पोट ॥
लुगायाँ कांदा लेल्यो ऐ ॥ ९ ॥
ऊभो ऊँट मींगणा करे, तड़ तड़ बोले ताली में।
पाडोसण ने हेलो पाड़े कुवाड़ो भला ए डोरा घालूं राली में ॥ १० ॥

गूढ़ दोहे।

रावण रामचन्द्र
कञ्चनपुर-पति तास रिपु , तास नाम जो लेत।
कमल सूर्य जम
जल सुत प्रीतम तास सुत , काहे को दुख देत॥ १॥

बुद्धि ज्ञान
शशि-सुत तो घट में नहीं , मोह-रिपु को नहिं लेश।
घर दीपक काजल
भवन जीव सुत-सो हियो , ताको का उपदेश॥ २॥

घटा बिजली कंस कृष्ण लक्ष्मी
आभा मण्डन आभरन , तस रिपु रिपु की नार।
से नारी नर परहला , ते भूला भमै संसार॥ ३॥

दूर दूर है
पापी नरकाँ ना परै , धरमी नरक परन्त।
ऐसे धरमी समझ कै , धरमी धरम करन्त॥ ५॥

मेघ मेंडक साँप मेंडक
हरि गरज्यो हरि ऊपज्यो , हरि आयो हरि पास।
मेंडक जल साँप
जब हरि हरि में रमि गयो , तब हरि भयो उदास॥ ५॥

शृङ्गार लक्षन यौवन १२ वर्ष की
सोलै सींग बतीस खुर , नव थन तेरै कान।
'अकबर देखी बाकरी ,' शिखर चरन्ती पान॥ ६॥

हिमाचल पार्वती शङ्कर सर्प जहर
गिर धी कन्ता आभरण , वाके मुख मे होय।
सो याके नैनों बसै , सङ्क न करना कोय॥ ७॥

कमल ब्रह्मा सरस्वती हंस मुक्ता
दधि-सुत ता सुत ता सुता , ता वाहन भख होय।
सीप लक्ष्मी कृष्ण
ता माता भगिनी पती , निशदिन भजिले सोय ॥ ८ ॥

महाभारत पीठ
भीमा भारत जो न दयो , जो न दयो हनुमन्त।
रामहिं रावण जो न दयो , सो मोहिं दीन्ह्यो कन्त ॥ ९ ॥

लखन सोहागा धनुष गुण
राम-सहोदर कनक रिपु , कोदण्डा को सार।
ए तीनों तोमें नहीं , तो छाँड़ी भरतार ॥१०॥

मृत्तिका साँप उर शिवजी काम मन
दादुर-भोजन अहि ग्रसण , हर रिपु वाहन सोय।
ये तीनों मैं अर्पिया , तऊ न अपनो होय ॥११॥

दीपक
करि शृङ्गार प्रिया चली , सारंग-सुत लै हत्थ।
जलोक रुधिर
जल-सुत भख वैरी भयो , सब शिणगार अकत्थ ॥१२॥

हस्ती सूड उस आकार की जलोक
इन्द्र वाहन की नासिका , तास तणै अनुहार।
रुधिर
उणरो भख मो पाहुणो , आवागमन निवार ॥१३॥

कमल ब्रह्मा हंस मोती
वारी सुत पुनि ताहि सुत , वाहन ताहि को भक्ष।
समुद्र लक्ष्मी कृष्ण
ताहि पिता पुनि ताहि सुता , ताहि पती तव रक्ष ॥१४॥

ब्रह्मा कमल मुख समुद्र चन्द्र मृग
दधिसुत बाहन बदन छबि , दधि-सुत बाहन नैन ।
धन्वन्तरि सुवा
दधि-सुत बाहन नासिका , दधिसुत बाहन बैन ॥१५॥

शेषनाग गरुड़ कृष्ण लक्ष्मी
अवनी-थम्भन तास रिपु , ता स्वामी अर्धङ्ग ।
समुद्र मुक्ता
तास पिता में नीपजै , वासों लाग्यो रङ्ग ॥१६॥

बकरी भेड़ कांटा पृथ्वी इन्द्र
अजा सहेलि तास रिपु , ता जननी भरतार ।
अर्जुन कृष्ण
ताके सुत के मित्र को , भजिये बारम्बार ॥१७॥

भँवरा कमल ब्रह्मा हंस मोती सीप समुद्र
अलि रंजन सुत बाहना , ता भष जननी तात ।
लक्ष्मी बिष्णु
ता पुत्री पति ओट ले , त्रिविध ताप मिटजात ॥१८॥

गनेश मूसा बिल्ली कुत्ता भैरव
शिव सुत बाहन तास रिपु , ता रिपु के असवार ।
तैल
सो जाके मस्तक चढ़े , सो दे साहूकार ॥१ ॥

चन्द्र हार मन
दधि सुत के नीचे बसे , मोती सुत के बीच ।
सो माँगे ब्रज-नायका , करो कृष्ण बक्षीस ॥२०॥

मनी मनाई न मनी , निशि को आयो अन्त ।
अँगूठा
राधा दिखायो कृष्ण को , च्यार नार को कन्त ॥२१॥

लोकोक्तियां।

१ अपनी करनी पार उतरनी।
२ अनमांगे मोती मिले मांगे मिले न भीख।
३ आधी छोड़ पूरी को धावे। ऐसा डूबे थाह न पावे॥
४ आंखों के अन्धे नाम नैनसुख।
५ आप डूबा तो जग डूबा।
६ आग लगन्ते झोंपड़ा जो निकले सो लाभ।
७ औसर चूकी डोमिनी गावे ताल बेताल।
८ ऊधो का लेन न माधो का देन।
९ ऊँट बिलाई ले गई तब हाँजी हाँजी करना।
१० एक तवे की रोटी, क्या मोटी क्या छोटी।
११ एक तो गिलोय कडुई दूसरे नीम चढ़ी।
१२ ओछे की प्रीति बालू की भीति।
१३ ओखली में सिर दिया तो मूसल का क्या डर।
१४ अन्धेर नगरी अनबूझ राजा।
१५ अन्धी पीसे कुत्ते खांय।
१६ अन्धा बांटे रेवड़ी अपनों ही को दे।
१७ करले सो काम और भजले सो राम।
१८ करे तो डर और न करे तो भी डर।
१९ काला अक्षर भैंस बराबर।
२० काल करे सो आज कर आज करे सो अब्ब।
पल में परलै होयगी फेर करोगे कब्ब॥
२१ काल के हाथ कमान, बूढ़ा बचै न ज्वान।
२२ कोयले की दलाली में हाथ काले।
२३ खरी मजूरी चोखा काम।

२४ गाय न बाछी नींद आवै आछी।
२५ गाँव का जोगी जोगना आन गाँव का सिद्ध।
२६ गुड़ खाय गुलगुलों से परहेज।
२७ गुरू कीजै जान और पानी पीजै छान।
२८ घर की खाँड़ किरकिरी बाहर का गुड़ मीठा।
२९ घोड़ा घास से यारी करे तो खाय क्या।
३० घर आये नाग न पूजिये बामी पूजन जाय।
३१ चतुर को चौगुनी मूरख को सौगुनी।
३२ चमड़ी जाय पर दमड़ी न जाय।
३३ चार दिन की चाँदनी फेर अँधेरी रात।
३४ चौबे छब्बे होने गये दूबे रह गये।
३५ चिराग़ तले अँधेरा।
३६ छोटे मुंह बड़ी बात।
३७ चन्दन की चुटकी भली गाड़ी भरो न काठ।
३८ जब तक स्वास तब तक आस।
३९ ज़र है तो नर है, नहीं तो पूरा ख़र है।
४० जन्म के दुखी नाम चैनसुख।
४१ जिसकी लाठी उसकी भैंस।
४२ जैसे कंथा घर रहे तैसे रहे विदेश।
४३ जैसा देश वैसा भेष।
४४ जो धन दीखे जात, आधा लीजै बाँट।
४५ जोरू चिकनी मियां मजूर।
४६ तन पर नहिं लत्ता पान खाय अलबत्ता।
४७ तिरिया तेल, हमीर हठ चढ़े न दूजी बार।
४८ तीन लोक से मथुरा न्यारी।
४९ नया नौ दिन पुराना सौ दिन।

५० नाई बाल कितने , जिजमान आगे आ जायँगे ॥
५१ नाच न जाने आँगन टेढ़ा ।
५२ नौ दिन चले अढ़ाई कोस ।
५३ पराधीन सपनेहु सुख नाहीं ।
५४ पाँसा पड़े सो दाँव, राजा करे सो न्याव ।
५५ परदेशी की प्रीति फूस का तापना ।
५६ बार बार चोर की तो एक बार साह की ।
५७ बाहर वाले खा गये घर के गावें गीत ।
५८ बिच्छू का काटा रोवे और साँप का काटा सोवे ।
५९ बाँझ क्या जाने प्रसूत की पीड़ा ।
६० बैठे से बेगार भला ।
६१ भूलि गई राग रङ्ग भूलि गई जिकड़ी ।
तीन चीज़ याद रही नून तेल लकड़ी ॥
६२ भूले ब्राह्मण भेड़ खाई । अब खाऊँ तो राम दोहाई ॥
६३ मरता क्या न करता ।
६४ मन चङ्गा तो कठौती में गङ्गा ।
६५ मन के हारे हार है मन के जीते जीत ।
६६ मन उमराव करम दरिद्री ।
६७ मार मार तो किये जा नामर्दी तो ईश्वर ने दी ।
७८ मान न मान मैं तेरा महमान ।
६९ मानो तो देव नहीं तो पत्थर ।
७० मुल्ला की दौड़ मसजिद तक ।
७१ मूरख की सारी रैन, छैल की एक घड़ी ।
७२ मूल से ब्याज प्यारा होता है ।
७३ रसोई का विप्र कसाई का कूकर ।
७४ राजा किसके पाहुने, जोगी किसके मीत ।

७५ राम राम जपना। पराया माल अपना॥
७६ रोग का घर खाँसी। लड़ाई का घर हाँसी॥
७७ लड़का बगल में, ढँढोरा नगर में।
७८ लातों के देव बातों से नहीं मानते।
७९ देखा देखी साधे जोग। छीजे काया बाढ़े रोग॥
८० धोबी का कुत्ता घर का न घाट का।
८१ सावन के अन्धे को हरा ही हरा दीखता है।
८२ सौकीन बुढ़िया चटाई का लहँगा।
८३ हम तुम राजी, तो क्या करेगा काजी।
८४ हाथ कंगन को आरसी क्या।
८५ हाथी के दाँत दिखाने के और होते हैं और खाने के और।
८६ होनहार बिरवान के होत चीकने पात।
८७ अति भक्ति चोर के लक्षण।
८८ आदमी में नउआ, जानवर में कउआ।
८९ आदमी जानिये बसे, सोना जानिये कसे।
९० आमों की कमाई, नीबुओं में गमाई।
९१ आँख का अन्धा, गाँठ का पूरा।
९२ आँख हुई चार, तो दिल में आया प्यार।
९३ आँख हुई ओट, तो दिल में हुआ खोट।
९४ उतावला सो बावला, धीरा सो गम्भीरा।
९५ ऊँची दुकान फीके पकवान।
९६ तिल गुड़ भोजन नीच मिताई। आगे मीठ पाछे कड़ुआई।
९७ दिया तले अन्धेरा।
९८ नामी बनिया कमाय खाय। नामी चोर मारा जाय॥
९९ नाक कटी पर हठ न हटी।
१०० नौकरी की पत्थर पर जड़ है।

१०१ पर उपदेश कुशल बहुतेरे।
१०२ पढ़ें फारसी बेचें तेल। ये देखो कर्त्ता के खेल।
१०३ सन्तोषी सदा सुखी।
१०४ पराई हँसी गुड़ से मीठी।
१०५ बहती गङ्गा हाथ पखार लो।
१०६ बाप मरा घर बेटा हुआ, इसका टोटा उसमें गया।
१०७ बिच्छू का मन्तर न जाने सांप के बिल में हाथ डाले।
१०८ मियां रोते क्यों हो! सूरत ही ऐसी।
१०६ रांड सांड और नकटा भैंसा, ये बिगड़े तो होवे कैसा।
११० लेना देना कुछ नहीं लड़ने को मौजूद।
१११ बेस्या बरस घटावही, योगी बरस बढ़ाव।
११२ सुख कहना जन से, दुख कहना मन से।
११३ हिसाब जौ जौ का दान सौ सौ का।
११४ उधार देना झगड़ा लेना।
११५ उधार दीजै दुश्मन कीजै। उधार दिया गाहक खोया।
११६ एक दिन पाहुना दूसरे दिन अनखावना।
११७ काली घटा डरावनी और धौली बरसावनी।
११८ खावे बकरी की तरह और सूखे लकड़ी की तरह।
११६ जब आया देही का अन्त, जैसा गधा वैसा सन्त।
१२० अन्धे के आगे रोये, अपने दीदा खोये।
१२१ किसी का मुह चले, किसी का हाथ।
१२२ थोथा चना, बाजे घना।
१२३ जहां न पहुंचे रवि, तहां पहुंचे कवि।
१२४ जगन्नाथ का भात, जगत पसारे हाथ।
१२५ जागे सो पावे, सोवे सो खोवे।
१२६ आप मरे जग परलय।

१२७ अति का भला न बरसना , अति की भली न धुप्प ।
अति का भला न बोलना , अति की भली न चुप्प ॥

१२८ आती बहू जनमता पूत सबको अच्छा लगता है।

१२९ करघा छोड़ तमासे जाय, नाहक चोट जुलाहा खाय।

१३० कारज धीरे होत है काहे होत अधीर।

१३१ काम परे ही जानिये जो नर जैसो होय।

१३२ पैसा नहीं हो पास तो मेला लगे उदास।

१३३ जाके पाँय न फटै बिवाई। सो क्या जाने पीर पराई॥

१३४ जोड़ जोड़ मर जायँगे। माल जमाई खायँगे॥

१३५ दिल को करार तब सूझे त्यौहार।

१३६ न्यारा पूत परोसी दाखिल।

१३७ पढ़े न लिखे और नाम विद्यासागर।

१३८ लिखें मूसा पढ़ें ईसा।

१३९ सदा दिवाली साधु घर जो घर गेहूँ होय।

१४० सो घर सत्यानाश जहाँ है अति बल नारी।

१४१ एकान्त बासा झगड़ा न हांसा।

१४२ पराये पीर को मलीदा, घर के देव को धतूरा।

१४३ माँगे आवे न भीख, तो छुर्ती खाना सीख।

१४४ मिजाज क्या है तमाशा। घड़ी में तोला घड़ी में माशा॥

१४५ कलाल की बेटी डूबने चली, लोगों ने कहा मतवाली है।

१४६ टाट न लँगोटा नबाब से यारी।

१४७ अटका बनियाँ दे उधार।

१४८ लोहू लगा कर शहीदों में दाखिल।

१४९ पानी पी घर पूछना नाहीं भलो बिचार।

१५० जाकर जिहि पर सत्य सनेहू। सो तिहि मिले न कछु सन्देहू॥

साहित्यिक मनोरञ्जन।

(१)

कहते हैं महाकवि केशव की पुत्रवधू काव्य-कला का अच्छा ज्ञान रखती थीं। किंवदन्ती है कि केशवजी ने अपने पुत्र को पहले 'गीता' पढ़ाई। 'गीता' का प्रभाव पुत्र पर ऐसा पड़ा कि उसने अपनी स्त्री की ओर से विरक्तिभाव धारण कर लिया। पति के इस विरक्ति-भाव से केशव की पुत्रवधू बहुत दुःखित रहा करती थीं। केशवदासजी के यहाँ एक बकरा पला था। एक दिन वह कुछ मस्त-सा था। उसको लक्ष्य कर केशव की पुत्रवधू ने एक छंद रचा। वह इस प्रकार है—

जैहै सबै सुधि भूलि तुम्हैं फिर भूलि न मो तन भूलि चितैहै।
एक को आँक बनावत मेटत पोथी ए आँख लिये दिन जैहै॥
सांची हौं भाखत मोहिं कका कि सौं प्रीतम की गति तेरी हूं ह्वैहै।
मोसों कहा इठलात अजासुत कैहौं बबा की सौं तोहूं सिखैहै॥

बकरे को मस्ती और छेड़खानी से विरत होने को सावधान करते हुए उसने कहा—'अरे अजासुत तू इतना क्यों 'इठलाता है'। याद रख यदि मैं श्वसुरजी से कह दूंगी तो वे तुझे भी मेरे पति की तरह 'गीता' पढ़ाना प्रारम्भ कर देंगे और तब तेरी भी वही दशा हो जायगी जो मेरे पतिदेव की हुई है। दिनरात पुस्तकाध्ययन में ही लगा रहेगा और तुझे भी अपनी स्त्री से विरक्ति हो जायगी!' किसी प्रकार केशव के कानों तक वह छंद पहुंचा। बेचारे बड़े ही लज्जित हुए और उसी दिन से अपने पुत्र को काव्य-शास्त्र पढ़ाना प्रारम्भ किया जिससे पुत्र की चित्त-वृत्ति में परिवर्तन हुआ और अपनी स्त्री की ओर से उसका विरक्ति-भाव दूर हुआ।

कहा जाता है—इसी समय केशव ने 'रसिक प्रिया' रची थी और पुत्र को पढ़ाई भी थी।

(२)

गोस्वामी दम्पतिकिशोरजी को एक दानी सूम का दर्शन हो गया जिनकी तीन बातें इन्हें खटकीं। प्रथम यह थी कि गङ्गाजी के बीच में संकल्प किया हुआ धन वहीं घाट ही पर न बाँट कर घर लाये थे। चाहे यह घर पर आकर बाँट ही दिया गया हो। दूसरी बात गुरु के वंशजों से कुछ द्वेष करने की थी और तीसरी थी हनुमानजी के प्रसादी वाली कथा। इसका विवरण यों है कि दानी सूम के पिता के समय से उनके घर से चार गगरे भर कर लड्डू दीपावली के अवसर पर भोग के लिये जाते थे जिनमें से दो मन्दिर में रह जाते थे और दो प्रसाद रूप में लौट आते थे। पुत्र ने ऐसा प्रबन्ध चाहा कि मन्दिर में एक भाग रहे और तीन भाग उनके यहाँ प्रसाद रूप में लौट आवे। उस मन्दिर में यह प्रबन्ध न हो सकने पर दूसरे मन्दिर से यह ठीका कर लिया गया। तुर्रा यह कि बजरङ्ग बली एक मोदक भी नहीं छूते थे नहीं तो उनसे भी कौन्ट्रैक्ट करना आवश्यक हो जाता। इस सूमता का समाचार गोस्वामीजी ने काव्य-प्रेमियों को इस प्रकार दिया है—

कविराज को कोऊ समस्या दई, कहो कैसे बजै इक हाथ सों तारी।
धन गंग के बीच दै फेरि लियो, गुरु गोत तें कूर ने कूरता धारी॥
बैर कियो बजरंगहुं ते, यह पाप की पोट ललाट पै धारी।
लखि सूमता काल ने तानि कै पानि को, माधो के सीस पटाक दै मारी।

उस दानी सूम सज्जन का नाम माधो से ही आरम्भ होता था।

(३)

एक बार शाहमहम्मद किसी जलाशय में स्नान कर रहे थे। सम्भवतः

समय जाड़े का प्रातःकाल था। जल से भाप उठ रही थी। इस बात को लक्ष्य करके उसने निम्न लिखित दोहार्ध अपनी स्त्री चम्पा को सुनाया—

धूम जो उठत तरंग मों , यह अचरज मोहिं आह ।

चम्पा ने आधे दोहे की तुरंत पूर्ति कर दी और तुरंत अपने पति को सुनाया

अनल रूप कोउ कामिनी , मज्जन करि गई साह ॥

एक बार शाहमहम्मद चम्पा को बहुत दिन पर मिले। चम्पा बेचारी ने बिरह का समय बड़ी कठिनता से काटा था। जब पति को देखा तो आँखें डबडबा आईं और आंसू टपकने लगे। शाहमहम्मद ने यह दशा देखकर चम्पा को निम्न लिखित सोरठार्ध सुनाया और जिज्ञासा की कि क्या मेरा आना तुमको पसन्द नहीं पड़ा ?

किमि दृग ढरे सुवारि , मम आवन भायो नहीं ।

चम्पा ने मुसकुरा कर तुरन्त ऐसा सुकुमार उत्तर दिया कि शाह आनन्द में मग्न हो गए। उसने कहा कि प्रियतम तुम्हारा दर्शन न पा सकने के कारण मेरे नेत्र म्लान हो रहे थे सो आपको देखते ही मैंने उनको आँसुओं से धो डाला है। अब वे स्वच्छ हो गये और आपके रूप को देखने के योग्य हैं।

लीन्हें नैन पखारि , मलिन हुते तुव दरस बिन ॥

हिन्दी साहित्य के इतिहास में अब तक शाहमहम्मद और चम्पा का पता न था।

[साहित्य समालोचक से उद्धृत]

सम्पूर्णम् ।

सूचना।

इस संग्रह को जहाँतक बन सका सरस, सुन्दर और उपादेय बनाने का प्रयत्न किया गया है। यदि पाठकों ने इसे पसन्द किया तो, शीघ्र ही इसका दूसरा भाग पाठकों की सेवा में उपस्थित करने का प्रयत्न करूँगा। जिन प्रौढ़ कवियों की सूक्तियाँ अंधेरे में पड़ी हुई हैं वे खोज २ कर संग्रह की जायँगी तथा कितने ही पूर्व स्थान-प्राप्त कवियों की सजीव कृतियाँ भी इसमें रहेंगी। पुस्तक का मूल्य ३) रक्खा जायगा। अग्रिम ग्राहक बनने वालों को २॥) में ही मिलेगी। संग्रह कैसा होगा, इसका अनुमान तो प्रस्तुत संग्रह के कविता चुनाव से ही लग सकता है।

मैंने यह स्थिर किया है कि कम से कम ३०० अग्रिम ग्राहक बनने पर प्रकाशन कार्य आरम्भ किया जाय। अतः काव्य-प्रेमी पाठकों से सादर निवेदन है, कि जिनको अग्रिम ग्राहक बनना हो, वे पहले ॥) पेशगी न भेज कर केवल अग्रिम ग्राहक बनने का आवेदन-पत्र ही लिख भेजें कि 'मैं अग्रिम ग्राहक बनना चाहता हूं'। ऐसे ३०० आवेदन-पत्र मिलने पर आवेदनकर्त्ताओं को पत्र द्वारा [illegible] दे दी जायगी कि 'अब पेशगी ॥) भेज देने की कृपा

भवदीय—

महालचन्द बयेद।

अध्यक्ष—ओसवाल प्रेस।